* श्रीहरिः *

महर्षि-कृष्णद्वैपायनवेदव्यासरचित

महाभारत

विराट पर्व

मुरादाबादनिवासि-सनातनधर्मपताका सम्पादक

(ऋषिकुमार) रामस्वरूपशर्माकृत

हिन्दी भाषानुवाद सहित

THE MAHABHARAT

VIRAT PARV

With Hindi Translation

by

(Rishikumar)

Ramswarup Sharma

सनातनधर्म यन्त्रालय

मुरादाबादमें छपा

प्रिंटर और पब्लिशर पं० रामस्वरूप शर्मा

१९१३

विराटपर्व की विषयसूची

अध्याय विषय

पुस्तक मिलनेका पता—

पं० कु० रामस्वरूपशर्मा

सनातनधर्म छापाखाना, मुरादाबाद.

श्रीहरि

महाभारत

विराटपर्व ।

पाण्डवप्रवेश पर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच । कथं विराटनगरे मम पूर्वपितामहाः । अज्ञातवासमुषिता दुर्योधनभयार्दिताः ॥ २ ॥ पतिव्रता महाभागा सततं ब्रह्मवादिनी । द्रौपदी च कथं ब्रह्मन्नज्ञाता दुःखिताऽवसत् ॥ ३ ॥ वैशम्पायन उवाच । यथा विराटनगरे तव पूर्वपितामहाः । अज्ञातवासमुषितास्तच्छृणुष्व नराधिप ॥ ४ ॥ तथा स तु वरं लब्ध्वा धर्मो धर्मभृतां वरः गत्वाश्रमं ब्राह्मणेभ्य आचख्यौ सर्वमेव तत् ॥ ५ ॥ कथयित्वा तु तत्सर्वं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिरः । अरणीसहितं तस्मै ब्राह्मणाय न्यवेदयत् ॥ ६ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा धर्मपुत्रो महामनाः । सन्निवर्त्यानुजान् सर्वानिति होवाच भारत ॥ ७ ॥ द्वादशेमानि वर्षाणि

भगवान् नारायण, नरों में उत्तम नर भगवान् तथा वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को नमस्कार करके इतिहासादिक ग्रन्थों की व्याख्या का आरम्भ करै ॥ १ ॥ जनमेजय ने पूछा कि—हे ब्रह्मन् ! हमारे पितामह (पड़बाबा) पाण्डव, दुर्योधनके भयसे पीड़ा पाकर किसप्रकार विराट नगरमें छुपकर रहे थे ॥ २ ॥ और हे ब्रह्मन् ! महाभाग्यशाली ब्रह्मवादिनी दुखिनी और पतिव्रता द्रौपदी भी किस प्रकार छिपकर रही थी ! सो कहिये ॥ ३ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे राजन् ! आपके पूर्वपितामह पाण्डव विराट नगरमें जिसप्रकार छुपकर रहे थे सो तुम सुनो ॥ ४ ॥ धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर यक्ष से वर पाकर आश्रम में गए और उन्होंने ब्राह्मणों को वे सब बातें सुनाईं ॥ ५ ॥ ब्राह्मणों से वे सब बातें कहकर उन्होंने अरणी सहित अग्निमन्थन करनेका यंत्र ब्राह्मणको दिया ॥ ६ ॥ इसके पीछे हे भारत उदार चित्तवाले धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर सब भाइयोंको अपनेपास बुलाकर इस प्रकार कहने लगे कि-॥ ७ ॥ हमको राज्य से बाहर हुए आज

राज्यविप्रोषिता वयम् । त्रयोदशोऽयं सम्प्राप्तः कृच्छ्रात् परमदुर्वसः ॥ ८ ॥ स साधु कौन्तेय इतो वासमर्जुन रोचय । संवत्सरमिमं यत्र वसेमाविदिताः परैः ॥ ९ ॥ अर्जुन उवाच ॥ तस्यैव वरदानेन धर्मस्य मनुजाधिप । अज्ञाता विचरिष्यामो नराणां नात्र संशयः ॥ १० ॥ तत्र वासाय राष्ट्राणि कीर्त्तयिष्यामि कानिचित् । रमणीयानि गुप्तानि तेषां किञ्चित् स्म रोचय ॥ ११ ॥ सन्ति रम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरून् । पाञ्चालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः ॥ १२ ॥ दशार्णा नवराष्ट्राश्च मल्लाः शाल्वा युगन्धराः । कुन्तिराष्ट्रञ्च विपुलं सुराष्ट्रावन्तयस्तथा ॥ १३ ॥ एतेषां कतमो राजन् निवासस्तव रोचते । यत्र वत्स्यामहे राजन् सम्वत्सरमिमं वयम् ॥ १४ ॥ युधिष्ठिर उवाच । श्रुतमेतन्महाबाहो यथा स भगवान् प्रभुः । अब्रवीत् सर्वभूतेशस्तत्तथा न तदन्यथा ॥ १५ ॥ अवश्यन्त्वेव वासार्थं रमणीयं शिवं सुखम् सम्मन्त्र्य सहितैः सर्वैर्वस्तव्यमकुतोभयैः ॥ १६ ॥ मत्स्यो विराटो

बारह वर्ष बीत गए और अब तेरहवां वर्ष लगेगा उसमें हमको बड़ी सम्हाल रख महादुःख के साथ छुपकर रहना होगा॥८॥ इस लिये हे कुन्तीपुत्र सत्पुरुष अर्जुन ! दूसरे पुरुष हमको पहिचान नसकें इस प्रकार हमको इस १३ वं वर्षमें यहांसे किसी अन्य स्थानमें जाकर रहना चाहिये, ऐसे किसी निवास स्थानको पसन्द करो ॥ ९ ॥ अर्जुनने कहा कि—हे महीप ! धर्मराजके दिये हुए वरदान के प्रभाव से मनुष्य हमको नहीं पहिचान सकेंगे इसकारण आप पृथ्वीपर फिरें इसमें सन्देह न करें ॥ १० ॥ अब मैं आपको बहुतसे छुपेहुए रमणीक स्थान रहनेके लिये बताता हूँ उनमेंसे आप किसी एकको पसन्द करलीजिये ॥ ११ ॥ कुरुदेशके आस पास पंचाल, चेदि, मत्स्य. शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगन्धर विशाल कुन्ती राष्ट्र सुराष्ट्र और अवन्ति नामके देश हैं ये सब देश रमणीय हैं और इनमें बहुतसा अन्न उत्पन्न होता है ॥ १२—१३ ॥ हे राजन् ! इन देशोंमेंसे किस देश में रहना आपको अच्छा लगताहै आप जिस देश को बतलावें उस देशमें हम गुप्तरीतिसे इस तेरहवें वर्षमें वास करें ॥ १४ ॥ युधिष्ठिर बोले हे महाबाहु अर्जुन ! सब प्राणियोंके अधिपति धर्मराजने जो कुछ कहा है वह मैंने सुना है, और उस प्रकार ही करना चाहिये, उसके विपरीत काम करनेमें लाभ नहीं होगा ॥ १५॥ हम सबोंको इकट्ठे होकर रहनेके लिये रमणीक और सुखकारक शुभस्थान का अवश्य विचार करना चाहिये फिर निर्भय होकर हम सब तहां रहेंगे ॥ १६ ॥ तुम्हारे कहे हुए देशोंमें मत्स्य देशका विराट् राजा बल

बलवानभिरक्तोऽथ पाण्डवान्। धर्मशीलो वदान्यश्च वृद्धश्च सततं प्रियः ॥ १७ ॥ विराटनगरे तात सम्वत्सरमिमं वयम्। कुर्वन्तस्तस्य कर्माणि विहरिष्याम भारत ॥ १८ ॥ यानि यानि च कर्माणि तस्य शक्यामहे वयम्। आसाद्य मत्स्यं तत् कर्म प्रब्रूत कुरुनन्दनाः ॥ १९ ॥ अर्जुन उवाच। नरदेव कथं तस्य राष्ट्रे कर्म करिष्यसि। विराटनगरे साधो रंस्यसे केन कर्मणा ॥ २० ॥ मृदुर्वदान्यो ह्रीमांश्च धार्मिकः सत्यविक्रमः। राजंस्त्वमापदाक्रान्तः किं करिष्यसि पाण्डव ॥ २१ ॥ न दुःखमुचितं किंचिद्राजा वेद यथा जनः। स इमामापदं प्राप्य कथं घोरान्तरिष्यसि ॥ २२ ॥ युधिष्ठिर उवाच। शृणुध्वं यत्करिष्यामि कर्म वै कुलनन्दनाः। विराटमनुसम्प्राप्य राजानं पुरुषर्षभाः ॥ २३ ॥ सभास्तारो भविष्यामि तस्य राज्ञो महात्मनः। कंको नाम द्विजो भूत्वा मताक्षः प्रियदेवनः ॥ २४ ॥ वैदूर्यान् काञ्चनान् दान्तान् फलैर्ज्योतीरसैः सह। कृष्णाक्षाल्लोहिताक्षांश्च निवर्त्स्यामि मनोरमान् २५ विराटराजं रमयन् सामात्यं सह बान्धवम्। न च मां वेत्स्यते कश्चि-

---

वान् है, पांडवोंसे प्रीति करता है धर्मशील उदार अवस्थामें वृद्ध और सदा प्रीति रखनेवाला है ॥१७॥ हे भारत! हमको उस विराट राजा के कार्य करके यह एक वर्ष विराट् नगरमें विहार करके विताना ठीक है ॥ १८ ॥ हे कुरुवंशियो! अब तुम मुझे बताओ कि-हम मत्स्य देशके राजाके पास जाकर क्या२ सेवा करनेको कहैं॥१९॥अर्जुनने बूझा कि—हे महात्मा राजन्! तुम विराट् राजाके नगरमें क्या कार्यकर के अपने दिनोंको सुखसे विताओगे ॥ २० ॥ तुम कोमल उदार लज्जाशील धार्मिक और सत्यपराक्रमी हो तो भी हे राजन्! अब तुम विपत्तिमें आपड़े हो, अतः अब तुम क्या काम करोगें? ॥ २१ ॥ साधारण मनुष्य की समान किसी प्रकारका दुःख तुम्है हो यह अयोग्य है तो भी तुम ऐसी भयङ्कर विपत्तिमें आपडे हो तो उस विपत्ति से किस प्रकार तरोगे? ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि—हे पुरुष श्रेष्ठ कुरुनन्दनों! मैं विराट् राजाके पास जाकर जो काम करूँगा उस कामको तुम सुनो ॥ २३ ॥ मैं पाशोंकी विद्याको जानने वाला तथा खेल पर प्रीति करनेवाला कंक नामका ब्राह्मण बनकर उस महात्मा राजाका सभासद् बनूँगा ॥ २४ ॥ और चौपड़के कोठों पर रंग विरंगी पट्टियोंपर भूँरे पीले लाल और धौले रंगकी मनोहर मनोहर हाथी दाँतकी गुट्टोंको काले और लाल फाँसे फेंककर उनको लाऊँगा ॥ २५ ॥ और विराट् राजा उसके मंत्री और संबन्धियोंको खिलाकर

तोषयिष्ये च तं नृपम् ॥ २६ ॥ आसं युधिष्ठिरस्याहं पुरा प्राणसमः सखा । इति वक्ष्यामि राजानं यदि मां सोऽनुयोक्ष्यते ॥ २७ ॥ इत्येतद्वो मयाख्यातं विहरिष्याम्यहं यथा । वृकोदर विराटे त्वं रंस्यसे केन हेतुना ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि युधिष्ठिरादिमन्त्रणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

भीमसेन उवाच । पौरोगवो ब्रुवाणोऽहं वल्लवो नाम भारत । उपस्थास्यामि राजानं विराटमिति मे मतिः ॥ १ ॥ सूपानस्य करिष्यामि कुशलोऽस्मि महानसे । कृतपूर्वाणि यान्यस्य व्यञ्जनानि सुशिक्षितैः ॥ २ ॥ तानप्यभिभविष्यामि प्रीतिं संजनयन्नहम् । आहरिष्यामि दारूणां निचयान्महतोऽपि च ॥ ३ ॥ यत् प्रेक्ष्य विपुलं कर्म राजा संयोक्ष्यते स माम् । अमानुषाणि कुर्वाणस्तानि कर्माणि भारत ॥ ४ ॥ राज्ञस्तस्य परे प्रेष्या मंस्यन्ते मां यथा नृपम् । भक्ष्यान्नरसपानानां भविष्यामि तथेश्वरः ॥ ५ ॥ द्विपाया बलिनो राजन् वृषभा

प्रसन्न करूँगा, इसप्रकार करनेसे मुझे कोई नहीं पहचानेगा ॥ २६ ॥ यदि राजा मुझसे पूछेगा कि—तुम कौन हो ? तो मैं कहूँगा कि—पहिले मैं राजा युधिष्ठिरका प्राणसमान मित्र था ॥ २७ ॥ मैं विराट् नगरमें किस प्रकार कार्य करके दिन बिताऊँगा यह बात कहकर मैंने तुम्हें सुनादी, हे वृकोदर ! विराट नगरमें तुम क्या काम करके विहार करोगे ? ॥ २८ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ * ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

भीमसेनने कहा कि—हे भरतवंशी राजन् ! मेरा यह विचार है कि-मैं विराट् राजा के पास जाकर यह कहूँगा कि— मेरा नाम वल्लव है और मैं पाकशालाका रसोइया हूँ, यह कहकर विराट् राजाकी नौकरी करूँगा ॥ १ ॥ मैं रसोईके काममें चतुर हूँ इसलिये भोजनभवन में जो दाल, शाक आदि बनाऊँगा तथा उसके बहुत ही चतुर रसोइयोंने जो पहिले भाजी आदि व्यंजन बनाए होंगे उनको नीचा दिखानेवाले भोजन बनाऊँगा, और अपने ऊपर राजाका प्रेम उत्पन्न करूँगा, और रसोई के लिये लकड़ियोंके बड़े २ गट्ठों को भी ले आया करूँगा ॥ २—३ ॥ ऐसे अद्भुत कर्मको देख कर राजा मुझको रसोइयेके काम पर रखलेगा और हे भारत ! मैं विराट् नगरमें ऐसे २ काम करूँगा कि—जिनको अन्य मनुष्य करही न सकें ॥ ४ ॥ जिससे राजाके अन्य सेवक मेरा राजाकी बराबर मान करेंगे, और तिससे मैं भक्ष्यादिक भोजन पेय तथा रसका स्वामी हो जाऊँगा ॥ ५ ॥ हे राजन्, बलवान् हाथी तथा बैलोंको सिखा कर

वा महाबलाः । विनिग्राह्या यदि मया निग्रहीष्यामि तानपि ॥ ६ ॥ ये च केचिन्नियोत्स्यन्ति समाजेषु नियोधकाः । तानहं हि नियोत्स्यामि रतिं तस्य विवर्द्धयन् ॥ ७ ॥ न त्वेतान् युध्यमानान् वै हनिष्यामि कथञ्चन । तथैतान् पातयिष्यामि यथा यास्यन्ति न क्षयम् ॥ ८॥ आरालिको गोविकर्ता सूपकर्ता नियोधकः । आसंयु युधिष्ठिरस्याहमिति वक्ष्यामि पृच्छतः ॥ ९ ॥ आत्मानमात्मना रक्षंश्चरिष्यामि विशांस्पते । इत्येतत्प्रतिजानामि विहरिष्याम्यहं यथा ॥ १० ॥ युधिष्ठिर उवाच । यमग्निर्ब्राह्मणो भूत्वा समागच्छन्नृणां वरम् । दिधक्षुः खाण्डवं दावं दाशार्हसहितं पुरा ॥ ११ ॥ महाबलं महाबाहुमजितं कुरुनन्दनम् । सोऽयं किङ्कर्म कौन्तेयः करिष्यति धनञ्जयः ॥ १२ ॥ योऽयमासाद्य तं दावं तर्पयामास पावकम् । विजित्यैकरथेनेन्द्रं हत्वा पन्नगराक्षसान् ॥ १३ ॥ वासुकेः सर्पराजस्य स्वसारं हृतवांश्च यः । श्रेष्ठो यः प्रतियोधानां सोऽर्जुनः किङ्करिष्यति ॥ १४ ॥ सूर्यः प्रतपतां श्रेष्ठो

ठीक करनेका काम मुझे सौंपा जायगा तो मैं उनको भी सिखाकर ठीक करूँगा ॥ ६ ॥ और यदि सभामें कोई मल्ल मेरे साथ युद्ध करना चाहेंगे तो मैं सभामें उनके साथ युद्ध करके भी विराट् राजाको प्रसन्न करूँगा ॥ ७ ॥ उन युद्ध करनेवाले वाले मल्लोंको मैं किसी दाँवसे मार नहीं डालूँगा किन्तु मैं उनको पृथ्वीपर इस प्रकार पटकूँगा कि—जिससे वह मरे नहीं ॥ ८ ॥ कदाचित् राजा मुझसे पूंछेगा कि—तू कौन है, तब मैं उससे कहूँगा कि-मैं राजा युधिष्ठिर का आरालिक (हाथियों को शिक्षा देने वाला) गोविकर्त्ता (गद्य पद्य बनाने वाला) सूपकर्त्ता (रसोइया) औरनियोधक (महायोधा) था ॥ ९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मैं अपने वास्तविक रूपको छिपाकर विराट् नगरमें विहार करूँगा, मैं इनमेंसे किसी एक प्रकारसे विराट् नगर में समय बिताऊँगा इस लिये मैंने आपसे निश्चितरूपसे कह दियाहै ॥ १० ॥ युधिष्ठिर कहनेलगे, कि-पहिले अग्नि खाण्डव वन को जलानेकी इच्छा से ब्राह्मणका रूप धारण कर श्री कृष्णके साथ बैठेहुए पुरुष श्रेष्ठ महाबली महाबाहु, अजित कुरुनन्दन अर्जुनके पास गया था वह कुन्तीकुमार अर्जुन विराट् नगरमें क्या कार्य करेगा ॥ ११—१२ ॥ जिस अर्जुनने दावानलके पास जा एक रथसे इंद्रको पराजित कर दैत्य तथा पन्नगोंको नष्ट करके अग्निको तृप्त किया था ॥ १३ ॥ जिस अर्जुनने सर्पराज वासुकि की बहिनका हरण किया था तथा जो अर्जुन शत्रु योधाओंके सन्मुख टक्कर लेनेमें श्रेष्ठ है वह अर्जुन क्या काम करेगा ॥ १४ ॥ जैसे तपानेवाली तेजस्वी वस्तुओंमें

द्विपदां ब्राह्मणो वरः । आशीविषश्च सर्पाणामग्निस्तेजस्विनां वरः ॥ १५ ॥ आयुधानां वरं वज्रं ककुद्मी च गवांवरः । ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठः पर्जन्यो वर्षतां वरः ॥ १६ ॥ धृतराष्ट्रश्च नागानां हस्तिष्वैरावणो वरः । पुत्रः प्रियाणामधिको भार्या च सुहृदां वरा ॥ १७ ॥ यथैतानि विशिष्टानि जात्यां जात्यां वृकोदर । एवं युवा गुडाकेशः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १८ ॥ सोऽयमिन्द्रादनवरो वासुदेवान्महाद्युतिः । गाण्डीवधन्वा बीभत्सुः श्वेताश्वः किं करिष्यति ॥ १९ ॥ उषित्वा पञ्चवर्षाणि सहस्राक्षस्य वेश्मनि । अस्त्रयोगं समासाद्य स्ववीर्यान्मानुषाद्भुतम् । दिव्यान्यस्त्राणि चाप्तानि देवरूपेण भास्वता ॥ २० ॥ यं मन्ये द्वादशं रुद्रमादित्यानां त्रयोदशम् । वसूनां नवमं मन्ये ग्रहाणां दशमं तथा ॥ २१ ॥ यस्य बाहू समौ दीर्घौ ज्याघातकठिनत्वचौ । दक्षिणे चैव सव्ये च गवामिव वहः कृतः ॥ २२ ॥ हिमवानिव शैलानां

सूर्य श्रेष्ठ है मनुष्योंमें जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ है सर्पोंमें जैसे विषैला सर्प श्रेष्ठ है, तेजस्वी वस्तुओंमें जैसे अग्नि श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ आयुधोंमें जैसे वज्र श्रेष्ठ है बैलोंमें जैसे ककुद् (ऊँचेकन्धे) वाला बैल श्रेष्ठ है, नदियोंमें जैसे समुद्र श्रेष्ठ है, वर्षा करनेवाले मेघोंमें जैसे पर्जन्य श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ हाथियोंमें जैसे धृतराष्ट्र हाथी श्रेष्ठ है, देवहस्तियोंमें जैसे ऐरावत हाथी श्रेष्ठ है प्रिय वस्तुओंमें जैसे पुत्र श्रेष्ठहै, हितैषियोंमें जैसे स्त्री श्रेष्ठ है, हे वृकोदर ऊपर कही हुई वस्तुए जैसे अपनी२ जातिमें श्रेष्ठ गिनी जाती है, ऐसे ही यह युवा अर्जुन सकल धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठहै ॥ १७—१८ ॥ इन्द्र और श्री कृष्णके समान बड़ी कान्तिवाला, गाण्डीव धनुषधारी श्वेत घोड़ोंके रथवाला, यह अर्जुन विराट् नगरमें क्यों काम करेगा ॥ १९ ॥ जिसने इन्द्रके भवनमें पांच वर्षतक रहकर अपने पराक्रमसे मनुष्यों को आश्चर्य में डालनेवाली अस्त्रविद्या सीखी थी तथा तेजस्वी और दिव्य रूप वाले जिस अर्जुन ने दिव्यास्त्र सम्पादन किये थे ॥ २० ॥ और मैं जिसको ग्यारह रुद्रोंमें बारहवां रुद्रमानता हूँ, बारह आदित्योंमें तेरहवां आदित्य मानता हूँ आठ वसुओंमें नवमा वसु मानता हूँ और नवग्रहों में दशवां ग्रह मानताहूँ ॥ २१ ॥ जिसकी भुजा एक समान तथा लम्बी हैं, जिसके हाथ की खाल प्रत्यञ्चाके आघातसे कड़ी होगई है और जैसे जुआ खेंचनेसे बैलके कन्धेपर ठेठ पड़जाती है तैसेही धनुषकी डोरी खेंचनेसे जिसके बाएं दाएं हाथोंमें ठेठें पड़गई हैं ॥ २२ ॥ और जो पर्वतोंमें हिमाचल समान, देवताओंमें इन्द्र

समुद्रः सरितामिव । त्रिदशानां यथा शक्रो वसूनामिव हव्यवाट् २३
मृगाणामिव शार्दूलो गरुडः पततामिव । वरः सन्नह्यमानानां सोऽ-
र्जुनः किं करिष्यति ॥ २४ ॥ अर्जुन उवाच । प्रतिज्ञां षंढकोऽस्मीति
करिष्यामि महीपते । ज्याघातौ हि महान्तौ मे संवर्तुं नृप दुष्करौ
॥ २५ ॥ वलयैश्छादयिष्यामि बाहू किणकृतांविभो कर्णयोः प्रतिमुच्याहं
कुण्डले ज्वलनप्रभे ॥ २६ ॥ पिनद्धकम्बुः पाणिभ्यां तृतीयां प्रकृतिं
गतः । वेणीकृतशिरा राजन्नाम्ना चैव बृहन्नला ॥ २७ ॥ पठन्नाख्या-
यिकाश्चैव स्त्रीभावेन पुनः पुनः । रमयिष्ये महीपालमन्यांश्चान्तःपुरे
जनान् ॥ २८ ॥ गीतं नृत्यं विचित्रञ्च वादित्रं विविधं तथा । शिक्षयि-
ष्याम्यहं राजन् विराटस्य पुरस्त्रियः ॥ २९ ॥ प्रजानां समुदाचारं बहु-
कर्म कृतं वदन् । छादयिष्यामि कौन्तेय माययात्मानमात्मना॥ ॥३० ॥
युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका । उषिता स्मीति वक्ष्यामि
पृष्टो राज्ञा च पाण्डव ॥ ३१ ॥ एतेन विधिना छन्नः कृतकेन यथा-

समान नदियों में समुद्र समान, वसुओंमें बलिदान ग्रहण करनेवाले अग्नि की समान, पशुओंमें सिंह समान और पक्षियों में गरुड़ की समान यह अर्जुन विराट् नगरी में क्या काम करेगा ॥ २३—२४ ॥ अर्जुनने कहा कि—हे राजन्! मैं राजा विराट्के पास जाकर प्रतिज्ञा करूँगा कि—मैं हिजड़ा हूँ, हेराजन्! मेरी भुजाओंके ऊपर जो धनुषकी डोरी की ठेठें पड़ी हैं उनको ढकना कठिन है ॥ २५ ॥ तोभी मैं हाथीदांतकी बनी हुई चूड़ियोंसे अपने हाथकी ठेठों को छिपाऊंगा और दोनों कानोंमें अग्निकी समान कान्तिवाले दो कुण्डल पहरूंगा ॥ २६ ॥ हाथोंमें शंखके कड़े पहरलूंगा और मस्तकपर चोटी गूंथ हीजड़ेका रूप धारण करके बृहन्नला नाम धारण रक्खूंगा ॥२७॥ और स्त्रियोंके स्वभाव के अनुकूल प्राचीन राजाओंके चरित्रोंको गाकर वारंवार राजाके तथा अन्तःपुरमें रहनेवाले दूसरे मनुष्योंके चित्तों को आनन्दित करूँगा ॥ २८ ॥ और हे राजन् विराट् की स्त्रियोंको तथा नगरकी स्त्रियोंको विचित्र गीत नृत्य तथा नाना प्रकारके बाजे सिखाऊंगा ॥ २९ ॥ और प्रजाके किये हुए उत्तम प्रकारके उदार कार्योंकी बहुत प्रशंसा करूंगा, हे कुन्तीपुत्र! मैं इस प्रकार नपुंसक का रूप धारण करके अपने रूप को छिपाये रहूँगा ॥ ३० ॥ हे पाण्डव कदाचित राजा मुझसे बूझेगा कि—तू कौन है, तब मैं उसको उत्तर दूंगा कि—मैं पहिले राजा युधिष्ठिरके महलमें द्रौपदीकी सेविका होकर रही थी ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र! मैं इसप्रकार बनावटी ढंगसे, जैसे राखमें अग्नि छुपी रहती है तैसेही विराट् राजाके घरमें अपने

नलः । विहरिष्यामि राजेन्द्र विराटभवने सुखम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि युधिष्ठिरादि मन्त्रणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच । इत्येवमुक्त्वा पुरुषप्रवीरस्तथार्जुनो धर्मभृतां वरिष्ठः । वाक्यं तथासौ विरराम भूयो नृपोऽपरं भ्रातरमाबभाषे ॥१॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किं त्वं नकुल कुर्वाणस्तत्र तात चरिष्यसि । कर्म तत्त्वं समाचक्ष्व राज्ये तस्य महीपतेः । सुकुमारश्च शूरश्च दर्शनीयः सुखोचितः ॥ २ ॥ नकुल उवाच ॥ अश्वबन्धो भविष्यामि विराटनृपतेरहम् । सर्वथा ज्ञानसम्पन्नः कुशलः परिरक्षणे ॥ ३ ॥ ग्रन्थिको नाम नाम्नाहं कर्मैतत् सुप्रियं मम । कुशलोऽस्म्यश्वशिक्षायां तथैवाश्वचिकित्सने । प्रियाश्च सततं मेऽश्वाः कुरुराज यथा तव ॥ ४ ॥ ये मामामन्त्रयिष्यन्ति विराटनगरे जनाः । तेभ्य एवं प्रवक्ष्यामि विहरिष्याम्यहं यथा ॥ ५ ॥ पाण्डवेन पुरा तात अश्वेष्वधिकृतः पुरा । विराटनगरे छन्नश्चरिष्यामि महीपते ॥ ६॥ युधिष्ठिर उवाच । सहदेव कथं तस्य समीपे विहरिष्यसि । किं वा त्वं कर्म कुर्वाणः प्रच्छन्नो विहरिष्यसि ॥७॥ सहदेव उवाच । गोसंख्याता भविष्यामि विराटस्य मही-

स्वरूपको छिपाकर सुखसे विहार करूंगा ॥ ३२ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! पुरुषों में महाबली और धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ अर्जुन इस प्रकार कहकर मौन होगए, तब राजा युधिष्ठिरने दूसरे भाईसे बूझना प्रारम्भ किया ॥ १ युधिष्ठिरने कहा कि—हे तात नकुल ! तुम सुकुमार शूर, वीर, दर्शनीय और सुख भोगने योग्य हो, अतः कहोकि—तुम विराट् राजाके नगरमें क्या कार्य करके विहार करोगे ? वह कार्य मुझे बतावो ॥ २ ॥ नकुलने कहा कि-मुझे घोड़ोंके विषयमें अच्छा ज्ञान हैं, घोड़ोंकी रक्षा करनेमें घोड़ों को सिखाकर चतुर करनेमें तैसे ही घोड़ों की चिकित्सा करने में मैं कुशल हूँ और हे कुरुराज ! जैसे आपको घोड़े प्यारे हैं ऐसे ही मुझकोभी घोड़ोंसे अधिक प्रेम है, सार यह है कि अश्वसम्बन्धी कार्य्य मुझको बहुत प्रिय है अतः मैं ग्रन्थिक नाम धारण करके राजा विराट् के पास जाऊँगा और उनके यहां अश्वपाल बनकर रहूँगा, ॥ ३—४ ॥ और विराट् नगरमें जो लोग मुझसे बूझेंगे कि--तुम कौन हो तो मैं उत्तर दूंगा कि—पहिले पाण्डवोंने मुझको घोड़ोंका अध्यक्ष बनाया था, इस प्रकार उत्तर देकर हे राजन् ! मैं विराट्नगरमें छिप कर रहसकूँगा ॥ ५—६ ॥ तदन्तर युधिष्ठिर ने सहदेवसे बूझा कि-हे सहदेव तुम विराटनगरमें क्याकार्य करके छुपेहुए रहोगे ॥७ ॥ सहदेव

पतेः । प्रतिषेद्धा च दोग्धा च संख्याने कुशलो गवाम् ॥ ८ ॥ तन्तिपाल इति ख्यातो नाम्नाहं विदितस्त्वथ । निपुणञ्च चरिष्यामि व्येतु ते मानसोज्वरः ॥ ६ ॥ अहं हि सततं गोषु भवता प्रहितः पुरा । तत्र मे कौशलं सर्वमवबुद्धं विशाम्पते ॥ १० ॥ लक्षणञ्चरितं चापि गवां यच्चापि मंगलम् । तत्सर्वं मे सुविदितमन्यच्चापि महीपते ॥ ११ ॥ वृषभानपि जानामि राजन् पूजितलक्षणान् । येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते ॥ १२ ॥ सोऽहमेवं चरिष्यामि प्रीतिरत्र हि मे सदा । न च मां वेत्स्यते कश्चित्तोषयिष्ये च पार्थिवम् ॥ १३ ॥ युधिष्ठिर उवाच इयं हि नः प्रिया भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । मातेव परिपाल्या च पूज्या ज्येष्ठेव च स्वसा ॥ १४ ॥ केन स्म द्रौपदी कृष्णा कर्मणा विचरिष्यति । न हि किञ्चिद्विजानाति कर्म कर्त्तुं यथा स्त्रियः ॥ १५ ॥ सुकुमारी च बाला च राजपुत्री यशस्विनी । पतिव्रता महाभागा कथन्नु विचरिष्यति ॥ १६ ॥ माल्यगंधानलंकारान्वस्त्राणि विवि-

---

ने उत्तर दिया कि—मैं उद्धत गौओंको रोकनेमें दूध दुहनेके कार्यमें चतुर हूँ तथा गौओंकी परीक्षा करने में भी चतुर हूँ। अतः विराट् राजाके पास तंतीपाल नामसे गौओंका परीक्षक बनकर बड़ी चतुराईसे अपने स्वरूपको छिपाकर विराट्नगरमें निवास करूँगा और फिरूँगा अतः आप अपने मनमें (कुछ भी) सन्ताप न करें ॥ ८-६॥ हे राजन् ! पहिले आपने मुझे गौओंके ऊपर नियत किया था उस समय जैसी चतुरता मैंने दिखाई थी उस सबको आप जानते ही हैं, ॥ १० ॥ हे राजन् गौओंके मंगलकारक जो कोई चिन्ह अथवा चरित्र होसकते हैं उन सबको मैं भलेप्रकारसे जानता हूँ । तथा गौओंकी और अन्य सब रीतिओंको भी मैं पूर्णरूपसे जानता हूँ ॥ ११ ॥ और मैं प्रशंसा योग्य लक्षणों वाले बैलोंको भी पहिचानता हूँ कि—जिन बैलोंके मूत्र सूँघनेसे वंध्या स्त्रीके भी गर्भ रह सकता है ॥ १२ ॥ हे राजन् ! मुझे गोपालन पर सदा प्रेम है, अतः मैं ऐसा ही करूँगा ! मैं राजाको प्रसन्न करूँगा तथा ग्वालियेके वेशमें इस प्रकार छिपकर रहूँगा कि-- कोई मुझे पहिचान न सकेगा ॥ १३ ॥ युधिष्ठिर ने कहा, कि-यह अपनी प्यारी भार्या द्रौपदी हमको प्राणोंसे भी अधिक मान्य है यह माताकी समान पालन करनेयोग्य है और बड़ी बहिनकी समान पूजनीय है ॥१४॥ अतः यह द्रुपद कुमारी कृष्णा क्या कार्य करके विराट् नगरमें दिनोंको वितावेगी? सामान्य स्त्रियोंकी समान यह किसी कार्य को करना नहीं जानती॥१५॥इसका शरीर कोमल है, अवस्था में बाला

धानि च । एतान्येवाभिजानाति यतो जातासि भामिनी ॥ १७ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ सैरंध्र्यो रक्षिता लोके भुजिष्याः सन्ति भारत । नैवमन्या स्त्रियो यान्ति इति लोकस्य निश्चयः साहं ब्रुवाणा सैरंध्री कुशला केशकर्मणि ॥ १८ ॥ युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका । उषितास्मीति वक्ष्यामि पृष्टा राज्ञा च भारत ॥ १९ ॥ आत्मगुप्ता चरिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २० ॥ सुदेष्णां प्रत्युपस्थास्ये राजभार्यां यशस्विनीम् । सा रक्षिष्यति मां प्राप्तां मा भूत्ते दुःखमीदृशम् ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर उवाच । कल्याणं भाषसे कृष्णे कुले जातासि भामिनि । न पापमभिजानासि साध्वी साधुव्रते स्थिता ॥ २२ ॥ यथा न दुहृदः पापाः भवन्ति सुखिनः पुनः । कुर्य्यास्तत्त्वं हि कल्याणि लक्षयेयुर्न ते यथा ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि युधिष्ठिरादि मंत्रणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

है, राजाकी पुत्री यशस्विनी पतिव्रता और बड़ी भाग्यवती है यह क्या कार्य करके विराट्नगरमें दिन वितावेगी ॥ १६ ॥ यह द्रौपदी जबसे उत्पन्न हुई है तबसे पुष्प, चन्दनादिक सुगंधित पदार्थ आभूषण और अनेक प्रकार के वस्त्रोंके सम्बन्ध की ही बातें जानती है ॥१७॥ द्रौपदीने कहाकि—हे भरतवंशी राजन् ! इस संसारमें स्वतन्त्र दासियें जो दूसरों के यहां सेवा करती हैं वह सैरंध्री नामसे पुकारी जाती हैं, परन्तु श्रेष्ठ कुलकी स्त्रियें इस प्रकारका कार्य नहीं करती हैं, ऐसा लोगोंका विचार है अतः मैं सैरंध्री बनूंगी और विराट् राजा के पास जाकर कहूँगी कि मैं बाल काढ़ने में चतुर हूँ इस प्रकार कह कर मैं उनके यहां रहूँगी ॥ १८ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! यदि राजा मुझसे बूझेंगे कि—तू कौन है और कहां रही थी तो मैं उनसे कहूँगी कि—मैं राजा युधिष्ठिर के घरमें उनकी स्त्री द्रौपदी की दासी थी और उनके घरमें रहती थी, इसप्रकार मैं दासीके वेशमें छिपकर विराट् राजाकी स्त्री सुदेष्णा की सेवामें रहूँगी ॥ १९ ॥ २० ॥ और वह रानी मेरा पालन करेगी इसलिये आप मेरे विषयमें चिन्ता न करें ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर ने कहा, कि—हे कल्याणी स्त्री ! तू जो कहती है वह तेरे योग्य और सुखकारक है तू उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है साध्वी है, और सत्पुरुषों के आचारों को वर्तती है अतः दुराचार को नहीं जानती है ॥ २२ ॥ तो भी हे कल्याणि ! वे दुष्टहृदय वाले पापी शत्रु जिसप्रकार तुझे पहिचाने नहीं तैसे ही तू वर्तना कि—जिससे शत्रु पीछे सुखी न हों ॥ २३ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ कर्माण्युक्तानि युष्माभिर्यानि यानि करिष्यथ । मम चापि यथाबुद्धिरुचिता विधिनिश्चयात् ॥ १ ॥ पुरोहितोऽयमस्माकमग्निहोत्राणि रक्षतु । सूदपौरोगवैः सार्धं द्रुपदस्य निवेशने ॥२॥ इन्द्रसेनमुखाश्चेमे रथानादाय केवलान् । यान्तु द्वारावतीं शीघ्रमिति मे वर्तते मतिः ॥३॥ इमाश्च नार्यो द्रौपद्याः सर्वाश्च परिचारिकाः पाञ्चालानेव गच्छन्तु सूदपौरोगवैः सह ॥ ४ ॥ सर्वैरपि च वक्तव्यं न प्राज्ञायन्त पाण्डवाः । गताः ह्यस्मानपाहाय सर्वे द्वैतवनादिति ५ वैशम्पायन उवाच । एवं तेऽन्योऽन्यमामन्त्र्य कर्माण्युक्त्वा पृथक् पृथक् । धौम्यमामंत्रयामासुः स च तान्मंत्रमब्रवीत् ॥ ६ ॥ धौम्य उवाच । विहितं पाण्डवाः सर्वं ब्राह्मणेषु सुहृत्सु च । याने प्रहरणे चैव तथैवाग्निषु भारत ॥ ७ ॥ त्वया रक्षा विधातव्या कृष्णायाःफाल्गुनेन च । विदितं वो यथा सर्वं लोकवृत्तमिदं तव ॥ ८ ॥ विदिते चापि

युधिष्ठिर कहते हैं कि—दैवके बुरे परिणाम के कारण जो २ कार्य करने हैं वह २ कार्य तुमने मुझे कह सुनाए और मैंने भी अपनी बुद्धि के अनुसार अपना कर्तव्य कह सुनाया ॥ १ ॥ अब अपने पुरोहित धौम्यको सारथी और रिसालदारों के साथ राजा द्रुपदके घर जाने दो, जिससे कि—वे तहां जाकर हमारे अग्निहोत्रकी रक्षा करैं ॥२॥ यह इन्द्रसेन तथा अन्य पुरुष इस खाली रथको ही लेकर अब द्वारकाको जायँ, यह मेरा विचार है ॥ ३ ॥ और ये स्त्रियें तथा द्रौपदाकी टहलनियें सब सारथी और रिसालों के साथ पांचालकी ओर ही जायँ ॥४॥ और इनसबोंसे कोई हमारे सम्बंधमें बूझै तो उन सबोंको उत्तर देना चाहिये कि-पांडव हम सबोंको छोड़ द्वैतवनमेंसे नजाने कहाँ चलेगए इसकी हमको कुछ खबर नहीं है ॥ ५॥ वैशंपायन कहते हैं कि—इस प्रकार उन्होंने परस्पर एक दूसरेके करनेके कार्यों का निश्चय करलिया तदनन्तर इस विषयमें उन्होने अपने पुरोहित धौम्य का विचार बूझा तब धौम्यने अपना विचार जताते हुए इस प्रकार कहा॥६॥ धौम्यने कहा हे भारत ! ब्राह्मणादिक स्नेही पालकी इत्यादि वाहन हथियार तथा अग्निके संबन्ध में जैसी व्यवस्था करी है वह सब आपने शास्त्रोक्त रीतिसे की है॥ ७ ॥ परन्तु आपको तथा अर्जुन को इस द्रौपदीकी रक्षा सावधानीसे करनी होगी, तुम सब लौकिक व्यवहारोंको जानते हो तो भी स्नेहियोंको प्रीतिपूर्वक स्नेहियों से लौकिक व्यवहार की वातें करनी चाहियें क्योंकि—लौकिक व्यवहार से ही धर्म अर्थ और कामकी रक्षा होती है अतः मैं भी तुमसे कहता हूँ तुम मेरे कहनेके प्रयोजनकी ओर ध्यान दो । हे कुरुवंशी राजपुत्रो

वक्तव्यं सुहृद्भिरनुरागतः। एष धर्मश्च कामश्च अर्थश्चैव सनातनः ९ अतोऽहमपि वक्ष्यामि हेतुमत्र निबोधत हन्त मां राजवसतिं राजपुत्रा ब्रवीम्यहं ॥ १० ॥ यथा राजकुलं प्राप्य सर्वान्दोषांस्तरिष्यथ। दुर्वसं चैव कौरव्य जानता राजवेश्मनि ॥ ११ ॥ अमानितैर्मानितैर्वा अज्ञातैः परिवत्सरम्। ततश्चतुर्दशे वर्षे चरिष्यथ यथासुखं ॥ १२ ॥ दृष्टद्वारो लभेद् द्रष्टुं राजस्वेषु न विश्वसेत्। तदेवासनमन्विच्छेद्यत्र नाभिपतेत्परः ॥ १३ ॥ यो न यानं न पर्यंकं न पीठं न गजं रथम्। आरोहेत् सम्मतोऽस्मीति स राजवसतिं वसेत् ॥ १४ ॥ यत्र यत्रैन मासीनं शंकेरन् दुष्टचारिणः। न तत्रोपविशेद्यो वै स राजवसतिं वसेत् ॥ १५ ॥ न चानुशिष्याद्राजानमपृच्छन्तं कदाचन। तूष्णींत्वेन मुपासीत काले समभिपूजयेत् ॥ १६ ॥ असूयन्ति हि राजानो जनान नृतवादिनः। तथैव चावमन्यन्ते मंत्रिणं वादिनं मृषा ॥ १७ ॥ लैपां व्यवहारको जानने वाले पुरुषोंको भी राजाके घरमें रहना बड़ाही कठिन पड़जाता है अतः मैं तुमसे राजाके घरमें किस प्रकारसे रहना चाहिये इस विषयमें कहूँगा उसको सुनो मेरे कथनके अनुसार वर्ताव करनेसे तुम राजाके घरमें रहते हुए भी सब संकटों के पार उतर जाओगे अर्थात् राजाके घरमें सुखसे रहोगे और तुमको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा, ॥ ८—११ ॥ तुमको मान मिले या अपमान परंतु यह तेरहवां वर्ष तो छिपकर कहीं न कहीं बिताना होगा तदनन्तर चौदहवें वर्षमें तुम प्रकट होकर सुखसे हिर फिर सकोगे ॥ १२ ॥ जब राजासे मिलनेको जाना हो तब द्वारपालसे राजाकी आज्ञा मँगवाकर जाना परन्तु आज्ञा न पाकर एकायकी राजासे नहीं मिलना राजाओं का विश्वास न करना और जिस आसन पर कोई प्रतिष्ठित पुरुष न बैठता हो उस आसन पर ही बैठने की इच्छा करना जिससे कोई उठावे नहीं ॥ १३ ॥ जो पुरुष मैं राजाका सब प्रकारसे मान्य हूँ ऐसा विचार कर राजाकी पालकी आदि यान शय्या, आसन, हाथी, और रथों पर बैठनेकी इच्छा नहीं करता वह राजमन्दिरमें रहसकता है ॥ १४ ॥ जहाँ २ बैठने से राजाके दुष्ट विचार वाले दूत अपने ऊपर शंका करें उस स्थान पर न बैठे, वही पुरुष राजभवनमें रहसकता है ॥ १५ ॥ राजा किसी बातमें संमति न लेय तो भी किसी दिन इस कार्य को इस प्रकार करिये ऐसा उनसे न कहो परन्तु चुप रहकर चंचलता रहित हो राजाकी सेवा करना और जब पराक्रम करनेका समय आवे तब पराक्रम कर राजाका सत्कार करना ॥ १६ ॥ राजा मिथ्या बोलने वाले मनुष्यसे द्वेष करते हैं तैसे ही असत्य कहनेवाले (चापलूस) मंत्रीका भी तिरस्कार करते हैं ॥ १७ ॥ चतुर मनुष्य को

दारेषु कुर्वीत मैत्रीं प्राज्ञः कदाचन। अन्तःपुरचरा ये च द्वेष्टि यानहिताश्च ये ॥ १८ ॥ विदिते चास्य कुर्वीत कार्याणि सुलघून्यपि। एवं विचरतो राज्ञि न क्षतिर्जायते क्वचित् ॥ १९ ॥ गच्छन्नपि परां भूमिमस्पृष्टो ह्यनियोजितः जात्यंध इव मन्येत मर्यादामनुचिन्तयन् ॥२०॥ न हि पुत्रं न नप्तारं न भ्रातरमरिंदमाः। समतिक्रान्तमर्यादं पूजयन्ति नराधिपाः ॥ २१ ॥ यत्नाच्चोपचरेदेनमग्निवद्देववच्चिह। अनृतेनोपचीर्णो हि हन्यादेव न संशयः ॥ २२ ॥ यच्च भर्तानुयुंजीत तदेवानुवर्त्तयेत्। प्रमादमवलेपं च कोपञ्च परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥ समर्थनासु सर्वासु हितं च प्रियमेव च। संवर्णयेत्तदेवास्य प्रियादपि हितं भवेत् ॥ २४ ॥ अनुकूलो भवेच्चास्य सर्वार्थेषु कथासु च। अप्रियञ्चाहितं यत्स्यात्तदस्मै नानुवर्णयेत् ॥ २५ ॥ नाहमस्य प्रियोऽस्मीति मत्वा

किसी दिन भी राजाकी रानियोंके साथ मित्रता नहीं करना चाहिये, तथा जो पुरुष अन्तः पुरमें रहनेवाले हों उनसे तथा राजा जिनसे शत्रुता रखता हो तथा जो राजाके शत्रु हों उनके साथ भी मित्रता न करना॥१८॥ छोटे२ कार्य भी राजाको जताकर करना इसप्रकार राजा के सम्बन्धमें वर्ताव करने से किसी प्रकार भी हानि नहीं होतीहै॥१९॥ राजा उत्तम दशामें हो तो भी विना पूंछे अथवा विना कहे राजाकी मर्यादा का विचार करकै जन्मांध की समान वर्ताव करै अर्थात् राजा के विना कहे न बोले और आसन न देने पर बैठे नहीं किन्तु राजा की आज्ञा की वाट देखै ॥ २० ॥ अर्थात् शत्रुओं को दमन करनेवाले राजा अपनी मर्यादाको भंग करनेवाले पुत्र पौत्र अथवा अपने भाई का भी मान नहीं करते हैं ॥ २१ ॥ इस संसारमें यत्नके साथ देवता और अग्निकी समान राजाकी सेवा करनी चाहिये परंतु जो कपट धारण कर राजाकी सेवा करता है वह अवश्य ही माराजाता है २२ राजा जिस २ कार्यके लिये आज्ञा करै अथवा बूझै तब उस २ आज्ञा का पालन करै तथा उस २ ही वातका उत्तर देय परन्तु कार्य करने के समय घमण्ड अथवा कोप न करै॥२३॥सकल कार्योंकी परीक्षा के समय अन्तमें सुखदायक और सुनने से भी सुख देनेवाला वचन बोले उसमें प्रिय वचनको छोड़कर जो हितकारक वचन हो उसको कहै परन्तु अहितकारी प्रिय वचन कभी न कहै ॥ २४ ॥ सब विषयोंमें और सब वातोंमें राजाके अनुकूल रहै और जो वात राजाको प्रिय लगै अहितकारी हो वह राजाके सामने नहीं कहै ॥ २५ ॥ तैसे ही चतुर मनुष्य मैं राजाका प्यारा हूँ यह विचार कर असावधानीसे

सेवेत पण्डितः। अप्रमत्तश्च सततं हितं कुर्यात् प्रियञ्च यत् ॥ २६ ॥ नास्यानिष्टानि सेवेत नाहितैः सह सम्वदेत्। स्वस्थानान्न विकम्पेत स राजवसतिं वसेत् ॥ २७ ॥ दक्षिणं वाथ वामं वा पार्श्वमासीत पण्डितः रक्षिणां चात्तशस्त्राणां स्थानं पश्चाद्विधीयते ॥ २८ ॥ नित्यं हि प्रतिषिद्धन्तु पुरस्तादासनं महत्। न च संदर्शने किंचित्प्रवृत्तमपि संजपेत् ॥ २९ ॥ अपि ह्येतद्दरिद्राणां व्यलीकस्थानमुत्तमम्। न मृषाभिहितं राज्ञां मनुष्येषु प्रकाशयेत् ॥ ३० ॥ असूयन्ति हि राजानो नरानन्नृतवादिनः। तथैव चावमन्यन्ते नरान्पण्डितमानिनः ॥ ३१ ॥ शूरोऽस्मीति न दृप्तःस्याद्बुद्धिमानिति वा पुनः। प्रियमेवाचरन्राज्ञः प्रियो भवति भोगवान् ॥ ३२ ॥ ऐश्वर्यं प्राप्य दुष्प्रापं प्रियं प्राप्य च राजतः अप्रमत्तो भवेद्राज्ञः प्रियेषु च हितेषु च ॥ ३३ ॥ यस्य कोपो महाबाधः प्रसादश्च महाफलः। कस्तस्य मनसापीच्छेदनर्थं प्राज्ञः सम्मतः, ३४ न चोष्ठौ न भुजौ जानू न च वाक्यं समाक्षिपेत्। सदा वातं च वातञ्च-

राजाकी सेवा न करै परन्तु नित्य सावधान रहकर राजाका जो प्रिय तथा हितकारक कार्य हो उसको करै ॥ २६ ॥ जो पुरुष राजाकी अनिष्ट करने वाली बातोंमें नहीं पड़ता है राजाके शत्रुओंके साथ बातें नहीं करता है और राजाके बताए हुए स्थान से नहीं हटता है वह ही राजमन्दिर में रह सकता है ॥ २७ ॥ चतुर पुरुष राजाके दहिनी अथवा बाईं ओर बैठे और जो शस्त्रधारी अंगरक्षक हों वह राजाके पिछली ओर बैठें ॥ २८ ॥ राजाके सामने शूरवीर तथा पण्डिताईका बड़ा आसन बिछाना शास्त्रमें सर्वथा निषिद्ध है तथा अपने सामने राजसभामें कोई गुप्त बात हो उसको बाहर न कहै क्योंकि—ऐसो करने से दरिद्री को भी अत्यन्त अपमान सहना पड़ता है तब राजाका अपमान हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या है राजाने जो कुछ अप्रिय बात कही हो उसे दूसरे मनुष्योंके सामने प्रकाशित न करे ॥ ३० ॥ क्योंकि दूसरे राजे मिथ्यावादी राजाओंका और पण्डितमानी पुरुष का अपमान करते हैं ॥ ३१ ॥ मैं शूरवीर हूँ, मैं बुद्धिमान् हूँ यह गर्व भी राजाके सामने न करे परन्तु राजाको प्रिय लगने वाले कार्य करै जिससे राजा का प्रिय होजाय और जिससे सम्पूर्ण भोग्य पदार्थों का भोगनेवाला बने ॥ ३२ ॥ जो राजाके पास से कठिनसे मिले ऐसे ऐश्वर्य को पाने पर राजाके हितकारी और प्रिय कार्योंकी ओर मनुष्य सावधानीसे दृष्टि रक्खै ॥ ३३ ॥ जिसका कोप अति दुःख देने वाला है तथा जिसकी कृपासे बड़ेभारी फलकी आशा होती है ऐसे राजाका बुद्धिमानोंका मान्य कौनसा चतुर पुरुष मनसे भी अनिष्ट चाहेगा? ॥ ३४ ॥ पुरुषको राजाके सामने दोनों हाथ, दोनों ओठ,

ष्ठीवनञ्चाचरेच्छनैः ॥ ३५ ॥ हास्यवस्तुषु चान्यस्य वर्तमानेषु केषुचित् नातिगाढं प्रहृष्येत न चाप्युन्मत्तवद्धसेत् ॥ ३६ ॥ न चातिधैर्येण चरेद्गुरुतां हि व्रजेत्ततः । स्मितं मृदुपूर्वेण दर्शयेत प्रसादजम् ॥ ३७ ॥ लाभे न हर्षयेद्यस्तु न व्यथेद्योऽवमानितः । असम्मूढश्च यो नित्यं स राजवसतिं वसेत् ॥ ३८ ॥ राजानं राजपुत्रं वा सम्वर्णयति यः सदा । अमात्यः पण्डितो भूत्वा स चिरं तिष्ठते प्रियः ॥ ३९ ॥ प्रगृहीतश्च योऽमात्यो निगृहीतस्त्वकारणैः । न निर्वदति राजानं लभते सम्पदं पुनः ॥ ४० ॥ प्रत्यक्षञ्च परोक्षञ्च गुणवादी विचक्षणः । उपजीवी भवेद्राज्ञो विषये योऽपि वा भवेत् ॥ ४१ ॥ अमात्यो हि बलाद्भोक्तुं राजानं प्रार्थयेत यः । न स तिष्ठेच्चिरं स्थानं गच्छेच्च प्राणसंशयम् ॥ ४२ ॥ श्रेयः सदात्मनो दृष्ट्वा परं राजा न सम्वदेत् । विशेषयेच्च

दोनों भुजा दोनों घुटने और वाणीको नियममें रखना चाहिये, सर्वदा अधोवायु (डकार) तथा थूकना यह काम धीरेसे करै ॥ ३५ ॥ अन्य किसीका हास्य होता हो तब बहुत दांत निकालकर नहीं हँसे तथा उन्मत्त की समान भी नहीं हँसे ॥ ३६ ॥ तथा अत्यन्त धैर्यसे भी न बैठे ऐसा करनेसे लोगोंमें अपनी गुरुता जताते हुए मूर्खता प्रकट नहीं होती है अर्थात् लोग कहते हैं कि—यह तो जडसा मालूम पड़ता है परन्तु ऐसे अवसर में कोमलता के साथ प्रमादरहित होकर मन्द हास्य दिखावै ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य लाभ होने से प्रसन्न नहीं होते हैं, अपमानसे खिन्न नहीं होते हैं और जो नित्य सेवामें सावधान रहते हैं वह ही राजमहलमें रहसकते हैं ॥ ३८ ॥ जो विद्वान् मन्त्री सर्वदा राजाकी और राजपुत्रों की प्रशंसा किया करते हैं वह बहुत काल तक राजाके प्रिय बने रहते हैं ॥ ३९ ॥ राजाने प्रथम जिस मन्त्री पर अनुग्रह किया हो, तदनन्तर विना कारण ही राजा उस मन्त्री को दण्ड देय तब भी वह उस राजाकी निंदा न करै तो वह फिर राजाजी की सम्पत्ति को प्राप्त होता है। अर्थात् राजाकी सेवामें पहुँचसकता है ॥ ४० ॥ जो पुरुष राजाकी आजीविकासे निर्वाह करता हो अथवा जो राजाके देशमें रहता हो वह मनुष्य प्रत्यक्ष वा परोक्षमें राजाके गुण गावै तो उसे चतुर पुरुष जानो ॥ ४१ ॥ जो मन्त्री बलात्कारसे राजा को अपने वशमें लानेके लिये कुछका कुछ समझाता है वह मन्त्री बहुत समय तक अपनी पदवी पर नहीं टिकसकता किन्तु उस का जीवन भी संकटमय होजाता है ॥ ४२ ॥ अपने लाभको देखकर सर्वदा अपने राजाको शत्रुके साथ लड़ाना नहीं चाहिये किन्तु संधि विग्रहादि उपयोगी स्थलोंमें अपने राजाकी शत्रुओंसे अधिक उन्नति

राजानं योग्यभूमिषु सर्वदा ॥ ४३ ॥ अम्लानो बलवाञ्छूरो छायेवानु-गतः सदा। सत्यवादी मृदुर्दान्तः स राजवसतिं वसेत् ॥ ४४ ॥ अ-न्यस्मिन् प्रेष्यमाणे तु पुरस्ताद्यः समुत्पतेत्। अहं किं करवाणीति स राजवसतिं वसेत् ॥ ४५ ॥ आन्तरे चैव बाह्ये च राज्ञा यश्चाथ सर्वदा आदिष्टे नैव कम्पेत स राजवसतिं वसेत् ॥ ४६ ॥ यो वै गृहेभ्यः प्रव-सन् प्रियाणां नानुसंस्मरेत्। दुःखे न सुखमन्विच्छेत् स राजवसतिं वसेत् ॥ ४७ ॥ समवेषं न कुर्वीत नोच्चैः सन्निहितो हसेत्। न मंत्रं बहुधा कुर्यादेवं राज्ञः प्रियो भवेत् ॥ ४८ ॥ न कर्मणि नियुक्तः सन् धनं किंचिदपि स्पृशन्। प्राप्नोति हि हरन्द्रव्यं बंधनं यदि वा वधम् ॥ ४९ ॥ यानं वस्त्रमलंकारं यच्चान्यत्संप्रयच्छति। तदेव धारयेन्नित्य-मेवं प्रियतरो भवेत् ॥ ५० ॥ एवं संयम्य चित्तानि यत्नतः पाण्डुन-

---

के लिये प्रयत्न करे ॥ ४३ ॥ जो पुरुष सर्वदा उत्साह शक्तिवाला, बुद्धिबलशाली, शूरवीर, सत्यवादी, शांतस्वभाव, जितेन्द्रिय, और छायाकी समान नित्य राजाके पीछे फिरनेवाला होता है वह पुरुष ही राजभवन में रहसकता है ॥ ४४ ॥ राजा किसी कार्यके लिये अन्य पुरुषको आज्ञा देय उस समय जो पुरुष 'मुझे किस कार्य की आज्ञा है' यह कहताहुआ खड़ा होजाता है वह ही राजमन्दिर में रहसकता है ॥ ४५ ॥ राजा जिस पुरुषको अपनी तथा रानियोंकी रक्षा करनेके कार्यकी आज्ञा देता है, अथवा किसी बाहरके सामन्त राजाको पराजित करनेकी आज्ञा देता है उस समय जो पुरुष विना विचलित हुए उस कार्यको करता है वह ही राजमन्दिरमें रहसकता है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष अपने घरसे देशान्तरमें जाता है और अपने सुहृद् स्त्री पुत्र आदिका स्मरण नहीं करता है किन्तु मित्रोंके वियोगसे उत्पन्न हुए दुःखको सहकर होनहार सुखको चाहता है वह राजभवनमें रहसकता है ॥ ४७ ॥ जो मनुष्य राजाके सामने राजाके से कपड़े नहीं पहिनता है राजाके सामने बहुत नहीं हँसता है तथा दूसरे पुरुषसे बहुत समयतक छुपी रीतिसे बातचीत नहीं करता वह राजा का प्यारा हो-जाता है॥४८॥ जिस मनुष्यको राजाने किसी कार्यपर नियत किया हो वह मनुष्य कुछ भी धन (रिश्वत) न लेय क्योंकि घूंस लेने से या तो कारागार में सड़ना पड़ता है अथवा फांसी मिलती है ॥ ४९ ॥ राजा पालकी आदि सवारी, वस्त्र, आभूषण, और दूसरा जो कुछ भेंटमें देय उसको सदा पहिरै क्योंकि ऐसा करनेसे पुरुष राजाका बहुत प्यारा होजाता है ॥ ५० ॥ हे तात ! पाण्डवों तुम नियमसे

न्दनाः । सम्वत्सरमिमं तात तथा शीला बुभूषतः । अथ स्वविषयं प्राप्य यथाकामं चरिष्यथ ॥ ५१ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अनुशिष्टाः स्म भद्रन्ते नैतद्वक्तास्ति कश्चन । कुन्तीमृते मातरं नो विदुरं वा महामतिम् ॥ ५२ ॥ यदेवानन्तरं कार्यं तद्भवान् कर्त्तुमर्हति । तारणायास्य दुःखस्य प्रस्थानाय जयाय च ॥ ५३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्तस्ततो राज्ञा धौम्योथ द्विजसत्तमः । अकरोद्विधिवत्सर्वं प्रस्थाने यद्विधीयते ॥ ५४ ॥ तेषां समिध्य तानग्नीन्मन्त्रवच्च जुहाव सः । समृद्धिवृद्धिलाभाय पृथिवीविजयाय च ॥ ५५ ॥ अग्नीन् प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणांश्च तपोधनान् । याज्ञसेनीं पुरस्कृत्य षडेवाथ प्रवव्रजुः ॥ ५६ ॥ गतेषु तेषु वीरेषु धौम्योथ जयतांवरः । अग्निहोत्राण्युपादाय पांचालानभ्यगच्छत ॥ ५७ ॥ इन्द्रसेनादयश्चैव यथोक्ताः प्राप्य यादवान् । रथानश्वांश्च रक्षन्तः सुखमूषुः सुसंवृताः ॥ ५८ ॥ छ ॥

इति श्रीविराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि धौम्योपदेशे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अपने मनको वशमें रख इस तेरहवें वर्षमें वर्ताव करना और ऐश्वर्य की इच्छा करना तथा तेरह वर्ष पूरे होने के अनंतर अपनी इच्छानुसार अपने देशमें जाकर वर्ताव करना ॥ ५१ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि—आपका कल्याण हो आपने जो उपदेश दिया है ऐसा उपदेश माता कुन्तीके सिवाय और महाबुद्धिमान् विदुरजीके सिवाय दूसरा कोई नहीं देसकता अब हमको इस दुःखसे छुड़ानेके लिये, हमारे प्रस्थान के लिये तथा हमारी विजय के लिये जो कार्य करना हो उसको सुखसे करिये ॥ ५२-५३ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार धर्मराजने महाश्रेष्ठ ब्राह्मण धौम्यसे कहा तब उन्होंने प्रयाणकालमें जो२ कार्य करने चाहियें वह २ कार्य शास्त्रविधि के अनुसार करना प्रारम्भ किये ॥ ५४ ॥ तब पाण्डवोंकी सम्पत्तिकी वृद्धिके लिये, तथा पृथिवीकी विजयके लिये, अग्निको प्रज्वलित किया और मंत्रोंको पढ़कर उसमें होम किया होम होनेके अनन्तर पाँचों पाण्डवों तथा छठी द्रौपदीने खड़े होकर अग्निदेवकी तथा तपोधन ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा की तब पाण्डव द्रौपदीको आगे करके गुप्तवास करनेके लिये वहांसे चलेगए ॥ ५५-५६ ॥ जब शूर वीर पाण्डव गुप्त वास करनेके लिये चले गए तब पुरोहितश्रेष्ठ धौम्य पुरोहित भी अग्निहोत्रके पात्र तथा अग्निको ले पांचालदेशको चलेगए ॥ ५७ ॥ और इन्द्रसेन आदि सारथी भी पाण्डवोंके कथनानुसार द्वारिका पुरीमें गए तहां रथ तथा घोड़ोंकी रक्षा करनेलगे तथा मनकी बात को गुप्त रख आनन्दमें रहनेलगे ॥ ५८ ॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच । ते वीरा बद्धनिस्त्रिंशास्तथा बद्धकलापिनः । बद्धगोधांगुलित्राणाः कालिन्दीमभितो ययुः ॥ १ ॥ ततस्ते दक्षिणं तीरमन्वगच्छन् पदातयः । निवृत्तवनवासा हि स्वराष्ट्रं प्रेप्सवस्तदा । वसन्तो गिरिदुर्गेषु वनदुर्गेषु धन्विनः ॥ २ ॥ विध्यन्तो मृगजातानि महेष्वासा महाबलाः । उत्तरेण दशार्णांस्ते पञ्चालान् दक्षिणेन च । ॥ ३ ॥ अन्तरेण यकृल्लोमान् शूरसेनांश्च पाण्डवाः । लुब्धा ब्रुवाणा-मत्स्यस्य विषयं प्राविशन् वनात् ॥४॥ धन्विनो बद्धनिस्त्रिंशा विवर्णाः श्मश्रुधारिणः । ततो जनपदं प्राप्य कृष्णा राजानमब्रवीत् ॥ ५ ॥ पश्यैकपद्यो दृश्यन्ते क्षेत्राणि विविधानि च । व्यक्तं दूरे विराटस्य राजधानी भविष्यति॥ वसामेहापरां रात्रिं बलवान् मे परिश्रमः ॥६॥ युधिष्ठिर उवाच । धनञ्जय समुद्यम्य पाञ्चालीं सह भारत । राज-धान्यां निवत्स्यामो विमुक्ताश्च वनादितः ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच ।

वैशम्पायन कहते हैं कि तदनन्तर महाधनुर्धारी परमपराक्रमी पाण्डव अपना राज्य पाने की इच्छासे वनवाससे लौटे और उन्होंने हाथोंमें चमडेके मोजे ढाल तलवार तथा बाण धारण करे तथा अस्त्र शस्त्रोंसे भरेहुए भाथे (तरकस) भी कन्धों पर धर कर पैरों २ यमुना नदीकी ओरको चले, वह यमुना नदीके दक्षिणी किनारेको अपने पीछे छोड दशार्ण देश और दक्षिण दिशाकी ओर पाँचालदेश को छोड़ यकृल्लोम तथा शूरसेन देशके बीचमेंको होकर किसी समय पर्वतकी दुर्गम गुफाओंमें किसी समय वनमें निवास करते२ और मृगया करते २ आगेको चलने लगे, वनमें रहनेसे उनके शरीर काले पड़गए थे मुखपर डाढी बढ़गई थी तथा धनुष और तलवारों को धारण कियेहुए थे इसकारण उनको कोई नहीं पहिचान सकता था तथापि व्याध हैं इसप्रकार बताते हुए वे वनभूमिको लांघ मत्स्य देशमें पहुँच गए मत्स्य देशमें पहुँचने पर द्रौपदीने राजा युधिष्ठिरसे कहा ॥१-५॥ मैं बहुत थक गई हूँ यह देखो सामने खेतमें छोटे २ बहुतसे मार्ग तथा अनेकों प्रकारके खेत दीखरहे हैं इससे ज्ञात होताहै कि--राजा विराट्की राजधानी यहाँ से दूर होगी, अतः आजकी रात्रिमें यहाँ ही रह जायँ तो ठीक है ॥ ६ ॥ यह सुन युधिष्ठिरने कहा कि हे भारत अर्जुन! द्रौपदी थकगई है अतः तुम द्रौपदीको प्रयत्नसे उठाकर लेचलो जिस से हम आज ही वनवाससे मुक्त हो राजधानीमें निवास करें॥७॥ वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय ! युधिष्ठिरकी आज्ञा पाते ही, जैसे हस्तिराज बड़ी हथिनीको उठालेय तैसे ही अर्जुन द्रौपदीको अपने

तामादायार्जुनस्तूर्णं द्रौपदीं गजराडिव । संप्राप्य नगराभ्यासमवतारयदर्जुनः ॥ ८ ॥ स राजधानीं संप्राप्य कौन्तेयोऽर्जुनमब्रवीत् । कायुधानि समासज्य प्रवेक्ष्यामः पुरं वयम् ॥ ९ ॥ सायुधाश्च प्रवेक्ष्यामो वयं तात पुरं यदि । समुद्वेगं जनस्यास्य करिष्यामो न संशयः॥ १० ॥ गाण्डीवञ्च महद्गाढं लोके च विदितं नृणाम् । तच्चेदायुधमादाय गच्छामो नगरं वयम् । क्षिप्रमस्मान् विजानीयुर्मनुष्या नात्र संशयः ॥ ११ ॥ ततो द्वादश वर्षाणि प्रवेष्टव्यं वने पुनः । एकस्मिन्नपि विज्ञाते प्रतिज्ञातं हि नस्तथा ॥ १२ ॥ अर्जुन उवाच । इयं कूटे मनुष्येन्द्र गहना महती शमी । भीमशाखा दुरारोहा श्मशानस्य समीपतः॥१३॥ न चापि विद्यते कश्चिन्मनुष्य इति मे मतिः । योऽस्मान्निदधतो द्रष्टा भवेच्छस्त्राणि पाण्डवाः ॥ १४ ॥ उत्पथे हि वने जाता मृगव्यालनिषेविते । समीपे च श्मशानस्य गहनस्य विशेषतः ॥ १५ ॥ समाधायायुधं शम्यां गच्छामो नगरं प्रति । एवमत्र यथायोगं विहरिष्याम भा-

कंधे पर बैठा कर चलने लगा और वह जब नगरके पास पहुँचा तब उसने द्रौपदीको भूमि पर उतार दिया ॥ ८ ॥ इस प्रकार विराट् की राजधानी के धोरे आगये तब धर्मराजने अर्जुनसे कहा कि हमको नगरमें प्रवेश करनेसे पहिले अपने आयुध कहां छोड़ने चाहिये हे तात ! यदि हम आयुधों सहित नगरमें प्रवेश करेंगे तो इस नगरके मनुष्योंके मनमें वड़ी घबड़ाहट होगी इसमें संदेह नहीं है॥१०॥ और तुम्हारा यह गाण्डीव धनुष वड़ा दृढ़ जगत्के सब लोगोंका पहिचाना हुआ है जब हम इस धनुषको लेकर नगरमें जावेंगे तव मनुष्य हमको अवश्य पहिचानजायँगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ और ऐसा होगा तो हमको फिर दूसरीवार वारह वर्षतक वनमें रहना होगा, क्योंकि-हमने यह प्रतिज्ञा की है कि- हममेंसे कोई भी एक पहिचाननेमें आजायगा तो फिर सबके सब वारहवर्ष तक वनमें रहेंगे अतः गुप्त रहनेकी आवश्यकता है ॥ १२ ॥ अर्जुनने कहा कि- हे राजन् ! इस श्मशानके समीपमें टीले पर एक शमीका झाड़दार वृक्ष है उसकी शाखाएं वड़ी भयंकर हैं और उस पर चढ़ना वहुत कठिन है ॥१३ ॥ और हे पाण्डवो ! मेरा ऐसा विचार है कि-यहां पर ऐसा कोई मनुष्य नहींहै जो हमको शस्त्र छिपा कर,धरतेहुए देखलेय ॥१४॥ और यह शमीका वृक्ष पशु तथा हिंसक जीवोंसे वसाहुआ है तथा मार्गसे दूर जंगलमें उगा हुआ है और क्या कहूँ यह एक भयंकर श्मशानके समीप खड़ा है, हे भरतवंशी राजन् ! आप इस शमीवृक्ष पर आयुध छिपाकर उद्विग्नताको छोड़ नगरमें जाइये और तहाँ करने

रत ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्त्वा स राजानं धर्मराजं युधिष्ठिरम् । प्रचक्रमे निधानाय शस्त्राणां भरतर्षभ ॥ १७ ॥ येन देवान्मनुष्यांश्च सर्वांश्चैकरथोऽजयत् । स्फीतान् जनपदांश्चान्यानजयत् कुरुपुङ्गवः ॥ १८ ॥ तदुदारं महाघोषं सपत्नगणसूदनम् । अपज्यमकरोत् पार्थो गाण्डीवं सुभयङ्करम् ॥ १९ ॥ येन वीरः कुरुक्षेत्रमभ्यरक्षत् परन्तपः । अमुञ्चद्धनुषस्तस्य ज्यामक्षय्यां युधिष्ठिरः ॥ २० ॥ पाञ्चालान् येन संग्रामे भीमसेनोजयत् प्रभुः । प्रत्यषेधद् बहूनेकः सपत्नांश्चैव दिग्जये ॥ २१ ॥ निशम्य यस्य विस्फारं व्यद्रवन्त रणात् परे । पर्वतस्येव दीर्णस्य विस्फोटमशनेरिव ॥ २२ ॥ सैन्धवं येन राजानं पर्यामृषितवानथ । ज्यापाशं धनुषस्तस्य भीमसेनोऽवतारयत् ॥ २३ ॥ अजयत्पश्चिमामाशां धनुषायेन पाण्डवः । माद्रीपुत्रो महाबाहुस्ताम्रास्यो मितभाषिता ॥ २४ ॥ तस्य मौर्वीमपाकर्षच्छूरः संक्रन्दनो युधि । कुले नास्ति समो रूपे यस्येति नकुलः स्मृतः ॥ २५ ॥ दक्षिणां दक्षिणा-

योग्य कार्य करके दिनोंको बिताइये ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि हे भरतवंशश्रेष्ठ--अर्जुनने इसप्रकार धर्मराज युधिष्ठिरसे कहकर अस्त्र रखना प्रारम्भ किया ॥१७॥ पहिले कुरुवंश श्रेष्ठ अर्जुनने केवल एक ही रथमें बैठकर, बड़ीभारी गर्जना करनेवाले जिस धनुषसे देवताओंको, स्व मनुष्योंको और सम्पत्ति वाले नगरोंको जीता था ऐसे बड़ी गर्जना करने वाले बड़ीभारी सेनाको नष्ट करनेवाले महा भयंकर और उदार गाण्डीव धनुषकी प्रत्यंचा उतार ली ॥ १८-१९ ॥ परन्तप शूर राजा युधिष्ठिरने जिस धनुष से कुरुक्षेत्रकी रक्षा की थी उस महाधनुषकी अटूट प्रत्यंचा उतार डाली ॥२०॥ और दिग्विजय के समय जिस धनुषसे महाबलवान् भीमसेनने अकेले ही पाँचालराज तथा और बहुतसे शत्रुओंको पराजित किया था तथा वज्रसे फटते हुए पर्वतमेंसे जैसा शब्द होता है तैसा शब्द करते हुए जिस धनुष की टंकारसे शत्रु रणभूमिसे भागजाते थे और जिस धनुषसे सिंधुराजको हराया था उस धनुषपर से भीमने प्रत्यंचा उतार ली ॥२१-२३ ॥ लाल २ मुहवाले, मीठा बोलनेवाले, महाभुज, शूर वीर, माद्रीपुत्र जो युद्धमें शत्रुओंको त्रास देते थे, और कुलमें जिनके रूपकी समान किसीका रूप नहीं था इसीसे जिनका नाम नकुल पड़ा था उन्होंने जिस धनुषसे शत्रुओंको ललकार कर बुलाया था और पश्चिम दिशाको जीता था उस धनुषकी प्रत्यंचा उतार डाली ॥ २४-२५ ॥ सदाचरण वाले सहदेवने जिस धनुषसे दक्षिण दिशाको जीता था

धारो दिशं येनाजयत् प्रभुः । अपज्यमकरोद्वीरः सहदेवस्तदायुधम् ॥ २६ ॥ खड्गांश्च दीप्तान् दीर्घांश्च कलापांश्च महाधनान् । विपाठान् क्षुरधारांश्च धनुर्भिर्निदधुः सह ॥ २७ ॥ वैशंपायन उवाच । अथान्वशासन्नकुलं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । आरुह्येमां शमीं वीर धनूंष्येतानि निक्षिप ॥ २८ ॥ तामुपारुह्य नकुलो धनूंषि निदधे स्वयम् । यानि तान्यवकाशानि दिव्यरूपाण्यमन्यत ॥ २९ ॥ यत्र चापश्यत स वै तिरो वर्षाणि वर्षति । तत्र तानि दृढैः पाशैः सुगाढं पर्यबन्धत ॥ ३० ॥ शरीरञ्च मृतस्यैकं समबध्नन्त पाण्डवाः । विवर्जयिष्यन्ति नरा दूरादेव शमीमिमाम् ॥ ३१ ॥ आबद्धं शवमत्रेति गन्धमाघ्राय पूतिकम् । अशीतिशतवर्षेयं माता न इति वादिनः ॥ ३२ ॥ कुलधर्मोयमस्माकं पूर्वैराचरितोपि वा । समासज्ज्याथ वृक्षेस्मिन्निति वै व्याहरन्ति ते ॥ ३३ ॥ आगोपालाविपालेभ्य आचक्षाणाः परन्तप । आजग्मुर्नगराभ्याशं पार्थाः शत्रुनिवर्हणाः ॥ ३४ ॥ जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो

उस धनुषकी प्रत्यंचा अलग कर धनुषसे उतार ली ॥ ६ ॥ इसप्रकार सबोंने धनुष की प्रत्यंचाएं उतार दीं तदनन्तर अपनी२ चमकती हुई तलवारें बाण रखनेके बहुमूल्य तरकस तथा छुरीकी समान तेज धार वाले बाणोंको धनुषोंके साथ इकट्ठा करकै बांधदिया ॥ २७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-साधारण शस्त्रोंको धनुषोंके साथ बांधने के अनन्तर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने नकुलसे कहा कि-हे वीर नकुल! तू इस शमीके वृक्षपर चढ़जा और इन धनुषोंको इसके ऊपर धर दे॥२८॥ तब नकुल उस शमीके वृक्ष पर चढ़गया और उस वृक्षकी जो सुंदर खोखलें देखनेमें आईं कि-जिनमें बरसतेमें सामनेसे पानी नहीं पहुँच सकता था किंतु आड़ा बरसता था ऐसी खोखलोंमें धनुषोंको रखकर दृढ़ डोरी से चारोओरसे वृक्षमें बांधदिया तदनन्तर पांडवोंने एक मृत मनुष्यके शव (ल्हास) को भी उस वृक्षमे बांधदिया इसके बांधने का इतना ही कारण था कि—उसकी दुर्गन्धिसे मनुष्य इस शमीको दूरसे ही छोड़जायंगे अर्थात् इसके पास न जायँगे ॥ २९—३१ ॥ पांडव जिस समय अपने शस्त्र आदि शमीकेवृक्षसे बांध रहे थे उस,समय ग्वालिये तथा बकरी चरानेवाले इनसे बूझने लगे कि—तुम शमीकेवृक्षपर क्या बांधरहे हो तब परन्तप पाण्डवोंने यह उत्तर दिया कि—यह हमारी माता है यह एक सौ अस्सी वर्ष की बुढ़िया थी इसको मरने पर हम अपनी कुलकी रीतिके अनुसार इस शमीके वृक्षसे बांधजाते हैं, ऐसा ही हमारे बडे करते थे इसप्रकार उत्तर,दे शत्रुनाशी पांडव

जयद्वलः। इति गुह्यानि नामानि चक्रे तेषां युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥ ततो यथाप्रतिज्ञाभिः प्राविशन्नगरं महत्। अज्ञातचर्यां वत्स्यन्तो राष्ट्रे वर्षं त्रयोदशम् ॥ ३६ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि पुरप्रवेशे अस्त्रसंस्थापने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच। विराटनगरं रम्यं गच्छमानो युधिष्ठिरः। अस्तुवन्मनसा देवीं दुर्गां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ १ ॥ यशोदागर्भसम्भूतां नारायणवरप्रियाम्। नन्दगोपकुले जातां मंगल्यां कुलवर्धिनीम् ॥ २ ॥ कंसविद्रावणकरीमसुराणां क्षयंकरीम्। शिलातटविनिक्षिप्तामाकाशं प्रति गामिनीम् ॥ ३ ॥ वासुदेवस्य भगिनीं दिव्यमाल्यविभूषिताम्। दिव्याम्बरधरां देवीं खड्गखेटकधारणीम् ॥ ४ ॥ भारावतरणे पुण्ये ये स्मरन्ति सदा शिवाम्। तान् वै तारयते पापात् पंके गामिव दुर्बलाम् ॥ ५ ॥ स्तोतुं प्रचक्रमे भूयो विविधैः स्तोत्रसम्भवैः। आमन्त्र्य दर्शनाकांक्षी राजा देवीं सहानुजः ॥ ६ ॥ नमोस्तु वरदे कृष्णे कुमारि

विराटनगरमें आगए ॥ ३२—३४ ॥ राजा युधिष्ठिरने आपस में सबों के गुप्तनाम जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्वल ये रक्खे ॥३५॥ तदनन्तर पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तेरहवें वर्षमें छिप कर रहनेकी इच्छासे बड़ेभारी विराट् नगरमें घुसे ॥ ३६ ॥ पाँचवां अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय! राजा युधिष्ठिरने रमणीय विराटनगर में जाते समय दुर्गादेवी के दर्शन करने की इच्छासे अपने भाइयोंके साथ तीनों लोकोंकी स्वामिनी, संकटहारिणी यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हुई, नारायणकी परम प्यारी, नन्दके कुलमें उत्पन्न हुई मंगलकर्त्री, कुलकी वृद्धि करने वाली, कंसका नाश करनेवाली, असुरोंका नाश करनेवाली, कंसके शिलापर पटकनेसे आकाशमें उड़ जानेवाली, वासुदेवकी बहिन, दिव्य पुष्पोंकी मालासे सुशोभित, दिव्य वस्त्रधारिणी तलवार और खेटक धारण करनेवाली, पृथ्वीका भार उतारने वाली, पुण्यदायिनी, कल्याणमूर्त्ति, सर्वदा स्मरण करने वालोंको कीचड़मेंसे गौओंकी समान पापमेंसे उद्धार करनेवाली दुर्गा देवीका स्मरण किया तदनन्तर स्तोत्रोंमें वर्णन करेहुए अनेक प्रकार के नामोंसे वारम्वार देवीको सम्बोधन कर उसकी स्तुति करने लगे ॥ १—६ ॥ युधिष्ठिर स्तुति करने लगे कि—हे वरदेनेवाली कुमारी, ब्रह्मचारिणी, वालसूर्यकी समान आकारवाली, पूर्णचंद्र के समान

ब्रह्मचारिणि । बालार्कसदृशाकारे पूर्णचन्द्रनिभानने ॥ ७ ॥ चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रे पीनश्रोणि पयोधरे । मयूरपिच्छवलये केयूरांगदधारिणि ॥ ८ ॥ भासि देवि यथा पद्मा नारायणपरिग्रहः । स्वरूपं ब्रह्मचर्यं च विशदं तव खेचरि ॥ ९ ॥ कृष्णच्छविसमो कृष्णा संकर्षणसमानना । बिभ्रती विपुलौ बाहू शक्रध्वजसमुच्छ्रयौ ॥ १० ॥ पात्री च पंकजी घंटी स्त्री विशुद्धा च या भुवि । पाशं धनुर्महाचक्रं विविधान्यायुधानि च ॥ ११ ॥ कुण्डलाभ्यां सुपूर्णाभ्यां कर्णाभ्यां च विभूषिता । चन्द्रविस्पर्द्धिना देवि मुखेन त्वं विराजसे ॥ १२ ॥ मुकुटेन विचित्रेण केशबन्धेन शोभिना । भुजंगाभोगवासेन श्रोणिसूत्रेण राजता ॥ १३ ॥ विभ्राजसे चावबद्धेन भोगेनेवेह मन्दरः । ध्वजेन शिखिपिच्छानामुच्छ्रितेन विराजसे । कौमारं व्रतमास्थाय त्रिदिवं पावितं त्वया ॥ १४ ॥ तेन त्वं स्तूयसे देवि त्रिदशैः पूज्यसेऽपि च । त्रैलोक्यरक्षणार्थाय महिषासुरनाशिनि । प्रसन्ना मे सुरश्रेष्ठे दयां कुरु शिवा भव ॥ १५ ॥ जया त्वं विजया चैव संग्रामे च जयप्रदा । ममापि विजयं देहि वरदा त्वञ्च

मुखवाली देवी कृष्णा आपको नमस्कार है ॥ ७ ॥ हे चतुर्भुजे, चार मुखोंवाली, पीनश्रोणि, पीनस्तनी, मयूरपिच्छके कंकणवाली, मुकुट और बाजूबंद धारणकरनेवाली देवी, जैसे नारायणकी स्त्री पद्मा शोभा पाती है इसीप्रकार तुम शोभा पाती हो ॥ ८ ॥ हे आकाशविहारिणी देवि! आपका स्वरूप और ब्रह्मचर्य शुद्ध है, आपके शरीरका वर्ण श्याम है अतएव आप कृष्णा कहलाती हो, आपका मुख बलदेवजीके मुखके समान है ॥ ९ ॥ इन्द्रध्वजा की समान आपकी लंबी भुजाएं वर तथा अभय देनेवाली होनेसे श्रेष्ठ गिनी जाती हैं तथा आप अपनी दूसरी भुजाओंमें खप्पर, कमल, घंटा, धनुष, पाश, महाचक्र तथा और भी अनेकों प्रकारके आयुधोंको धारण कर रही हो ॥ १०—११ ॥ हे देवि! तुम चन्द्रमाको लज्जित करनेवाले मुखसे शोभा पाती हो तथा विचित्र मुकुटसे शोभित केशपाशसे दिपती हो ॥ १२ ॥ और हे देवि! चारों ओर सर्पोंसे घिराहुआ मन्दराचल जैसी शोभा पाता है तैसे ही सर्पके शरीर की समान विस्तारवाली कटिमेखलासे तुम शोभा पाती हो ॥ १३ ॥ मयूरपिच्छकी ऊँची ध्वजासे तुम विराज रही हो, ब्रह्मचर्यव्रतधारिणी तुमने स्वर्गलोकको पवित्र किया है इस कारणसे ही हे देवि! देवता तुम्हारी पूजा तथा स्तुति करते हैं तुमने तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये महिषासुरको मारा है हे देवियोंमें श्रेष्ठ देवि! तुम हमारे ऊपर दया करो, कल्याणकारिणी बनो प्रसन्न होओ ॥ १४ ॥ १५ ॥ तुम जया हो, तुम विजया

साम्प्रतम् ॥ १६ ॥ विन्ध्ये चैव नगश्रेष्ठे तव स्थानं हि शाश्वतम् । कालि कालि महाकालि सीधुमांसपशुप्रिये ॥ १७ ॥ कृतानुयात्रा भूतैस्त्वं वरदा कामचारिणि । भारावतारे ये च त्वां संस्मरिष्यन्ति मानवाः ॥ १८ ॥ प्रणमन्ति च ये त्वां हि प्रभाते तु नरा भुवि । न तेषां दुर्लभं किञ्चित् पुत्रतो धनतोपि वा ॥ १६ ॥ दुर्गात्तारयसे दुर्गे तत्त्वं दुर्गा स्मृता जनैः । कान्तारेष्ववसन्नानां मग्नानाञ्च महार्णवे ॥ २० ॥ दस्युभिर्वा निरुद्धानां त्वं गतिः परमा नृणाम् । जलप्रतरणे चैव कान्तारेष्वटवीषु च ॥ २१ ॥ ये स्मरन्ति महादेवि न च सीदन्ति ते नराः । त्वं कीर्त्तिः श्रीर्धृतिः सिद्धिर्ह्रीर्विद्या सन्ततिर्मतिः ॥ २२ ॥ सन्ध्या रात्रिः प्रभा निद्रा ज्योत्स्ना कान्तिः क्षमा दया । नृणाञ्च बन्धनं मोहं पुत्रनाशं धनक्षयम् ॥ २३ ॥ व्याधिं मृत्युं भयञ्चैव पूजिता नाशयिष्यसि । सोहं राज्यात् परिभ्रष्टः शरणं त्वां प्रपन्नवान् ॥ २४ ॥ प्रणतश्च यथा मूर्ध्ना तव देवि सुरेश्वरि । त्राहि मां पद्मपत्राक्षि सत्ये सत्या भवस्व नः ॥ २५ ॥ शरणं भव मे दुर्गे शरण्ये भक्तवत्सले ।

हो, तथा संग्राममें तुम ही जय देने वाली हो, अतः मुझको भी वरदान देनेवाली तुम विजय दो ॥ १६ ॥ तुम्हारा विंध्य नामक पर्वत पर सनातन (पुराना) स्थान है हे कालि, ओ कालि, अयि महाकालि ! हे मधु, मांस, और पशुओं पर प्रीति करनेवाली हे देवि—ब्रह्मा इत्यादि तुम्हारी भक्ति करते हैं, हे देवि इससे ही तुम उनको वरदान देती हो, हे देवि जो मनुष्य प्रातःकाल आपका स्मरण करते हैं तथा प्रभातमें आपको प्रणाम करते हैं उन मनुष्योंको पृथ्वी पर पुत्र धन, आदि दुर्लभ नहीं होते हैं ॥ १७—१६ ॥ हे दुर्गे ! तुम दुःखोंमेंसे मनुष्योंको उबारती हो इसीलिये तुमको पुरुष दुर्गा कहते हैं भयंकर जंगलमें मार्ग भूल कर दुःख पातेहुए, तथा महासागरमें डूबते हुए, अथवा चोरोंसे रोके हुए प्राणियों की तुम आधार हो,पानी में तैरते समय, जंगलमे मार्ग भूलते समय जो मनुष्य तुम्हारा स्मरण करते में वे दुःखित नहीं होते हैं तुम कीर्तिरूप, लक्ष्मी, धैर्य, सिद्धि, लज्जा, विद्या, संतति, मति, संध्या, रात्रि, प्रभा, निद्रा, ज्योत्स्ना, कान्ति क्षमा और दयारूप हो तुम्हारी पूजा करी होय तो तुम मनुष्योंके बंधनका, मोहका, पुत्रनाशका, धनक्षयका, व्याधिका, मृत्युका और भयका नाश करती हो,मैं राज्यसे भ्रष्ट होगया हूँ और तुम्हारी शरणमें आया हूँ॥२०—२४॥ हे देवि ! हे सुरेश्वरि ! मैं आपको मस्तकसे प्रणाम करता हूँ, हे कमलपत्राक्षि सत्या देवि मुझे बचाओ और हमारे कार्यमें सच्चे रूपसे प्रकट होओ ॥ २५ ॥ हे दुर्गे, हे शरणागतवत्सले, भक्त-

एवं स्तुता हि सा देवी दर्शयामास पाण्डवम् ॥ २६ ॥ उपगम्य तु राजानमिदं वचनमब्रवीत् । देव्युवाच । शृणु राजन् महाबाहो मदीयं वचनं प्रभो ॥ २७ ॥ भविष्यत्यचिरादेव संग्रामे विजयस्तव । मम प्रसादान्निर्जित्य हत्वा कौरववाहिनीम् ॥ २८ ॥ राज्यं निष्कण्टकं कृत्वा भोक्ष्यसे मेदिनीं पुनः । भ्रातृभिः सहितो राजन् प्रीतिंप्राप्स्यसि पुष्कलाम् ॥ २९ ॥ मत्प्रसादाच्च ते सौख्यमारोग्यञ्च भविष्यति । ये च सङ्कीर्त्तयिष्यन्ति लोके विगतकल्मषाः ॥ ३० ॥ तेषां तुष्टा प्रदास्यामि राज्यमायुर्वपुः सुतम् । प्रवासे नगरे चापि संग्रामे शत्रुसङ्कटे ३१ अटव्यां दुर्गकान्तारे सागरे गहने गिरौ । ये स्मरिष्यन्ति मां राजन् यथाहं भवता स्मृता ॥ ३२ ॥ न तेषां दुर्लभं किञ्चिदस्मिल्लोके भविष्यति । इदं स्तोत्रवरं भक्त्या शृणुयाद्वा पठेत वा ॥ ३३ ॥ तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं यास्यन्ति पाण्डवाः । मत्प्रसादाच्च वः सर्वान् विराटनगरे स्थितान् ॥ ३४ ॥ न प्रज्ञास्यन्ति कुरवो नरा वा तन्निवासिनः । इत्युक्त्वा वरदा देवी युधिष्ठिरमरिन्दमम् । रक्षां कृत्वा च

रक्षिके, मुझै शरणमें रक्खो इस प्रकार युधिष्ठिरने दुर्गादेवीकी स्तुति करी तब दुर्गा देवीने राजा युधिष्ठिरको दर्शन दिया और उसके पास जा इसप्रकार कहनेलगी देवी कहती है कि हे महाबाहु हे राजन् मेरी वाणीको सुनो ॥ २६—२७ ॥ थोड़े समयके अनन्तर संग्राम में तेरी जीत होगी और हे राजन् तुम मेरी कृपासे थोड़े दिनोमें कौरवोंको नष्ट कर बंधुओंकी सहायतासे राज्यको शत्रुओं से रहित कर पृथ्वी पर प्रभुता करोगे और संसारमें लोगों का बहुत प्रेम प्राप्त करोगे ॥ २८—२९ ॥ मेरे प्रसादसे तुम सुखी और नीरोग रहोगे। हे राजन् जो मनुष्य तुह्मारी समान स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा उसके पाप नष्ट हो जावेंगे ॥ ३० ॥ और मैं प्रसन्न होकर उसको राज्य, आयु, सुन्दर शरीर तथा पुत्र दूंगी और हे राजन् जो मनुष्य प्रवास में, नगर में, रण में, शत्रुसंकट में, निर्जन अरण्यमें, भयंकर जंगल में, तथा गहन पर्वत पर मेरा स्मरण तेरी समान करेंगे तो उन मनुष्यों को इस संसार में कोई भी वस्तु दुष्प्राप्य नहीं होगी अर्थात् सहज में ही मिल जाया करेगी, हे पाण्डवो ! जो पुरुष भक्ति से इस स्तोत्र को सुनेंगे अथवा पढ़ेंगे उनके सब कार्य्य सिद्ध होंगे हे पांडवो मेरे आशीर्वाद से विराट नगर में छिपकर रहते हुए तुमको कौरव या कोई विराट् नगर का मनुष्य भी नहीं पहिचानेगा इस प्रकार वर देनेवाली देवी शत्रु को दमन करने वाले राजा युधिष्ठिर से

पाण्डूनो तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३५ ॥ छ ॥ छ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
श्रीदुर्गास्तवे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो विराटं प्रथमं युधिष्ठिरो राजा सभाया-मुपविष्टमाव्रजत् । वैडूर्यरूपान् प्रतिमुच्य काञ्चनानक्षान् स कक्षे प-रिगृह्य वाससा ॥ १ ॥ नराधिपो राष्ट्रपतिं यशस्विनं महायशाः कौर-ववंशवर्द्धनः । महानुभावो नरराजसत्कृतो दुरासदस्तीक्ष्णविषो यथोरगः ॥ २ ॥ बलेन रूपेण नरर्षभो महानपूर्वरूपेण यथामरस्तथा । महाभ्रजालैरिव संवृतो रविर्यथानलो भस्मवृतश्च वीर्यवान् ॥ ३ ॥ तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य पाण्डवं विराट्राडिन्दुमिवाभ्रसंवृतम् । समा-गतं पूर्णशशिप्रभाननं महानुभावं न चिरेण दृष्टवान् ॥ ४ ॥ मन्त्रिद्वि-जान् सूतमुखान् विशस्तथा ये चापि केचित् परितः समासते । पप्र-च्छ कोऽयं प्रथमं समेयिवान् नृपोपमोऽयं समवेक्षते सभाम् ॥ ५ ॥ न तु द्विजोऽयं भविता नरोत्तमः पतिः पृथिव्या इति मे मनोगतम् । न चा-स्य दासो न रथो न कुञ्जरः समीपतो भ्राजति चायमिन्द्रवत् ॥ ६ ॥

कहकर पाण्डवों की रक्षा कर वहां ही अदृश्य होगई ॥ ३१—३५ ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय! तदनन्तर आरंभमें ही राजा युधिष्ठिर भूरे रंग की, पीले रंग की, लाल रंग की, तथा श्वेतवर्णकी गुट्टें और फांसोंको एक वस्त्रमें बांध उन्हें बगलमें दबा सभामें बैठेहुए राजा विराट के पास गये ॥ १ ॥ कुरुवंश की वृद्धि करनेवाले, कीर्तिमान्, महा-पराक्रमी, राजाओंसे मान पायेहुए नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरको सभाकी ओर आतेहुए देखकर उनको तीक्ष्ण विषवाले सर्पकी समान दुरासद् घनघोर घटाओंसे छिपायेहुए सूर्यकी समान बादलोंसे ढकेहुए चन्द्रमाकी समान और भस्मसे ढकेहुए अग्निकी समान, तेजस्वी, पूर्णिमाके चन्द्रमा की समान उज्वल मुखवाले, अतिरूपवान्, बलसंपन्न तथा देवोंकी समान सुरूप देखकर महायशस्वी राजा विराटने सभामें बैठेहुए ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, सूत, मंत्री आदि पुरुषों से बूझा कि राजाके लक्षणोंसे युक्त यह कौन पुरुष सभा की ओर को देखरहा है, यह पुरुष पहिलीवार ही आया हुआ प्रतीत होता है, मुझे प्रतीत होता है कि यह पुरुष ब्राह्मण नहीं है किन्तु कोई राजा है इसके साथ दास, रथादि कोई भी नहीं है तब भी यह पुरुष इंद्रसा तेजस्वी दीखता है इसके शरीरकेबाहरी आकारसे जाना जाता है कि यह कोई मूर्द्धाभिषिक्त (किसी राज्यका अधिकारी) क्षत्रिय है जैसे मद

शरीरलिङ्गै रुपसूचितो ह्ययं मूर्द्धाभिषिक्त इति मे मनोगतम्। समीपमायाति च मे गतव्यथो यथा गजस्तामरसीं मदोत्कटः ॥ ७ ॥ वितर्कयन्तन्तु नरर्षभस्तथा युधिष्ठिरोऽभ्येत्य विराटमब्रवीत्। सम्राड् विजानात्विह जीवनार्थिनं विनष्टसर्वस्वमुपागतं द्विजम् ॥ ८ ॥ इहाहमिच्छामि तवानघान्तिके वस्तुं यथाकामचरस्तथा विभो। तमब्रवीत् स्वागतमित्यनन्तरं राजा प्रहृष्टः प्रतिसंगृहाण च ॥ ९ ॥ तं राजसिंहं प्रतिगृह्य राजा प्रीत्यात्मना चैवमिदं बभाषे। कामेन ताताभिवदाम्यहं त्वां कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतः ॥ १० ॥ गोत्रञ्च नामापि च शंस तत्वतः किंचापि शिल्पं तव विद्यते कृतम् ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ युधिष्ठिरस्यासमहं पुरा सखा वैयाघ्रपद्यः पुनरस्मि विप्रः। अक्षान् प्रयाक्तुं कुशलोऽस्मि देविनां कङ्केति नाम्नास्मि विराट विश्रुतः ॥ १२ ॥ विराट उवाच ॥ ददामि ते हन्त वरं यमिच्छसि प्रशाधि मत्स्यान्वशगो ह्यहं तव। प्रियाश्च धूर्त्ता मम देविनः

मत्त हाथी निर्भय होकर कमलनीके पास जाता है तिसी प्रकार यह भी निर्भयपनेसे मेरे पास आरहा है ॥ ७ ॥ राजा विराट इस प्रकार तर्क वितर्क कर रहे थे कि—इतनेमे ही नरश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर ने राजा विराटके पास आकर कहा कि—मैं द्विज हूँ और दुर्भाग्यके कारण मेरा सर्वस्व नष्ट होगया है अतः हे राजन्! मैं आपके पास आजीविका के लिये आया हूँ यह आपको विदित हो ॥८॥ हे निर्दोष और व्यापक राजन्! आप जिस प्रकार कहेंगे उसी प्रकार वर्त्ताव करकै मैं आपके पास रहना चाहता हूँ यह सुन राजा विराटने प्रसन्न हो उनका सत्कार कर कहा कि—अच्छा तुम यहाँ ही रहो तुम्हें जो काम अच्छा लगे उसे करो ॥ ९ ॥ इस प्रकार कह राजा विराटने राजसिंह युधिष्ठिर को अपने यहाँ ठहराया इसके अनन्तर प्रेमपूर्वक इस प्रकार बूझा कि-हे तात! मैं तुमसे प्रीतिपूर्वक बूझता हूँ कि—तुम किस राजाके देशसे यहाँ आये हो ॥ १० ॥ तुम्हारा गोत्र क्या है तुम्हारा नाम क्या है, और तुमने कौनसा शिल्पका कार्य सीखा है तुम मुझसे ठीक २ कहो ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर कहने लगे कि-हे विराट राजन्! मैं व्याघ्रपाद गोत्रमें उत्पन्न हुआ ब्राह्मण हूँ मैं पहिले युधिष्ठिरका मित्र था, और जुआ खिलानेवालोंमें तथा फाँसे फेकनेमें मैं चतुर हूँ तथा कंक नामसे प्रसिद्ध हूँ ॥ १२ ॥ राजा विराट बोले कि-तुम जो वर मांगो मैं वह आनन्दसे देनेको उद्यत हूँ अधिक क्या कहूँ मैं भी तुम्हारे अधीन हूँ और तुम मत्स्य देश पर अपनी प्रभुता चलाओ मुझै जुआ खिलाने वाले धूर्त्त लोग सदा प्यारे लगते हैं

सदा भवांश्च देवोपम राज्यमर्हति ॥ १३ ॥ युधिष्ठिर उवाच । प्रोतो विवोदः पृथमं विशाम्पते न विद्यते कंचन मत्स्य हीनतः । न मे जितः कश्चन धारयेद्धनं वरो ममैषोस्तु तव प्रसादजः ॥ १४ ॥ विराट उवाच ॥ हन्यामवश्यं यदि तेऽप्रियञ्चरेत् प्रव्राजयेयं विषयाद् द्विजांस्तथा । शृण्वन्तु मे जानपदाः समागताः कंको यथाहं विषये प्रभुस्तथा ॥ १५ ॥ समानयानो भवितासि मे सखा प्रभूतवस्त्रो बहुपानभोजनः । पश्येस्त्वमन्तश्च बहिश्च सर्वदा कृतं च ते द्वारमपावृतं मया ॥ १६ ॥ ये त्वानुवादेयु रवृत्तिकर्शिता ब्रूयाश्च तेषां वचनेन मां सदा । दास्यामि सर्वं तदहं न संशयो न ते भयं विद्यति सन्निधौ मम ॥ १७ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं स लब्ध्वा तु वरं समागमं विराटराजेन नरर्षभस्तदा । उवास धीरः परमार्चितः सुखी न चापि

अतः हे देवसमान ! तुम राज्य (भोगने) के भी योग्य हो ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरने उत्तर दिया कि—हे राजन् ! पहिले मेरी यह प्रार्थना है कि-मुझे नीच पुरुषोंसे किसी प्रकारका भी (आपकी ओरसे) विवाद न करना पड़े दूसरी प्रार्थना यह है कि—कोई भी पुरुष खेलतेमें मुझसे हार जाय तब वह दांवमें रक्खे धनको न ले जाय किन्तु वह धन मुझै देदेय आपकी कृपासे मुझै यह दो वर मिलैं ऐसा करिये ॥१४॥ विराट बोले हे ब्राह्मण ! कोई भी मनुष्य तुम्हारा अप्रिय करेगा तो मैं उसे अवश्य ही देहान्त दण्ड दूंगा यदि वह ब्राह्मण होगा तो देशनिकाला देदूँगा यहाँ इकट्ठे बैठ हुए मेरे सब देशवासियों सुनो मैं तुमसे कहता हूँ कि जैसा मैं इस देशका राजा हूँ तैसे ही यह कंक भी राजा है ॥ १५ ॥ हे कंक ! तुम मेरे मित्र हो अतः तुमको मेरे समान पालकी आदि सवारियें बैठनेके लिये मिलैंगी पहरने के लिये बहुतसे वस्त्र मिलेंगे और अनेक प्रकारके पेय तथा भोजन मिलैंगे और तुम बाहर के सेना ग्रामादिको और भीतर धन दारा आदिके सब कार्योंमें ध्यान रखना मैं तुम्हारे लिये सब द्वार खोलता हूँ अर्थात् तुम बे रोकटोक राजमंदिर में आसकते हो ॥ १६ ॥ आजीविका के साधन से रहित दरिद्र पुरुष जब धनकी प्रार्थना करते हुए तुह्मारे पास आवें तब उनके कहने के अनुसार सदा चाहे तिस समय तुम मेरे पास आकर उनकी प्रार्थना मुझको सुनाना मैं उनके कहने के अनुसार सब वस्तुए दूंगा इसमें तुम सन्देह न रखना, तुम मुझसे कहते समय किसी प्रकार का भय मत मानना ॥१७॥ वैशंपायन कहते हैं कि हे जनमेजय ! इस प्रकार नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने राजा विराट के साथ बातचीत करकै उनसे वरदान लिये और सब

कश्चिच्चरितं बुबोध तत् ॥ १८ ॥ छ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
युधिष्ठिरप्रवेशे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथापरो भीमबलः श्रिया ज्वलन्नुपाययौ सिंहविलासविक्रमः । खजाञ्च दर्वीं च करेण धारयन्नसिं च कालाङ्गमकोषमव्रणम् ॥ १ ॥ स सूदरूपः परमेण वर्चसा रविर्यथा लोकमिमं प्रकाशयन् । स कृष्णवासा गिरिराजसारवांस्तं मत्स्यराजं समुपेत्य तस्थिवान् ॥ २ ॥ तं प्रेक्ष्य राजा रमयन्नुपागतं ततोऽब्रवीज्जानपदान् समागतान् । सिंहोन्नतांसोऽयमतीवरूपवान् प्रदृश्यते को नु नरर्षभो युवा ॥ ३ ॥ अदृष्टपूर्वः पुरुषो रविर्यथा वितर्कयन्नास्य लभामि निश्चयम् । तथास्य चित्तं ह्यपि संवितर्कयन्नरर्षभस्यास्य न यामि तत्त्वतः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वैव चैनं तु विचारयाम्यहं गन्धर्वराजो यदि वा पुरन्दरः । जानीत कोऽयं मम दर्शने स्थितो यदीप्सितं तल्लभतां च मा चिरम् ५ विराटवाक्येन च तेन चोदिता नरा विराटस्य सुशीघ्रगामिनः । उपे

प्रकारके सत्कारको प्राप्तकर आनंदसे रहने लगे और किसी भी मनुष्य ने उनके इस अज्ञातवास के चरित्र को कुछ नहीं जाना ॥१८॥ सातवां अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! तदनन्तर भीमपराक्रमी, उत्तम प्रकारकी लक्ष्मीसे देदीप्यमान सिंहके विलासकी समान महा पराक्रमी और मेरु पर्वतकी समान दृढ़शरीर वाला भीमसेन शरीर पर काले कपड़े पहिनकर हाथमें चमचा और खड्ग लियेहुए जैसे सूर्य अपने उत्तम तेजसे संसारको प्रकाशित करते हैं तैसे अपने उत्तम तेजसे सभाको प्रकाशित करताहुआ राजा विराटके पास पहूँचकर खड़ा होगया ॥१—२॥ राजाने उसको देखकर इकट्ठी बैठी हुई सब प्रजाओंको प्रसन्न करतेहुए कहा कि यह सिंहकी समान अति-ऊँचे खभोंवाला, अत्यन्त रूपवान् जो श्रेष्ठ और युवा पुरुष दीखता है कौन है ॥ ३ ॥ सूर्यकी समान तेजस्वी इस पुरुषको मैंने कभी देखा नहीं है अब मैं विचार करनेसेभी इसको नहीं पहिचानसका तैसे ही इस पुरुषश्रेष्ठके मनमें क्या विचार है यहभी मैं नहीं जानता ॥ ४ ॥ इसको देखते ही मेरे मनमें शंका होतीहै कि यह इन्द्र होगा अथवा गंधर्वराज होगा हे नागरिक पुरुषो ! यह जो मेरे सामने खड़ा है कौन है ? इसकी खोजकर मुझको बतावो और इसको जो वस्तु चाहिये वह विना विलम्ब देदो ॥ ५ ॥ विराटराजाने इस प्रकार आज्ञा दी कि तत्काल उतावले चलनेवाले राजा विराटके पुरुष शीघ्रतासे दौड़कर धर्म

त्य कौन्तेयमथाब्रुवंस्तदो यथा स राजा वदताच्युतानुजम् ॥ ६ ॥ ततो विराटं समुपेत्य पाण्डवस्त्वदीनरूपं वचनं महामनाः । उवाच सूदोस्मि नरेन्द्र बल्लवो भजस्व मां व्यञ्जनकारमुत्तमम् ॥ ७॥ विराट उवाच ॥ न सूदतां बल्लव श्रद्दधामि ते सहस्रनेत्रप्रतिमो विराजसे । श्रिया च रूपेण च विक्रमेण च प्रभाससे त्वं नृवरो नरेष्विह ॥ ८ ॥ भीम उवाच ॥ नरेन्द्र सूदः परिचारकोस्मि ते जानामि सूपान् प्रथमं च केवलान् । आस्वादिता ये नृपते पुराभवन् युधिष्ठिरेणापि नृपेण सर्वशः ॥ ६ ॥ बलेन तुल्यश्च न विद्यते मया नियुद्धशीलश्च सदैव पार्थिव । गजैश्च सिंहैश्च समेयिवानहं सदा करिष्यामि तवानघ प्रियम् ॥ १० ॥ विराट उवाच ॥ ददामि ते हन्त वरान्महानसे तथा च कुर्याः कुशलं प्रभाषसे । न चैव मन्येत तव कर्म यत्समं समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि ॥ ११ ॥ यथाहि कामो भवतस्तथा कृतं महा-

राज युधिष्ठिरके छोटे भाई, कुन्तीपुत्र भीमके पास आए और राजाके कथनानुसार इसप्रकार कहनेलगे ॥६॥ इतनेमें उदार मन वाला भीमसेन राजाविराटके पास आया और उनसे इसप्रकार महत्वपूर्ण वचनोंमें कहना प्रारंभ किया कि—हे राजन् ! मैं रसोइया हूँ, मेरा नाम वल्लव है मुझे तरकारी, भाजी तथा बेसनकी वस्तुएंभी बनानीआती हैं अतः आप मुझे इस कामपर रखलीजियेगा ॥७॥ विराट बोले कि हे वल्लव ! तू कहता है कि मैं रसोइया हूँ,परन्तु तू रसोइया होगा,इसपर मुझको तो विश्वास नहीं होता तू इन्द्रकी समान तेजस्वी दीखता है, और तेरी कान्ति रूप तथा पराक्रमसे यह मालूम पडता है कि तू मनुष्यों में कोई महापुरुष है ॥ ८ ॥ भीमने कहा कि हे राजन् ! मैं आपके यहां रसोइये के कामकी नौकरी करने आया हूँ और मुझे प्रकार प्रकार के पदार्थ बनाने आते हैं मेरे पहिले प्रकार २ के पदार्थ राजा युधिष्ठिर ने पूर्णरीति से स्वाद के साथ खाये थे और हे राजन् मैं मल्ल भी हूँ मेरे समान बलवान् तथा मल्लयुद्ध करने वाला कोई भी नहीं है । हे निर्दोष राजन् ! मैं सदा हाथी तथा सिंहो के साथ युद्ध करके आपका हित करूंगा ॥ १० ॥ राजा विराट ने कहा कि मैं खेदके साथ अर्थात् तू रसोइये का काम करने के योग्य नहीं है तब भी तेरे कथनुसार तेरी प्रार्थनाओ को पूरी करता हूँ और तूने. मैं रसोई में कुशल हूँ इस बात का परिचय दिया है अतः तू यही काम कर परन्तु यह काम तेरे योग्य है यह मैं नहीं मानता किन्तु तू समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का राजा होने के योग्य है ॥ ११ ॥ तो भी तेरीजैसी इच्छा है उसी प्रकार मैं करता हूँ तू मेरी पाकशाला में प्रधान अधिकारी

नसे त्वं भव मे पुरस्कृतः । नराश्च ये तत्र समाहिताः पुरा भवांश्च तेषामधिपो मया कृतः ॥ १२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तथा स भीमो विहितो महानसे विराटराज्ञो दयितोभवद् दृढम् । उवास राज्ये न च तं पृथग्जनो बुबोध तत्रानुचराश्च केचन ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि भीमप्रवेशे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः केशान् समुत्क्षिप्य वेल्लिताग्राननिन्दितान् । कृष्णान् सूक्ष्मान् मृदून् दीर्घान् समुद्ग्रथ्य शुचिस्मिता ॥ १ ॥ जुगूहे दक्षिणेपार्श्वे मृदूनसितलोचना । वासश्च परिधायैकं कृष्णा सुमलिनं महत् ॥ २ ॥ कृत्वा वेषं च सैरन्ध्र्यास्ततो व्यचरदार्त्तवत् । तां नराः परिधावन्तीं स्त्रियश्च समुपाद्रवन् ॥ ३ ॥ अपृच्छंश्चैव तां दृष्ट्वा का त्वं किंच चिकीर्षसि। सा तानुवाच राजेन्द्र सैरन्ध्र्यहमिहागता ॥ ४ ॥ कर्म चेच्छामि वै कर्तुं तस्य यो मां युयुक्षति । तस्या

हो पहिलेसे जो मनुष्य तहां भोजन बनाने के लिये रक्खे हैं मैं तुझै उन का स्वामी बनाता हूँ॥१२॥वैशंपायन कहते हैं कि हे राजा जनमेजय ! इस प्रकार भीमसेन विराट राजा की पाकशाला में नियत हुआ, इस कारण यह राजा विराट् के नगर में रहने लगा और राजा विराट का बहुत प्यारा होगया परन्तु तहां रहने वाले साधारण मनुष्य तथा राजा के कोई सेवक भी भीमसेन को पहिचान नहीं सके ॥ १३ ॥ आठवां अध्याय समाप्त ॥ * ॥ *

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय ! तदनन्तर पवित्र और मंद हास्य करने वाली और श्यामनेत्रा, द्रौपदीने अपने सुन्दर श्याम वर्ण के सूक्ष्म कोमल तथा अग्रभाग में मुडे हुए केशों को इकट्ठाकरकै गूंथ कर उनसे दाहिने कंधे को ढकदिया फिर एक बहुमूल्य बहुतही मैला कपड़ा पहर सैरंध्रीकासा भेष बना दुःखी मनुष्यों की समान नगरमें भटकने लगी उसको नगरमें इस प्रकार फिरते देख लोग, लुगाई उसके पीछे दौड़ने लगे ॥ १ ॥ और उसकी ओर देखकर बूझने लगे कि तू कौन है ? और क्या करना चाहती है ? सो हमें बता, लोगोंके ऐसे कथन को सुनकर द्रौपदीने उत्तर दिया कि मैं सैरंध्री (दासी) हूँ और आजीविका (नौकरी) के लिये तुह्यारे नगर में आई हूँ ॥ ४ ॥ जो मनुष्य दासीकीसमानमुझैअपनेघरमेंरक्खेगा उसकाकामकरनेकी मेरीइच्छाहैद्रौपदीके ऐसा कहने परभी लोगोंको उसके वेश से रूपसे तथा मधुर और कोमल वाणीसे यह स्त्री एक दासी है और अन्नके लिये घर घर घूमती फिरती है, इस पर विश्वास न हुआ ॥ ५ ॥ इस

रूपेण वेषेण श्लक्ष्णया च तथा गिरा। न श्रद्दधत तां दासीमन्नहे-तोरुपस्थिताम् ॥ ५ ॥ विराटस्य तु कैकेयी भार्या परमसम्मता। आलोकयन्ती ददृशे प्रासादाद् द्रुपदात्मजाम् ॥ ६ ॥ सा समीक्ष्य तथा-रूपामनाथामेकवाससम्। समाहूयाब्रवीद्भद्रे का त्वं किञ्च चिकीर्षसि ॥ ७ ॥ सा तामुवाच राजेन्द्र सैरन्ध्र्यहमुपागता । कर्म चेच्छाम्यहं कर्तुं तस्य यो मां युयुक्षति ॥ ८ ॥ सुदेष्णोवाच। नैवंरूपा भवन्त्येव यथा वदसि भामिनि। प्रेषयन्तीव वै दासीर्दासांश्च विविधान्बहून् ॥ ९ ॥ नोच्चगुल्फा संहतोरुस्त्रिगम्भीरा षडुन्नता। रक्ता पञ्चसु रक्तेषु हंसगद्गदभाषिणी ॥ १० ॥ सुकेशी सुस्तनी श्यामा पीनश्रो-णिपयोधरा। तेन तेनैव सम्पन्ना काश्मीरीव तुरङ्गमी ॥ ११ ॥ अरा-लपक्ष्मनयना बिम्बोष्ठी तनुमध्यमा। कम्बुग्रीवा गूढशिरा पूर्णचन्द्र-निभानना॥ १२ ॥ शारदोत्पलपत्राक्षया शारदोत्पलगन्धया। शारदो-

समय राजा विराटकी परममान्य रानी जो केकयराजकी पुत्री थी, वह सुदेष्णा अपने राजमहलमें खड़ी २ नगरकी चर्चा देखरही थी, उसने राजमहलमेंसे मार्गमें एक वस्त्र ओढे फिरती हुई, अद्भुत रूप-वाली; निराधार राजाद्रुपदकी पुत्रीको देखा, उस अद्भुतरूपवाली द्रौपदीको देखते ही रानीने उसे अपने पास बुलाकर बूझा कि—हे कल्याणि! तू कौन है? और तुझे क्या करनेकी इच्छा है? ॥ ६ ॥ तब हे राजेन्द्र उस स्त्रीने रानीसे कहा कि—मैं सैरंध्री हूँ और आजीविका (नौकरी) के लिये इधर आई हूँ, जो मनुष्य मुझे काम करनेके लिये रक्खे उसका काम करूँगा,ऐसी मेरी इच्छा है ॥ ८ ॥ सुदेष्णा बोली कि हे भामिनि!तेरे समान रूपवाली स्त्रियें जैसे काम करनेको तू कहती है ऐसे कामको नहीं करती हैं परन्तु वे तो अनेक प्रकारके बहुतसे दास दासियों पर आज्ञा चलानेवाली होती हैं ॥ ९ ॥ तेरे पाँवकी एड़ियां नीची हैं तेरीजंघायेंपरस्पर सटीहुई हैं, तेरा शब्द, बुद्धि, और नाभि गंभीर हैं तेरी नासिका, नेत्र, कान, स्तन, तथा श्रोणिमंडल उन्नत हैं चरणके तलुए हाथकी हथेली, नेत्र के तारे, होठ, जीभ, नख लाल २ हैं, तेराबोलना, हंसकी समान गद्गद और मधुर है, तेरे केश श्याम और मनोहर हैं शरीर श्यामवर्ण है, और श्रोणिमंडल पुष्ट है, इस प्रकार तू काश्मीर देशकी घोड़ीकी समान अनेक शुभ लक्षणोंसे युक्त है ॥ १०—११ ॥ तेरे नेत्रोंके पलक श्यामवर्णके, और कटि लालवर्ण की है, ओठ बिम्बाफलकी समान लाल हैं, कमर पतली है कंठ शंखकी समान गोलहै शरीरमे इस प्रकार रुधिर भरा हुआ है कि—एक भी नाड़ी नहीं दीखती है, तेरा मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाकी समान है, तेरे

त्पलसेविन्या रूपेण सदृशी श्रिया ॥ १३ ॥ का त्वं ब्रूहि यथा भद्रे नासि दासी कथञ्चन । यक्षी वा यदि वा देवी गन्धर्वी यदि वाप्सरा ॥ १४ ॥ देवकन्या भुजंगी वा नगरस्याथ देवता । विद्याधरी किन्नरी वा यदि वा रोहिणी स्वयम् ॥ १५ ॥ अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीकाथ मालिनी । इन्द्राणी वारुणी वा त्वं त्वष्टुर्धातुः प्रजापतेः । देव्यो देवेषु विख्यातास्तासां त्वं कतमा शुभे ॥ १६ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ नास्मि देवी न गन्धर्वी नासुरी न च राक्षसी । सैरन्ध्री तु भुजिष्यास्मि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १७ ॥ केशान् जानाम्यहं कर्त्तुं पिंषे साधु विलेपनम् । मल्लिकोत्पलपद्मानां चम्पकानां तथा शुभे ॥ १८ ॥ ग्रथयिष्ये विचित्राश्च स्रजः परमशोभनाः । आराधयं सत्यभामां कृष्णस्य महिषीं प्रियाम् ॥ १९ ॥ कृष्णां च भार्यां पाण्डूनां कुरूणामेकसुन्दरीम् । तत्र तत्र चराम्येवं लभमाना सुभोजनम् ॥ २० ॥ वासांसि यावन्ति

नेत्र शरद्‌ऋतुके श्याम कमलकी समान रमणीय हैं, तेरे शरीरकी गंध शरद्‌ऋतुके कमलकीसी है, तेरे शरीरकी कान्ति और रूप शरद्‌ऋतुके कमलकी समान है॥१२—१३॥ अतः हे कल्याणि ! तू किसी कारण से दासीसी नहीं प्रतीतहोती, अतः जो सच्ची बात हो उसको कह कि तू कौन है? तू यक्षकी स्त्री है कि-देवांगना है? गंधर्वकी स्त्री है? कि-अप्सरा है? देवकन्या है? कि-नागकन्या है? नगर की देवी है ? अथवा तू विद्याधरी है?किन्नरी है? कि साक्षात् चन्द्रपत्नी रोहिणी है ? साक्षात् अलम्बुषा है? कि मिश्रकेशी है, पुंडरिका है ? कि इन्द्राणी है ? मालिनी है कि वारुणी है विश्वकर्मा की स्त्री है, कि ब्रह्मा की स्त्री है, प्रजापति की स्त्री है, कि हे कल्याणि ! देवताओं की प्रसिद्ध स्त्रियोंमें से तू कोई प्रसिद्ध स्त्री है यह मुझे बता ॥१५—॥१६॥ यह सुन द्रौपदी ने कहा कि मैं देवी नहीं हूँ, गंधर्वी नहीं हूँ, असुरपत्नी नहीं हूँ तथा राक्षसी भी नहीं हूँ, मैं आपके सामने सचसच कहती हूँ कि मैं दूसरेकेघर दासीपन करनेवाली सैरंध्री हूँ॥१७॥ हे कल्याणि!मुझे भलीप्रकार केश संहालना,तथा गूंथना आता है और अंगराग भी अच्छी प्रकार घिसना जानती हूँ तथा मालती, उत्पल, पद्म और चम्पाओं की परम रमणीय माला गूंथना जानती हूँ, पहिले मने श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा की तथा कौरव और पाण्डवों की पटरानी अनुपम सुन्दरी द्रौपदी की सेवा की थी परन्तु मैं अब पृथक् २ स्थानों में दासीपना करके सुन्दर भोजन पाने के लिये फिरा करती हूँ ॥ १८—२० ॥ और मुझे जितने वस्त्र मिलते हैं उनसे अपना निर्वाह कर आनन्दसे दिन व्यतीत करतीहूँ। देवी द्रौपदी

लभे तावत्तावद्रमेऽतथा । मालिनीत्येव मे नाम स्वयं देवी चकार सा साहमद्यागता देवि सुदेष्णे त्वन्निवेशनम् ॥ २१ ॥ सुदेष्णोवाच ॥ मूर्ध्नि त्वां वासयेयं वै संशयो मे न विद्यते । न चेदिच्छति राजा त्वां गच्छेत् सर्वेण चेतसा ॥ २२ ॥ स्त्रियो राजकुलेयाश्च याश्चेमाः मम वेश्मनि । प्रसक्तास्त्वां निरीक्षन्ते पुमांसं कं न मोहयेः ॥ २३ ॥ वृक्षांश्चावस्थितान् पश्य य इमे मम वेश्मनि । तेऽपि त्वां सन्नमन्तीव पुमांसं कं न मोहयेः ॥ २४ ॥ राजा विराटः सुश्रोणि दृष्ट्वा वपुरमानुषम् । विहाय मां वरारोहे गच्छेत् सर्वेण चेतसा ॥ २५ ॥ यं हि त्वमनवद्यांगि तरलायतलोचने । प्रसक्तमभिवीक्षेथाः स कामवशगो भवेत् २६ यश्च त्वां सततं पश्येत् पुरुषश्चारुहासिनि । एवं सर्वानवद्यांगि स चानंगवशो भवेत् ॥ २७ ॥ अध्यारोहेद्यथा वृक्षान् वधायैवात्मनो नरः राजवेश्मनि ते सुभ्रू हेतु स्यात्तथा मम ॥ २८ ॥ यथा च कर्कटी

ने अपने आप मेरा नाम मालिनी रक्खा था और हे रानी सुदेष्णा ! आज से मैं तुम्हारे घर पर आपड़ी हूँ ॥ २१ ॥ सुदेष्णा ने कहा कि हे कल्याणि ? राजा तेरे ऊपर मोहित न हों तो मैं तुझे मस्तक पर धरने को उद्यत हूँ, इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु राजा तेरे अलौकिक रूपका देखकर तुझपर चित्तसे मोहित होजायँगे ऐसा मुझै संदेह होताहै॥२२॥ क्योंकि यहां दरवारमें जो स्त्रियें हैं और महलमें जो स्त्रियें हैं वे सब तेरे अलौकिक रूप पर मोहित हो तेरी ओर को ही वार २ निहार रही हैं फिर तू किस पुरुषको मोहित न करेगी ? ॥ २३ ॥ मेरे घरके आंगनमें खड़ेहुए इन वृक्षोंको तो देख यह भी मानो तुझै प्रणाम करते हों इसप्रकार झुक गयहैं, तव तू किस पुरुषको मोहित न करेगी? ॥२४॥ हे सुश्रोणि ! हे सुन्दर अवयवों वाली स्त्री ! कहीं राजा विराट् भी तेरे अलौकिक रूपको देख मुझै छोड़ एकाग्र मनसे तेरे अधीन न होजायँ ॥२५॥ हे निर्दोषांगी ! हे चपलविशालनेत्रे ! तेरे ऊपर आसक्त हुए जिस पुरुष पर तेरी दृष्टि पड़जाय वह क्या विना मोहित हुए वच-जायगा ? अर्थात् अवश्य ही कामाधीन होगा ॥ २६ ॥ हे सुन्दर हास्यवाली स्त्री ! तव जो मनुष्य सर्वदा सर्वांगसुन्दरी तुझको देखा करे वह कामवश होजाय इसमें क्या आश्चर्य है ॥ २७ ॥ हे सुन्दर भौंवाली स्त्री ! जैसे मनुष्य अपना नाश करनेके लिये जिस डाली पर वैठा होता है उसे काट कर अपनी वड़ी भारी हानि करलेता है तैसे ही मैं भी तुझको राजमहल में रखकर वडी आपत्ति में पड़जाऊँगी २८ कर्कटी (वीछन) वा खच्चरी का गर्भ धारण करना जैसे उस के नाशका कारण होताहै तैसे ही हे शुचिस्मिते मैं भी तुझै अपने घरमें

गर्भमाधत्ते मृत्युमात्मनः। तथाविधमहं मन्ये वासं तव शुचिस्मिते ॥ २९ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ नास्मि लभ्या विराटेन न चान्येन कदाचन। गन्धर्वाः पतयो मह्यं युवानः पंच भामिनि ॥ ३० ॥ पुत्राः गन्धर्वराजस्य महासत्वस्य कस्यचित्। रक्षंति ते च मां नित्यं दुःखाचारास्तथा ह्यहम् ॥ ३१ ॥ यो मे न दद्यादुच्छिष्टं न च पादौ प्रधावयेत्। प्रीयेरंस्तेन वासेन गन्धर्वाः पतयो मम ॥ ३२ ॥ यो हि मां पुरुषो गृध्येद्यथान्याः प्राकृताः स्त्रियः। तामेव निवसेद्रात्रिं प्रविश्य च परां तनुम् ॥ ३३ ॥ न चाप्यहं चालयितुं शक्या केनचिदंगने। दुःखशीला हि गंधर्वास्ते च मे बलवत्प्रियाः ॥ ३४ ॥ प्रच्छन्नाश्चापि रक्षन्ति ते मां नित्यं शुचिस्मिते। सुदेष्णोवाच ॥ एवं त्वां वासयिष्यामि यथा त्वां नन्दिनीच्छसि ॥ ३५ ॥ न च पादौ न चोच्छिष्टंस्प्रक्ष्यसि त्वं कथञ्च वैशम्पायन उवाच ॥ एवं कृष्णा विराटस्य भार्यया परिसान्त्विता३६ उवास नगरे तस्मिन् पतिधर्मवती सती। न चैनां वेद तत्रान्यस्त-

---

रखना अपने नाशका कारण समझती हूँ ॥ २९ ॥ द्रौपदीने कहा कि-हे भामिनी! राजा विराट् अथवा दूसरा कोई भी पुरुष मुझे अयोग्य कार्य करनेके लिये अपने अधीन नहीं करसकता क्योंकि—मेरे पति पांच तरुण गंधर्व हैं॥ ३० ॥ वे एक महाबलवान्! गंधर्वराजके पुत्र हैं और नित्य मेरी रक्षा किया करते हैं अतः मुझे कोई दूसरे दुःख नहीं देसकते ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य मुझे दासी विचार कर उच्छिष्ट नहीं देते हैं तथा मुझसे अपने पैर नहीं धुलवाते हैं वे मेरे साथ इस प्रकार के वर्ताव करनेसे मेरे गन्धर्व पति उनपर प्रसन्न रहते हैं॥३२॥ परन्तु जो कोई पुरुष दूसरी साधारण स्त्रियोंकी समान मुझे भी साधारण स्त्री मानकर मेरे ऊपर बलात्कार करनेकी इच्छा करता है उसको मेरे पांच पति रात्रिमें मारडालते हैं॥३३॥ हे स्त्रि! किसी पुरुष में भी मुझे शीलसे भ्रष्ट करनेकी शक्ति नहीं है क्योंकि—मेरे प्रियतम गन्धर्व महाबलवान् और दुःख सहनेवाले हैं॥३४॥और हे सुहासिनि! वे छिपकर मेरी सदा रक्षा करते हैं,सुदेष्णाने कहा कि-हेनन्दिनि! यदि ऐसा ही है तो मैं तुझे अपने घरमें तेरी इच्छानुसार रखलूँगी॥३५॥ और तू किसी दिन भी किसीकी जूठन मत छूना तथा किसीके पैर भी मत धोना, वैशम्पायन कहतेहैं कि-हे जनमेजय! राजा विराट्की रानी सुदेष्णाने इसप्रकार द्रौपदीको समझा अपने घरमें दासीबनाकर रखलिया ॥ ३६ ॥ पतिव्रता तथा धर्मव्रत पालनेवाली द्रौपदी भी विराटनगरमें रहकर दिन बिताने लगी परन्तु वहांके किसी भी

रवेन जनमेजय ॥ ३७ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि द्रौपदीप्रवेशे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ सहदेवोऽपि गोपानां कृत्वा वेशमनुत्तमम् । भाषां चैषां समास्थाय विराटमुपयादथ ॥ १ ॥ गोष्ठमासाद्य तिष्ठन्तं भवनस्य समीपतः।राजाथ दृष्ट्वा पुरुषान् प्राहिणोज्जातविस्मयः ।२। तमायान्तमभिप्रेक्ष्य भ्राजमानं नरर्षभम् । समुपस्थाय वै राजा पप्रच्छ कुरुनन्दनम् ॥३॥ कस्य वा त्वं कुतो वा त्वं किं वा त्वं तु चिकीर्षसि । न हि मे दृष्टपूर्वस्त्वं तत्त्वं ब्रूहि नरर्षभ ॥४॥ सम्प्राप्य राजानममित्रतापनं ततोऽब्रवीन्मेघमहौघनिःस्वनः । वैश्यनाम नाम्नाहमरिष्टनेमिर्गोसंख्य आसं कुरुपुङ्गवानाम् ॥ ५ ॥ वस्तुं त्वयीच्छामि विशां वरिष्ठ तान् राजसिंहान्नहि वेद्मि पार्थान् । न शक्यते जीवितुमन्यकर्मणा न च त्वदन्यो मम रोचते नृपः ॥ ६ ॥ विराट उवाच ॥ त्वं ब्राह्मणो यदि

मनुष्यने द्रौपदीको नहीं पहिचाना ॥ ३७ ॥ नवम अध्याय समाप्त ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! सहदेव भी अच्छी प्रकार ग्वालियेका वेश बनाकर ग्वालियें की बोली बोलता २ राजा विराटके समीप पहुँचने को चलदियां ॥१॥वह राजभवनके समीप स्थित गोशाला पर आकर खड़ा होगया उसको देख राजा के मनमें आश्चर्य हुआ ॥ २ ॥ और राजाने उसका नाम धाम जाननेके लिये उसके पास अपने आदमियोंको भेजा, वे पुरुष सहदेवके पास गए और उन से राजाका संदेशा कहकर राजाके पास लिवा लाये महातेजस्वी, पुरुषश्रेष्ठ, कुरुनन्दन, सहदेव राजाके सामने आकर खड़े हुए तब राजाने उनके पास जाकर उनसे बूझा ॥ ३ ॥ तुम किसके मनुष्य हो ! कहाँसे आये हो ? और तुम्हें किस कार्यके करनेकी इच्छा है ? हे नरर्षभ ! मैने तुम्हे पहिले कभी देखा नहीं हैं अतः बताओ तुम कौन हो? ॥ ४ ॥ इस पर शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले राजासे सहदेवने बड़े भारी मेघोंके गर्जनेकी समान गंभीर स्वरसे कहा कि—मैं अरिष्टनेमि नामक वैश्य हूँ और कुरुवंशके कुमारोंके यहाँ गौओंका परीक्षक था ॥ ५ ॥ परन्तु हे नृपतिश्रेष्ठ ! वे राजसिंह पाण्डव जाने कहाँ को चलेगये यह बात मैं नहीं जानता इसकारण आपके यहाँ नौकरी करनेकी इच्छासे आया हूँ क्योंकि—विना उद्योग करेहुए मनुष्य जी नहीं सकता (भूखे मरजाता है) और मुझे आपके सिवाय दूसरे राजा की नौकरी करना भी अच्छा नहीं लगता है ॥ ६ ॥ राजा विराट्ने कहा कि अरे मनुष्य ! तेरा वेष तो ब्राह्मणकेसा अथवा क्षत्रियकेसा

वा क्षत्रियोऽसि समुद्रनेमीश्वररूपवानसि। आचक्ष्व मे तत्त्वममित्रकर्षण न वैश्यकर्म त्वयि विद्यते क्षमम् ॥ ७ ॥ कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतः किं चापि शिल्पं तव विद्यते कृतम्। कथं त्वमस्मासु निवत्स्यसे सदा वदस्व किञ्चापि तवेह वेतनम् ॥ ८ ॥ सहदेव उवाच। पंचानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः। तस्याष्टशतसाहस्रा गवां वर्गाः शतं शतम् ॥ ९ ॥ अपरे शतसाहस्रा द्विस्तावन्तस्तथापरे। तेषां गोसंख्य आसं वै तन्तिपालेति मां विदुः ॥ १० ॥ भूतं भव्यं भविष्यञ्च यच्च संख्यागतं गवाम्। न मेऽस्त्यविदितं किंचित् समन्ताद्दशयोजनम् ॥ ११ ॥ गुणाः सुविदिताः ह्यासन् मम तस्य महात्मनः। आसीच्च स मया तुष्टः कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥ क्षिप्रञ्च गावो बहुला भवन्ति न तासु रोगो भवतीह कश्चन। तैस्तैरुपायैर्विदितं ममैतदेतानि शिल्पानि मयि स्थितानि ॥ १३ ॥ ऋषभांश्चापि जानामि राजन् पूजितलक्षणान्। येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते १४ विराट उवाच ॥ शतं सहस्राणि समाहितानि सवर्णवर्णस्य विमिश्रितान् गुणैः पशून् सपालान् भवते ददाम्यहं त्वदाश्रया मे पशवो भव-

---

मालूम होता है अथवा तू समुद्र तक जीतीहुई पृथ्वीका राज्य करने वाले राजाकी समान मालूम होता है अतः हे शत्रुतापन ! तू मुझसे सच बात कह क्योंकि तू वैश्य का कार्य करनेके योग्य नहीं है॥७॥ तू किस राजाके देशमेंसे आया है और तूने कौनसी शिल्पविद्याका अभ्यास किया है तू हमारे यहाँ सदाके लिये किसप्रकार रहसकेगा और कितनी नौकरी लेगा, यह हमें बता ॥८॥ नकुलने कहा कि पांचों पाँडवोंमें बडे भाई युधिष्ठिर हैं उनके यहाँ गौओंके दश हजार झुण्ड थे उनमें से किसी झुण्डमें आठ लाख किसीमें दश हजार और किसी झुण्डमें बीस हजार गौएं थीं उन सब झुण्डोंकी मैं देख देख रखता था और लोग मुझे तन्तिपाल कहते थे ॥९॥ चालीस २ कोश तक फिरनेवाली गौओंकी भूत भविष्यत् वर्तमानमें जितनी संख्या हो मैं उसे जान सकता हूँ। १०-११ ॥ और इस विषयके मुझमें जो गुण हैं उन्हें राजा युधिष्ठिर जानते थे और कुरुराज युधिष्ठिर मुझसे संतुष्ट थे ॥ १२ ॥ जिन २ उपायों से गौओंकी वृद्धि हो और किसी प्रकार का भी रोग उनको न हो मैं ऐसे उपायों को जानता हूँ और ऐसी विद्या ही मुझमें निवास करती है ॥ १३ ॥ और हे राजन् ? पवित्र तथा शुभलक्षणोंवाले बैलोंका भी मैं पहिचानसकता हूँ कि—जिनके मूत्र सूँघनेसे वंध्या स्त्री के भी संतान होजाय ॥ १४ ॥ विराटने कहा हे गोपाल ! मेरी गोठमें रहनेवाली भिन्न २ वर्गमें स्थित एक लाख

न्वितः ॥ १५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तथा स राज्ञो विदितो विशाम्पते रुवास तत्रैव सुखं नरोत्तमः । न चैनमन्येपि विदुः कथंचन प्रादाच्च तस्मै भरणं यथेप्सितम् ॥ १६ ॥ छ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
सहदेवप्रवेशो दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच । अथापरोऽदृश्यत रूपसम्पदा स्त्रीणामलंकारधरो बृहत् पुमान् । प्राकारवप्रे प्रतिमुच्य कुण्डले दीर्घे च कम्बू परीहाटके शुभे ॥ १ ॥ बाहू च दीर्घान् प्रविकीर्य मूर्धजान् महाभुजो वारणतुल्यविक्रमः । गतेन भूमिं प्रतिकम्पयंस्तदा विराटमासाद्य सभासमीपतः ॥ २ ॥ तं प्रेक्ष्य राजोपगतं सभातले व्याजात् प्रतिच्छन्नमरिप्रमाथिनम् । विराजमानं परमेण वर्चसा सुतं महेन्द्रस्य गजेन्द्रविक्रमम् ॥ ३ ॥ सर्वानपृच्छच्च सभानुचारिणः कुतोऽयमायाति पुरा न मे श्रुतः । न चैनमूचुर्विदितं तदा नराः सविस्मयं वाक्यमिदं नृपोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥ सत्त्वोपपन्नः पुरुषोमरोपमः श्यामो,युवा,वारणयूथपोपमः

गौओं का धन है जिनका वर्ण एकसा है और जो अनेकों प्रकारके गुणोंसे युक्त हैं आज से मैं उन सब पशुओंको और उनके रक्षकोंको आपके अधीन करता हूँ मैं चाहता हूँ कि—मेरे पशु तुम्हारे अधीन रहैं ॥ १५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार पुरुषश्रेष्ठ नकुल, राजा विराटसे मिलकर सुखसे तहां रहनेलगा और राजाने उसकी इच्छानुसार उसे वेतन दिया इस प्रकार गोपालका वेश धारण करनेसे राजा तथा दूसरे कोई भी पुरुष सहदेवको न पहिचानसके ॥ १६ ॥ दशवां अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—तदनन्तर स्त्रियोंके आभूषण धारण किये हुए परम रूपवान् एक और महापुरुष कानोंमें कुण्डल और हाथों शंख तथा सोने के कडे की चूड़िया पहिरे हुए मस्तकके केशों को हाथों तक लम्बे खोल कर अपनी चालसे भूमिको दहलाता हुआ राजभवनके समीप आताहुआ दीखा। वह हाथीकी समान पराक्रमी अर्जुन था, वह राजा विराटकी सभाके सामने आकर खड़ा होगया ॥ १-२ ॥ राजा विराटने उस छद्मवेषी, परम तेजस्वी, शत्रुओंको नष्ट करनेवाले ! गजेंद्रकी समान पराक्रमी महेंद्रपुत्र अर्जुन को सभाकी ओर आताहुआ देखकर संपूर्ण सभासदोंसे बूझा कि-यह पुरुष कहाँसे आरहाहै मैंने पहिले कभी इसे सुना व देखा,नहीं,है उस समय सभासदोंने उत्तर दिया कि-हम इस पुरुषको नहीं पहिचानते तब तो राजाने आश्चर्य में होकर अर्जुनसे इसप्रकार कहा कि--तुम

आमुच्य कम्बूपरिहाटके शुभे विमुच्य वेणीमपि नह्य कुण्डले ॥ ५ ॥ स्रग्वी सुकेशः परिधाय चान्यथा शुशोभ धन्वी कवची शरी यथा आरुह्यमानं परिधावतां भवान् सुतैः स मो मे भव वा मया समः ॥६॥ वृद्धो ह्यहं वै परिहारकामः सर्वान् मत्स्यांस्तरसा पालयस्व। नैवं विधाः क्लीवरूपाः भवन्ति कथं च नेति प्रतिभाति मे मनः ॥७॥ अर्जुन उवाच। गायामि नृत्याम्यथ वादयामि भद्रोऽस्मि नृत्ये कुशलोऽस्मि गीते। त्वमुत्तरायै प्रदिशस्व मां स्वयं भवामि देव्या नरदेव नर्त्तकः ॥ ८ ॥ इदन्तु रूपं मम येन किन्तव प्रकीर्त्तयित्वा भृशशोकवर्द्धनम्। बृहन्नलां मां नरदेव विद्धि सुतं सुतां वा पितृमातृवर्जिताम् ॥ ९ ॥ विराट उवाच। ददामि ते हन्त वरं बृहन्नले सुतां च मे नर्त्तय याश्च तादृशीः। इदन्तु ते कर्म समं न मे मतं समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि

सत्वयुक्त गजयूथपतिकी समान, श्यामकान्ति वाले, और देवताकी समान एक तरुण पुरुष हो तुमने हाथमें शोभायमान शंखकी चूड़ियां और सोनेके कड़े पहिरे हैं, मस्तकके केशोंकी चोटी गूंथ ली है, और कानों में कुण्डल पहिरे ह ॥ ३-५ ॥ तथापि पालकीमें चढ़कर फिरनेवाले, पुरुषोंके बीचमें पुष्पोंकी माला धारण करनेवाले, सुन्दर केशोंवाले दो वस्त्र (अङ्गरखा-कुर्ता) पहिरनेवाले और कवच, धनुष तथा बाण धारण करनेवाले मनुष्य की समान तू दिपता है, मैं अब वृद्ध होगया हूँ और राज्यके भारको किसी कार्य करनेवाले पुरुषको सौंपना चाहता हूँ अतः तुम मेरे पुत्रोंकी समान अथवा मेरे समान होकर सम्पूर्ण मत्स्य देशका पालन करो तुम सरीखे मनुष्य नपुंसक नहीं होते हैं यह मुझे विश्वास है ॥ ५-७ ॥ अर्जुनने उत्तर दिया कि-मैं गाता हूँ, नाचता हूँ, बाजे बजाता हूँ, मैं नृत्यके कार्य में चतुर हूँ, और गानेमें भी कुशल हूँ इस लिये आप मुझे राजकन्या उत्तराको सिखानेके लिये रखलीजिये मैं उसे अपने आप गाना बजाना सिखाऊँगा ॥ ८ ॥ मुझे जिस कर्मसे हिजड़ेका रूप मिला है उसके कहने का आपसे कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि उसको सुनानेसे मेरे अन्तःकरण पर चोट लगेगी हे राजन् आप यह जाने कि मेरा नाम बृहन्नला है और मुझे माता पिताहीन पुत्र अथवा पुत्री जानिये ॥ ९ ॥ राजा विराटने कहा कि—यद्यपि नृत्य सिखानेका कार्य तुमसे पुरुषको करना उचित नहीं है क्योंकि—तुम्हारी समान पुरुष समुद्र पर्यन्त पृथ्वीका राज्य करने योग्य होते हैं यह मेरा विचार है, तथापि तुम्हारी प्रार्थनाके अनुसार मैं तुम्हें नौकरी देता हूँ तुम मेरी कन्या उत्तरा तथा

॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच । बृहन्नलां तामभिवीक्ष्य मत्स्यराट् कलासु नृत्येषु तथ च वादिते । संमंत्र्य राजा विविधैः स्वमन्त्रिभिः परीक्ष्य चैनं प्रमदाभिराशु वै ॥११॥ अपुंस्त्वमप्यस्य निशम्य च स्थिरं ततः कुमारी पुरमुत्ससर्ज तम् । स शिक्षयामास च गीतवादितं सुतां विराटस्य धनञ्जयः प्रभुः ॥ १२ ॥ सखीश्च तस्या परिचारिकास्तथा प्रियश्च तासां स बभूव पाण्डवः ॥ १३ ॥ तथा स सत्रेण धनंजयो वसन् प्रियाणि कुर्वन्सहताभिरात्मवान् । तथा च तं तत्र न जज्ञिरे जना बहिश्चरा चाप्यथ चान्तरे चराः ॥ १४ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि पाण्डवप्रवेशपर्वणि
अर्जुनप्रवेशे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ अथापरोऽदृश्यत पाण्डवः प्रभुर्विराटराजं तरसा समेयिवान् । तमापतन्तं ददृशे पृथग्जनो विमुक्तमभ्रादिव सूर्यमण्डलम् ॥ १ ॥ स वै हयानैक्षत तांनितस्ततः समीक्षमाणं स ददर्श

उसकी समान दूसरी कन्याओंको भी नृत्य करना सिखाओ ॥ १० ॥ वैशंपायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! तदनतर मत्स्यराजने बृहन्नला की नृत्यमें, सांगीतमें और बाजा बजानेमें सब प्रकार से परीक्षा की और बहुत प्रसन्न हुआ तदनन्तर इसको कन्याके महलमें रखना चाहिये अथवा नहीं इस विषयमें अपने मंत्रियोंकी पृथक् २ सम्मति ली और बहुतसी तरुण स्त्रियोंके द्वारा उसके हिजड़ेपनेकी परीक्षा कराई ॥ ११ ॥ और जब उसके नपुंसकपनेकी परीक्षा होगई तब राजाने उसे कन्याके महलमें भेजा हिजड़ेके रूपमें रहने वालाअर्जुन कन्याके महलमें जा उत्तराको और उसकी सखियोंको तथा दासियोंको नृत्य, गीत और बाजेबजानेका अभ्यास करानेलगा तिससे वह अन्तःपुरमें रहने वाली कन्याओंका प्रिय होगया ॥ १२—१३ ॥ मनको वशमें रखनेवाला अर्जुन इस प्रकार कपटको रूप धारण कर कन्याओं के साथ रहनेलगा और कन्याओंको बहुत अच्छा लगनेलगा इस प्रकार बसनेवाले अर्जुनको बाहरके तथा अन्तःपुरके किसी पुरुषने नहीं पहिचाना ॥ १४ ॥ ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय इसके उपरान्त कुछ काल बीतने पर द्वितीय पाण्डुपुत्र सहदेव अश्वपालका रूप धारण कर मेघमण्डलमेंसे उदय हुए सूर्यकी समान राजा विराटके समीप उतावली चालसे चलाआरहा था कि मनुष्योंने उसको देखा ॥ १ ॥ वह नगरमें घूमता २ विराट राजाकी घुड़शालके पास आया और चारों ओर घूमकर घोड़ों को देखने लगा उसको इसप्रकार घोड़ोंके पास

मत्स्यराट् । ततोऽब्रवीत्ताननुगान्नरेश्वरः कुतोऽयमायाति नरोऽमरोपमः ॥ २ ॥ अयं हयानीक्षति मामकान् दृढं ध्रुवं हयज्ञो भविता विचक्षणः । प्रवेश्यतामेष समीपमाशु मे । विभाति वीरो हि यथाऽमरस्तथा ॥ ३ ॥ अभ्येत्य राजानममित्रहाब्रवीज्जयोऽस्तु ते पार्थिव भद्रमस्तु वः । हयेषु युक्तो नृपसम्मतः सदा तवाश्वसूतो निपुणो भवाम्यहम् ॥ ४ ॥ विराट उवाच ॥ ददामि यानानि धनं निवेशनं ममाश्वसूतो भवितुं त्वमर्हसि । कुतोऽसि कस्यासि कथं त्वमागतः प्रब्रूहि शिल्पं तव विद्यते च यत् ॥ ५ ॥ नकुल उवाच ॥ पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो भ्राता युधिष्ठिरः । तेनाहमश्वेषु पुरा नियुक्तः शत्रुकर्षण ॥ ६ ॥ अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयश्चापि सर्वशः । दुष्टानां प्रतिपत्तिश्च कृत्स्नश्चैव चिकित्सितम् ॥ ७ ॥ न कातरं स्यात्मम जातु वाहनं न मेऽस्ति दुष्टा वडवा कुतो हयाः । जनस्तु मामाह स चापि पांडवो

घूमता हुआ देखकर राजा विराटने अपने नौकरोंसे बूझा कि-देवता की समान यह मनुष्य कहाँसे आरहा है ॥ २ ॥ यह पुरुष मेरे घोड़ों को बारीकीसे देखता है अतः यह कोई अश्वशास्त्रको जाननेवाला विद्वान् पुरुष होगा; यह मुझको देवता की समान शूरवीर मालूम होताहै, अतः तुम शीघ्र ही इसको मेरे पास बुला लाओ ॥ ३ ॥ यह सुनकर राजाके सेवक नकुल को राजाके पास लिवा लाए राजाके पास आनकर नकुलने कहा कि-हे पृथ्वीपते ! आपकी जय हो आप का कल्याण हो, मैं अश्वशास्त्रमें सम्पूर्ण रीतिसे कुशल और राजाओं से सन्मान प्राप्तपुरुष हूँ और मैं आपके यहाँ अश्वशिक्षकी करना चाहता हूँ ॥ ४ ॥ विराटने कहा कि-तुम मेरे यहाँ अश्वशिक्षक होनेके योग्य हो अतः मैं तुमको चढ़नेके लिये घोड़े, निर्वाहके लिये वेतन, और रहनेके लिये घर देता हूँ, तुम मेरे यहाँ आनन्दसे रहो परन्तु मैं तुमसे बूझता हूँ कि—तुम कहाँसे आये हो किस लिये आए हो किसके पुत्र हो और तुम किस शिल्पशास्त्रको जानते हो ? यह मुझको बताओ ॥ ५ ॥ नकुलने कहा कि—हे शत्रुनाशन ! राजा पाण्डुके पाँच पुत्रोंमेंसे बड़े पुत्र राजा युधिष्ठिरने मुझे पहिले घोड़ोंका अध्यक्ष बनाया था ॥ ६ ॥ मैं घोड़ोंकी जातिको पहिचानता हूँ, उनको शिक्षित कर सकता हूँ दोषयुक्त घोड़ोंको निर्दोष बनासकता हूँ तथा घोड़ोंकी सकल चिकित्सा को भी जानता हूँ मेरा सिखाया हुआ घोड़ा किसी दिन बिगड़ता नहीं है और मेरी सिखाई हुई घोड़ीभी बिगड़ती नहीं है फिर घोड़ोंका तो कहना ही क्या ऐसे गुणयुक्त मुझको राजा युधिष्ठिर और उनके

युधिष्ठिरो ग्रन्थिकमेव नामतः ॥ ८ ॥ विराट उवाच ॥ यदस्ति किंचिन्मम वाजिवाहनं तदस्तु सर्वं त्वदधीनमद्य वै । ये चापि केचिन् मम वाजियोजकास्त्वदाश्रयाः सारथयश्च सन्तु मे ॥ ९ ॥ इदं नवेष्टं यदि व सुरोपम ब्रवीहि यत्ते प्रसमीक्षितं वसु । न तेऽनुरूपं हयकर्म विद्यते प्रभासि राजेव हि सम्मतो मम ॥ १० ॥ युधिष्ठिरस्येव हि दर्शनेन मे समन्तवेदं प्रियमत्र दर्शनम् । कथन्तु भृत्यः स विना कृतो वने वसत्यनिन्द्यो रमते च पांडवः ॥ ११ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तथा स गन्धर्ववरोपमो युवा विराटराजा मुदितेन पूजितः । न चैनमन्येऽपि विदुः कथञ्चन प्रियाभिरामं विचरन्तमन्तरा: ॥ १२ ॥ एवं हि मत्स्येऽन्यवसन्त पांडवा यथा प्रतिज्ञाभिरमोघदर्शनाः । अज्ञातचर्यां व्यचरन्समाहिताः समुद्रनेमीपतयोऽतिदुःखिताः ॥ १३ ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि पांडवप्रवेशपर्वणि
नकुलप्रवेशे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥
समाप्तञ्च पांडवप्रवेशपर्व ॥

पास रहनेवाले लोग ग्रंथिक कहते थे ॥ ७—८ ॥ मेरे जो घोड़े हैं और वाहन हैं आज से मैं उनको तुम्हारे अधीन करता हूँ और मैं अपने घोड़ोंके पुराने अध्यक्ष तथा सारथियोंको तुम्हारे अधीन करता हूँ ॥ ९ ॥ परन्तु हे देवताकी समान ! तू इस अश्वशिक्षकी का कार्य करनेके योग्य नहीं है मेरा ऐसा विचार है परन्तु तुझको अश्वशिक्षकी का कार्य ही अच्छा लगता हो तो बता तू कितना वेतन लेगा ॥ १० ॥ आज तुझको देखनेसे मुझै ऐसा आनन्द होता है जैसे राजा युधिष्ठिर को देखनेसे होताथा, अहो! पवित्राचरण राजा युधिष्ठिर पर्योकर सेवकों को त्याग वनमें अकेले फिरते होंगे और किसप्रकार विहार करते होंगे ॥ ११ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय राजा विराटने इसप्रकार वार्ता करकै हर्षसे महागंधर्व समान, तरुण, कुमार नकुलको अपने यहाँ अश्वशिक्षक बना कर रक्खा, नकुल राजा का तथा अन्य मनुष्योंका प्रिय होकर नगरमें घूमनेलगा किन्तु राजाने वा नगरके किसी मनुष्यने उसे पहिचाना नहीं ॥ १२ ॥ दर्शन करनेसे ही पापोंको नष्ट करनेवाले, सागर पर्यन्तकी पृथ्वीके स्वामी पाण्डव, अताव दुःखदाई अवस्था में पड़जाने से इस प्रकार सावधान हो प्रतिज्ञा के अनुसार राजा विराट के मत्स्य देशमें अज्ञातवास करके दिन विताते थे ॥ १३ ॥ बारहवां अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ * ॥ *

अथ समयपालनपर्व ॥

जनमेजय उवाच ॥ एवं ते मत्स्यनगरे प्रच्छन्नाः कुरुनन्दनाः । अत ऊर्ध्वं महावीर्याः किमकुर्वत वै द्विज ॥ १ ॥ वैशम्पायन उवाच एवं मत्स्यस्य नगरे प्रच्छन्नाः कुरुनन्दनाः आराधयन्तो राजानं यदकुर्वत तच्छृणुः ॥ २ ॥ तृणविन्दुप्रसादाच्च धर्मस्य च महात्मनः। अज्ञातवासमेवन्तु विराटनगरेऽवसन् ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरः सभास्तारो मत्स्यानामभवत्प्रियः तथैवं च विराटस्य सपुत्रस्य विशाम्पते ॥ ४ ॥ सह्यहृदयज्ञस्तान् क्रीडयामास पाण्डवः । अक्षवत्यां यथाकामं सूत्रवृद्धानिवः द्विजान् ॥ ५ ॥ अज्ञातश्च विराटस्य विजित्य वसु धर्मराट् । भ्रातृभ्यः पुरुषव्याघ्रो यथार्हं संप्रयच्छति ॥६॥ भीमसेनोऽपि मांसानि भक्ष्याणि विविधानि च । अतिसृष्टानि मत्स्येन विक्रीणीते युधिष्ठिरे ॥७॥ वासांसि परिजीर्णानि लब्धान्यन्तः पुरेऽर्जुनः विक्रीणानश्च सर्वेभ्यः पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति॥८॥ सहदेवोऽपि गोपानां वेषमास्थाय पांडवः दधिक्षीरं घृतंचैव पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥ ९ ॥ नकुलोऽपि धनं लब्ध्वा

राजा जनमेजयने वैशम्पायनजी से बूझा कि—हे ऋषे ! इस प्रकार अत्यन्त बलशाली कुरुपुत्रोंने विराट् नगर में छिपकर निवास करने के उपरान्त क्या किया वह मुझसे कहिये॥१॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे राजा जनमेजय ! इस प्रकार पाण्डव मत्स्य देशमें छिपकर रहते थे और तहां उन्होंने जो कुछ कार्य किया था उसको मैं कहता हूँ तुम सुनो ॥२॥ तृणविंदु मुनि और धर्मराज की कृपा से पाण्डव छुपे हुए विराट नगरमें रहते थे ॥३॥ हे राजन् ! उनमें से राजा युधिष्ठिर राजा विराट के उनके कुमार के और देशवासियों के हे प्रजानाथ प्रिय सभासद् हुए थे ॥ ४ ॥ वह जुआ खेलने में बहुत चतुर थे इस कारण जैसे कोई डोरेमें बँधे हुए पक्षियोंको नचावे वैसे ही द्यूतशालामें विराट आदि जुआ खेलने वालोंको जुआ खिलातेथे ॥ ५ ॥ और पुरुष व्याघ्र युधिष्ठिर राजा विराटको ज्ञात न हो इस प्रकार जुए में जीता हुआ धन योग्यतानुसार अपने भाइयोंको देदेते थे ॥६॥ भीमसेन भी राजा विराट् से परितोषक की समान प्राप्त हुए मांसके भोजन तथा दूसरे अनेक प्रकारके भाजन बेंचकर जो धन मिलता था वह राजा युधिष्ठिरको देदेतेथे ॥७॥ अर्जुनभी अन्तःपुरमेंसे भेटमें मिलेहुए पुराने वस्त्रोंको वेचकर जो धन मिलताथा वह अपने भाइयोंको देदेतेथे ॥८॥ पाण्डुपुत्र सहदेवको भी ग्वालियेके वेषमें रहते हुए जो दही, दूध, घी, इत्यादि गोरस मिलताथा वह अपने भाई पाण्डवोंको देदेता था ॥९॥ अश्वशिक्षक नकुलभी घोड़ोंकी देख भाल रखकर तथा उनको अच्छी

कृते कर्मणि वाजिनाम् । तुष्टे तस्मिन्नरपतौ पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥ १० ॥ कृष्णा तु सर्वान् भर्तॄंस्तान्निरीक्षन्ती तपस्विनी । यथा पुनरविज्ञाता तथा चरति भामिनि ॥ ११ ॥ एवं सम्पादयन्तस्ते तदान्योऽन्यं महारथाः । विराटनगरे चेरुः पुनर्गर्भधृता इव ॥ १२ ॥ साशङ्का धार्त्तराष्ट्रस्य भयात् पाण्डुसुतास्तदा । प्रेक्षमाणास्तदा कृष्णामूषुश्छन्ना नराधिप ॥ १३ ॥ अथ मासे चतुर्थे तु ब्रह्मणः सुमहोत्सवः । आसीत् समृद्धो मत्स्येषु पुरुषाणां सुसम्मतः ॥ १४ ॥ तत्र मल्लाः समापेतुः दिग्भ्यो राजन् सहस्रशः । समाजे ब्रह्मणो राजन् यथा पशुपतेरिव ॥ १५ ॥ महाकाया महावीर्याः कालखञ्जा इवासुराः । वीर्योन्मत्ता बलोदग्रा राज्ञा समभिपूजिताः ॥ १६ ॥ सिंहस्कन्धकटिग्रीवाः स्ववदाता मनस्विनः । असकृल्लब्धलक्षास्ते रंगे पार्थिवसन्निधौ ॥ १७ ॥ तेषामेको महानासीत् सर्वमल्लानथाह्वयत् । आवल्गमानं तरंगे नोपतिष्ठति कश्चन ॥ १८ ॥ यदा सर्वे विमनसस्ते मल्ला हतचेतसः । अथ

प्रकार शिक्षा देकर राजाको प्रसन्न करताथा तथा राजासे धन मिलता था वह अपने भाइयों को देदेता था ॥१०॥ पतिव्रता और तपस्विनी द्रौपदी भी सदा अपने पतियों का दर्शन करती हुई और किसी की पहिचान में न आती हुई तहाँ फिरती फिरती थी ॥११॥ इस प्रकार वे सब महारथी पाण्डव आपस में एक दूसरे की सहायता करते थे और हे राजन् ! सबके सब पाण्डव कौरवोंसे भय था द्रौपदीकी देख रेख रखते हुए मानो फिर गर्भवास में आये हों इस प्रकार छिपकर रहते थे ॥ १२—१३ ॥ तदनन्तर चौथे महीने मत्स्य देश में ब्रह्ममहोत्सव हुआ इस महोत्सवका मत्स्य देशवाले बहुत आदर करते थे और यह महोत्सव बड़ा श्रेष्ठ गिना जाता था ॥ १४॥ हे राजन् ! ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजी की सभामें जैसे अनेक देवता आते हैं और जैसे कैलास पर शंकरजी के पास सहस्रों देवता आते हैं तैसेही इस राजा के महोत्सव में पृथक् २ दिशाओंसे हजारों मल्ल आ डटे ॥१५॥ यह मल्ल कालखंज नामक राक्षसोंकी समान बड़े शरीर वाले महापराक्रमी और शरीरके बलसे महाउत्कट और महाबलवान् थे राजा उन सबोंका सत्कार करताथा ॥१६॥ वे सिंहकी समान गर्दन, कंधे और कमर और उज्ज्वल वर्णके शरीर वाले और प्रसन्न चित्त थे उन्होंने अखाड़े में आ राजा के सामने बार २ विजय पाई थी ॥ १७ ॥ उन मल्लों में से एक मल्ल बड़ाथा उसने अखाड़े में उतर कर लड़नेके लिये एकर करके सब मल्लोंको पुकारा परन्तु अखाड़े में लड़नेके लिये बुलाते हुए उस मल्लके साथ लड़नेको कोईभी मल्ल नहीं उठा॥ १८॥ इसप्रकार जयसब मल्ल

सूदेन तं मल्लं योधयामास मत्स्यराट् ॥ १९ ॥ नोद्यमानस्तदा भीमो दुःखे चैवाकरोन्मतिम् । न हि शक्नोति विवृते प्रत्याख्यातुं नराधिपम् ॥ २० ॥ ततः स पुरुषव्याघ्रः शार्दूलशिथिलश्चरन् । प्रविवेश महारंगं विराटमभिपूजयन् ॥ २१ ॥ बबन्ध कक्षां कौन्तेयस्ततः संहर्षयन्जनम् । ततस्तु वृत्रसंकाशं भीमो मल्लं समाह्वयत् ॥ २२ ॥ जीमूतं नाम तं तत्र मल्लं प्रख्यातविक्रमम् । तावुभौ सुमहोत्साहावुभौ भीमपराक्रमौ २३ मत्ताविव महाकायौ वारणौ षष्टिहायनौ । ततस्तौ नरशार्दूलौ बाहुयुद्धं समीयतुः ॥ २४ ॥ वीरौ परमसंहृष्टावन्योऽन्यजयकांक्षिणौ । आसीत् सुभीमः सम्पातो वज्रपर्वतयोरिव ॥ २५ ॥ उभौ परमसंहृष्टौ बलेनातिबलावुभौ अन्योऽन्यस्यांतरं प्रेप्सू परस्पर जयैषिणौ ॥ २६ ॥ उभौ परमसंहृष्टौ मत्ताविव महागजौ । कृतप्रतिकृतैश्चित्रैर्बाहुभिश्च सुसङ्कटैः ॥२७॥ सन्निपातावधूतैश्च प्रमाथोन्मथनैस्तथा । क्षेपणैर्मुष्टिभिश्चैव

उस महामल्लके सामने निस्तेज होगए और उनका मन उदास होगया तब राजा विराटने अपने पाकशालाके बल्लवको उस मल्लके साथ लड़ने की आज्ञादी ॥१९॥ भीमसेनको मैं प्रकट होजाऊँगा इस भयसे लड़नेकी इच्छा नहीं थी परन्तु राजाके कहनेसे उसने मनमें उदासीनतासे लड़ने का विचार किया क्योंकि-वह राजासे प्रकट रूपसे मना नहीं करसकता था ॥२०॥ तदनन्तर वह शनैः २ मल्लके पास अखाड़ेमें आया और राजा विराटको प्रणाम कर खड़ा होगया ॥ २१ ॥ तदनन्तर उसने लंगोटा कसकर लोगोंके मनको हर्षाया और वृत्रासुर की समान बलवान् प्रसिद्ध पराक्रमी जीमूत मल्लको लड़नेके लिये बुलाया वह दोनों उत्साहयुक्त, भयंकर पराक्रमी मदमत्त साठ वर्षके हाथी की समान मदमत्त पराक्रमी और बड़े शरीर वाले थे वह एक दूसरेको हरानेकी इच्छा करते थे और युद्ध करनेके लिये हर्षमें भरेहुए थे उन दोनों में जैसे पर्वत और वज्रमें महाभयानक युद्ध होता है तैसा युद्ध होने लगा ॥ २२—२५ ॥ वह दोनों बलके कारण बहुत हर्षमें भरगए उस समय वह महाबली और हर्षमें भरेहुए मदमत्त गजेंद्रकी समान प्रतीत होते थे वह दोनों एक दूसरेको हरानेकी इच्छासे एक दूसरेके चूकको देखते हुए लड़ने लगे किसी अंगको कोई पकड कर दबावे तो उस अङ्गको उसमें से बचाना हाथकी मुट्ठियें बांध कर परस्पर प्रहार करना, आपसमें अङ्गोंकी रगड़ देना उससे एक का दूसरेको दूर फेंकदेना पृथ्वीपर पछाड़ कर उसको अच्छे प्रकार दबाना ऊपरको उठा कर भूमि पर पटक देना और उसको दोनों हाथोंसे अत्यन्त रगडना, अपने स्थानसे एकाएकी घसीट डालना, दोनों हाथोंकी मुट्ठियें बांध

वराहोद्धूतनिस्वनैः ॥ २८ ॥ तलैर्वज्रनिपातैश्च प्रसृष्टाभिस्तथैव च ।
शलाकानखपातैश्च पादोद्धूतैश्च दारुणैः ॥ २९ ॥ जानुभिश्चाश्मनिर्घोषैः
शिरोभिश्चावघट्टनैः । तद्युद्धमभवद्घोरमशस्त्रं बाहुतेजसा ॥ ३० ॥
बलप्राणेन शूराणां समाजोत्सव सन्निधौ । अरज्यत जनः सर्वः सोत्
क्रुष्टनिनदोत्थितः ॥ ३१ ॥ बलिनोः संयुगे राजन् वृत्रवासवयोरिव ।
प्रकर्षणाकर्षणयोरभ्याकर्षणविकर्षणैः॥३२॥आकर्षतुरथान्योऽन्यं जानु-
भिश्चापि जघ्नतुः। ततः शब्देन महता भर्त्सयन्तौ परस्परं॥३३॥व्यूढो-
रस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ। बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परि
घैरिव॥३४॥चकर्ष दोर्भ्यामुत्पात्य भीमो मल्लममित्रहा।निनदन्तमभिक्रो-
शन् शार्दूल इव वारणम् ॥३५॥समुद्यम्य महाबाहुर्भ्रामयास वीर्यवान्।

कर छातीमें मारना लड़नेवालेको अपने कंधे उठा उलटा मुह घुमा कर भूमि पर पटकदेनेसे गर्जना होना, वज्रपातकी समान दृढ़ थपकी मारना, हाथकी अंगुलियों को ढीली करके थप्पड़ मारना हाथकी कौनियोंका प्रहार करना,नखोंसे चकोटनका भयानक लातैं मारना घुटने और माथेको अड़ादेना उससे पत्थरके पटकने की समान शब्द होना, तथा प्रकर्षण (खैंचकर अपनी गोदमें घसीटलाना) आकर्षण (खेलतेर एकसाथ अपने सन्मुख खैंचलेना) अभ्याकर्ष (ऊपर नीचे और आडा खदेड़ना) विकर्षण (एकसाथ वेगसे पीछेको धक्का देकर पटक देना) इत्यादि मल्लविद्याकी सकल रीतियोंसे वह दोनों लड़रहे थे। महोत्सव में इकट्ठे होकर वैठेहुए लोगोंके सामने दोनों शूरवीरों का वाहुबलसे तथा शरीरिक और प्राणबलसे शस्त्रहीन भी वह युद्ध बड़ा भयंकर होगया था हे राजन्! वृत्रासुर और इंद्रकी समान इन दोनों बलवानों के युद्धमें सब दर्शक विजयी पुरुषको उत्साह उत्पन्न करनेवाले शब्दों से उत्साहित करने लगे और आनंद में भरगए ॥ २६—३२ ॥ इस प्रकार युद्ध करने वाले भीमसेन और जीमूत मल्ल जिनकी छातियें चौड़ी थी,हाथ लम्बे थे और जो मल्लयुद्ध में कुशल थे वह जोर २ से ललकार एक दूसरेका अपमान करनेलगे तदनन्तर लोहेके दंडेकी समान अपने हाथोंसे एक दूसरेने एक दूसरेको लपेटकर जकड़लिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर जैसे गर्जनेवाला सिंह गर्जना करते हुए हाथी को पकड़लेता है तैसे ही महाबाहु शत्रु मर्दन और महापराक्रमी भीमने अपने प्रतिपक्षी मल्लको दोनों हाथों से पकड़ लिया और आकाशकी ओर को ऊँचा करके घुमाना आरम्भ किया यह देख कर अन्य. मल्ल तथा मत्स्य देशकी प्रजा परम आश्चर्यित हुई ॥ ३४—३५ ॥ भीमने उस मल्ल को सौ वार घुमाया इससे वहअचेत और प्राण हीनसा होगया

ततो जनाश्च मत्स्याश्च विस्मयं चक्रिरे परम् ॥ ३६ ॥ आमयित्वा शत-गुणं गतसत्त्वमचेतनम् । प्रत्यपिंषन्महाबाहुर्मल्लं भुवि वृकोदरः ॥३७॥ तस्मिन् विनिहते वीरे जीमूते लोकविश्रुते । विराटः परमं हर्षमगच्छ-द्बान्धवैः सह ॥ ३८ ॥ संहर्षात् प्रददौ वित्तं बहु राजा महामनाः । बल्लवाय महारङ्गे यथा वैश्रवणस्तथा ॥ ३९ ॥ एवं स सुबहून् मल्लान् पुरुषांश्च महाबलान् । विनिघ्नन् मत्स्यराजस्य प्रीतिमाहरदुत्तमाम् ॥४०॥ यदास्य तुल्यः पुरुषो न कश्चित्तत्र विद्यते । ततो व्याघ्रैश्च सिंहैश्च द्विरदैश्चाप्ययोधयत् ॥ ४१ ॥ पुनरन्तःपुरगतः स्त्रीणां मध्ये वृकोदरः । योध्यते स विराटेन सिंहैर्मत्तैर्महाबलैः ॥ ४२ ॥ बीभत्सुरपि गीतेन सुनृत्तेन च पाण्डवः । विराटं तोषयामास सर्वाश्चान्तःपुरस्त्रियः ॥ ४३ ॥ अश्वैर्विनीतैर्जवनैस्तत्र तत्र समागतैः । तोषयामास राजानं नकुलो नृपसत्तमम् ॥ ४४ ॥ तस्मै प्रदेयं प्रायच्छत् प्रीतो राजा धनं बहु । विनीतान् वृषभान् दृष्ट्वा सहदेवस्य चाभिभो ॥ ४५ ॥ धनं ददौ बहुविधं विराटः पुरुषर्षभः । द्रौपदी प्रेक्ष्य तान् सर्वान् क्लि

वृकोदर महाबाहु भीमने उसको पृथ्वीपर पटक उसका भुर्ता करडाला ॥३६॥ इसप्रकार संसारमें प्रसिद्ध जीमूत मल्लको भीमसेनने मारडाला यह देख राजा विराट तथा उसके सम्बन्धी परम आनन्दित हुए ॥३७॥ और उदारचित्त कुबेरकी समान राजा विराटने हर्षित हो उस रंग-भूमिमें बल्लवको बहुतसा धन दिया ॥ ३८ ॥ इसप्रकार भीमसेनने अखाड़ेमें बहुतसे मल्लोंका तथा बलवान् पुरुषोंका नाशकरके मत्स्यराज विराटकी प्रीति को अपनी ओर अत्यन्त खैंच लिया ॥ ३९ ॥ जिस २ समय भीमसेनको अपनी समान कोई बलवान् पुरुष नहीं मिलताथा तब २ वह शेर, बाघ और हाथियोंके साथ युद्ध करताथा ॥ ४० ॥ राजा विराट रनवासकी स्त्रियोंके सामने किसी २ समय भीमसेनको मद-मत्त और महाबलवान् सिंहोंके साथ लड़ाता था ॥ ४१ ॥ अर्जुन भी अपने गीत और नृत्योंसे राजा विराटको तथा रनवासकी सब स्त्रियोंको प्रसन्न किया करता था ४२ ॥ नकुल भी वहां आप शिक्षित और वेग से चलनेवाले घोड़ों को अच्छी २ चाल चलाकर राजा विराट को सन्तुष्ट करता था ॥ ४३ ॥ उससे राजा विराट प्रसन्न हो उसको भी बहुतसा धन तथा वस्त्रादिक भी भेंटमें देता था वैसे ही सहदेव के भी सिखाये हुए बैलोंको देखकर महात्मा राजा विराट उसको भी बहुतसा धन देता था ॥ ४४ ॥ हे राजन् तब भी इन सब महारथियोंको दुःखित होते देख कर द्रौपदीके चित्तमें खेद होता था और वह केवल श्वासें लिया करती थी ४५ ॥ इस प्रकार महापुरुष पाण्डव विराट

श्यमानान् महारथान् ॥ ४६ ॥ नातिप्रीतमना राजन् निःश्वासपरमाभवत् । एवं ते न्यवसंस्तत्र प्रच्छन्नाः पुरुषर्षभाः । कर्माणि तस्य कुर्वाणाः विराटनृपतेस्तदा ॥ ४७ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि समयपालनपर्वणि जीमूतवधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ समाप्तञ्च समयपालनपर्व ॥

अथ कीचकवध पर्व ।

वैशम्पायन उवाच ॥ वसमानेषु पार्थेषु मत्स्यस्य नगरे तदा । महारथेषु छन्नेषु मासा दश समाययुः ॥ १ ॥ याज्ञसेनी सुदेष्णां तु शुश्रूषन्ती विशाम्पते । आवसत् परिचारार्हा सुदुःखं जनमेजय ॥२ ॥ तथा चरन्ती पांचाली सुदेष्णाया निवेशने । तां देवी तोषयामास तथा चान्तः पुरस्त्रियः ॥ ३ ॥ तस्मिन् वर्षे गतप्राये कीचकस्तु महाबलः सेनापतिर्विराटस्य ददर्श द्रुपदात्मजाम् ॥ ४ ॥ तां दृष्ट्वा देवगर्भाभां चरन्तीं देवतामिव ॥ कीचकः कामयामास कामबाणप्रपीडितः ॥ ५ ॥ स तु कामाग्निसन्तप्तः सुदेष्णामभिगम्य वै । प्रहसन्निव सेनानीरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ नेयं मया जातु पुरे ह दृष्टा राज्ञो विराटस्य निवेशने शुभा । रूपेण चोन्मादयतीव मां भृशं गन्धेन जाता मदिरेव भा-

---

राजा का कार्य कर उसके नगर में छिपकर रहते थे ॥ ४६ ॥ तेरहवां अध्याय समाप्त ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

वैशम्पायन कहतेहैं कि-हे जनमेजय ! इस प्रकार महारथी पाण्डवोंको विराटनगर में छिपकर रहते हुए दश महीने बीतगए ॥ १ ॥ और हे राजा जनमेजय ! उस समय राजा यज्ञसेनकी पुत्री द्रौपदी जो दूसरों से अपनी सेवा करवानेके योग्य थी वह सदा सुदेष्णा की सेवा करती थी और परम कष्टसे सुदेष्णाके घरमें रहतीथी ॥ २॥ और सुदेष्णाके राजमलमें रहकर वह रानी सुदेष्णाको तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंको प्रसन्न करतीथी ॥ ३ ॥ इसप्रकार एक वर्षमें का बहुतसा समय पूरा होनेको आगया-इतनेमेंही एक दिन राजा विराटके महाबली सेनापति की कने देवताकी समान कान्तिवाली और दिव्यगर्भसे उत्पन्नहुई द्रौपदीको विराटके घरमें फिरतीहुई देखो उसको देखते ही कामाधीन हुआ कीचक उसकेऊपर आसक्त होगया॥४-५॥ और कामानलसे जलता हुआ वह सेनापति सुदेष्णाके पासजाकर मानो हँसता हो इस प्रकार कहनेलगा कि ॥ ६ ॥ अरी सुदेष्णे ! मैंने विराटके घरमें आकर ऐसी सुन्दर लावण्ययुक्त, स्त्री पहिले किसी दिनभी नहीं देखी थी उत्तम प्रकारकी मदिरा जैसे अपनी गंधसे मनुष्यको अत्यन्त उन्मत्त बनाडालती है तैसे ही यह स्त्री मुझको अपने रूपसे अत्यन्त उन्मत बनाये

मिनी ॥ ७ ॥ का देवरूपा हृदयंगमा शुभे ह्याचक्ष्व मे कस्य कुतोऽत्र शोभने । चित्तं हि निर्मथ्य करोति मां वशे न चान्यदत्रौषधमस्ति मे मतम् ॥ ८ ॥ अहो तवेयं परिचारिका शुभा प्रत्यग्ररूपा प्रतिभाति मामियम् । अयुक्तरूपं हि करोति कर्म ते प्रशास्तु मां यच्च ममास्ति किंचन ॥ ९ ॥ प्रभूतनागाश्व रथं महाजनं समृद्धियुक्तं बहुपानभोजनम् । मनोहरं कांचनचित्रभूषणं गृहं महच्छोभयतामियं मम ॥ १० ॥ ततः सुदेष्णामनुमन्त्र्य कीचकस्ततः समभ्येत्य नराधिपात्मजाम् । उवाच कृष्णामभिसान्त्वयंस्तदा मृगेन्द्रकन्यामिव जम्बुको वने ॥ ११ ॥ का त्वं कस्यासि कल्याणि कुतो वा त्वं वरानने । प्राप्ता विराटनगरं तत्त्वमाचक्ष्व शोभने ॥ १२ ॥ रूपमग्र्यं तथा कांतिः सौकुमार्यमनुत्तमम् । कान्त्या विभाति वक्त्रं ते शशांक इव निर्मलम् ॥ १३ ॥ नेत्रे सुविपुले सुभ्रु पद्मपत्रनिभे शुभे । वाक्यन्ते चारुसर्वांगि परपुष्टरुतोपमम् ॥ १४ ॥ एवंरूपा मया नारी काचिदन्या महीतले । न दृष्टपूर्वा

डालती है ॥ ७ ॥ हे शोभने ! यह देवसुन्दरीकी समान हृदयहारिणी स्त्री कौन है ? किसकी स्त्री है ? और यहां कहाँसे आई है यह मुझे बताओ क्योंकि यह मेरे मनको मथकर अपने अधीन कर रही है, अरे! इस स्त्रीके विना मेरे मनके तापको दूर करनेवाली दूसरी औषधि ही नहीं है ऐसा मेरा विचार है ॥ ८ ॥ अरे रे ! तेरी यह शुभ दासी मुझे नवीन यौवन और सौन्दर्यसम्पन्न प्रतीत होती है और यह तेरे जो कार्य करती है उस कामको करनेके सर्वथा अयोग्य है, किन्तु मेरा जो कुछ धन धान्य आदिक है उसकी तथा मेरी यह स्वामिनी बने ॥ ९ ॥ मेरे घरमें बहुतसे हाथी घोड़े और रथ हैं बहुतसे मनुष्य हैं, समृद्धि है और खाने पीनेके बहुतसे पदार्थ हैं और घर सुवर्ण तथा चित्रोंसे सुशोभित तथा अतिसुन्दर हैं अतः मेरे ऐसे उत्तम घरको यह स्त्री बडी शोभा देगी ॥ १० ॥ सुदेष्णाके साथ इस प्रकार बातचीत कर उसका सत्कार करके कीचक राजपुत्री द्रौपदीके पास आया और जंगली गीदड सिंहकी कन्याके पास आकर जैसे उसको समझाता हो तैसे राजपुत्री द्रौपदीको धैर्य देकर कहनेलगा॥११॥हे सुन्दरवदनी! कल्याणि ! तू कौन है ? किसकी पुत्री है ? विराटनगरमें कहाँसे आई है ? यह बात हे सुन्दरी ! तू मुझे बता ॥ १२ ॥ तेरा रूप श्रेष्ठ है कान्ति श्रेष्ठ है और सुकुमारता भी श्रेष्ठ है अरी ! तेरे मुखकी प्रभा चंद्रमाकी समान निर्मल दीखती है ॥१३॥ हे सुन्दर भ्रुकुटिवाली स्त्री ! तेरे नेत्र अतिविशाल कमलकी पंखड़ीकी समान और मंगलमय हैं, तथा हे सर्वाङ्गसुन्दरि ! तेरा शब्द कोयलके शब्दकी समान है ॥१४॥ हे सुन्दर

सुश्रोणि यादृशी त्वमनिंदिते ॥ १५ ॥ लक्ष्मीः पद्मालया का त्वमथ भूतिः सुमध्यमे । ह्रीः श्रीः कीर्त्तिरथो कांतिरासां का त्वं वरानने १६ अतीव रूपिणी किन्त्वमनंगांगविहारिणी । अतीव भ्राजसे सुभ्रु प्रभेवेन्दोरनुत्तमा ॥ १७ ॥ अपि चेक्षणपक्ष्मणां स्मितज्योत्स्नोपमं शुभम् । दिव्यांशुरश्मिभिर्वृत्तं दिव्यकांतिमनोरमम् ॥ १८ ॥ निरीक्ष्य वक्त्रचन्द्रन्ते लक्ष्म्यानुपमया युतम् । कृत्स्ने जगति को नेह कामस्य वशगो भवेत् ॥ १९ ॥ हारालंकारयोग्यौ तु स्तनौ चोभौ सुशोभनौ । सुजातौ सहितौ लक्ष्म्या पीनौ वृत्तौ निरन्तरौ ॥ २० ॥ कुड्मलाम्बुरुहाकारौ तव सुभ्रु पयोधरौ । कामप्रतोदाविव मां तुदतश्चारुहासिनि ॥ २१ ॥ वलीविभंगचतुरं स्तनभारविनामितम् । कराग्रसम्मितं मध्यं तवेदं तनुमध्यमे ॥ २२ ॥ दृष्ट्वैव चारु जघनं सरित्पुलिनसन्निभम् । कामव्याधिरसाध्यो मामप्याक्रामति भामिनि ॥ २३ ॥ जज्वाल चाग्निमदनो दावाग्निरिव निर्दयः । त्वत्संगमाभिसंकल्पविवृद्धो मां दह-

नितम्ववाली और शुद्ध स्त्री ! मैने पृथ्वी पर पहिले कभी तेरी समान रूपवती कोई स्त्री नहीं देखी है ॥ १५ ॥ हे सुन्दर कमरवाली स्त्री ! क्या तू कमलवासिनी लक्ष्मी है ? क्या तू विभूति है ? अथवा हे सुन्दर वदनी स्त्री ? तू ह्री, लज्जा, श्री, कान्ति या कीर्त्ति है ? इनमें से तू कौनसी देवी है ? ॥ १६ ॥ अथवा क्या अतिरूपवती तू अनंग कामदेवके अङ्गोंके साथ विलास करनेवाली रति रानी है ? हे सुन्दर भौं वाली ! तू चन्द्रमाकी श्रेष्ठ प्रभाकी समान अत्यन्त प्रकाशित हो रही है ॥ १७ ॥ नेत्रके पलकोंकी शनैः २ पलक चलाने रूपी प्रभासे मनको आनन्द देनेवाले, दिव्य प्रभाकी किरणोंसे घिरेहुए, दिव्य कांतिसे मनोहर, अनुपम सौंदर्यशाली तेरे इस मुखचन्द्र को देखकर संसारमें कौन पुरुष कामके अधीन नहीं होगा ? ॥ १८—१९ ॥ तेरे यह दोनों स्तन शोभायमान, उन्नत, कान्तिमान् पुष्ट, कमलकी कलीके समान गोल मध्यमें भरेहुए अर्थात् एक दूसरेसे अड़े हुए हैं और हार तथा आभूषण धारण करने योग्य हैं । हे सुन्दर हास्यवाली स्त्री ! तेरे यह दोनों स्तन कामके कोड़ेकी समान मेरे मर्मस्थानको तोड़े डालते हैं ॥ २०—२१ ॥ हे सूक्ष्म कटिवाली स्त्री ! त्रिवलीकी तीन रेखाओंसे सुन्दर दीखती हुई, और स्तनोंके भारसे झुकती हुई यह तेरी कमर बेंतकी समान पतली है ॥ २२ ॥ और हे भामिनि ! नदीके तटकी समान तेरी इन जंघाओं को देखकर असाध्य काम रोग मुझे अत्यन्त पीड़ा देता है ॥ २३ ॥ अरे यह निर्दयी कामानल दावाग्नि की समान सुलग उठा है और यह अग्नि तेरे समागमरूपी संकल्पसे वृद्धि पाकर

त्ययम् ॥ २४ ॥ आत्मप्रदानवर्षेण संगमाम्भोधरेण च । शमयस्व वरारोहे ज्वलन्तं मन्मथानलम् ॥ २५ ॥ मच्चित्तोन्मादनकरा मन्मथस्य शरोत्कराः । त्वत्संगमाशानिशितास्तीव्राः शशिनिभानने । मह्यं विदार्य हृदयमिदं निर्दयवेगिताः ॥ २६ ॥ प्रविष्टा ह्यसितापांगि प्रचण्डाश्चण्डदारुणाः । अत्युन्मादसमारम्भाः प्रीत्युन्मादकरा मम । आत्मप्रदानसम्भोगैर्मामुद्धर्त्तुमिहार्हसि ॥ २७ ॥ चित्रमाल्याम्बरधरा सर्वाभरणभूषिता । कामं प्रकामं सेव त्वं मया सह विलासिनी ॥ २८ ॥ नार्हसीहासुखं वस्तुं सुखार्हा सुखवर्जिता । प्राप्नुह्यनुत्तमं सौख्यं मत्तस्त्वं मत्तगामिनि ॥ २९ ॥ स्वादून्यमृतकल्पानि पेयानि विविधानि च । पिबमाना मनोज्ञानि रममाणा यथासुखम् ॥ ३० ॥ भोगोपचारान् विविधान् सौभाग्यं चाप्यनुत्तमम् । पानं पिब महाभागे भोगैश्चानुत्तमैः शुभैः ॥ ३१ ॥ इदं हि रूपं प्रथमं तवानघे निरर्थकं केवलमद्य भामिनि । अधार्यमाणा स्रगिवोत्तमा शुभा न शोभसे

मुझे बहुतही जला रहा है॥२४॥ इसकारण हे सुन्दरांगि ! तू समागम रूपी मेघसे तथा आत्मसमर्पणरूपी जलकी वर्षा से इस बलती हुई कामाग्नि को शान्त कर॥२५॥ हे चन्द्रवदनी! कामके बहुतसे बाण तीक्ष्ण हैं और तेरे साथ समागम करनेकी आशा से और भी तीक्ष्ण होगए ह वह कामके बाण मेरे मनको उन्मत्त करे डालते हैं ओ श्याम कटाक्षवाली स्त्री ! यह प्रचण्ड और दारुण बाण निर्दयीहो वेगसे मेरे हृदय को चीर कर भीतर घुसगए हैं और उन्होंने मुझ अत्यन्त उन्माद तथा प्रेमके अधीन करदिया है अतः आत्मसमर्पण करकै तथा संभोग देकर तुझे मेरा उद्धार करना चाहिये ॥ २६—२७ ॥ हे विलासिनि! तू अनेक प्रकारकी पुष्पमालाएं तथा वस्त्र पहरकर तथा अनेकों प्रकार के आभूषणोंसे सजकर मेरे साथ अच्छी प्रकार कामकी सेवा कर ॥ २८ ॥ तू सुख भोगनेके योग्य है तो भी यहाँ पर सुखसे रहित है अतः तेरा यहाँ रहना ठीक नहीं है अरी ओ मत्तगामिनि ! तू मेरे पाससे अच्छेसे अच्छे सुखोंको प्राप्त कर ॥ २९ ॥ और अमृतकी समान स्वादिष्ट तथा मनको रुचनेवाले अनेकों प्रकारके पीनेके रसोंको पा और इच्छामें आवे तैसे विहार कर ॥ ३० ॥ हे महाभागे ! तू अनेक प्रकारके ऐश्वर्य भोगेगी, उत्तम सौभाग्यको पावेगी अनेक प्रकारके रसोंका पान करेगी तथा उत्तम प्रकारके श्रेष्ठ सुखोंको भोगेगी॥३१॥ हे निर्दोष भामिनि ! तेरी यह पहिली तरुणावस्था है वह केवल व्यर्थ ही चली जा रही हे सुन्दरि! पुष्पों की श्रेष्ठ और सुन्दर माला पहिरने के योग्य होती हैं परन्तु उसका उपभोग न करनेसे वह कुम्हला

सुन्दरि शोभना सती ॥ ३२ ॥ त्यजामि दारान्मम ये पुरातना भवन्तु दास्यस्तव चारुहासिनि । अहञ्च ते सुन्दरि दासवत् स्थितः सदा भविष्ये वशगो वरानने ॥ ३३ ॥ द्रौपद्युवाच । अप्रार्थनीयामिह मां सूतपुत्राभिमन्यसे । विहीनवर्णां सैरन्ध्रीं बीभत्सां केशकारिणीम् ॥ ३४ ॥ परदारास्मि भद्रन्ते न युक्तं तव साम्प्रतम् । दयिताः प्राणिनां दारा धर्मं समनुचिन्तय ॥ ३५ ॥ परदारे न ते बुद्धिर्जातु कार्य्या कथञ्चन विवर्ज्जनं ह्यकार्याणामेतत् सत्पुरुषव्रतम् ॥ ३६ ॥ मिथ्याभिगृध्नो हि नरः पापात्मा मोहमास्थितः । अयशः प्राप्नुयाद् घोरं महद्वा प्राप्नुयाद्भयम् ॥ ३७ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमुक्तस्तु सैरन्ध्र्या कीचकः काममोहितः । जानन्नपि सुदुर्बुद्धिः परदाराभिमर्शने ॥ ३८ ॥ दोषान् बहून् प्राणहरान् सर्वलोकविगर्हितान् । प्रोवाचेदं सुदुर्बुद्धिर्द्रौपदीमजितेन्द्रियः ॥ ३९ ॥ नार्हस्येवं वरारोहे प्रत्याख्यातुं वरानने । मां मन्म-

---

जाती है अतः तू भी सौंदर्यवाली है परन्तु विना भोगके अच्छी नह मालूम होती है ॥ ३२ ॥ हे सुन्दर हास्यवाली स्त्री ! यदि तू कहै तो मैं अपनी पहिली स्त्रियोंको छोड़दूं अथवा उन सब स्त्रियोंको तेरी दासी बनाऊँ और हे सुन्दरि ! हे सुन्दरवदनी ! मैं भी सदा तेरा दास समान रहकर तेरे अधीन रहूँगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार द्रौपदीसे बहुत कुछ विनती करी तब द्रौपदीने कहा कि–हे सूतपुत्र ! तू यह समझले कि—मैं तेरी याचनाके योग्य नहीं हूँ क्योंकि—मैं एक नीचे वर्ण की स्त्री हूँ, सैरंध्री (सेविका) हूँ, बीभत्स रूपवाली और बाल काढ़ने वाली तथा परस्त्री हूँ, इस कारण तुझे मेरी प्रार्थना नहीं करनी चाहिये । तेरा कल्याण हो, सब प्राणियोंको अपनी स्त्री प्रिय होती है उसी नियम के अनुसार मैं भी अपने पतिओंकी प्यारी हूँ, अतः तू धर्म का विचार करके बोल ॥ ३४-३५ ॥ तुझे कभी भी परस्त्री के विषयमें विचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि–नीच कार्यका त्यागना ही सत्पुरुषोंका व्रत है ॥ ३६ ॥ केवल पापी पुरुष ही मिथ्या विषयकी ओर ध्यान देते हैं और मोहके अधीन हो भयंकर अपयश प्राप्त करते हैं अथवा बड़ी आपत्ति में पड़जाते हैं, ॥ ३७ ॥ वैशम्पायन कहतेहैं कि–हे जनमेजय जब द्रौपदीने इस प्रकार कहा तब काम से मोहित दुष्टबुद्धि कीचक कि-जो "परस्त्रीके साथ समागम करने में सब लोगोंसे धिक्कार पाना और प्राणहरणादिक बहुत से दोष हैं" ऐसा जानता था तो भी उस इन्द्रियों के अधीन हुए दुरात्मा कीचक ने द्रौपदी से कहा कि ॥ ३८-३९ ॥ अरी ओ सुन्दर अङ्ग और मुखवाली स्त्री! मुझे इस प्रकार स्पष्ट निषेध करदेना तुझे योग्य नहीं है

वशमाविष्टं त्वत्कृते चारुहासिनि ॥ ४० ॥ प्रत्याख्याय च मां भीरु वशगं प्रियवादिनम् । नूनं त्वमसि तापाङ्गि पश्चात्तापं करिष्यसि ४१ अहं हि सुभ्रु राज्यस्य कृत्स्नस्यास्य सुमध्यमे । प्रभुर्वासयिता चैव वीर्ये चाप्रतिमः क्षितौ ॥ ४२ ॥ पृथिव्यां मत्समो नास्ति कश्चिदन्यः पुमानिह । रूपयौवनसौभाग्यैर्भोगैश्चानुत्तमैः शुभैः ॥ ४३ ॥ सर्वकामसमृद्धेषु भोगेष्वनुपमेष्विह । भोक्तव्येषु च कल्याणि कस्माद्दास्ये रता ह्यसि ॥ ४४ ॥ मया दत्तमिदं राज्यं स्वामिन्यसि शुभानने । भजस्व मां वरारोहे भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ ४५ ॥ एवमुक्त्वा तु सा साध्वी कीचकेनाशुभं वचः । कीचकं प्रत्युवाचेदं गर्हयन्त्यस्य तद्वचः ॥ ४६ ॥ सैरन्ध्र्युवाच । मा सूत पुत्र मुह्यस्व माद्य त्यक्ष्यस्व जीवितम् । जानीहि पञ्चभिर्घोरैर्नित्यं मामभिरक्षिताम् ॥ ४७ ॥ न चाप्यहं त्वया लभ्या गन्धर्वाः पतयो मम । ते त्वां निहन्युः कुपिताः साध्वलं मा व्यनीनशः ॥ ४८ ॥ अशक्यरूपं पुरुषैरध्वानं गन्तुमिच्छसि । यथा

क्योंकि-हे चारु हास्यवाली ! मैं तेरे लिये कामके वशमें होगयाहूँ ॥४०॥ हे भीरु! और श्याम कटाक्षवाली स्त्री! मैं तेरे अधीन होगयाहूँ और तेरी इच्छानुसार बोलरहाहूँ तो भी तू मुझसे निषेध करतीहै परन्तु स्मरण रख कि पीछेंसे तुझे अवश्य पछताना पड़ैगा ॥४१॥ हे सुभ्रु ! हे सुन्दर कटिवाली स्त्री ! मैं इस सम्पूर्ण देशका स्वामी हूँ, देशमें प्रजाको बसाने वाला हूँ. और इस पृथ्वी पर मेरे समान शरीरबल-सम्पन्न कोई नहीं है ॥ ४२ ॥ इस पृथिवी पर मेरी समान दूसरा कोई भी पुरुष रूपवान् यौवनशाली सौभाग्यवान् तथा उत्तम प्रकारके शुभ ऐश्वर्यों को भोगने वाला नहीं है ॥४३॥ हे कल्याणि ! तुझे सब प्रकार से पूर्ण समृद्धि वाले उत्तमोत्तम वैभव भोगने को मिलतेहैं तो भी तू उन सबका तिरस्कार करके दासीपने पर क्यों प्रेम रखतीहै ?॥४४॥ हे सुन्दरवदनी ! मैं तुझे यह राज्य देताहूँ तू मेरी पटरानी बन और हे वरारोहे ! मेरी सेवा कर तथा उत्तमोत्तम वैभवोंको भोग ॥४५॥ कीचक ने इस प्रकार पतिव्रता द्रौपदीसे अशुभ बात कही तब उन वचनोंका अनादर करती हुई द्रौपदी ने कीचकको फिर उत्तर दिया ॥४६॥ सैरंध्री बोली कि हे सूतपुत्र ! तू कामके वेग से मोहित मत हो, और अपने प्राणोंको वृथा ही नष्ट न कर, क्योंकि-मुझ पांच भयंकर पुरुष सदा चारों ओर से मेरी रक्षा करतेहैं ऐसा तू जानले ॥४७॥ जिस मार्ग में पुरुष नहीं जासकते उसही मार्ग में चलने की तू इच्छा करता है परन्तु तू मुझे कभी नहीं पासकेगा क्योंकि-यदि मेरे पति गंधर्व कोप करेंगे तब तुझे मारडालेंगे इस कारण इस बातका विचार ही छोड़दे और वृथा मृत्युके मुख में न जा ॥४८॥

गिच्छेतनो बालः कूलस्थः कूलमुत्तरम् । तत्तुं मिच्छति मन्दात्मा तथा त्वं कर्त्तुं मिच्छसि ॥ ४९ ॥ अन्तर्महीं वा यदि वोर्ध्वमुत्पतेः समुद्रपारं यदि वा प्रधावसि । तथापि तेषां न विमोक्षमर्हसि प्रमाथिनो देवसुता हि खेचराः ॥ ५० ॥ त्वं कालरात्रीमिव कश्चिदातुरः किं मां दृढं प्रार्थसेऽद्य कीचक । किं मातुरङ्के शयितो यथा शिशुश्चन्द्रं जिघृक्षुरिव मन्यसे हि माम् ॥ ५१ ॥ तेषां प्रियां प्रार्थयतो न ते भुवि गत्वा दिवं वा शरणं भविष्यति । न वर्त्तते कीचक ते दृशाशुभं या ते न सञ्जीवनमर्थयेत सा ॥ ५२ ॥ छ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि कीचककृष्णासंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच । प्रत्याख्याती राजपुत्र्या सुदेष्णां कीचकोऽब्रवीत् अमर्य्यादेन कामेन घोरेणाभिपरिप्लुतः ॥ १ ॥ यथा कैकेयि सैरन्ध्री समेयात्तद्विधीयताम् । येनोपायेन सैरन्ध्री भजेन्मां गजगामिनी । तं

जैसे समुद्रके एक किनारे पर बैठा हुआ कोई मंदबुद्धि शक्तिहीन बालक दूसरे किनारे पर जाना चाहै तैसेही तू भी मंदबुद्धि है क्योंकि तू ऐसे ही कार्य को करना चाहता है ॥४९॥ मेरे ऊपर कुदृष्टि करने के पीछे तू आकाशमें उड़कर जायगा पातालमें घुस जायगा, अथवा समुद्र के परली पार भाग जायगा तब भी आकाशचारी शत्रुमर्दन देवपुत्र मेरे पति तेरा पीछा नहीं छोड़ेंगे ॥ ५० ॥ अरे ओ कीचक ! जैसे कोई रोगी मनुष्य जीनेसे घबड़ा कर मृत्युके लिये किसी कालरात्रिसे प्रार्थना करता है तैसे ही आज तू मेरे पास आग्रहसे किसलिये प्रार्थना कररहा है ? अरे ! माताकी गोदमें सोया हुआ अनजान बालक जैसे चन्द्रमाको पकड़नेकी इच्छा करता है तिसी प्रकार तू भी मुझै प्राप्त करनेकी इच्छा करता है ॥ ५१ ॥ अरे कीचक ! तू गंधर्वोंकी स्त्रीसे प्रार्थना कर रहा है, परन्तु ऐसा करने के अनन्तर यदि तू पृथ्वी के ऊपर अथवा आकाशमें भी भागजायगा तो तहाँ भी कोई तेरी रक्षा नहीं करसकेगा । अरे कीचक ! तू कामांध होगया है इससे तेरी बुद्धि कि—जो परस्त्री के त्यागरूपी सदाचारसे अपने जीवनको बचासके ऐसी नहीं है अर्थात् तेरी बुद्धि शुभेच्छावाली नहीं है परन्तु इससे तेरा मरण ही होगा ॥ ५२ ॥ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार राजकुमारी द्रौपदीने कीचकका तिरस्कार किया तब मर्यादाको लांघ घोर काम के वशमें हुआ कीचक सुदेष्णाके पास जा इसप्रकार कहने लगा ॥१॥ कि-हे कैकेयि ! जिस उपायसे गजगामिनी सैरंध्री मेरे पास आवै और

सुदेष्णे परीप्सस्व प्राणान् मोहात् प्रहोस्सिपम् ॥२॥ वैशम्पायन उवाच तस्य सा बहुशः श्रुत्वा वाचं विलपतस्तदा। विराटमहिषी देवी कृपाञ्चक्रे मनस्विनी ॥ ३ ॥ स्वमन्त्रमभिसन्धाय तस्यार्थमनुचिन्त्य च उद्योगञ्चैव कृष्णायाः सुदेष्णा सूतमब्रवीत् ॥ ४ ॥ पर्वणि त्वं समुद्दिश्य सुरामन्नञ्च कारय। तत्रैनां प्रेषयिष्यामि सुराहारीं तवान्तिकम्॥५॥ तत्र सम्प्रेषितामेनां विजने निरवग्रहे। सान्त्वयेथा यथाकामं सान्त्वमाना रमेद्यदि ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्तः स विनिष्क्रम्य भगिन्या वचनात्तदा। सुरामाहारयामास राजार्हां सुपरिष्कृताम्॥७॥ भक्ष्यांश्च विविधाकारान् बहूंश्चोच्चावचांस्तदा। कारयामास कुशलैरन्नपानं सुशोभनम् ॥ ८ ॥ तस्मिन् कृते तदा देवी कीचकेनोपमन्त्रिता। सुदेष्णा प्रेषयामास सैरन्ध्रीं कीचकालयम् ॥ ९ ॥ सुदेष्णोवाच ॥ उत्तिष्ठ गच्छ सैरन्ध्रि कीचकस्य निवेशनम्। पानमानय कल्याणि पिपासा मां प्रबाधते ॥ १० ॥ सैरन्ध्र्युवाच ॥ न गच्छेयमहं

वशमें होकर मेरी सेवा करे ऐसा ही युक्ति तू कर नहीं तो मैं मोहमें पड़कर अपने प्राणोंको त्याग दूँगा ॥ २ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय ! इस प्रकार बहुत वार विलाप करते हुए कीचककी बातें सुन कर मनस्विनी विराटकी पटरानीने उसके ऊपर कृपा करी ॥ ३ ॥ पहिले उसने अपने कार्यका मनमें विचार किया, तदनन्तर कीचकके कार्यका विचार किया और अन्तमें कीचकको सैरंध्रीसे मिलानेके लिये क्या उपाय किया जाय ? इसको विचार कर सूतसे कहा कि- ॥४॥ भाई ! तू किसी पर्वके दिन मदिरा तथा अनेक प्रकारके भोजन तयार कराना, तब मैं उस दिन मदिरा लेनेके बहानेसे सैरंध्रीको तेरे पास भेजूँगी ॥ ५ ॥ जब मैं सैरंध्रीको तेरे पास तहां भेजूँ तब एकान्त और निर्विघ्न स्थानमें जिस प्रकार सैरंध्री तेरे ऊपर प्रसन्न होजाय उसीप्रकार तू अपनी इच्छानुसार उसे समझालेना॥६॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! अपनी बहिनके ऐसे वचन सुन उसी समय कीचक तहांसे अपने घर गया और उसने राजाके पीने योग्य उत्तम प्रकारकी मदिरा तयार कराई तथा रांधने में चतुर मनुष्यों से अनेकों प्रकारके बढ़िया बढ़िया पक्वान्न यथा स्वादिष्ट अन्न और पीनेके पदार्थ तयार कराए। तदनन्तर अपनी बहिनको भोजन करनेके लिये निमंत्रण किया, तब सुदेष्णाने पहिले सोची हुई युक्तिके अनुसार सैरंध्रीसे कीचकके घर जानेको कहा ॥ ७—९ ॥ सुदेष्णा बोली, कि—अरी कल्याणि ! सैरंध्रि ! उठ खड़ी हो और कीचकके यहाँ आकर मेरे लिये अच्छी पीनेकी वस्तु ला क्योंकि—मुझे बहुत ही प्यास लग रही है ॥ १० ॥ सैरंध्री ने कहा कि—हे

तस्य राजपुत्रि निवेशनम् । त्वमेव राज्ञि जानासि यथा स निरपत्रपः ॥ ११ ॥ न चाहमनवद्याङ्गि तव वेश्मनि भामिनि । कामवृत्ता भविष्यामि पतीनां व्यभिचारिणी ॥ १२ ॥ त्वं चैव देवि जानासि यथा स समयः कृतः । प्रविशन्त्या मया पूर्वं तव वेश्मनि भामिनि ॥ १३ ॥ कीचकस्तु सुकेशान्ते मूढो मदनदर्पितः । सोऽवमंस्यति मां दृष्ट्वा न यास्ये तत्र शोभने ॥ १४ ॥ सन्ति बह्व्यस्तव प्रेष्या राजपुत्रि वशानुगाः । अन्यां प्रेषय भद्रन्ते स हि मामवमंस्यते ॥ १५ ॥ सुदेष्णोवाच नैव त्वां जातु हिंस्यात्स इतः संप्रेषितां मया । इत्युक्त्वा प्रददौ पात्रं सपिधानं हिरण्मयम् ॥ १६ ॥ सा शंकमाना रुदती दैवं शरणमीयुषी प्रातिष्ठत सुराहारी कीचकस्य निवेशनम् ॥ १७ ॥ सैरन्ध्र्युवाच ॥ यथाहमन्यं भर्तृभ्यो नाभिजानामि कञ्चन । तेन सत्येन मां प्राप्तां मा कुर्यात् कीचको वशे ॥ १८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ उपातिष्ठत सा सूर्यं मुहूर्तमबला ततः । स तस्यास्तनुमध्यायाः सर्वं सूर्योऽवबुद्धवान्

राजपुत्रि ! हे रानी ! मैं उसके घर नहीं जाऊँगी क्योंकि—तुम आप ही जानती हो कि—वह बड़ा निर्लज्ज है ॥ ११ ॥ हे पवित्र अंगवाली स्त्री ! मैं आपके महलमें रह अपने पतिओंसे विमुख हो व्यभिचारके मार्गमें स्वच्छन्द होकर बर्ताव नहीं करूँगी ॥ १२ ॥ हे देवि ! मैंने आप के घरमें आनेसे पहिले ही तुम्हारे साथ जो प्रतिज्ञा करली है उसको तुम जानती हो फिर भी तुम मुझे उसके घर क्यों भेजती हो ॥ १३ ॥ सुन्दर हैं केशोंकी लटें जिसकी ऐसी हे स्त्रि ! यदि मैं वहाँ जाऊँगी तो कामोन्मत्त मंदबुद्धि कीचक मुझे देखते क्षण ही मेरी लज्जा ले लेगा अतः हे शोभने मैं वहां नहीं जाऊँगी ॥ १४ ॥ हे राजपुत्री ! आपकी अधीनतामें काम करनेवाली और भी बहुतसी दासियें हैं उनमेंसे किसी दूसरीको वहाँ भेज दीजिये ईश्वर आप का कल्याण करे यदि मैं वहां जाऊँगी तो वह अवश्य ही मेरी लज्जा उतार लेगा ॥ १५ ॥ सुदेष्णाने कहा कि—मैं तुझे यहाँसे भेजती हूँ, अतः वह कभी भी तेरा अपमान नहीं करेगा इस प्रकार कह कर उसने सैरंध्रीके हाथमें सुवर्ण के ढक्कनवाला पात्र देदिया ॥ १६ ॥ सैरंध्री उस पात्रको हाथमें ले शंका करतीहुई और रोतीरे मदिरा लेने के लिये कीचकके घरकी ओर को मार्ग में सूर्यदेवकी आराधना करती हुई चलनेलगी ॥ १७ ॥ सैरंध्री दोनो हाथ जोड़कर बोली कि—" मैं अपने पतिम के सिवाय दूसरे किसी पुरुष को नहीं चाहती हूँ उस सत्यसे जब मैं कीचकके यहाँ पहुचूं तब कीचक मुझे अपने वशमें न करसके यह मेरी प्रार्थना है ॥ १८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे

॥ १९ ॥ अन्तर्हितं ततस्तस्या रक्षो रक्षार्थमादिशत्। तच्चैनां नाजहात्तत्र सर्वावस्थास्वनिन्दिताम् ॥ २० ॥ तां मृगीमिव संत्रस्तां दृष्ट्वा कृष्णां समीपगाम्। उदतिष्ठन् मुदा सूतो नावं लब्ध्वेव पारगः २१

इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीसुराहरणे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

कीचक उवाच ॥ स्वागतं ते सुकेशान्ते सुव्युष्टा रजनी मम। स्वामिनी त्वमनुप्राप्ता प्रकुरुष्व मम प्रियम् ॥ १ ॥ सुवर्णमाला कम्बूश्च कुण्डले परिहाटके। नानापत्तनजे शुभ्रे मणिरत्नञ्च शोभनम् ॥ २ ॥ आहरन्तु च वस्त्राणि कौशिकान्यजिनानि च। अस्ति मे शयनं दिव्यं त्वदर्थमुपकल्पितम्। एहि तत्र मया सार्द्धं पिबस्व मधुमाधवीम् ३ द्रौपद्युवाच ॥ अप्रैषीद्राजपुत्री मां सुराहारीं तवांतिकम्। पानमाहर

जनमेजय! तदन्तर उस बालाने एक मुहूर्त तक सूर्यकी स्तुति करके अपनी पीड़ा निवेदन की, सूर्यने भी सूक्ष्म कटिवाली उस स्त्रीकी सब दुःखकी बातें ध्यान में लीं ॥१९॥ और उन्होने द्रौपदीकी अदृश्यरूप से रक्षा करनेके लिये एक राक्षसको आज्ञा दी, वह राक्षस पवित्र द्रौपदी का किसी समय त्याग न करता हुआ उसके पास ही रहने लगा ॥ २० ॥ डरी हुई मृगीकी समान भयभीत हुई द्रौपदीको अपने पास आई हुई देख परलीपार जानेकी इच्छा वाला मनुष्य जैसे नौका मिलनेसे आनन्दित होता है इसी प्रकार सूतपुत्र कीचक भी द्रौपदीको आई हुई देख हर्ष में भरकर खड़ा होगया ॥२१॥ पंद्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कीचकने कहा कि— सुन्दर हैं अग्रभाग जिनके ऐसे केशोंवाली हे प्रिय! तू अच्छी आई, मेरी आजकी रात्रि आनन्द में कटैगी। ओ मेरी स्वामिनी पटरानी तू आज आई है अतः मेरी इच्छानुसार काम कर ॥ १ ॥ तेरे लिये मैं अपने मनुष्यों को आज्ञा देता हूँ कि वह सोने की मालाएं, हाथी दाँतके कंगन चूड़िये सुवर्ण की पट्टियोंसे जड़े और चमकदार अनेकों देशोंमें बनेहुए कुण्डल, शोभायमान मणि तथा रत्न जड़ेहुए आभूषण, रेशमी वस्त्र तथा मृगचर्म तेरे लिये ले आवें, तेरे लिये यह दिव्य शय्या तयार करा रक्खी है इस कारण तू इस दिव्य शय्या पर बैठ और तहाँ महुए के फूलोंसे बनी मदिरा का पान कर ॥ २—३ ॥ यह सुन द्रौपदीने कहा कि—" मुझै राजपुत्री रानीने तेरे पाससे मदिरा लेनेको भेजा है और उसने कहा है कि। मुझै बड़ी प्यास लगरही है अतः तू शीघ्र ही पीनेका पदार्थ ले आ इस लिये मुझै तहाँ शीघ्र ही पहुँचना है, कीचकने कहा कि-

मे क्षिप्रं पिपासा मेऽति चाब्रवीत् ॥ ४ ॥ कीचक उवाच ॥ अन्या भद्रे नयिष्यंति राजपुत्र्याः प्रतिश्रुतम् । इत्येनां दक्षिणे पाणौ सूतपुत्रः परामृषत् ॥ ५ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ यथैवाहं नाभिचरे कदाचित् पतीन्मदाद्वै मनसापि जातु । तेनैव सत्येन वशीकृतं त्वां द्रष्टास्मि पापं परिकृष्यमाणम् ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स तामभिप्रेक्ष्य विशालनेत्रां जिघृक्षमाणः परिभर्त्सयंतीम् ।जग्राह तामुत्तरवस्त्रदेशे स कीचकस्तां सहसा क्षिपन्तीम् ॥ ७ ॥ प्रगृह्यमाणा तु महाजवेन मुहुर्विनिश्वस्य च राजपुत्री । तया समाक्षिप्ततनुः स पापः पपात शाखीव निकृत्तमूलः ८ सा गृहीता विधुन्वाना भूमावाक्षिप्य कीचकम् । सभां शरणमागच्छद्यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥ तां कीचकः प्रधावन्तीं केशपाशे परामृशत् अथैनां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदावधीत् ॥ १० ॥ तस्या योऽसौ तदार्केण राक्षसः सन्नियोजितः । स कीचकमपोवाह वातवेगेन भारत ॥ ११ ॥ स पपात तदा भूमौ रक्षोबलसमाहतः । विघूर्णमानो निश्चेष्टश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ १२ ॥ तां चासीनौ ददृशतुर्भीमसेनयुधिष्ठिरौ

हे कल्याणि! राजपुत्रीकी मंगाई हुई मदिराको दूसरी दासियें लेजायँगी यह कहकर सूतपुत्रने उसका दहिना हाथ पकड़ा ॥ ४—५ ॥ तब द्रौपदी बोली कि—मैंने किसी दिन भी उन्मत्ततासे चित्तमें भी अपने पतियों पर बुराभाव नहीं विचारा है अर्थात् मैं उनको ही इष्टदेवता जानती हूँ उस ही सत्यसे मैं तुझ पापीको पृथिवी पर घसिटता हुआ देखूंगी ॥६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—तदनन्तर विशालनेत्रा द्रौपदी उसका तिरस्कार करने लगी तथा उसके हाथमेंसे छूटनेके लिये एकाएकी झटके देने लगी तब कीचकने उसे पकड़नेकी इच्छासे बड़े वेगसे दौड़ उसकी साड़ीका पल्ला पकड़लिया और उसको खचा तब तुरन्त ही राजकन्या द्रौपदीने उस पापी कीचकके धक्का मारा उससे कीचक जड़से कटेहुए वृक्षकी समान भूमि पर गिरपड़ा ॥ ७—८ ॥ कीचकसे पकड़ी हुई द्रौपदी काँपती २ कीचकको भूमिपर गिराकर जहाँ सभामें युधिष्ठिर बैठे थे तहाँ को दौड़कर सभाकी शरणमें गई ॥ ९ ॥ इतनेमें ही कीचकने दौड़तीहुई दौपदी की चोटी पकड़ली और राजाके देखते हुए पृथ्वीपर गिरा कर उसके लातें मारीं ॥ १० ॥ उस समय सूर्यने जिस राक्षसको द्रौपदीके पीछे रक्षा करनेके लिये गुप्तरूपसे नियत किया था उसने हे भारत! पवनकी समान वेगसे कीचकको दूर फेंक दिया ॥ ११ ॥ राक्षसके बलका धक्का लगने पर कीचक कांपगया और जड़ कटनेसे जैसे वृक्ष भूमिपर गिरपड़ता है तैसे निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा ॥ १२ ॥ उस समय राजसभामें युधिष्ठिर तथा भीम बैठे थे,

समृष्यमाणौ कृष्णायाः कीचकेन पराभवम् ॥ १३ ॥ तस्य भीमो वधं प्रेप्सुः कीचकस्य दुरात्मनः । दन्तैर्दन्तांस्तदा रोषान्निष्पिपेष महामनाः ॥ १४ ॥ धूमच्छाया ह्यभजतां नेत्रे चोच्छ्रितपक्ष्मणी । सस्वेदा भृकुटी चोग्रा ललाटे समवर्तत ॥ १५ ॥ हस्तेन ममृदे चैव ललाटं परवीरहा भूयश्च त्वरितः क्रुद्धः सहसोत्थातुमैच्छत ॥ १६ ॥ अथावमृद्नादंगुष्ठमंगुष्ठेन युधिष्ठिरः । प्रबोधनभयाद्राजा भीमं तं प्रत्यषेधयत् ॥ १७ ॥ तं मत्तमिव मातंगं वीक्षमाणं वनस्पतिम् । स तमावारयामास भीमसेनं युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥ आलोकयसि किं वृक्षं सूद दारुकृतेन वै । यदि ते दारुभिः कृत्यं बहिर्वृक्षान्निगृह्यताम् ॥ १६ ॥ सा सभाद्वारमासाद्य रुदती मत्स्यमब्रवीत् । अवेक्षमाणा सुश्रोणी पतींस्तान्दीनचेतसः २० आकारमभिरक्षंती प्रतिज्ञाधर्मसंहिता । दह्यमानेव रौद्रेण चक्षुषा द्रुपदात्मजा ॥ २१ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ येषां वैरी न स्वपिति पद्भ वि

उन्होंने दुःखिता द्रौपदीको तथा द्रौपदीके कीचकसे हुए तिरस्कार को देखा और वह उस अन्यायको सहन नहीं करसके अर्थात् उनके मनमें क्रोध उत्पन्न होगया ॥ १३ ॥ उस ही समय उदार मनवाले भीमसेनने कीचकको ठौर मारदेनेका विचार किया वह क्रोधमें भर अपने दाँतों को परस्पर पीसने लगा ॥ १४ ॥ उसके ऊँचे पलकों वाले नेत्रोंमेंसे धुएंकी छायाएं निकलने लगीं और ललाट तथा उग्र भ्रकुटि पसीनेसे भीजगई ॥ १५ ॥ परन्तु वीर तथा शत्रुओंका संहार करनेकी इच्छावाले भीमसेनने अपना अभिप्राय गुप्त रखनेके लिये हाथसे मस्तकका पसीना पूंछडाला तो भी वह फिर क्रोधावेशमें आगया और एकायकी उठनेकी इच्छा करनेलगा ॥ १६ ॥ उस ही समय युधिष्ठिरने प्रकट होजाने के भयसे अपने हाथके अंगूठेसे भीमके पैरके अंगूठेको दबाकर उस को ऐसा करनेसे रोकदिया ॥ १७ ॥ तो भी भीम मदमत्त हाथी की समान समीपमेंके बडे वृक्षको उखाड़ने की इच्छासे उस महावृक्ष की ओरको देखनेलगा तब युधिष्ठिरने उस को निषेध करतेहुए उसके वास्तविक क्रोधको छिपानेके लिये कहा कि-॥१८॥ अरे ओ बल्लव ! तू क्या लकड़ी काटनेके लिये इस महावृक्षकी ओर को देखरहा है ? यदि तुझे काष्ठकी आवश्यकता हो तो तू बाहरसे लकडी काट लाना ॥ १६॥ युधिष्ठिर इस प्रकार कह रहे थे कि-इतनेमें ही सुन्दर कमरवाली द्रौपदी रोतीर सभाके द्वारके पास आ अपने खिन्न मनवाले पतियों की ओर को देखती हुई, अपने गुप्त अभिप्रायको छिपाती हुई, प्रतिज्ञाके धर्म में बंधीहुई और अपने भयंकर नेत्रोंसे स्वयं जली जाती हो इसप्रकार दीखती हुई; मत्स्यराजसे इसप्रकार कहनेलगी ॥२०—२१॥ द्रौपदी ने कहा कि—जिनका वैरी छठे देशमें भी अर्थात्

विषये वसन्। तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥ २२ ॥ ये दद्युर्न च याचेयुर्ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः। तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥ २३ ॥ येषां दुन्दुभिनिर्घोषो ज्याघोषः श्रूयतेऽनिशम्। तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥ २४ ॥ ये च तेजस्विनो दान्ता बलवन्तोऽतिमानिनः। तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥ २५ ॥ सर्वलोकमिमं हन्युर्धर्मपाशसितास्तु ये। तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत् ॥ २६ ॥ शरणं ये प्रपन्नानां भवन्ति शरणार्थिनाम्। चरन्ति लोके प्रच्छन्नाः क्व नु तेऽद्य महारथाः ॥ २७ ॥ कथन्ते सूतपुत्रेण वध्यमानां प्रियां सतीम्। मर्षयन्ति यथा क्लीवा बलवन्तोमितौजसः ॥ २८ ॥ क्व नु तेषाममर्षश्च वीर्यं तेजश्च वर्त्तते। न परीप्सन्ति ये भार्यां वध्यमानां दुरात्मना ॥ २९ ॥ मयात्र शक्यं किङ्कर्त्तुं विराटे धर्मदूषके। यः पश्यन्मां मर्षयति वध्य-

---

बहुत दूर भी रहता हो तो भी वे सुखके साथ नहीं सो सकते ऐसे पुरुषोंकी मैं मान्य स्त्री हूँ, उसके इस कीचकने लात मारी है ॥ २२ ॥ जो सत्यवादी तथा ब्राह्मणों के रक्षक हैं और जो याचक नहीं हैं किन्तु दाता हैं उनकी मैं मानवती स्त्री हूँ उसके इस कीचकने लात मारी है ॥ २३ ॥ जिनकी प्रत्यंचा की ध्वनि दुंदुभिकी समान नित्य गर्जना किया करती है उनकी मैं मानिनी स्त्री हूँ, उसके इस सूतपुत्र कीचकने लात मारी है ॥ २४ ॥ जो तेजस्वी भीतर और बाहरकी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, बलवान् और अतिमानी हैं उनकी मैं मान्य स्त्री हूँ उसको इस सूतपुत्रने लातोंसे ताड़ित किया है ॥ २५ ॥ जो सकल जगत्का नाश कर सकते हैं और जो नित्य धर्मकी पाशमें बंधेहुए रहते हैं उनकी मैं मान्या स्त्री हूँ, उसके इस सूतपुत्रने लात मारी है ॥२६॥ जो शरणागत और शरणार्थियोंके नित्य एक शरण्य हैं वे महारथी क्या अभी जगत्में छिपकर फिरते हैं ॥२७॥ अरे रे! वे महाबलवान् और अपार प्राणबलवाले मेरे पति अपनी प्रियतमाको सूतपुत्रकी लातें खातीहुई अपनी दृष्टिसे देखते हैं तब भी वे नपुंसककी समान इस अनर्थको क्यों सहन कर रहे हैं ॥२८॥ हाय हाय उनका क्रोध, वीर्य और तेज कहाँ जाता रहा कि—जो यह दुरात्मा सूतपुत्र उनकी प्रियतमाको माररहा है तब भी वह उसकी रक्षा करनेकी इच्छा नहीं करते? अधिक तो क्या परन्तु धर्मको दूषित करनेवाला यह विराट राजा खड़ा है, इसलिये मैं क्या कर सकती हूँ यह राजा विराट मुझ निरपराधिनी स्त्रीको पिटती हुई

मानामतागसम् ॥ ३०॥ न राजा राजवत्किञ्चित् समाचरति कीचके दस्यूनामिव धर्मस्ते नहि संसदि शोभते ॥ ३१ ॥ नाहमेतेन युक्तं वै हन्तुं मत्स्य तवान्तिके । सभासदोत्र पश्यन्तु कीचकस्य व्यतिक्रमम् ॥ ३२ ॥ कीचको न च धर्मज्ञो न च मत्स्यः कथञ्चन । सभासदोप्यधर्मज्ञा य एनं पर्य्युपासते ॥ ३३ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं विधैर्वचोभिः सा तदा कृष्णाश्रुलोचना । उपालभत राजानं मात्स्यानां वरवर्णिनी ॥ ३४ ॥ विराट उवाच । परोक्षं नाभिजानामि विग्रहं युवयोरहम् । अर्थतत्त्वमविज्ञाय किन्नु स्यात् कौशलं मम ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततस्तु सभ्या विज्ञाय कृष्णां भूयोभ्यपूजयन् । साधु-साध्विति चाप्याहुः कीचकं च व्यगर्हयन् ॥ ३६ ॥ सभ्या ऊचुः । यस्येयं चारुसर्वाङ्गी भार्या स्यादायतेक्षणा । परो लाभस्तु तस्य स्यान्न च शोचेत् कथञ्चन ॥ ३७ ॥ नहीदृशी मनुष्येषु सुलभा वरवर्णिनी ।

देखता है तो भी कीचक को रोकता नहीं है किन्तु शीतल चित्तसे सहन कर रहा है फिर मैं अबला क्या करूँ, ॥ २६—३० ॥ यह राजा की समान कीचक पर राजधर्म नहीं चलाता है किन्तु बैठा २ देखरहा है । अरे राजा ! तेरा यह लुटेरोंकेसा धर्म राजसभामें शोभा नहीं पाता है किन्तु सभाको कलंकित करता है ॥ ३१ ॥ हे मत्स्यराज ! यह सूतपुत्र तुम्हारे सामने राजसभामें मुझे मारे यह योग्य नहीं है हे सभासदो ! तुम इस कीचकके अपराधको और दृष्टि डालो ॥३२॥ इस कीचकको किसी प्रकारके धर्मका ज्ञान नहीं है, और मत्स्यराज को भी किसी प्रकारके धर्मका ज्ञान नहीं है तैसे ही यह सभासद भी धर्मको नहीं जानते क्योंकि—ये भी धर्मको न जाननेवाले इस राजा की सेवा करते हैं ॥ ३३ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! इस प्रकार सुन्दर है शरीरका वर्ण जिसका ऐसी द्रौपदीने रोते २ बहुतसी बातें कहकर मत्स्य देशके राजा विराटको बहुत ही ताने दिये ॥३४॥ इस पर विराटने उत्तर दिया कि-तुम दोनों के मध्यमें जो कलह हुआ है वह मेरी दृष्टि के सामने नहीं हुआ अतः उसके स्वरूप को मैं नहीं जानता हूँ, इसलिये मैं तुम्हारी बातका रहस्य विना समझे बूझे सच्चेका क्या निर्णय कर सकता हूँ, ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि--तदनन्तर द्रौपदीकी सब बातें सुन सभासदोंने उनके कलहको जाना और द्रौपदीकी प्रशंसा करके कहनेलगे कि-हे स्त्रि ! तूने बहुत ही अच्छा किया और कीचकको धिक्कार देते हुए ॥ ३६ ॥ सभासदों ने कहा कि-यह विशालनेत्रा सर्वांगसुन्दरी जिस पुरुषकी भार्या होगी उस पुरुषको बड़ा भाग्यशाली समझो उस मनुष्यको कभी शोकातुर नहीं होना चाहिये किन्तु उसको बड़ा लाभ होना चाहिये

नारी सर्वानवद्यांगी देवीं मन्यामहे वयम् ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवं संपूजयन्तस्ते कृष्णां प्रेक्ष्य सभासदः । युधिष्ठिरस्य कोपात्तु ललाटे स्वेद आगमत् ॥ ३९ ॥ अथाब्रवीद्राजपुत्रीं कौरव्यो महिषीं प्रियाम् । गच्छ सैरन्ध्रि मात्र स्थाः सुदेष्णाया निवेशनम् ॥ ४० ॥ भर्त्तारमनुरुंधत्यः क्लिश्यन्ते वीरपत्नयः । शुश्रूषया क्लिश्यमानाः पतिलोकं जयन्त्युत ॥ ४१ ॥ मन्ये न कालं क्रोधस्य पश्यन्ति पतयस्तव । तेन त्वां नाभिधावन्ति गन्धर्वाः सूर्य्यवर्चसः ॥ ४२ ॥ अकालज्ञासि सैरन्ध्रि शैलूषीव विरोदिषि । विघ्नं करोषि मत्स्यानां दीव्यतां राजसंसदि ॥ ४३ ॥ गच्छ सैरन्ध्रि गंधर्वाः करिष्यन्ति तव प्रियम् । व्यपनेष्यन्ति ते दुःखं येन ते विप्रियं कृतम् ॥ ४४ ॥ सैरन्ध्र्युवाच । अतीव तेषां घृणिनामर्थेऽहं धर्मचारिणी । तस्य तस्यैव ते वध्या येषां ज्येष्ठोक्षदेविता ॥ ४५ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा प्राद्रवत्कृष्णा सुदेष्णाया निवेशनम् । केशान्मुक्त्वा च सुश्रोणी संरम्भाल्लोहितेक्षणा

॥ ३१-३७ ॥ सुन्दर वर्णवाली और सर्वांगसुन्दरी ऐसी स्त्री मनुष्यों में से मिलना दुर्लभ है हमतो इसको देवी मानते हैं ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय इस प्रकार सभासद कृष्णाको देख उसकी प्रशंसा करने लगे परन्तु उस समय क्रोधके कारण युधिष्ठिरके मस्तक पर पसीना आगया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर कुरुपुत्र युधिष्ठिर ने अपनी प्रिया पटरानी द्रौपदीसे कहा कि अरी सैरंध्री ! अब तू यहाँ पर खड़ी न हो किन्तु सुदेष्णाके राजभवन में चली जा ॥ ४० ॥ पतियोंके अनुकूल रहनेवाली वीर नारियें पतिकी सेवा करतेमें कष्ट उठाती हैं परन्तु इससे वे पतिव्रतायें पति जिस लोकमें जाता है उस लोकमें जाती हैं अर्थात् स्वर्ग पाती हैं ॥ ४१ ॥ मैं मानताहूँ कि—सूर्यकी समान तेजस्वी तेरे पति गंधर्व यह समय क्रोध करनेका नहीं है ऐसा समझ रहे हैं इस लिये वे दौड़के आकर तेरी सहायता नहीं करते हैं ॥ ४२ ॥ हे सैरंध्री तू अवसरको नहीं जानती है इसीलिये नटनीकी समान निर्लज्ज बनकर रोरही है और राजसभामें द्यूत खेलते हुए मत्स्यराजके खेलनेमें विघ्न डालती है ॥ ४३ हे सैरंध्री अब तू अपने स्थानपर चलीजा गंधर्व तेरा प्रिय कार्य करेंगे और जिसने तुझे दुःख दिया होगा उसको नष्ट करदेंगे ॥ ४४ ॥ द्रौपदीने कहा कि—जिन गंधर्वोंकी मैं पत्नी हूँ वे गंधर्व बड़े दयालु हैं, गंधर्वोंमें बड़ा गंधर्व पासेखेलने में बड़ा चतुर है और वे गन्धर्व मेरे शत्रुका नाश करेंगे ॥ ४५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहकर क्रोधसे लाल २ नेत्रवाली और सुन्दर कमर वाली द्रौपदी अपने केशोंको खुले हुए रख

॥ ४६ ॥ शुशुभे वदनं तस्या रुदन्त्याः सुचिरं तदा । मेघलेखाविनिर्मुक्तं दिवीव शशिमण्डलम् ॥ ४७ ॥ सुदेष्णोवाच । कस्त्वावधीद्वरारोहे कस्माद्रोदिषि शोभने । कस्याद्य न सुखं भद्रे केन ते विप्रियं कृतम् ४८ द्रौपद्युवाच । कीचको मावधीत्तत्र सुराहारीं गतान्तव । सभायां पश्यतो राज्ञो यथैव विजने वने ॥ ४९ ॥ सुदेष्णोवाच ॥ घातयामि सुकेशान्ते कीचकं यदि मन्यसे । योऽसौ त्वां कामसम्मत्तो दुर्लभामवमन्यते ॥ ५० ॥ सैरन्ध्र्युवाच ॥ अन्ये चैनं वधिष्यन्ति येषामागः करोति सः । मन्ये चैवाद्य सुव्यक्तं यमलोकं गमिष्यति ॥ ५१ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीपरिभवे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ सा हता सूतपुत्रेण राजपत्नी यशस्विनी । वधं कृष्णा परीप्सन्ती सेनावाहस्य भामिनी ॥ १ ॥ जगामावासमेवाथ सा तदा द्रुपदात्मजा । कृत्वा शौचं यथान्यायं कृष्णा सा तनुमध्यमा ॥ २ ॥ गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा । चिन्त-

---

कर ही रोती २ सुदेष्णाके राजमहलमें दौड़कर गई ॥ ४६ ॥ उस समय बहुत काल तक रोनेके कारण द्रौपदीका मुख बादलों से रहितहुआ चन्द्रमा जैसे आकाशमें शोभा पाताहै तैसे शोभित होरहाथा ॥ ४७ ॥ उसको देखकर सुदेष्णाने कहा कि-हे सुन्दर अवयवों वाली वरानने तुझे किसने मारा है तू किसलिये रोरही है हे कल्याणी! आज किसका सुख नष्ट हुआहै ? और किसने तेरा अप्रिय कियाहै ! ॥ ४८ ॥ द्रौपदीने कहा कि मैं आज कीचकके यहाँ तुम्हारेलिये मदिरा लेने गई थी तहाँ कीचक मुझसे चाहे सो कहनेलगा तहाँसे भागकर राजसभाकी ओर गई वह मेरे पीछे पड़गया और जैसे कोई किसीको निर्जन वन में मारता हो तैसे उसने मुझे राजाके देखतेहुए सभामें माराहै॥४९॥सुदेष्णा बोली कि-हे सुन्दर केशोंवाली जो कामांध कीचक तुझ दुर्लभ नारी का अपमान किया करताहै उसे यदि तेरी इच्छा होगी तो प्राणदण्ड दिलवाऊँगी ॥ ५० ॥ यह सुनकर सैरंध्रीने कहा कि—तुम्हें उसे मरवाना नहीं पड़ेगा परन्तु उसने जिनका अपराध किया है वे लोग ही उसे मारेंगे मेरा विचार है कि-वह गंधर्वोंकी मारसे आज ही प्राणोंको त्याग यमलोकको जायगा॥५१॥ सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय! इसप्रकार सूतपुत्र कीचकने जब द्रौपदीके लात मारी तब श्यामवर्णा यशस्विनी राजकुमारी द्रौपदी उसको नष्टकरनेका विचार करनेलगी ॥ १ ॥ सभामेंसे अपने रहनेके घरमें जानेके अनन्तर पतली कमर वाली द्रौपदीने स्नान कर अपने

पामास रुदती तस्य दुःखस्य निर्णयम् ॥ ३ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं कार्यं भवेन्मम। इत्येवं चिंतयित्वा सा भीमं वै मनसागमत् ॥४॥ नान्यः कर्त्ता ऋते भीमान् ममाद्य मनसः प्रियम् । तत उत्थाय रात्रौ सा विहाय शयनस्वकम् ॥ ५ ॥ प्राद्रवन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती । भवनं भीमसेनस्य क्षिप्रमायतलोचना ॥ ६ ॥ दुःखेन महता युक्ता मानसेन मनस्विनी । सैरन्ध्र्युवाच ॥ तस्मिन् जीवति पापिष्ठे सेनावाहे मम द्विषि ॥७॥ तत्कर्मकृतवानद्य कथं निद्रां निषेवसे । वैशंपायन उवाच ॥ एवमुक्त्वाथ तां शालां प्रविवेश मनस्विनी ॥८॥ यस्यां भीमस्तथा शेते मृगराज इव श्वसन् । तस्या रूपेण सा शाला भीमस्य च महात्मनः ॥ ९ ॥ सम्मूर्च्छितेन कौरव्य प्रजज्वाल च तेजसा । सा वै महानसं प्राप्य भीमसेनं शुचिस्मिता ॥ १० ॥ सर्वश्वेतेव माहे-

ओढ़ने तथा पहिरनेका वस्त्र धोडाला और नियमानुसार शुद्ध हो रोते २ अपने दुःखका विचार करनेलगी ॥ २—३ ॥ कि-मैं अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ! मेरा कार्य अब किसप्रकार सिद्ध होगा ? ऐसा मनमें विचार करके उसने अपनी रक्षारूपी कार्यका सम्पूर्ण भार भीमसेन के ऊपर रक्खा ॥ ४ ॥ उसने विचार किया कि—भीमसेन के सिवाय दूसरा कोई मेरे मनको रुचता काम नहीं करसकेगा इस लिये उनके पास जाकर अपने मनकी बात कहूँ ऐसा मनमें विचार कर रात्रिके समय अपनी शय्या पर से उठकर खड़ी होगई ॥ ५ ॥ विशालनेत्रा, पतिवाली सती द्रौपदी पतिसे मिलनेकी इच्छा से भीमसेनकी पाकशालाकी ओर शीघ्रतासे गई ॥६॥ और मानसिक महादुःखसे भरीहुई मनस्विनी द्रौपदी भीमके घरमें प्रवेश करती हुई बोली, कि-मुझे लातोंसे मारनेवाला मेरा शत्रु वह पापी सेनापति अभी जीवित है तो भीतुम निद्रा कैसे लेरहे हो? ॥७॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! इसप्रकार कहती २ मनस्विनी द्रौपदी जैसे वनमें सोताहुआ सिंह घुर्राटे लेता है तैसे निद्रावश हुआ भीम जिस घरमें निद्राके वशमें हो घुर्राटे ले रहा था उस घरमें पहुचगई, हे कुरुवंशी राजन् ! उस समय महात्मा भीमसेनके तेजसे तथा द्रौपदीके रूपसे भीमका घर अत्यन्त समृद्धिमान् हुआसा दिपनेलगा, पवित्र हास्यवती द्रौपदी रसोई घरमें पहुँचगई उस समय वह मानो वनमें उत्पन्न हुई तीन वर्षकी गौरवर्णवाली गौ रजोदर्शन होनेसे कामातुर होकर जैसे श्रेष्ठ बैलके पास जाती है अथवा जलमें उत्पन्न हुई बगली रजोदर्शन होने पर कामातुर हो जैसे अपने पतिके पास जाती है तैसे ही सर्वांग सुन्दरी पांचाली भी अपने पति भीमके पास जाकर खड़ी होगई

षी वने जाता त्रिहायणी । उपतिष्ठत पांचाली वासितेव नरर्षभम् ११ सा लतेव महाशालं फुल्लं गोमतितीरजम् । परिष्वजत पांचाली मध्यमं पाण्डुनन्दनम् ॥ १२ ॥ बाहुभ्यां परिरभ्यैनं प्राबोधयदनिन्दिता । सिंहं सुप्तं वने दुर्गे मृगराजवधूरिव ॥ १३ ॥ भीमसेनमुपाश्लिष्यद्धस्तिनीव महागजम् । वीणेव मधुरालापा गांधारं साधु मूर्च्छती । अभ्यभाषत पांचाली भीमसेनमनिन्दिता ॥ १४ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे भीमसेन यथा मृतः । नामृतस्य हि पापीयान् भार्यामालभ्य जीवति ॥ १५ ॥ सा सम्प्रहाय शयनं राजपुत्र्या प्रबोधितः । उपातिष्ठत मेघाभः पर्यंके सोपसंग्रहे ॥ १६ ॥ अथाब्रवीद्राजपुत्रीं कौरव्यो महिषीं प्रियाम् । केनास्यर्थेन संप्राप्ता त्वरितेव ममांतिकम् ॥ १७ ॥ न ते प्रकृतिमान् वर्णः कृशा पाण्डुश्च लक्ष्यसे । आचक्ष्व परिशेषेण सर्वं विद्यामहे यथा ॥ १८ ॥ सुखं वा यदि वा दुःखं द्वेष्यं वा यदि वाऽप्रियम् । यथावत् सर्वमाचक्ष्व श्रुत्वा ज्ञास्यामि यत् क्षमम् ॥ १९ ॥ अहमेव हि ते कृष्णे विश्वा-

---

॥ ७—११ ॥ और जैसे लता गोमती नदीके तीर पर उत्पन्न हुए बड़े भारी प्रफुल्लितहुए शालके वृक्ष को लिपट जाती है उसी प्रकार पांचाली ने भी पांडुके दूसरे पुत्र भीमसेनका आलिङ्गन किया ॥ १२ ॥ और दुर्गम वनमें सिंहनी जैसे अपने स्वामी सिंहको जगाती है तैसे ही पवित्र आचार वाली द्रौपदी आलिंगन करनेके पीछे अपने पति भीमसेनको जगाने लगी ॥ १३ ॥ हथिनी जैसे महाहस्तीका आलिङ्गन करती है तैसे ही उसने भीमका आलिङ्गन किया और गांधार स्वरको अलापती वीणा जैसे मधुरालाप करती है तैसे पवित्र चरित्रवाली द्रौपदी भी मधुरआलाप करके भीमसेनसे कहनेलगी ॥ १४ ॥ कि—हे भीमसेन ! उठो, उठो मरेहुए मनुष्यकी समान क्यों सोरहे हो? कोई भी पापी पुरुष जीतेहुए पुरुषकी स्त्रीको आलिङ्गन करनेके अनन्तर जीता नहीं रहता है ॥ १५ ॥ राजकुमारीके ऐसे वचनोंको सुन मेघकी समान श्यामवर्ण वाला भीम जगकर गद्दोंवाले पलँग पर बैठा होगया ॥ १६ ॥ और उस कुरुपुत्रने अपनी प्रिया पटरानी राजकन्या द्रौपदीसे कहा कि—अरी प्रिया ! तू घबड़ाई हुई मेरे पास किस कामकेलिये आई है ॥ १७ ॥ तेरे शरीरका रंग बदल गया है और शरीर दुर्बल तथा फीका पड़गया है मैं तेरी सब बातों को जिस प्रकार जानसकूं उसी प्रकार जो कुछ हुआ हो वह सब मुझे सुना ॥ १८ ॥ तुझ पर सुख अथवा दुःख और बुरा या भला जो कुछ बीता हो वह सब मेरे सामने कह कि उसको सुनकर मैं उसके लिये उचित उपाय करूँ ॥ १९ ॥ हे कृष्णे ! मैं ही सब कार्यों में तेरा परम विश्वासपात्र हूँ

स्यः सर्वकर्मसु । अहमापत्सु चापि त्वां मोक्षयामि पुनः पुनः ॥ २० ॥ शीघ्रमुक्त्वा यथाकामं यत्ते कार्यं विवित्ततम् । गच्छ वै शयनायैव पुरा नान्येन बुध्यते ॥ २१ ॥ छ ॥ छ ॥

इति विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीभीम-संवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

द्रौपद्युवाच । अशोच्यत्वं कुतस्तस्या यस्या भर्त्ता युधिष्ठिरः । जानन् सर्वाणि दुःखानि किं मां त्वं परिपृच्छसि ॥ १ ॥ यन्मां दासी-प्रवादेन प्रातिकामी तदानयत् । सभापरिषदो मध्ये तन्मां दहति भारत ॥ २ ॥ पार्थिवस्य सुता नाम कानुजीवति मादृशी । अनुभूये-दृशं दुःखमन्यत्र द्रौपदीं प्रभो ॥ ३ ॥ वनवासगतायाश्च सैन्धवेन दु-रात्मना । परामर्शो द्वितीयो वै सोढुमुत्सहते नु का ॥ ४ ॥ मत्स्यराज्ञः समक्षन्तु तस्य धूर्त्तस्य पश्यतः । कीचकेन परामृष्टा कानुजीवति मादृशी ॥ ५ ॥ एवं बहुविधैः क्लेशैः क्लिश्यमानां च भारत । न मे जानासि कौन्तेय किं फलं जीवितेन मे ॥ ६ ॥ योऽयं राज्ञो विराटस्य

और मैं ही तुझको वारम्वार अनेक आपत्तियोंसे छुटाता हूँ ॥ २० ॥ इस लिये तेरी जिस कामके करनेकी इच्छा हो वह सब काम इच्छा-नुसार शीघ्रही मेरे सामने कहदे और दूसरा कोई जानने न पावे उससे पहिले ही अपने स्थान पर सोनेको चली जा ॥२१॥ सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

द्रौपदीने कहा कि—हे भीमसेन जिस स्त्रीका युधिष्ठिर भर्ता हो उस स्त्रीको सुख कहाँसे होसकता है तुम सकल दुःखोंको जानते हो तब भी मुझसे किसलिये बूझते हो ॥ १ ॥ हे भारत ! दुर्योधनकी सभामें प्रातिकामी मुझे दासी के नामसे पुकारकर सभासदोंके बीच में ले आया था उस समयका दुःख मेरे हृदयको जलाकर भस्म किये डालता है ॥ २ ॥ हे स्वामिन् ! नाथ ! मेरी समान दुःखों को सहकर मुझ द्रौपदी के सिवाय कोई दूसरी राजकुमारी क्या जीती रह सक-तीहै ॥ ३ ॥ और वन में रहते समय दुरात्मा सिन्धुराजने मेरा हरण करके जो तिरस्कार किया था उसको कौनसी स्त्री सहन करसकती है ? ॥ ४ ॥ और यहाँ भी धूर्त राजा विराट के देखते हुए ही कीचक ने मुझे लातों से मारकर मेरा अपमान किया है अतः मेरीसी दूसरी कौन स्त्री जीती रह सकती है? ॥ ५ ॥ हे भारत ! इस प्रकार मैं अनेकों प्रकारके दुःखोंसे पीड़ा पाती हूँ, तब भी तुम मेरी सुधि नहीं लेते हो अतः हे कौन्तेय ! अब मेरे जीने से क्या प्रयोजन है ॥ ६ ॥

कीचको नाम भारत। सेनानीः पुरुषव्याघ्र श्यालः परमदुर्मतिः॥ ७॥ स मां सैरन्ध्रिवेषेण वसन्तीं राजवेश्मनि। नित्यमेवाह दुष्टात्मा भार्या मम भवेति वै॥ ८॥ तेनोपमन्त्र्यमाणाया वधार्हेण सपत्नहन्। कालेनेव फलं पक्वं हृदयं मे विदीर्यते॥ ९॥ भ्रातरञ्च विगर्हस्व ज्येष्ठं दुर्द्यूतदेविनम्। यस्यास्मि कर्मणा प्राप्ता दुःखमेतदनन्तकम्॥ १०॥ को हि राज्यं परित्यज्य सर्वस्वं चात्मना सह। प्रव्रज्यायैव दीव्येत विना दुर्द्यूतदेविनम्॥ ११॥ यदि निष्कसहस्रेण यच्चान्यत्सारवद्धनम्। सायं प्रातरदेविष्यदपि सम्वत्सरान् बहून्॥ १२॥ रुक्मं हिरण्यं वासांसि यानं युग्यमजाविकम्। अश्वाश्वतरसंघाश्च न जातु क्षयमावहेत्॥ १३॥ सोऽयं द्यूतप्रवादेन श्रियः प्रत्यवरोपितः। तूष्णीमास्ते तथामूढः स्वानि कर्माणि चिन्तयन्॥ १४॥ दशनागसहस्राणि हयानां हेममालिनाम्। यं यान्तमनुयान्तीह सोऽयं द्यूतेन जीवति

हे भरतवंशश्रेष्ठ! कीचक नामका एक पुरुष है वह राजा विराटका साला तथा सेनापति है और वह बड़ा दुष्टबुद्धि है॥ ७॥ मैं राजा विराटके यहाँ सैरंध्रीका वेश धारण करके सदा कार्य करती हूँ वह दुष्टात्मा पुरुष तहाँ आकर निरन्तर मुझसे विनती करता है कि—तू मेरी स्त्री बनजा॥ ८॥ हे शत्रुओंका नाश करनेवाले प्राणपते! वह नाशकरने के योग्य पुरुष प्रतिदिन अपनी स्त्री होनेके लिये मेरी विनती करा करता है इस कारण समय पाकर पका हुआ फल जैसे फटजाता है, इसीप्रकार बहुतसे दुःखोंसे पका हुआ मेरा हृदय फटा जाता है इस कारण कपटका द्यूत खेलनेवाले अपने भाईको तुम उलाहना दो क्योंकि—उनकी कर्तूतसे ही मैं इस अनन्त दुःखको भोग रही हूँ॥ १०॥ दूषित जुए को खेलनेवाले राजा युधिष्ठिरके सिवाय दूसरा कौन राजा अपने राज्यको तथा अपने शरीर सहित सर्वस्वको त्याग वनमें वसनेके लिये जुआ खेलनेकी होड़ करेगा॥ ११॥ जो तुम्हारे भाई प्रातः और सायंकाल भी एक हजार सोने की मोहरोंसे खेलते तब भी उनके पाससे सोना, चांदी, वस्त्र, हाथी, घोड़ा, इत्यादिक यान, रथ, आदि वाहन, ढोर डंगर बकरी, भेड़ घोड़े खच्चरी आदिक इतना अधिक धन था कि-वह बहुत वर्षों तक खेलते तब भी समाप्त नहीं होता॥ १२-१३॥ परन्तु राजा युधिष्ठिर जुआ खेलकर लक्ष्मीहीन हो बैठे और अब मूर्खकी समान अपने कार्यपर पश्चात्ताप करतेहुए चुप बैठे हैं॥ १४॥ सुवर्ण की जंजीरोंवाले दश हजार हाथी तथा घोड़े जिन राजा युधिष्ठिरकी सवारी में आगे पीछे चलते थे वह ही यह राजा युधिष्ठिर

॥ १५ ॥ रथाः शतसहस्राणि नृपाणाममितौजसाम् । उपासन्त महाराजमिन्द्रप्रस्थे युधिष्ठिरम् ॥ १६ ॥ शतं दासीसहस्राणां यस्य नित्यं महानसे । पात्रीहस्ता दिवारात्रमतिथीन् भोजयंत्युत ॥ १७ ॥ एष निष्कसहस्राणि प्रदाय ददतांवरः । द्यूतजेन ह्यनर्थेन महता समुपाश्रितः ॥ १८ ॥ एनं हि स्वरसम्पन्ना बहवः सूतमागधाः । सायं प्रातरुपातिष्ठन् सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १९ ॥ सहस्रमृषयो यस्य नित्यमासन् सभासदः । तपःश्रुतोपसम्पन्नाः सर्वकामैरुपस्थिताः ॥ २० ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातका गृहमेधिनः । त्रिंशद्दासीक एकैको यान् बिभर्ति युधिष्ठिरः ॥ २१ ॥ अप्रतिग्राहिणाञ्चैव यतीनामूर्ध्वरेतसाम् । दश चापि सहस्राणि सोऽयमास्ते नरेश्वरः ॥ २२ ॥ आनृशंस्यमनुक्रोशं संविभागस्तथैव च । यस्मिन्नेतानि सर्वाणि सोऽयमास्ते नरेश्वरः ॥ २३ ॥ अन्धान् वृद्धांस्तथाऽनाथान् बालान् राष्ट्रेषु दुर्गतान् बिभर्ति विविधान् राजा धृतिमान् सत्यविक्रमः । सम्विभागमना

आज जुएसे अपनी रोटियां चलाते हैं ॥ १५ ॥ और इन्द्रप्रस्थमें लाखों रथ तथा लाखों महाबली राजे जिन राजा युधिष्ठिर की सेवा करते थे ॥ १६ ॥ जिनके भोजनगृहमें एक लाख दासी हाथोंमें सुवर्ण की थालियें ले रात दिन अतिथियोंको भोजन कराती थीं ॥ १७ ॥ और जो महादाता राजा युधिष्ठिर पहिले सदा एक हजार मुहरों का दान करते थे, वह युधिष्ठिर अब जुए से कमाये हुए महा अनर्थ कारी धनसे अपनी आजीविका चलाते हैं ॥ १८ ॥ पहिले कानों में चमकते हुऐ कुण्डलों को धारण करने वाले मधुर कंठ वाले सूत मागधगण प्रातः और सायंकाल को जिनके गुणगान करते थे ॥ १९ ॥ तथा तपस्वी वेदपाठी और जिनकी सम्पूर्ण कामनाएं पूरी होगईहैं ऐसे हजारों ऋषि नित्य जिनकी सभाके सभासद् रहते थे ॥ २० ॥ और अट्ठासी हजार स्नातक गृहस्थ कि-जिनमें के एकर की सेवामें तीस२ दासियें लगीं रहतीथीं ऐसे स्नातक ब्राह्मणोंका जो राजा पालन करतेथे ॥ २१ ॥ और जो दान न लेने वाले दश हजार उर्ध्वरेता यतियों का भी पोषण करते थे वह ही यह युधिष्ठिर आज छिपे हुए वेश से रहते हैं ॥ २२ ॥ कोमलता, दया तथा किसी वस्तुके विभाग करदेने पर जो शेष रहे उसको ही ग्रहण करना, जिनमें यह सब गुण रहतेहैं वहही यह राजा युधिष्ठिर आज गुप्त वेशसे रहरहेहैं ॥ २३ ॥ और जो धैर्य सम्पन्न, सत्यपराक्रमी तथा हरएक वस्तु का विभाग करदेने पर उस को उपयोगमें लानेवाले राजा युधिष्ठिर, दयालुतासे अपने देशमें रहने

नित्यमानृशंस्याद्युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥ स एष निरयं प्राप्तो मत्स्यस्य परिचारकः। सभायां देविता राज्ञः कङ्को ब्रूते युधिष्ठिरः ॥ २५ ॥ इन्द्रप्रस्थे निवसतः समये यस्य पार्थिवाः। आसन् बलिभृतः सर्वे सोऽद्यान्यैर्भृतिमिच्छति ॥ २६ ॥ पार्थिवाः पृथिवीपाला यस्यासन्वशवर्त्तिनः। स वशे विवशो राजा परेषामद्य वर्त्तते ॥२७॥ प्रताप्य पृथिवीं सर्वां रश्मिवानिव तेजसा। सोऽयं राज्ञो विराटस्य सभास्तारो युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥ यमुपासन्त राजानः सभायामृषिभिः सह। तमुपासीनमद्यान्यं पश्य पाण्डव पाण्डवम् ॥ २९ ॥ सदस्यं समुपासीनं परस्य प्रियवादिनम्। दृष्ट्वा युधिष्ठिरं कोपो वर्द्धते मामसंशयम् ॥ ३० ॥ अतदर्हं महाप्राज्ञं जीवितार्थेऽभिसंस्थितम्। दृष्ट्वा कस्य न दुःखं स्याद्धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ३१ ॥ उपास्ते स्म सभायां यं कृत्स्ना वीरवसुन्धरा। तमुपासीनमप्यन्यं पश्य भारत भारतम् ॥ ३२ ॥ एवं बहु-

---

वाले अंधे, लूले, अनाथ बालक तथा दुःखी आदिक बहुतसे मनुष्यों का पोषण करते थे वह राजा युधिष्ठिर आज छिपेहुए रहते हैं ॥२४॥ और वह आज राजा विराट के नौकर हो राजसभामें कहतेहैं कि-मैं कंक नामधारी राजा युधिष्ठिरके साथ जुआ खेलने वाला ब्राह्मण हूँ ॥२५॥ इन्द्रप्रस्थमें रहते समय सब राजा नियमानुसार जिन राजा युधिष्ठिरको भेटें देते थे वह आज दूसरों से अपनी अजीविका का निर्वाह करना चाहते हैं ॥ २६ ॥ जिन राजाके अधीन बडे २ भूपाल रहते थे वह राजा आज परतंत्र होकर दूसरों के अधीन पडे हैं ॥ २७ ॥ जो सूर्यकी समान अपने तेज से पृथ्वीको तपाते थे वह आज राजा विराटकी सभाके एक सभासद् बनेहुए हैं ॥ २८ ॥ हे भीम ! राज सभामें जिन राजा युधिष्ठिरकी ऋषि और राजे सेवा करते थे वह हा आज कुछ से कुछ होगए हैं यह तुम देखलो ॥ २९ ॥ मैं युधिष्ठिर को सभामें सभासद् बन कर बैठेहुए और दूसरोंके चित्तको प्रिय लगनेवाली बातें करतेहुए जब देखती हूँ तब मुझे निश्चय ही क्रोध चढ़ आता है ॥ ३० ॥ महाबुद्धिशाली धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर अपनी आजीविकाके लिये दूसरेके यहाँ रहते हैं कि—जो उनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है यह देखकर किसको दुःख न होगा ॥ ३१ ॥ हे वीर भारत ! सभामें सम्पूर्ण पृथ्वीके राजे जिनकी सेवा करते थे वह भरतवंशी राजा युधिष्ठिर इस सभामें बैठेहैं परन्तु मानो ये वह नहीं हैं ऐसा प्रतीत होता है तुम उनकी ओरको देखो ॥ ३२ ॥ ऐसे २ अनेकों दुःखोंसे मैं अनाथ की समान बहुत ही दुःखित होती हूँ और

विधैर्दुःखैः पीड्यमानामनाथवत्। शोकसागरमध्यस्थां किं मां भीम न पश्यसि ॥ ३३ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीभीमसंवादे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

द्रौपद्युवाच। इदन्तु मे महद्दुःखं यत् प्रवक्ष्यामि भारत। न मेऽभ्यसूया कर्तव्या दुःखादेतद् ब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥ सूदकर्मणि हीने त्वमसमे भरतर्षभ। ब्रुवन् बल्लवजातीयः कस्य शोकं न वर्द्धयेः ॥ २ ॥ सूपकारं विराटस्य बल्लवं त्वां विदुर्जनाः। प्रेष्यत्वं समनुप्राप्तं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३ ॥ यदा महानसे सिद्धे विराटमुपतिष्ठसि। ब्रुवाणो बल्लवः सूदस्तदा सीदति मे मनः ॥ ४ ॥ यदा प्रहृष्टः सम्राट् त्वां संयोधयति कुञ्जरैः। हसन्त्यन्तःपुरे नार्यो मम तूद्विजते मनः ॥ ५ ॥ शार्दूलैर्महिषैः सिंहैरागारे योध्यसे यदा। कैकेय्याः प्रेक्षमाणायास्तदा मे कश्मलं भवेत् ॥ ६ ॥ तत उत्थाय कैकेयी सर्वास्ताः

शोकसमुद्रमें डूबीहुई हूँ हे भीमसेन तुम सुध क्यों नहीं लेते ॥३३॥
अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥

द्रौपदीने कहा कि-हेभरतवंशी राजन्! मैं जो कुछ आपसे कहना चाहती हूँ, उसको सुनकर आपके चित्तमें बड़ा दुःख होगा परन्तु दुःख की मारी हुई मैं वह सब आपसे कहती हूँ उससे आप मेरे ऊपर क्रोधित न होना ॥ १ ॥ हे भरतवंश श्रेष्ठ राजन्! आपने जो रसोइये का अयोग्य और हलका कार्य करना स्वीकार किया है और तुम अपने को बल्लव नामका रसोइया बतलाते हो, यह बात किसके शोकको न बढ़ावेगी? ॥ २ ॥ लोग आपको राजा विराट का बल्लव नामका रसोइया जानतेहैं और आपको राजा का दासपना मिलाहै भला इससे अधिक मुझे क्या दुःख होगा? ॥ ३ जब भोजन गृहमें सब प्रकारके भोजन बनजातेहैं, तब आप राजा विराटके पास जाकर कहतेहैं कि—मैं बल्लव नाम का रसोइया आपको भोजन करने को बुलाने आयाहूँ, यह सुनकर मैं मनही मन में जलकर भस्म होती हूँ ॥ ४ ॥ और राजा जब आनन्द में होताहै तब आपको अन्तःपुर की सब रानियों के सामने तुम्हारा हाथियों के साथ युद्ध करताहै और उस समय अन्तःपुर की सब स्त्रियें तो हँसती हैं परन्तु मेरा मन तो व्याकुल ही होता है ॥ ५ ॥ जब आप सिंह बाघ और भैंसो के साथ लड़ते हैं और सुदेष्णा बैठी२ देखतीहै तब भी मेरे मनमें खेद होताहै॥६॥ उस समय सर्वांग सुंदरी मुझको उदास देखकर सुदेष्णा अपनी संपूर्ण

प्रत्यभाषत । प्रेष्याः समुत्थिताश्चापि कैकेयीन्ताः स्त्रियोऽब्रुवन् ॥ ७ ॥ प्रेक्ष्य मामनवद्याङ्गीं कश्मलोपहतामिवा स्नेहात् संवासजाद्धर्मात् सूदमेषा शुचिस्मिता ॥ ८ ॥ योध्यमानं महावीर्यमिमं समनुशोचति । कल्याणरूपा सैरन्ध्री वल्लवश्चापि सुन्दरः ॥ ९ ॥ स्त्रीणां चित्तं च दुर्ज्ञेयं युक्तरूपौ च मे मतौ । सैरंध्रीप्रियसंवासान्नित्यं करुणवादिनी ॥ १० ॥ अस्मिन् राजकुले चेमौ तुल्यकालनिवासिनौ । इति ब्रुवाणा वाक्यानि सा मां नित्यमतर्जयत् ॥ ११ ॥ क्रुध्यन्तीं माञ्च सम्प्रेक्ष्य समशङ्कत मां त्वयि । तस्यां तथा ब्रुवन्त्यान्तु दुःखं मां महदाविशत् १२ त्वय्येवं निरयम्प्राप्ते भीमे भीमपराक्रमे । शोके यौधिष्ठिरे मग्ना नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ १३ ॥ यः सदेवान्मनुष्यांश्च सर्वांश्चैकरथोऽजयत् । सोऽयं राज्ञो विराटस्य कन्यानां नर्तको युवा ॥ १४ ॥ योऽतर्पयदमेयात्मा खाण्डवे जातवेदसम् । सोऽन्तः पुरगतः पार्थः कूपेऽग्निरिव संवृतः ॥ १५ ॥ यस्माद्भयममित्राणां सदैव पुरुषर्षभात् । स लोकपरि-

दासियों से और दासियें अपनी रानी सुदेष्णा से कहती हैं कि-यह पवित्र हास्य वाली स्त्री स्नेह के कारण तथा सहवास के परिचय के कारण जब महापराक्रमी बल्लवको युद्ध करता हुआ देखतीहै तब शोक करतीहै, सैरंध्री स्वयं रूपवतीहै और बल्लव भी रूपवान् है, जोड़ी तो ठीकहै ॥७-९॥ स्त्रियोंके चित्तकी बात सहजमें नहीं पहिचानी जाती वास्तवमें यह दोनों एकसे रूपवालेहैं यह मेरा विचारहैऔर यह सैरंध्री तथा बल्लभ सदा उस राजा युधिष्ठिर के साथ रहते थे उस स्नेह के कारण और इस राजमहल में भी यह दोनों एक समय से ही साथ२ रहते हैं, उस स्नेह के कारण बल्लव जब २ हाथी आदिके साथ युद्ध करताहै तब२ सैरंध्री करुणा युक्त बातें कहती है ऐसे २ वाक्योंको कहकर नित्यप्रति सुदेष्णा मेरा अपमान किया करतीहै ॥ १०—११ ॥ और जब मुझे कोप करते देखतीहै तब आप पर मेरा गुप्त प्रेमहै ऐसा संदेह करती है और ऐसी ही बातें कहती है, जिनको सुनकर मेरे मन में बहुत ही दुःख होताहै ॥१२॥ भयंकर—पराक्रमी भीम ! तुम जब इस प्रकार परवश होकर बैठेहो तब राजा युधिष्ठिरके शोकसागर में डूबी हुई मैं जीना नही चाहती ॥ १३ ॥ और जिस तरुण अर्जुन ने अकेले ही रथ में बैठकर दूसरे किसीकी सहायताके बिना. संपूर्ण देवता और मनुष्यों को पराजित किया था वह ही यह तरुण अर्जुन आज राजा विराटकी कन्याओंको नाचना गाना सिखाता है ॥ हे पृथापुत्र ! जिस महाबलशाली अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निको तृप्त कियाथा आज वही अर्जुन कूपमें गिरी हुई अग्नि की समान राजा विराटके भवनमें रहता है ॥१५॥ और जिस महापुरुषसे सदा शत्रुओं को बड़ा भारी भय रहता

भूतेन वेषेणास्ते धनञ्जयः ॥ १६ ॥ यस्य ज्याक्षेपकठिनौ बाहू परिघसन्निभौ । स शंखपरिपूर्णाभ्यां शोचन्नास्ते धनञ्जयः ॥ १७ ॥ यस्य ज्यातलनिर्घोषात् समकम्पन्त शत्रवः । स्त्रियो गीतस्वनन्तस्य मुदिताः पर्युपासते ॥ १८ ॥ किरीटं सूर्यसङ्काशं यस्य मूर्द्धन्यशोभत । वेणीविकृतकेशान्तः सोऽयमद्य धनञ्जयः ॥ १९ ॥ तं वेणीकृतकेशान्तं भीमधन्वानमर्जुनम् । कन्यापरिवृतं दृष्ट्वा भीम सीदति मे मनः ॥ २० ॥ यस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि समस्तानि महात्मनि । आधारः सर्वविद्यानां स धारयति कुण्डले ॥ २१ ॥ स्वयं राजसहस्राणि तेजसाऽप्रतिमानि वै । समरे नाभ्यवर्त्तन्त वेलामिव महार्णवः ॥ २२ ॥ सोऽयं राज्ञो विराटस्य कन्यानां नर्तको युवा । आस्ते वै प्रतिच्छन्नः कन्यानां परिचारकः ॥२३॥ यस्य स्म रथघोषेण समकम्पत मेदिनी । सपर्वतवना भीम सहस्थावरजङ्गमा ॥ २४॥ यस्मिन् जाते महाभागे कुन्त्याः शोको व्यनश्यत । स शोचयति मामद्य भीमसेन तवानुजः

था वह अर्जुन अब लोकमें तिरस्कार पानेवाले नपुंसकका वेश धारण करके अन्तःपुरमें रहताहै ॥ १६ ॥ जिसकी परिघ की समान विशाल भुजाएं धनुष की प्रत्यञ्चा खेंचने से कड़ी होगई हैं वह अर्जुन आज दोनों हाथोंमें हाथीदांतकी चूड़ियां पहरकर बैठा२ शोक किया करता है ॥१७॥ जिस अर्जुनके धनुषकी प्रत्यञ्चा की टंकार को सुनकर शत्रु भी कांप जाते थे उस अर्जुनके मधुर गीतों को अब स्त्रियें आनन्दसे सुनती हैं ॥ १८ ॥ अरे रे ! जिस अर्जुनके मस्तक पर सूर्यकी समान दमकता हुआ मुकुट दिपता था उस ही अर्जुनका मस्तक अब गूंथी हुई चोटी से विरूप होगया है और भयंकर धनुषधारी यह अर्जुन अब माथे पर चोटी गूंथकर कन्याओं से घिराहुआ जब बैठता है तो इसको देखकर हे भीम ! मेरा चित्त खिन्न होता है ॥ १९-२०॥ जिस महात्माके पास सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र हैं और जिसमें सब विद्याएं रहती हैं वह अर्जुन अब कानोंमें कुंडल पहिर कर बैठा है ॥ २१ ॥ और समुद्र जैसे अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है तैसे ही युद्ध में हजारों महातेजस्वी राजा भी जिसको नहीं रोकसकतेथे अब वह अर्जुन नपुंसक के वेशमें छिपकर राजा विराटकी कन्याओं को नाचना सिखाता है और उनका दास बनकर रहता है ॥२२—२३ ॥ हे भीम ! जिसके रथकी घरघराहट से पर्वत और वनो सहित स्थावर जंगम सब पृथ्वी कांपती थी॥२४॥और जिस महाभाग्यशालीके जन्मसे कुन्ती के मनमें अथाह आनन्द हुआ था हे भीम वह ही तुम्हारा छोटा

॥ २५ ॥ भूषितं तमलङ्कारैः कुण्डलैः परिहाटकैः । कम्बुपाणिनमायान्तं दृष्ट्वा सीदति मे मनः ॥ २६ ॥ यस्य नास्ति समो वीर्ये कश्चिदुर्व्या धनुर्द्धरः । सोऽद्य कन्यापरिवृतो गायन्नास्ते धनञ्जयः ॥ २७॥ धर्मे शौर्ये च सत्ये च जीवलोकस्य सम्मतम् । स्त्रीवेशविकृतम् पार्थं दृष्ट्वा सीदति मे मनः ॥ २८ ॥ यदा ह्येनं परिवृतं कन्याभिर्देवरूपिणम् । प्रभिन्नमिव मातङ्गं परिकीर्णं करेणुभिः ॥ २९ ॥ मत्स्यमर्थपतिं पार्थं विराटं समुपस्थितम् । पश्यामि तूर्यमध्यस्थं दिशो नश्यन्ति मे तदा ॥ ३० ॥ नूनमार्या न जानाति कृच्छ्रं प्राप्तं धनञ्जयम् । अजातशत्रुं कौरव्य मग्नं दुर्द्यूतदेविनम् ॥ ३१ ॥ तथा दृष्ट्वा यवीयांसं सहदेवं गवाम्पतिम् । गोषु गोवेषमायान्तं पाण्डुभूतास्मि भारत ३२ सहदेवस्य वृत्तानि चिन्तयन्ती पुनः पुनः । न निद्रामभिगच्छामि भीमसेन कुतो रतिम् ॥ ३३ ॥ न विन्दामि महाबाहो सहदेवस्य दुष्कृतम् । यस्मिन्नेवं विधं दुःखं प्राप्नुयात् सत्यविक्रमः ॥ ३४ ॥ दूयामि

भाई अर्जुन आज मुझे शोकातुर करता है ॥ २५ ॥ यह अर्जुन जब कानोंमें सुवर्णके कुण्डल तथा शरीर पर आभूषणोंको पहिरता है और हाथमें शंखकी चूड़ियां पहिर मेरे पास आता है तबउसके विकृत रूपको देख मेरे मनमें बहुत खेद होताहै ॥ २६ ॥ इस पृथ्वीके ऊपर कोईभी धनुर्धर अर्जुनकी समान पराक्रमी नहीं है वह अर्जुन आज कन्याओं से घिरकर गीत गाता है ॥ २७ ॥सम्पूर्ण मनुष्य धर्ममें, शूरतामें, तथा सत्यमें जिसको अद्वितीय जानते हैं उस अर्जुनको जब मैं स्त्रीके विकृत वेशमें देखतीहूँ तब अपने मनमें जल जाती हूँ ॥ २८ ॥मद टपकानेवाला हाथी जैसे हथिनियोंके समूहसे घिरा होता है तैसेही आसपास बठी हुई कन्याओंसे घिरेहुए देवसमान अर्जुनको नृत्यमंदिरमें अर्थपति राजा विराटकी सेवा करते हुए देखती हूँ तब शोकसे अधा हो भयभीत होजाती हूँ और उस समय मुझे दिशाएं नहीं सूझतीं ॥ २९-३० ॥ निश्चय ही इस खोटे द्यूतके खेलनेवाले कुरुपुत्र युधिष्ठिर और अर्जुन ऐसी बुरी दशामें हैं इस बातका सासूजी को तो भान भी न होगा॥३१॥ और हे भारत ! आपके छोटे भाई सहदेवको गोपालका वेश धारण कर गौओंके साथ आता हुआ देखती हूँ तब मेरा शरीर दुःखसे फीका पड़जाता है ॥ ३२ ॥ हे भीम ! जब मैं सहदेवके सम्पूर्ण चरित्रोंका वारम्वार स्मरण करती हूँ तब मुझे निद्राभी नहीं आती फिर तो सुख कहाँ से मिले ॥ ३३ ॥ हे महाबाहो ! सहदेव सत्यपराक्रमी हैं उन्होंने किसी समय भी पाप किया हो यह मेरे ध्यानमे नहीं आता फिर न जाने किस पापकर्मसे वह ऐसा दुःख भोगते हैं ॥ ३४ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ !

भरतश्रेष्ठ दृष्ट्वा ते भ्रातरम्प्रियम् । गोषु गोवृषसङ्काशं मत्स्येनाभिनिवेशितम् ॥ ३५ ॥ संरब्धं रक्तनेपथ्यं गोपालानां पुरोगमम् । विराटमभिनन्दन्तमथ मे भवति ज्वरः ।३६। सहदेवं हि मे वीर नित्यमार्या प्रशंसति । महाभिजनसम्पन्नः शीलवान् वृत्तवानिति ॥ ३७॥ ह्रीनिषेधो मधुरवाक् धार्मिकश्च प्रियश्च मे । स तेऽरण्येषु वोढव्यो याज्ञसेनि क्षपास्वपि ॥ ३८ ॥ सुकुमारश्च शूरश्च राजानं चाप्यनुव्रतः ज्येष्ठापचायिनं वीरं स्वयं पाञ्चालि भोजयेः ॥ ३९ ॥ इत्युवाच हि मां कुन्ती रुदती पुत्रगृद्धिनी । प्रव्रजन्तं महारण्यं तं परिष्वज्य तिष्ठती ॥ ४० ॥ तं दृष्ट्वा व्यापृतङ्गोषु वत्सचर्म क्षपाशयम् । सहदेवं युधां श्रेष्ठं किन्नु जीवामि पांडव ॥ ४१ ॥ यस्त्रिभिर्नित्यसम्पन्नो रूपेणास्त्रेण मेधया । सोऽश्वबन्धो विराटस्य पश्य कालस्य पर्य्ययम् ॥ ४२ ॥ अभ्यकीर्यन्त

बैलकी समान ऊँचे और दृढ़ शरीरवाले तुम्हारे छोटे भाईको राजाविरट ने गौओं तथा गोपालोंके ऊपर नियुक्त किया है उनको जब मैं गौओं के तथा सांडके साथ जाता देखती हूँ तब मेरामन खिन्न होता है॥३५॥ तैसे ही जब वह लाल वस्त्र धारण कर हाथमें कोड़ा लिये हुए उतावली चालसे सब ग्वालियोंके आगे चलते हैं और राजा विराटसे मिल प्रणामपूर्वक अभिनंदन करते हैं उस समय मुझे ज्वरसा चढ़ आता है ॥ ३६ ॥ नित्य सासूजी मुझसे मेरे इनही सहदेवकी नित्य प्रशंसा किया करती थी कि—यह पुत्र योग्य और बड़ेभारी कुटुम्बवाला, शीलवान् तथा सदाचरणसम्पन्न है ॥ ३७ ॥ उन्होंने वनको चलते समय मुझसे कहा था कि—यह कुमार लज्जा शील, मधरभाषी, धर्मशील और मुझको प्यारा है हे याज्ञसेनि ! जब वनमें रात्रिके समय तुम चलोगी उससमय यह नहीं चलसकेगा इस कारण मार्गमें इसका ध्यान रखना यह कुमार बहुत ही सुकुमार और शूर वीर है तथा बड़े भाइयोंकी पूजा करनेवालो है अतः हे पांचालि! तुम अपने आप ही इस वीर सहदेवका नित्य भोजन कराना और सम्हाल रखना, इसप्रकार महावनको प्रवास करते समय सहदेवक अपने हृदयसे लगाकर खड़ी हुई और पुत्र पर प्रेम रखनेवाली कुन्ती जीने रोतेर मुझसे कहा था ॥ ३८—४० ॥ उस महाशूर वीर सहदेवको गौओं की सेवा करने में तत्पर तथा रात्रिको बछड़ोंकी चर्म पर सोता हुआ देखती हूँ तो हे पाण्डव! तुझे जीती रहने की इच्छा कैसे हो ? ॥ ४१ ॥ और जो नित्य रूपमें, और अस्त्र विद्या तथा वुद्धि में अद्वितीय गिने जातेहैं वह नकुल राजा विराटके यहां घोड़ोंके शिक्षक का काम करते हैं तुम इस कालके फेरफार को तो देखो ॥४२॥ जिस

वृन्दानि हागप्रन्थिमुदीक्ष्य तम्। विनयन्तञ्जवेनाश्वान् महाराजस्य पश्यतः ॥ ४३ ॥ अपश्यमेनं श्रीमन्तं मत्स्यं भ्राजिष्णुमुत्तमम्। विराटमुपतिष्ठन्तं दर्शयन्तञ्च वाजिनः ॥ ४४ ॥ किन्नु मां मन्यसे पार्थ सुखिनीति परन्तप। एवं दुःखशताविष्टा युधिष्ठिरनिमित्ततः ॥ ४५ ॥ अतः प्रतिविशिष्टानि दुःखान्यन्यानि भारत। वर्त्तन्ते मयि कौन्तेय वक्ष्यामि शृणु तान्यपि ॥ ४६ ॥ युष्मासु ध्रियमाणेषु दुःखानि विविधान्युत। शोषयन्ति शरीरं मे किं नु दुःखमतः परम् ॥ ४७ ॥

इतिविराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदीभीमसंवादे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

द्रौपद्युवाच। अहं सैरन्ध्रिवेषेण चरन्ती राजवेश्मनि। शौचदास्मि सुदेष्णाया अक्षधूर्त्तस्य कारणात् ॥ १ ॥ विक्रियां पश्य मे तीव्रां राजपुत्र्याः परन्तप। आत्मकालमुदीक्षन्ती सर्वं दुःखं किलान्तवत् ॥ २ ॥ अनित्या किल मर्त्यानामर्थसिद्धिर्जयाजयौ। इति कृत्वा प्रतीक्षामि

नकुलको देखकर पहिले हजारों शत्रु भाग जातेथे वह पुरुष अश्वशिक्षक बन राजा विराटके सामने खड़ा होकर घोड़ों को चालें सिखाता है और राजा विराटकी सेवा में उपस्थित होकर उनको अनेक प्रकारके घोड़े दिखाता है,ऐसे शोभायमान महातेजस्वी नकुल को जब मैं देखती हूँ तो मेरे मन में बड़ा खेद होता है ॥ ४३—४४ ॥ हे कुन्तीपुत्र परन्तप! ऐसी दशा में तुम किस प्रकार सुख मानते हो? मैं इस प्रकार राजा युधिष्ठिरके कारण अनेकों दुःखों में डूबगईहूँ ॥ ४५ ॥ हे भरतवंशी राजन्! इनसे भी अधिक जिन दुःखों को मैं सहती हूँ वह सब दुःख भी मैं तुमसे कहती हूँ, सुनो ॥ ४६ ॥ तुम सबोंके जाते हुए बहुत से दुःख मेरे शरीर को सोखे डालते हैं इससे अधिक कष्ट और क्या होगा? ॥ ४७ ॥ उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥

द्रौपदीने फिर कहा कि अक्षधूर्त राजा युधिष्ठिरके जुएके कारण मुझे सैरंध्रीका वेश धारण कर सदा राजमहलमें रहना पड़ताहै और सुदेष्णा के हाथ पैर धोने के लिये मट्टी और स्नान करने के लिये जल लाकर देना पड़ता है ॥ १ ॥ हे परन्तप! तुम मुझ राजपुत्री की भयंकर दुर्दशा को तो देखो परन्तु दुःख कुछ अमर नहीं रहताहै उसकाभी समय पाकर नाश होजाताहै इस कारण ही मैं अपने सुखकारक समयके उदयकी बाट देखा करतीहूँ॥२॥मनुष्यों की कार्यसिद्धि, तथा जय और पराजय कुछ सदा तो होती ही नहीं है किन्तु क्रमसे जय, विजय तथा लाभ हानि हुआ करते हैं यह विचार

भर्तॄणामुदयं पुनः ॥ ३ ॥ चक्रवत् परिवर्त्तन्ते ह्यर्थाश्च व्यसनानि च । इति कृत्वा प्रतीक्षामि भर्तॄणामुदयं पुनः ॥ ४ ॥ य एव हेतुर्भवति पुरुषस्य जयावहः । पराजये च हेतुश्च स इति प्रतिपालये । किं मां न प्रति जानीषे भीमसेन मृतामिव ॥ ५ ॥ दत्त्वा याचन्ति पुरुषा हत्वा वध्यन्ति चापरे । पातयित्वा च पात्यन्ते परैरिति च मे श्रुतम् ॥ ६ ॥ न दैवस्यातिभारोऽस्ति न चैवास्यातिवर्त्तनम् । इति चाप्यागमं भूयो दैवस्य प्रतिपालये ॥ ७ ॥ स्थितं पूर्वं जलं यत्र पुनस्तत्रैव गच्छति । इति पर्यायमिच्छन्ती प्रतीक्षे उदयं पुनः ॥ ८ ॥ दैवेन किल यस्यार्थः सुनीतोऽपि विपद्यते । दैवस्य चागमे यत्नस्तेन कार्यो विजानता ॥९॥ यत्तु मे वचनस्यास्य कथितस्य प्रयोजनम् । पृच्छ मां दुःखितां वत्वं

कर ही मैं अपने स्वामियों के उदय की बाट देखती हूँ ॥ ३ ॥ मनुष्योंकी प्रयोजनसिद्धि, अथवा दुःख चक्रकी समान घूमाकरते हैं यह विचार कर ही मैं अपने स्वामियोंके फिर उदय होनेकी बाट देखा करती हूँ ॥ ४ ॥ एक समय मनुष्यको जिस हेतुसे जय प्राप्त होती है दूसरे समय उस ही कारणसे पराजय भी होता है अतः जो समय अब दुर्योधनका है वही समय कभी हमारा भी होगा, यही विचार कर मैं उदयकालकी बाट देखतीहुई बैठी हूँ तो भी हे भीमसेन ! मैं मरी हुईसी होगई हूँ इसकी सुध तुम किसलिये नहीं लेते हो ॥ ५ ॥ काल की बलिहारी है,जो दाता एकसमय हजारों याचकोंको यथेच्छ पदार्थ देताहै वही दूसरे समयमें याचक बन घर २ भीख मांगता हुआ भटकता फिरता है जो एक समय अपने शत्रुओंका नाश करता है दूसरे समयमें वे ही शत्रु उसे-नष्ट करदेते हैं,जो एक समय अपने शत्रुओंको राज्यसिंहासनसे भ्रष्ट करता है दूसरे समयमें वे ही शत्रु राज्यासनसे उसे भ्रष्ट करदेते हैं यह मेरे सुननेमें आया है ॥ ६ ॥ दैवको कोई कार्य दुष्कर नहीं है इससे वह जो विचारता है वही करताहै उसकी अनिवार्य आज्ञाका कोईभी- उल्लंघन नहीं करसकता यही विचार कर मैं अनिवार्य दैवाज्ञाको वारम्वार अपने शिरपर चढ़ाती हूँ और उदयकालकी बाट देखा करती हूँ ॥ ७ ॥ और जहाँ पहिले जल होता है और कालवश तहाँ सूखाहोगया हो तो भी कालान्तर में तहाँ पर ही जल इकट्ठा मिलता है और कालान्तरमें सूखाहुआ तालाव फिर भर जाता है इस प्रकार ही हमारे कालमें भी समय पाकर फेरफार होगा यह इच्छा करतीहुई मैं उदयकी ओर देखती हूँ ॥ ८ ॥ जिस मनुष्यकी सम्पत्ति उत्तम न्याय से रक्षित होनेपर भी प्रारब्धसे नष्ट होजाय तो समझदार मनुष्यको प्रारब्धको अनुकूल बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये॥९॥परन्तु

पृष्टा चात्र ब्रवीमि ते ॥ १० ॥ महिषी पाण्डुपुत्राणां दुहिता द्रुपदस्य च । इमामवस्थां सम्प्राप्ता मदन्या का जिजीविषेत् ॥ ११ ॥ कुरून् परिभवेत् सर्वान् पांचालानपि भारत । पाण्डवेयांश्च सम्प्राप्तो मम क्लेशो ह्यरिन्दम ॥ १२ ॥ भ्रातृभिः श्वशुरैः पुत्रैर्वहुभिः परिवारिता । एवं समुदिता नारी का त्वन्या दुःखिता भवेत ॥१३॥ नूनं हि वालया धातुर्मया वै विप्रियं कृतम् । यस्य प्रसादाद्दुर्नीतं प्राप्तास्मि भरतर्षभ ॥ १४ ॥ वर्णावकाशमपि मे पश्य पाण्डव यादृशम् । तादृशो मे न तत्रासीत् दुःखे परमके तदा ॥ १५ ॥ त्वमेव भीम जानीषे यन्मे पार्थ सुखं पुरा । साहन्दासीत्वमापन्ना न शान्तिमवशा लभे ॥ १६ ॥ नादैविकमहं मन्ये यत्र पार्थो धनंजयः । भीमधन्वा महावाहुरास्तेच्छन्न इवानलः ॥ १७ ॥ अशक्या वेदितुं पार्थ प्राणिनां वै गतिर्नरैः । विनिपातमिमं मन्ये युस्माकं ह्यविचिन्तितम् ॥ १८ ॥ यस्या ममसुखप्रेक्षा

मेरा आपसे इन वातोंके कहनेका प्रयोजन क्या है ? इसको जाननेकी तुम्हारी इच्छा हो तो तुम मुझ दुःखिनी से वूझदेखो तव मै तुमसे यहां हो कहूँ ॥ १० ॥ मैं राजा पाण्डुके पुत्रोंकी पटरानी हूँ राजा द्रुपद की वेटी हूँ तोभी मेरी ऐसी दशा हुई है कहो क्या कोई ऐसी दुःख दशामें पड़ीहुई स्त्री जीवित रहना चाहेगी॥ ११॥ हे भारत ! हे शत्रुओं को ताप देनेवाले! मेरे ऊपर पड़ा हुआ यह दुःख कौरव पाण्डव और पांचाल सवको कष्टसे दवादेगा ॥ ११ ॥ भाई, ससुर वहुतसे पुत्र वाली दूसरी कौन स्त्री ऐसे कष्ट सहन करेगी ?॥१२॥ तथा सुख ऐश्वर्य वाली मैंने निश्चय ही वाल्यावस्थामें विधाताका अप्रिय किया होगा कि—जिसके प्रसादसे हे भरतवंशी राजन् ! मैं इस दुःखको प्राप्त हुई हूँ ॥ १४ ॥ हे पाण्डव ! जब मैं महादुःखसे वनमें रहती थी उस समय स्वतंत्र रहनेसे मेरे शरीरकी जो कान्ति थी वह कान्ति अव नष्ट होगई है तुम वर्णकी ओरको जरा देखोतो सही ॥ १५ ॥ हे पृथापुत्र भीमसेन पहिले मुझै जो सुख था उसको केवल तुम ही जानते हो परन्तु उस सुखको भोगनेवाली मैं आज परवश होकर दासीपनेका कार्य करती हूँ तो भी मुझै शान्ति नहीं मिलती॥ १६ ॥ यह सव प्रारब्ध की लीला है मैं ऐसा मानती हूँ । क्योंकि-जिस दुःखके समयमें महावाहु धनुषधारी अर्जुन छिपी हुई अग्निकी समान गुप्त होकर वैठे हैं ॥ १७॥ हे पृथापुत्र ! प्राणियोंको भविष्यमें कैसा सुख या दुःख मिलेगा इसको मनुष्य नहीं जानसकते तुम्हारा जो यह तिरस्कार हुआ है वह भी मेरी समझमें अचानक ही होगया है ॥ १८ ॥ इंद्रकी समान तुम सदा मेरे मुखकी ओरको देखा करते थे वही सती श्रेष्ठ स्त्री मैं अव दूसरों

यूयमिन्द्रसमाः सदा। सा प्रेक्षे सुखमन्यासामवराणां वरा सती ॥ १९ ॥ पश्य पाण्डव मेऽवस्थां यथा नार्हामि वै तथा। युष्मासु ध्रियमाणेषु पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ २० ॥ यस्याः सागरपर्यन्ता पृथिवी वशवर्त्तिनी। आसीत्साद्य सुदेष्णायाः भीताहं वशवर्तिनी ॥ २१ ॥ यस्याः पुरःसरा आसन् पृष्ठतश्चानुगामिनः। साहमद्य सुदेष्णायाः पुरः पश्चाच्च गामिनी ॥ २२ ॥ इदन्तु दुःखं कौन्तेय ममासह्यं निबोध तत्। या न जातु स्वयं पिंषे गात्रोद्वर्तनमात्मनः। अन्यत्र कुन्त्या भद्रन्ते सा पिनष्म्यद्य चन्दनम् ॥ २३ ॥ पश्य कौन्तेय पाणी मे नैवाभूतां हि यौ पुरा। इत्यस्य दर्शयामास किणवन्तौ करावुभौ ॥ २४ ॥ बिभेमि कुन्त्या या नाहं युष्माकं वा कदाचन। साद्याग्रतो विराटस्य भीता तिष्ठामि किङ्करी ॥ २५ ॥ किं नु वक्ष्यति सम्राण्मां वर्णकः सुकृतो न वा। नान्यपिष्टं हि मत्स्यस्य चन्दनं किल रोचते ॥ २६ ॥ वैशम्पायन उवाच। सा कीर्त्तयन्ती दुःखानि भीमसेनस्य

का मुख देखा करती हूँ ॥ १९ ॥ हे पाण्डव! तुम विद्यमान हो तोभी मैं अनुचित रीतिसे दुर्दशा को भोगती हूँ अतः तुम कालके लौटफेर की ओर देखो तो सही ॥ २० ॥ समुद्र तककी सब पृथ्वी जिसके अधीन थी वह मैं आज सुदेष्णाकी एक नौकरनी बनी और उससे डरा करतीहूँ ॥२१॥ जिसके आगे पीछे हज़ारों दास चलतेथे वही मैं आज सुदेष्णा के आगे और कभी पीछे चलती हूँ ॥२२॥ और हे कुन्तीपुत्र! दूसरा यह दुःख मुझे और भी असह्य पीड़ा देताहै, उसको सुनो— पहिले मैं कुन्तीजीको छोड़कर अपने लियेभी चन्दनका अंगराग नहीं घिसती थी. वह मैं आज यहाँ राजा के लिये चन्दनका अंगराग घिसा करती हूँ ॥ २३ ॥ हे कुन्ती पुत्र! देखो! मेरे ये हाथ पहिले ऐसे नहीं थे परन्तु अब इनमें ठेटें पड़गई हैं यह कहकर चन्दन घिसने से ठेटें पड़े हुए अपने दोनों हाथ भीमसेनको दिखाये ॥२४॥ और कहा, कि- जो मैं पहिले तुमसे तथा सासू कुन्तीजीसे भी नहीं डरतीथी वह मैं आज राजा विराट के सामने भयभीत होकर दासी बनी खड़ी रहती हूँ ॥ २५ ॥ और मनमें विचार किया करतीहूँ कि—मैंने चन्दन अच्छा घिसा है या नहीं?इसके लिये आज राजा मुझसे क्या कहेंगे? मत्स्यदेशके राजा विराट को दूसरे का घिसा हुआ चन्दन अच्छा नहीं लगता है किन्तु मेरा ही घिसा हुआ चन्दन अच्छा लगता है ॥२६॥ वैशम्पायन कहतेहैं कि—हे जनमेजय! इस प्रकार भीमसेनको स्त्री द्रौपदीने अपने दुःख कहकर सुनाए और भीमसेन की ओरको देखती हुई धीरे२ रोने

भामिनी । रुरोद शनकैः कृष्णा भीमसेनमुदीक्षती ॥ २७ ॥ सा बाष्प
कलया वाचा निःश्वसन्ती पुनः पुनः । हृदयं भीमसेनस्य घट्टयन्ती
दमब्रवीत् ॥ २८ ॥ नालं कृतं मया भीम देवानां किल्बिषं पुरा । अभा-
ग्या यन्न जीवामि कर्तव्ये सति पांडव ॥ २९ ॥ वैशम्पायन उवाच ।
ततस्तस्या करौ सूक्ष्मौ किणबद्धौ वृकोदरः । मुखमानीय वै पत्न्या
रुरोद परवीरहा ॥ ३० ॥ तौ गृहीत्वा च कौन्तेयो बाष्पमुत्सृज्य वीर्य-
वान् । ततः परमदुःखार्त्त इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि द्रौपदी
भीमसंवादे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

भीमसेन उवाच । धिगस्तु मे बाहुबलं गाण्डीवं फाल्गुनस्य च ।
यत्ते रक्तौ पुरा भूत्वा पाणी कृतकिणाविमौ ॥ १ ॥ सभायान्तु
विराटस्य करोमि कदनं महत् । तत्र मे कारणं भाति कौन्तेयो
यत्प्रतीक्षते ॥ २ ॥ अथवा कीचकस्याहं पोथयामि पदा शिरः
ऐश्वर्य्यमदमत्तस्य क्रीडन्निव महाद्विपः ॥ ३ ॥ अपश्यन्त्वां यदा कृष्णे

लगा ॥२७॥ तथा बार बार श्वास लेकर अड़खड़ाती हुई वाणीसे भीम
के हृदयको कंपाती हुई फिर इस प्रकार कहने लगी कि हे भीम ! पहिले
मैंने देवताओंका जरा भी अपराध नहीं किया है फिरभी मैं इतनी
पीड़ा पाती हूँ ? हे पाण्डव ! मुझ अभागिनी को जिस समय मरना
है मैं उस समय की बाट देख रही हूँ ॥ २८-२९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं
कि—द्रौपदीके ऐसे हृदयभेदक विलापपूर्ण वचनोंको सुनकर शत्रुओं
का नाश करनेवाला वृकोदर अपनी स्त्री द्रौपदी के चन्दन घिसनेसे
ठेठ पडेहुए दोनों हाथोंको अपने दोनों हाथोंसे पकड़ मुख पर धरके
सुबक २ कर रोने लगा और तदनन्तर दुःखसे अत्यन्त आतुर हुआ
भीमसेन द्रौपदीसे इस प्रकार कहने लगा ॥ ३० ॥ वीसवां अध्याय
समाप्त ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

भीमसेनने कहा कि—हे द्रौपदी ! मेरे भुजबलको भी धिक्कार है
और अर्जुनके गाण्डीव धनुषको भी धिक्कार है क्योंकि—तेरे हाथों
की जो हथेलियें पहिले लाल २ वर्णकी थी वह आज दूसरे का काम
करनेसे घायल होगई हैं॥१॥कीचक जिस समय लातें मार रहाथा उस
समय ही मैं सभामें बैठेहुए राजा विराटको मारडालता किन्तु ज्येष्ठबंधु
युधिष्ठिरने अभी प्रकट न होजाना ऐसा संकेत करतेहुए मेरे मुखकीओर
देखा था इसकारणसे ही मैंने उसे नहीं मारा था॥२॥नहीं तो मैं क्रीड़ा
करतेहुए बड़े हस्तीकी समान ऐश्वर्य मदसे मत्त हुए कीचकके मस्तक
को पैर से कुचलही डालता ॥३॥ हे कृष्णे ! जब कीचककी लात खाते

कीचकेन पदा हताम् । तदैवाहं चिकीर्षामि मत्स्यानां कदनं महत् ॥ ४ ॥ तत्र मां धर्मराजस्तु कटाक्षेण न्यवारयत् । तदहं तस्य विज्ञाय स्थित एवास्मि भामिनि ॥५ ॥ यच्च राष्ट्रात् प्रच्यवनं कुरूणामवधश्च यः । सुयोधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ॥ ६ ॥ दुःशासनस्य पापस्य यन्मया नाहृतं शिरः। तन्मे दहति गात्राणि हृदि शल्यमिवार्पितम् मा धर्मं जहि सुश्रोणि क्रोधं जहि महामते ॥ ७ ॥ इमन्तु समुपालम्भं त्वत्तो राजा युधिष्ठिरः । शृणुयाद्यदि कल्याणि कृत्स्नं जह्यात् स जीवितम् ॥८॥ धनंजयो वा सुश्रोणि यमौ वा तनुमध्यमः । लोकान्तरगतेष्वेषु नाहं शक्ष्यामि जीवितुम् ॥ ९ ॥ पुरा सुकन्या भार्य्या च भार्गवं च्यवनं वने ॥ वल्मीकभूतं शाम्यन्तमन्वपद्यत भामिनी ॥१०॥ नारायणी चेन्द्रसेना रूपेण यदि ते श्रुता । पतिमन्वचरद्वृद्धं पुरा वर्षसहस्त्रिणम् ॥ ११ ॥ दुहिता जनकस्यापि वैदेही यदि ते श्रुता । पतिमन्वचरत्सीता महारण्यनिवासनम् ॥ १२ ॥ रक्षसा निग्रहं प्राप्य

हुए तुझे देखाथा तबही मैंने मत्स्यराज तथा उसके मनुष्योंका संहार करनेकी इच्छा की थी॥४॥परन्तु राजा युधिष्ठिरने मेरी ओर कटाक्षकरके मुझे ऐसा करने से रोकदिया इस कारण ही हे भामिनि ! मैं उनके अभिप्राय को जानकर बैठरहा था ॥ ५ ॥ वास्तवमें हमने अपने देशसे पदभ्रष्ट होने परभी कौरवों का नाश नहीं किया और दुर्योधन, कर्ण सुबलपुत्र शकुनि तथा पापी दुःशासन के मस्तक नहीं काट डाले यह सारी बातें मेरे हृदय में कांटा सी साल रहीहैं और मेरे अङ्गों को जलाये डालती हैं । हे सुश्रोणि ! तू अपने धर्म को न त्यागना किन्तु हे बुद्धिमती तू अपने क्रोध को जीतना ॥ ६-७ ॥ यदि राजा युधिष्ठिर तुम्हारे ऐसे आक्षेपको सुनेंगे तो वह निश्चयही प्राणोंको त्याग देंगे ॥८॥ अथवा हे सुश्रोणि कल्याणि! अर्जुन,नकुल तथा सहदेव भी यदि तेरे इस आक्षेपको सुनेंगे तो वे भी अवश्य अपने प्राणोंको त्याग देंगे और जब वह नष्ट होजायंगे तब मैं भी जीवित नहीं रहसकूंगा ॥९॥ सुनो पहिले भृगुपुत्र च्यवन वनमें शान्तरसमें लीन होकर रहतेथे और उनके शिर पर बमई बनगई थी तब भी सुकन्या नामकी एक राजकन्या वनमें रहकर उनकी सेवा करती थी ॥ १० ॥ इसही प्रकार पहिले मुद्गल मुनि पत्नी नारायणी और लक्ष्मीकी समान इन्द्रसेना अधिक रूपके कारण यदि तेरे सुनने में आई हो तो ध्यान दे वह निरन्तर हजार वर्षके वृद्ध अपने पतिकी सेवा किया करतीथीं ॥११॥ राजा जनककी पुत्री सीता का भी वृत्तान्त तूने सुना होगा वह भी महावनमें रहने वाले अपने पति रामकी सेवा करती थी ॥ १२ ॥ इतनेमें ही रावण, राम की प्रिया

रामस्य महिषी प्रिया । क्लिश्यमानापि सुश्रोणी राममेवान्वपद्यत ॥१३॥लोपामुद्रा तथा भीरु वयोरूपसमन्विता । अगस्तिमन्वयाद्धित्वा कामान् सर्वानमानुषान् ॥१४॥ द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनिन्दिता सावित्र्यनुचचारैका यमलोकं मनस्विनी ॥ १५ ॥ यथैताः कीर्तिता नार्यो रूपवत्यः पतिव्रताः । तथा त्वमपि कल्याणि सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ १६ ॥ मा दीर्घं क्षम कालन्त्वं मासमर्द्धञ्च सम्मितम् । पूर्णे त्रयोदशे वर्षे राज्ञां राज्ञी भविष्यसि ॥ १७ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ आर्त्तयै-तन्मया भीम कृतं वाष्पप्रमोचनम् । अपारयन्त्या दुःखानि न राजानमुपालभे ॥ १८ ॥ किमुक्तेन व्यतीतेन भीमसेन महाबल । प्रत्युपस्थित-कालस्य कार्यस्यानन्तरो भव ॥ १९ ॥ ममेह भीम कैकयी रूपाभिभव-शङ्कया । नित्यमुद्विजते राजा कथं नेयादिमामिति॥२०॥तस्या विदित्वा तं भावं स्वयं चानृतदर्शनः । कीचकोऽयं सुदुष्टात्मा सदा प्रार्थयते हि माम् ॥ २१ ॥ तमहं कुपिता भीम पुनः कोपं नियम्य च । अब्रुवं

पटरानी सीताको हरकर लंका में लेगयाथा हे सुश्रोणि ! तहां सीता ने बहुतही दुःख भोगेथे और पीछे फिर अपने पति रामसे ही आकर मिली थी ॥ १३ ॥ और हे भीरु ! लोपामुद्रा नामक तरुणी और रूप-सम्पन्न स्त्री भी अपनी सब अमानुषिक कामनाओंको त्याग अगस्त्य की सेवामें लगी रहती थी ॥१४॥ मनस्विनी और पवित्र आचारवाली सावित्री भी, जब द्युमत्सेन का पुत्र सत्यवान् मरगया और यमराज उसको लेजाने लगे तब वह अकेली ही यम के पीछे२ यमलोकमें जाने को उद्यत होगई थी॥१५॥हे कल्याणि! जिस प्रकार इन रूपवती पति-व्रता स्त्रियोंका वर्णन कियाहै उसही प्रकार हे कल्याणि! तू भी सर्व गुणों से युक्त है ॥१६॥ तुझे अब बहुत समय बिताना नहीं है तेरह वर्ष पूरे होनेमें केवल डेढ़ महीना रहगयाहै डेढ़ मासके बाद तेरहवां वर्ष पूरा हुआ कि-तू महारानी होगी॥ १७॥ द्रौपदी बोली हे भीम ! मेरे ऊपर इतने अधिक दुःख पडे हैं कि—जिनको सह नहीं सकी और उनसे मैं बहुत ही घबड़ाने लगी तब मैं रोती हूँ परन्तु मैं राजा युधिष्ठिरको उलाहना नहीं देती हूँ ॥ १८ ॥ हे महाबली भीमसेन ! जो बात बीत गई उसके कहनेसे ही क्या फल है ? अतः इस समय जो कार्य करनेका अवसर है उसके लिये तुम उद्यत होजाओ ॥ १९ ॥ हे भीम-सेन ! कैकयी भी मेरे अनुपम सौंदर्य से पराजित होगई है और शंकासे नित्य घबड़ाकर यह विचारा करती है कि-राजा विराट इस स्त्रीके पास क्यों ? नहीं जाते होंगे ? ॥ २० ॥ सुदेष्णाको ऐसा भाव समझकर जिसका दर्शन भी पापदायक है, ऐसा दुष्टात्मा कीचक सर्वदा मेरे आगे प्रार्थना किया करता है ॥ २१ ॥ हे भीम ! मुझे

कामसंमूढमात्मानं रक्ष कीचक॥२२॥ गंधर्वाणामहं भार्या पञ्चानां महिषी प्रिया। ते त्वां निहन्युः कुपिताः शूराः साहसकारिणः ॥२३॥ एवमुक्तः सुदुष्टात्मा कीचकः प्रत्युवाच ह। नाहं बिभेमि सैरंध्रि गन्धर्वाणां शुचिस्मिते ॥२४॥ शतं शतसहस्राणि गन्धर्वाणामहं रणे। समागतं हनिष्यामि त्वं भीरु कुरु मे क्षणम्॥ २५ ॥ इत्युक्ते चाब्रुवं मत्तं कामातुरमहं पुनः। न त्वम्प्रतिबलश्चैषां गन्धर्वाणां यशस्विनाम्॥ २६॥ धर्मे स्थितास्मि सततं कुलशीलसमन्विता। नेच्छामि कश्चिद्वध्यन्तं तेन जीवसि कीचक ॥ २७ ॥ एवमुक्तः स दुष्टात्मा प्राहसत् स्वनवत्तदा। अथ मां तत्र कैकेयी प्रेषयत् प्रणयेन तु ॥ २८ ॥ तेनैव देशिता पूर्वं भ्रातृप्रियचिकीर्षया। सुरामानय कल्याणि कीचकस्य निवेशनात्॥ २९ ॥ सूतपुत्रस्तु मां दृष्ट्वा महत्सान्त्वमवर्त्तयत। सान्त्वे प्रतिहते क्रुद्धः परा-

---

कीचकके ऊपर क्रोध आगया था तो भी मैंने अपने क्रोधको दबा कर उससे कहा था कि—तू काम से मूढ हुई अपनी आत्मा की रक्षा कर ॥ २२ ॥ हे कीचक ! मैं पाँच गंधर्वों की प्यारी स्त्री और पटरानी हूँ इसकारण यदि साहसी शूरवीर वे गन्धर्व तेरे ऊपर क्रोध करेंगे तो तेरा नाश ही कर डावेंगे ॥ २२ ॥ इसप्रकार मैंने कीचकको बहुत ही समझाया तब दुष्टात्मा पापी कीचकने मुझसे कहा कि-हे पवित्र और मंद हास्यवाली दासी ! मैं गंधर्वोंसे नहीं डरता हूँ ॥ २४ ॥ युद्धभूमिमें लाखों गंधर्व भी मेरे साथ लड़नेको आवेंगे तो भी मैं (अकेला) उनको मारडालूँगा, हे भीरु स्त्रि ! तू भयरहित होकर मुझको स्वीकार कर ॥ २५ ॥ इस प्रकार उसने मुझसे कहा तब मैंने मदमत्त और काम से व्याकुल हुए कीचकसे कहा कि-तू यशवाले गंधर्वोंकी समान बलवान् नहीं है ॥ २६ ॥ और मैं सदा धर्माचरण से रहनेवाली हूँ, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हूँ और सुशीला हूँ अतः मेरे कारणसे किसी का नाश हो यह मैं नहीं चाहती अतएव हे कीचक ! तू अभी तक जीता जागता है ॥ २७ ॥ इस प्रकार जब मैंने दुरात्मा कीचकसे कहा तब वह गर्ज कर हँसने लगा, तदनन्तर कैकयी ने अपने भाई के ऊपर प्रेम होने के कारण मुझे उसके महलमें भेजा था ॥ २८ ॥ कीचकने पहिले ही अपनी बहिन को समझालिया था कि—मेरे यहाँ किसी वस्तुको लेनेके लिये तू सैरंध्रीको भेजदेना, इस संकेतके अनुसारही सुदेष्णाने भी अपने भाईका हित करनेकी इच्छासे मुझे आज्ञा दी कि—हे कल्याणि ! तू कीचकके घर जाकर मेरे लिये मदिरा लेआ ॥ २९ ॥ यह सुनकर मैं मदिरा लेनेके लिये कीचकके यहाँ गई, मुझे देखकर वह सूतपुत्र बहुतही शान्तिसे

मर्शमनाभवत् ॥ ३० ॥ विदित्वा तस्य सङ्कल्पं कीचकस्य दुरात्मनः । तथाहं राजशरणं जवेनैव प्रधाविता ॥ ३१ ॥ सन्दर्शने तु मां राज्ञः सूतपुत्रः परामृशत् । पातयित्वा तु दुष्टात्मा पदाहन्तेन ताडिता ॥३२॥ प्रेक्षते स्म विराटस्तु कङ्कस्तु बहवो जनाः ॥ रथिनः पीठमर्दाश्च हस्त्यारोहाश्च नैगमः ॥ ३३ ॥ उपालब्धो मया राजा कङ्कश्चापि पुनः पुनः । ततो न वारितो राज्ञा न तस्याविनयः कृतः ॥ ३४ ॥ योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम सारथिः । त्यक्तधर्मा नृशंसश्च नरस्त्री-सम्मतः प्रियः ॥ ३५ ॥ शूरोऽभिमानी पापात्मा सर्वार्थेषु च मुग्धवान् दारामर्शी महाभाग लभतेऽर्थान् बहूनपि ॥ ३६ ॥ आहरेदपि वित्तानि परेषां क्रोशतामपि । न तिष्ठते स्म सन्मार्गे न च धर्मं बुभूषति ॥३७॥ पापात्मा पापभावश्च कामवाणवशानुगः । अविनीतश्च दुष्टात्मा प्रत्याख्यातः पुन पुनः ॥ ३८ ॥ दर्शने दर्शने हन्याद्यदि जह्यांच जीवि-

---

बर्ताव से समझाने लगा परन्तु मैंने उसकी मीठी बातों का अनादर किया तब वह क्रोध में होकर, मेरा शील भंग करनेका विचार करने लगा ॥ ३० ॥ मैं दुष्टात्मा कीचकका भाव जानगई थी इसकारण झट पट दौड़ती २ राजाकी शरणमें आई ॥ ३१ ॥ परन्तु कीचक तहाँ भी मेरे पीछे आया और उस दुष्टात्मा ने राजा के सामने ही मुझे पृथ्वी पर गिराकर लातें मारीं ॥३२॥ उस सभामें बैठेहुए विराट, कंक, नगर के बहुतसे मनुष्य, रथी महावत और नगर के मनुष्यों ने प्रत्यक्ष देखा था ॥ ३३ ॥ मैंने सभामें बैठेहुए राजाको और कंकको बार २ उलाहने दिए परन्तु राजाने उसे रोका नहीं और तुमने भी उसे दण्ड नहीं दिया ॥ ३४ ॥ यह दुष्टात्मा कीचक राजा विराटको युद्धमें सहायता देनेवाला धर्महीन क्रूर तथा राजा रानीका मुहचढा और प्रिय है ३५ और हे महाभाग भीम ! वह शूरवीर अभिमानी पापी और स्त्रैण (व्यभिचारी) होनेसे सब बातोंमें मूढ़ होगयाहै तथा राज्यमेंसे बहुतसा धनभी पाताहै ॥३६॥ प्रजाके मनुष्य रोतेही रहजातेहैं और वह उनका धन लूट लेताहै, वह सदाचारके मार्गमें नहीं चलताहै तथा धर्म करनाभी नहीं चाहताहै ३७ वह पापीमन और पापी विचारवाला कीचक कामके वाणके अधीन हुआ, अविनयी तथा दुष्टात्मा है, मैंने उसे अनेकों बार धिक्कार दियाहै ॥ ३८ ॥ तो भी वह जब २ मुझे देखेगा तब २ ही मारेगा तथा अयोग्य प्रार्थना करेगा इसलिये अब मुझे अपने प्राणों को त्याग देना ही उचित है, परन्तु यदि मैं प्राणों को त्याग दूँ तो तुम जिस धर्मका आचरण करनेके लिये प्रयत्न कर रहेहो वह महान् धर्म नष्ट होजायगा

तम्। तद्धर्मे यतमानानां महान् धर्मो नशिष्यति ॥ ३९ ॥ समयं रक्षमाणानां भार्या वो न भविष्यति। भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ॥ ४० ॥ प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः। आत्मा हि जायते तस्यां तेन जायां विदुर्बुधाः ॥ ४१ ॥ भर्त्रा तु भार्यया रक्ष्यः कथं जायान्ममोदरे। वदतां वर्णधर्मश्च ब्राह्मणानामिति श्रुतः ॥ ४२ ॥ क्षत्रियस्य सदा धर्मो नान्यः शत्रुनिवर्हणात् । पश्यतो धर्मराजस्य कीचको माम्पदावधीत् ॥४३॥ तव चैव समक्षं वै भीमसेन महाबल त्वया ह्यहं परित्राता तस्माद् घोराज्जटासुरात् ॥ ४४ ॥ जयद्रथन्तथैव त्वमजैषीर्भ्रातृभिः सह। जहीममपि पापिष्ठं योऽयं मामवमन्यते॥ ४५ ॥ कीचको राजवाल्लभ्याच्छोककृन्मम भारत। तमेवं कामसंमत्तं भिन्धि कुम्भमिवाश्मनि ॥ ४६ ॥ यो निमित्तमनर्थानां बहूनां मम भारत। तं चेज्जीवन्तमादित्यः प्रातरभ्युदयिष्यति ॥४७॥ विषमालोड्य पास्या-

---

अर्थात् तुम्हारी शूरता व्यर्थ हो जायगी ॥३९॥ और जो तुम वनवासकी मर्यादा की रक्षा करोगे तो तुम्हारी स्त्री की मृत्यु होगी, और इससे तुम्हारी प्रजा (सन्तति) का नाश होजायगा क्योंकि—स्त्री की रक्षा करनेसे सन्ततिकी रक्षा होतीहै और सन्तानकी रक्षा करनेसे अपनी रक्षा होतीहै, अपना आत्मा ही स्त्री के उदरमें गर्भरूप होकर जन्मता है इसीसे विद्वान् स्त्री को जाया कहते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ पति मेरे पेट में किस प्रकार जन्म लेकर पुत्रके रूपमें अवतार लेगा ऐसा विचार कर स्त्रियों को अपनी रक्षा सब प्रकार से करनी चाहिये, इस प्रकार धर्मोपदेश करनेवाले ब्राह्मणों के मुख से मैंने ब्राह्मणादि वर्णोंके धर्म सुने हैं ॥ ४२ ॥ क्षत्रियोंका धर्म सदा शत्रुओंका नाश करना, यही है दूसरा नहींहै परन्तु हे महाबल भीमसेन! तुम्हारे और राजा युधिष्ठिर के देखते हुए ही कीचकने बीच सभामें मुझे लातोंसे मारा तो भी तुमने उसमें कुछ भी नहीं किया और हे भीम ! तुमने भयंकर जटासुरसे तो मुझे बचाया था ॥४३॥४४॥ और सिंधु देशका राजा जयद्रथ मुझे हरकर लेगया था उस समय भी तुमने भाइयोंके साथ होकर उसको हराया था सो अब यह पापिष्ठ मेरा अपमान करताहै अतः तुम अब इसको भी मार डालो ॥ ४५ ॥ हे भारत ! यह कीचक राजाका बहुत ही मुँहचढ़ा होनेसे मुझे दुःख दिया करताहै अतः जैसे घड़ेको पत्थर पर पटक कर फोड़ देतेहैं तैसे ही आप काम के मदसे मत्त हुए इस कीचकको मारिये ॥४६॥ हे भरतवंशी राजन् ! यदि यह सूर्योदय पर्यन्त जीता रहेगा तो मुझपर बहुतसी आपत्तियें डालेगा ॥४७॥ उस समय मैं कीचकके वशमें नहीं आऊँगी परन्तु विष घोलकर पीजाऊँगी

सि मा कीचकवशङ्गमम् । श्रेयो हि मरणं मह्यम्भीमसेन तवाग्रतः ॥४८॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा प्रारुदत् कृष्णा भीमस्योरःसमाश्रुता भीमश्च तामुपरिष्वज्य महत् सान्त्वं प्रयुज्य च ॥ ४९ ॥ आश्वासयित्वा बहुशो भृशमार्त्तां सुमध्यमाम् । हेतुतत्त्वार्थसंयुक्तैर्वचोभिर्द्रुपदात्मजाम् ॥ ५० ॥ प्रमृज्य वदनं तस्याः पाणिनाश्रुसमाकुलम् । कीचकं मनसागच्छत् सृक्किणी परिसंलिहन् । उवाच चैनां दुःखार्त्तां भीमः क्रोधसमन्वितः ॥ ५१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
द्रौपदीसान्त्वने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

भीमसेन उवाच । तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वम्भीरु भाषसे । अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सह बांधवम् ॥१॥ अस्या प्रदोषे शर्वर्याः कुरुष्वानेन संगतम् । दुःखं शोकं च निर्धूय याज्ञसेनि शुचिस्मिते ॥२॥ यैषा नर्त्तनशालेह मत्स्यराजेन कारिता दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम् ॥ ३ ॥ तत्रास्ति शयनं दिव्यं दृढांगं सुप्रतिष्ठि-

---

क्योंकि—हे भीम ! कीचकके अधीन होनेकी अपेक्षा तुम्हारे सामने मरना ही अच्छा है ॥ ४८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार कहकर द्रौपदी भीमसेनकी छाती पर गिरपड़ी और रोने लगी तब भीमसेनने उसको छातीसे चिपटाया और युक्तियें बताकर तथा बहुतसे सच्ची बातोंके दृष्टान्त सुनाकर शांत करदिया ॥ ४९॥५० ॥ तदनन्तर भीमने आंसुओंसे भीजे हुए उसके मुखको हाँथसे पोंछकर साफ किया और तदनन्तर अपने दोनों गालों में जीभ फिरा २ कर कीचककी दुर्गति बनानेका वह अपने मनमें विचार करने लगा और विचार करने के अनन्तर क्रोधमें भरे हुए भीमने दुःखसे व्याकुल हुई द्रौपदीसे इस प्रकार कहा ॥५१॥ इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥२१॥

भीमसेनने कहा कि—हे कल्याणि ! तथा भीरु द्रौपदी ! तू जैसा कहरहीहै मैं ऐसाही करूँगा अधिक क्या कहूँ परन्तु मैं आज ही उस कीचकको बंधुओं सहित मार डालूंगा ॥ १ ॥ हे पवित्र हास्यवाली द्रौपदी ! तू दुःख तथा शोकको छिपाकर, आनेवाले सायंकालके समय कीचक से कहना कि " मुझे तुम एकान्त में नृत्यशाला में मिलना " मत्स्यराजने अभी जो नृत्यशाला बनवाई है उसमें दिनमें तो कन्याएं नृत्य सीखती हैं और रात्रिको अपने घर चली जाती हैं ॥ ३ ॥ उस नृत्यशालामें लकड़ी का एक दिव्य तथा दृढ़ पलँग बिछा है वहां तू कीचकसे मिलनेके लिये कहना और कीचक जब वहां संकेतके अनुसार आवेगा तब मैं उसे उसके पिता, पितामहादि मरेहुए पूर्वपुरुषोंका

तम् । तत्रास्य दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान् पितामहान् ॥ ४ ॥ यथा च त्वां न पश्येयुर्कुर्वाणां तेन संविदम् । कुर्यास्तथा त्वं कल्याणि यथा सन्निहितो भवेत् ॥ ५ ॥ वैशम्पायन उवाच । तथा तौ कथयित्वा तु बाष्प मुत्सृज्य दुःखितौ । रात्रिशेषं तमत्युग्रं धारयामासतुर्हृदि ॥ ६ ॥ यस्यां राज्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय कीचकः । गत्वा राजकुलायैव द्रौपदीमिदमब्रवीत् ॥७॥ सभायां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदाऽहनम् । न चैवालभसे त्राणमभिपन्ना बलीयसा ॥ ८ ॥ प्रवादेनेह मत्स्यानां राजानाम्नायमुच्यते । अहमेव हि मत्स्यानां राजा वै वाहिनीपतिः ॥९॥ मां सुखं प्रतिपद्यस्व दासो भीरु भवामि ते । अह्नाय तव सुश्रोणि शतं निष्कान् ददाम्यहम् ॥ १० ॥ दासीशतञ्च ते दद्यां दासानामपि चापरम् । रथं चाश्वतरीयुक्तमस्तु नौ भीरु संगमः ॥ ११ ॥ द्रौपद्युवाच । एवं मे समयं त्वद्य प्रतिपद्यस्व कीचक । न त्वं सखा वा

दर्शन कराऊँगा अर्थात् यमपुरी पहुँचादूंगा ॥ ४॥ परन्तु हे कल्याणि ! तू उसके साथ इस प्रकार गुप्त रीतिसे बातचीत करना कि—दूसरा कोई भी तुझे उसके साथ बातें करते देख न लेय तथा उसके साथ तू इस प्रकार बातें करना कि वह रात्रि में समय पर तहां आ ही जाय ॥५॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इस प्रकार दुःखी भीमसेन तथा द्रौपदीने बातचीत करने के पीछे कुछ देर आंसू बहाये और इस बात को अपने मनमें गुप्त रखकर दोनों जनोंने बची हुई महा उग्र रात्रि बहुतही व्याकुलतासे काटी॥६॥वह रात्रि बीतगई और प्रातःकाल हुआ तब कीचक उठा और उसने शरीरको स्वच्छ कर राजभवन में आकर द्रौपदीसे इस प्रकार कहा कि—अरी ओ ! मैंने राजसभामें ही राजा के सामने पृथ्वी पर गिराकर तुझे लातोंसे मारा था, तू मुझसे बलवान् पुरुषके हाथ में आपड़ी है अब तेरी कोई भी रक्षा नहीं कर सकेगा ॥७—८॥ यह राजा विराट तो मत्स्यदेशका नाम मात्रका ही राजा कहाता है परन्तु वास्तवमें मैं ही मत्स्य देशका राजा हूँ और सेनापति भी हूँ ॥९॥ अतः हे भीरु स्त्री ! तू आनन्दके साथ मुझे स्वीकार करेगी तो मैं तेरा दास बनकर रहूँगा और हे सुश्रोणि ! मैं तुझे प्रतिदिन सोने की सौ मुहरें दूंगा ॥ १० ॥ तेरी सेवाके लिये सौ दासी तथा सौ दास दूँगा और खच्चरोंसे जुड़ेहुए रथ भी तेरी सेवामें दूँगा अतः हे भीरु स्त्रि ! हम दोनों में परस्पर समागम हो ॥ ११ ॥ द्रौपदी बोली कि—हे कीचक ! तुझे आजसे मेरे एक नियमका पालन करना होगा और मैं तुझसे जिस गुप्त संकेत की बात कहती हूँ वह यह है कि—हमारे इस मेलकी बातको तेरे मित्र तथा बंधु भी न जान

भ्राता वा जानीयात् संगतं मया ॥ १२ ॥ अनुप्रवादाद्भीतास्मि गन्धर्वाणां यशस्विनाम् । एवं मे प्रतिजानीहि ततोऽहं वशगा तव ॥ १३ ॥ कीचक उवाच । एवमेतत् करिष्यामि यथा सुश्रोणि भाषसे । एको भद्रे गमिष्यामि शून्यमावसथं तव ॥ १४ ॥ समागमार्थं रम्भोरु त्वया मदनमोहितः । यथा त्वां नैव पश्येयुर्गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ॥१५॥ द्रौपद्युवाच ॥ यदेतन्नर्तनागारं मत्स्यराजेन कारितम् । दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम्॥१६॥तमिस्रे तत्र गच्छेथा गंधर्वास्तन्न जानते।तत्र दोषः परिहृतो भविष्यति न संशयः॥१७॥वैशम्पायन उवाच। तमर्थमपि जल्पन्त्याः कृष्णायाः कीचकेन ह।दिवसार्द्धं समभवन्मासेनैव समं नृप ॥ १८ ॥ कीचकोऽथ गृहं गत्वा भृशं दर्पपरिप्लुतः । सैरन्ध्रीरूपिणं मूढो मृत्युं तन्नावबुद्धवान् ॥ १९ ॥ गन्धाभरणमाल्येषु व्यासक्तः सविशेषतः। अलञ्चक्रे तदात्मानं सत्वरः काममोहितः ॥२०॥ तस्य तद् कुर्वतः कर्म कालो दीर्घ इवाभवत् । अनुचिन्तयतश्चापि

ने पावें ॥ १२ ॥ मैं यशस्वी गंधर्वोंके निन्दावादसे डरती हूँ हे कीचक तू मेरे इस एक नियमको स्वीकार करनेकी प्रतिज्ञा करै तो मैं तेरे अधीन होकर रहूँ ॥ १३ ॥ कीचकने कहा कि—हे सुश्रोणि ! तू जिस प्रकार कहती है मैं उसी प्रकार करूँगा हे रम्भोरु ! तेरे समागमके लिये मैं कामसे मोहित होगया हूँ अतएव सूर्यकी समान तेजस्वी गंधर्व जिस प्रकार तुझे देख नहीं सकेंगे उस ही प्रकार मैं अकेला ही तेरे साथ समागम करनेको तेरे बतलाए हुए स्थान में आऊँगा ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ द्रौपदी बोली कि—हे कीचक राजा विराटने अभी एक नृत्य शाला बनवाई है उसमें दिनके समय कन्याएं नृत्य सीखा करती हैं और रात्रिको अपने २ घर चली जाती हैं ।।१६।। अतः तू अंधेरी रात होजाय तब वहां आना कि—जिससे गंधर्व भी हमारी इस कर्तूतको न जानसकें और ऐसा करनेसे मैं भी लोकनिन्दा से बच जाऊँगी॥१७॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे राजा जनमेजय ! द्रौपदी के इसप्रकार बात चीत करनेके पीछे द्रौपदीको वह एक दिन एक मासकी समान मालूम हुआ तदन्तर कीचक भी हर्षमें भर कर अपने घर चलागया परन्तु वह मूर्ख कीचक यह नहीं समझसका कि यह सैरन्ध्री मेरी मृत्यु रूप है, ॥१९॥ उसने अगर चन्दनके सुगंधित लेप अपने शरीर पर लगाये गहने तथा पुष्पोंकी मालाएं पहिर लीं कामसे मोहित हुए कीचकने शीघ्र ही अपने शरीरको अच्छीप्रकार सजालिया ॥ २० ॥ और विशालनेत्रा द्रौपदीका चिन्तवन करते हुए तथा उसके लिये शृंगार सजाते

तामेवायतलोचनाम् ॥ २१ ॥ आसीदभ्यधिका चापि श्रीः श्रियं प्रमुमुक्षतः । निर्वाणकाले दीपस्य वर्त्तीमिव दिधक्षतः ॥ २२ ॥ कृतसम्प्रत्ययस्तस्याः कीचकः काममोहितः । नाजानाद्दिवसं यान्तं चिंतमानः समागमम् ॥ २३ ॥ ततस्तु द्रौपदी गत्वा तदा भीमं महानसे । उपातिष्ठत कल्याणी कौरव्यं पतिमन्तिकम् ॥ २४ ॥ तमुवाच सुकेशान्ता कीचकस्य मया कृतः । संगमो नर्त्तनागारे यथावोचः परन्तप ॥ २५ ॥ शून्यं स नर्त्तनागारमागमिष्यति कीचकः । एको निशि महाबाहो कीचकं तं निषूदय ॥ २६ ॥ तं सूतपुत्रं कौन्तेय कीचकं मददर्पितम् । गत्वा त्वं नर्त्तनागारं निर्जीवं कुरु पाण्डव ॥ २७ ॥ दर्पाच्च सूतपुत्रोऽसौ गन्धर्वानवमन्यते । तं त्वं प्रहरतां श्रेष्ठ हृदान्नागमिवोद्धर ॥ २८ ॥ अश्रु दुःखाभिभूताया मम मार्जस्व भारत । आत्मनश्चैव भद्रन्ते कुरु मानं कुलस्य च ॥२९॥ भीमसेन उवाच । एवं करो-

हुए वह दिन बहुतसे समय की समान मालूम होनेलगा ॥ २१ ॥ दीपक जब बुझनेको होता है तब पहिले वह अपनी बत्तीको जलाना चाहता है उससे जैसे उसका प्रकाश बढ़ता है तैसे ही राज्यलक्ष्मीको त्यागने की इच्छावाले कीचककी भी शोभा आज बहुत बढ़गई थी ॥ २२ ॥ स्त्रीके ऊपर पूर्ण विश्वास करनेवाले तथा कामसे मोहित हुए कीचकने द्रौपदीके समागमके विचार ही विचारमें सारा में दिन बिता डाला और वह दिन किधर चला गया यह उसे मालूम भी नहीं पड़ा ॥ २३ ॥ कल्याणी द्रौपदी कीचकके साथ प्रतिज्ञा करनेके पीछे रसोईघरमें अपने प्राणपति कुरुपुत्र भीमके पास जाकर खड़ी होगई ॥ २४ और सुन्दर केशोंकी लटोंवाली उस स्त्रीने प्रणाम करके कहा कि-हे परन्तप ! तुमने मुझसे जिस प्रकार कहा था उस ही प्रकार मैंने रात्रिमें समागमके लिये कीचकसे नृत्यशालामें आनेको कहा है ॥ २५ हे महाबाहो ! कीचक नियमानुसार आज रात्रिके समय सूनी नृत्यशालामें अकेला आवेगा इससे तुम उसे आज ही ठौर मारदेना ॥ २६ ॥ हे पाण्डुपुत्र आज रातको तुम नृत्यशालामें जाकर कामके गर्वीले सूतपुत्र कीचकको अवश्य ही मारडालना ॥ २७ ॥ वह सूतपुत्र गर्वसे मत्त होकर उन्मत्त गंधर्वोंका अपमान करता है अतः हे श्रेष्ठ योधा ! श्रीकृष्णजीने जैसे यमुनाजीमें से कालिय सर्पका उद्धार किया था तैसे ही तुम भी आज कीचकका उद्धार करना ॥२८॥ और हे भारत ! इस दुःखसे घबड़ाई हुई मुझ स्त्रीके आँसू पोंछो, अपना हित करो तथा अपने कुलके मानको बढ़ाओ ॥ २९ ॥ भीमसेन बोलो कि—हे सुन्दरांगि ! तू अच्छी आई हे वरांगि ! तूने जो कुछ मुझसे कहा है वह मेरा हित ही है मैं दूसरे

म्यहं भद्रे यथा त्वं भीरु भाषसे। स्वागतं ते वरारोहे यन्मां वेदयसे प्रियम्। न ह्यन्यं कञ्चिदिच्छामि सहायं वरवर्णिनि ॥३०॥ या मे प्रीतिस्त्वयाख्याता कीचकस्य समागमे। हत्वा हिडिम्बं सा प्रीतिर्ममासीद्वरवर्णिनि ॥३१॥ सत्यं भ्रातृंश्च धर्मं च पुरस्कृत्य ब्रवीमि ते। कीचकं निहनिष्यामि वृत्रं देवपतिर्यथा ॥३२॥ तं गह्वरे प्रकाशे वा पोथयिष्यामि कीचकम्। अथ चेदपि योत्स्यन्ति हिंसे मत्स्यानपि ध्रुवम् ॥३३॥ ततो दुर्योधनं हत्वा प्रतिपत्स्ये वसुन्धराम्। कामं मत्स्यमुपास्तां हि कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥ द्रौपद्युवाच। यथा न संत्यजेथास्त्वं सत्यं वै मत्कृते विभो। निगूढस्त्वं तथा पार्थ कीचकं तं निषूदय ॥३५॥ भीमसेन उवाचाप्येवमेतत् करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे। अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सह बान्धवैः ॥ ३६ ॥ अदृश्यमानस्तस्याथ तमस्विन्यामनिन्दिते। नागो विल्वमिवाक्रम्य पोथयिष्याम्यहं शिरः। अलभ्यामिच्छतस्तस्य कीचकस्य दुरात्मनः ॥ ३७ ॥ वैशम्पायन उवाच। भीमोऽथ

किसी की सहायता को नहीं चाहता ॥ ३० ॥ तूने कीचकसे मिलकर मुझे जो आनन्द उत्पन्न किया है ऐसा ही आनन्द मुझे हिडिम्बासुरको मारते समय हुआ था ॥ ३१ ॥ मैं तेरे आगे धर्म, सत्य तथा भाइयोंकी शपथ खा कर कहता हूँ कि—इन्द्रने जैसे वृत्रासुरको मारडाला था इसी प्रकार मैं कीचकको मार डालूंगा ॥ ३२ ॥ मैं कीचकको एकान्तमें अथवा मनुष्यों से परिपूर्ण (प्रकाश) स्थानमें मारडालूंगा और मत्स्य देशका दूसरा जो कोई मनुष्य उसकी ओर से चढ़कर आवेगा तो मैं उसको भी अवश्य ही मारडालूंगा ॥ ३३ ॥ और पीछे से दुर्योधन को मारकर पृथ्वीका राज्य प्राप्त करूंगा भले ही कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर अपनी इच्छानुसार राजा विराटकी सेवा किया करें ॥ ३४ ॥ द्रौपदी बोली कि— हे समर्थ भीम तुम मेरे लिये सत्यका त्याग न करना अर्थात् प्रकट न होजाना परन्तु हे पार्थ तुम कौन हो यह कोई जान न सके इस प्रकार छिपकर तुम कीचकका नाश करना ॥ ३५ ॥ भीमसेन बोला कि हे भीरु ! तू जिस प्रकार कहती है मैं ऐसा ही करूंगा परन्तु आज ही कीचक तथा उसके बांधवोंको मार डालूंगा ॥ ३६ ॥ हे पवित्र स्त्री हाथी जैसे विल्वफलको कुचल कर टुकड़े २ कर देता तैसे ही मैं भी अंधेरी रात्रिमें तुझ अलभ्य नारी को चाहने वाले दुष्टात्मा कीचकको पृथ्वी पर पटक कर वह मुझे देखने भी न पावे इस प्रकार उसके मस्तकको फोड़ डालूंगा ॥ ३७ ॥ वैशंपायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! तदनन्तर अंधेरी रात्रि होनेसे

प्रथमं गत्वा रात्रौ छन्न उपाविशत् । मृगं हरिरिवादृश्यः प्रत्याकांक्षत कीचकम् ॥ ३८ ॥ कीचकश्चाप्यलंकृत्य यथाकाममुपागमत् । तां वेलां नर्त्तनागारं पाञ्चालीसंगमाशया ॥ ३६ ॥ मन्यमानः स संकेत मागारं प्रविश्य च । स तद्वेश्म तमसा संवृतं महत् ॥ ४० ॥ पूर्वागतं ततस्तत्र भीममप्रतिमौजसम् । एकान्तावस्थितं चैनमाससाद सुदुर्मतिः ॥ ४१ ॥ शयानं शयने तत्र सूतपुत्रः परामृशत् । जाज्वल्यमानं कोपेन कृष्णाधर्षणजेन ह ॥ ४२ ॥ उपसंगम्य चैवैनं कीचकः काममोहितः । हर्षोन्मथितचित्तात्मा स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ४३ ॥ प्रापितन्ते मया वित्तं बहुरूपमनन्तकम् । यत् कृतं धनरत्नाढ्यं दासी शतपरिच्छदम् ॥ ४४ ॥ रूपलावण्ययुक्ताभिर्युवतीभिरलंकृतम् । गृहं चान्तः पुरं सुभ्रु क्रीडारतिविराजितम् । तत्सर्वं त्वां समुद्दिश्य सहसाहमुपागतः ॥ ४५ ॥ अकस्मान् मां प्रशंसन्ति सदा गृहगताः स्त्रियः सुवासा दर्शनीयश्च नान्योऽस्ति त्वादृशः पुमान् ॥४६॥ भीमसेन उवाच

पहिले ही भीमसेन नृत्यशाला में जाकर छिप गया और सिंह जैसे गुफामें छिपकर हरिण की बाट देखता है तैसे ही भीमसेन कीचककी बाट देखनेलगा ॥ ३८ ॥ कीचक भी चंदनादिका लेप लगा पुष्पमाला तथा भूषणादिसे सज कर समय होते ही अपनी इच्छानुसार द्रौपदी के साथ समागम करनेकी इच्छासे नृत्यशाला की ओर को चला ॥ ३६ ॥ तथा नृत्यशालाके पास आकर तथा उसको संकेतस्थान जानकर उसके भीतर गया इस नृत्यशालामें चारों ओरसे घोर अंधकार छा रहा था और तहां अनुपम प्राणबल वाला भीमसेन प्रथमसे ही आकर एकान्तमें बिछी हुई एक लकड़ीकी चौकी परसो रहा था इस समय भीमसेन अपनी पतिव्रता स्त्रीका अनादर होनेसे बहुत ही क्रोधमें भर रहा था कामसे मोहित कीचक उस घोर अंधकारमें धीरे २ भीमकी शय्याके पास पहुँचा और अपने हाथसे भीम के अंगको छूकर हर्षसे मनमें उन्मत्त होगया और हँसते हँसते बोला ॥ ४०—४३ ॥ कि—हे सुन्दर भ्रकुटिवाली स्त्रि ! मुझे तेरा रूपरूपी जो अगाध धन मिला है वह धन ही अनन्त है मैं धन रत्न सैकड़ों दासियें, घरकी सामग्री, रूप और लावण्यवाली स्त्रियोंसे शोभायमान घर तथा विलास और रति आदिसे भूषित घर तथा अंतःपुर आदि जो कुछ मैंने पाया है वह मैं तुझे देता हूँ और मैं एकायकी तेरे पास ही चला आया हूँ ॥ ४४—४५ ॥ प्रसंग पाकर मेरे घरकी स्त्रियें मेरी प्रशंसा करने लगती है कि—तुम्हारे समान सुन्दर वस्त्र पहिरने वाला और रूपवान् कोई भी पुरुष नहीं है ॥ ४६ ॥ उस समय भीम

दिष्ट्या त्वं दर्शनीयोऽद्य दिष्ट्यात्मानं प्रशंससि । ईदृशस्तु त्वया स्पर्शः स्पृष्टपूर्वो न कर्हिचित् ॥ ४७ ॥ स्पर्शं वेत्सि विदग्धस्त्वं कामधर्मविचक्षणः । स्त्रीणां प्रीतिकरो नान्यस्त्वत्समः पुरुषस्त्विह ॥ ४८ ॥ वैशम्पायन उवाच । इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः । सहसोत्पत्य कौन्तेयः प्रहस्येदमुवाच ह ॥ ४९ ॥ अद्य त्वां भगिनी पापं कृष्यमाणं मया भुवि । द्रक्ष्यतेऽद्रिप्रतीकाशं सिंहेनेव महागजम् ॥ ५० ॥ निराबाधा त्वयि हते सैरन्ध्री विचरिष्यति । सुखमेव चरिष्यन्ति सैरन्ध्र्याः पतयः सदा ॥ ५१ ॥ ततो जग्राह केशेषु माल्यवत्सु महाबलः स केशेषु परामृष्टो बलेन बलिनाम्वरः ॥ ५२ ॥ आक्षिप्य केशान्वेगेन बाह्वोर्जग्राह पाण्डवम् । बाहुयुद्धं तयोरासीत् क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥ ५३ ॥ वसन्ते वासिताहेतोर्बलवद्गजयोरिव । कीचकानान्तु मुख्यस्य नराणामुत्तमस्य च ॥ ५४ ॥ वालिसुग्रीवयोर्भ्रात्रोः पुरेव कपिसिंहयोः ।

ने स्त्रीकी समान धीमे स्वरसे कहा कि-तू रूपवान् है यह बात तो ठीक है और अपनी प्रशंसा कर रहा है यह भी ठीक ही है परन्तु मेरी समझमें तूने मुझसी स्त्रीका स्पर्श भी पहिले किसी दिन नहीं किया है ॥ ४७ ॥ तू कामशास्त्रमें निपुण और चतुर है तथा स्त्रियोंको तेरी समान कोई दूसरा पुरुष प्रेम उत्पन्न करनेवाला नहीं है ॥ ४८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय इस प्रकार बात चीत करने के अनन्तर भयंकर पराक्रमी महाबाहु कुन्तीपुत्र भीमसेन एकसाथ छलांग मार कर खड़ा होगया और हँस कर प्रकट रूपसे कहने लगा कि—॥ ४९ ॥ सिंह जैसे बड़े पर्वतकी समान हाथीको पृथ्वी पर घसीटता है तैसे ही आज तुझ पापीको मार कर मैं पृथ्वीके ऊपर तुझे घसीटूंगा और तेरी बहिन देखगी ॥ ५० ॥ और सैरंध्री तेरे मरजानेसे आनन्दमें दिनोंको बितावेगी तैसे ही उसके पति भी सदा सुखसे दिनोंको बितावेंगे॥५१॥ इस प्रकार कह कर महाबली भीमसेन ने कीचकके पुष्पोंसे युक्त केशों को पकड़ कर उसको पृथ्वी पर देमारा ॥५२॥परन्तु इतनेमें ही कीचकने जोर करके अपनी चोटी उसके हाथ मेंसे छुटाली और दोनों हाथोंसे भीमको पकड़ लिया तदनन्तर क्रोधमें भरेहुए दोनों पुरुषसिंहों में बाहुयुद्ध होनेलगा ॥ ५३ ॥ जैसे वसन्त ऋतुमें महाबली दो हाथी एक हथिनीके लिये युद्ध करते हों वैसे ही कीचकों में ज्येष्ठ कीचक तथा महापुरुष भीमका युद्ध होने लगा ५४ और एक दूसरे के ऊपर क्रोधमें भर कर परस्पर एक दूसरेका पराजय करनेकी इच्छासे [वानरश्रेष्ठ वाली और सुग्रीवमें जैसा युद्ध हुआ था तैसे ही दोनों एक दूसरेके ऊपर क्रोधमें भरगए और एक

अन्योऽन्यमपि संरब्धौ परस्परजयैषिणौ ॥ ५५ ॥ ततः समुद्यम्य भुजौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ । नखदंष्ट्राभिरन्योऽन्यं घ्नतः क्रोधविषोद्धतौ ५६ वेगेनाभिहतो भीमः कीचकेन बलीयसा । स्थिरप्रतिज्ञः स रणे पदान्नाचलितः पदम् ॥ ५७ ॥ तावन्योऽन्यं समाश्लिष्य प्रकर्षन्तौ परस्परम् । उभावपि प्रकाशेते प्रवृद्धौ वृषभाविव ॥ ५८ ॥ तयोर्ह्यासीत् सुतुमुलः सम्प्रहारः सुदारुणः । नखदन्तायुधवतोर्व्याघ्रयोरिव दृप्तयोः ॥ ५९ ॥ अभिपत्याथ बाहुभ्यां प्रत्यगृह्णादमर्षिताः । मातंग इव मातंगं प्रभिन्नकरटामुखम् ॥ ६० ॥ स चाप्येनं तदा भीमः प्रतिजग्राह वीर्यवान् । तमाक्षिपत् कीचकोऽथ बलेन बलिनां वरः ॥ ६१ ॥ तयोर्भुजविनिष्पेषादुभयोर्बलिनोस्तदा । शब्दः समभवद् घोरो वेणुस्फोटसमो युधि ॥ ६२ ॥ अथैनमाक्षिप्य बलाद् गृहमध्ये वृकोदरः धूनयामास वेगेन वायुश्चण्ड इव द्रुमम् ॥ ६३ ॥ भीमेन च परामृष्टो दुर्बलो बलिना

दूसरे को हरानेकी इच्छासे आपसमें युद्ध करने लगे ॥ ५५ ॥ और जैसे पांच मस्तकवाले सर्प क्रोधरूपी विषसे उद्धत हो अपने फनोंको ऊँचा कर युद्ध करते हैं तैसे ही भीम और कीचक भी क्रोध रूपी विषसे उद्धत बनकर अपनी भुजाओं को ऊँची करके नखरूपी डाढ़ोंसे परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ५६ ॥ लड़ते २ बलवान् कीचकने वेगसे भीम पर प्रहार किया परन्तु दृढ़प्रतिज्ञा वाला भीमसेन एक पैर भी पीछे को नहीं हटा ॥५७॥ तदनन्तर वह एक दूसरे को पकड़ कर अपनी ओर को खेंचने लगे इस समय युद्ध करतेहुए वह दोनों तरुण बिजारकी समान मालूम होते थे ॥ ५८ ॥ और मदमत्त हुए दा व्याघ्र जैसे नख और दांत रूपी आयुधों से युद्ध करते हैं तैसे भीम और कीचक में महादारुण और तुमुल युद्ध होने लगा ॥ ५९ ॥ क्रोध में भरा हुआ एक हाथी, गंडस्थल में से मद टपकाते हुए सामने के हाथीको पकड़ लेताहै तैसे ही क्रोधमें भरा हुआ कीचक मदमत्त भीम की ओरको दौड़कर गया और उसको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया ॥६०॥ तब महापराक्रमी भीमसेनने भी दोनों हाथोंसे उसे पकड़लिया परन्तु महाबली कीचक बल करकै उसके हाथों में से छूटगया ॥ ६१ ॥ इस समय दोनों बलवानों की भुजाओं के परस्पर अड़ने से युद्धमें बांस फटनेसे जैसा कड़ाका होताहै तैसे भयंकर कड़ाके भड़ाके होने लगे ॥ ६२ ॥ तदनन्तर भयंकर वेग से चलने वाला वायु जैसे वृक्षको टेढ़ा तिरछा झुका देताहै तैसे ही भीमसेन ने उसको दोनों हाथों से पकड़ कर नृत्यशालामें वेगसे घुमाया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार बलवान् भीमसेन ने निर्बल कीचक को युद्धमें खूब ही झकझोड़ा तो भी कीचक अपने

रणे। प्रास्पन्दत यथाप्राणं विचकर्ष च पाण्डवम् ॥ ६४ ॥ ईषदाकलितं चापि क्रोधाद्द्रुतपदं स्थितम्। कीचको बलवान् भीमं जानुभ्यामाक्षिपद्भुवि ॥ ६५ ॥ पातितो भुवि भीमस्तु कीचकेन बलीयसा। उत्पपाताथ वेगेन दण्डपाणिरिवान्तकः ॥६६॥ स्पर्द्धया च बलोन्मत्तौ तावुभौ सूतपाण्डवौ। निशीथे पर्यकर्षेतां बलिनौ निर्जने स्थले ॥ ६७ ॥ ततस्तद्भवनं श्रेष्ठं प्राकम्पत मुहुर्मुहुः। बलवच्चापि संक्रुद्धावन्योऽन्यं प्रतिगर्जताः ॥ ६८ ॥ तलाभ्यां स तु भीमेन वक्षस्यभिहितो बली। कीचको रोषसन्ततः पदान्न चलितः पदम् ॥ ६९ ॥ मुहूर्तं तु स तं वेगं सहित्वा भुवि दुःसहम। बलादहीयत तदा सूतो भीमबलार्दितः ॥ ७० ॥ तं हीयमानं विज्ञाय भीमसेनो महाबलः वक्षस्यानीय वेगेन ममर्दैनं विचेतसम् ॥ ७१ ॥ क्रोधविष्टो विनिश्वस्य पुनश्चैनं वृकोदर। जग्राह जयतां श्रेष्ठः केशेष्वेव तदा भृशम् ॥ ७२ ॥ गृहीत्वा कीचकं भीमो विरराज

बलके अनुसार रणमें पराक्रम करने लगा और भीमको पकड़ कर पृथ्वी पर पटकने के लिये खेंचने लगा ॥ ६४ ॥ और बलवान् कीचक ने क्षणभर को अपने वश में करे हुए और क्रोध के मारे अपने स्थान से हटकर खड़े हुए भीम को दोनों घुटनों की चोट देकर पृथ्वी पर गिरादिया ॥ ६५ ॥ इस प्रकार बलवान् कीचक ने भीम को पृथ्वी पर पटकदिया परन्तु भीम दण्डधारी यमकी समान शीघ्रही उठकर खड़ा होगया ॥ ६६ ॥ और स्वभावसे ही बलवान् होने पर भी स्पर्धा के कारण अधिक बलवान् हुए भीम और कीचक उस निर्जन नृत्यशाला में रात्रि के समय एक दूसरे को वेगसे रगड़ने लगे ॥ ६७ ॥ और अत्यन्त क्रोधमें भरकर दोनों जने गर्जना करने लगे इससे वह बड़ीभारी नृत्यशाला गुंजारने लगी ॥ ६८ ॥ थोड़े पल पीछे भीमने बलवान् कीचककी छातीमें हथेली का प्रहार किया तिससे कीचक क्रोधके मारे गरम होगया परन्तु जहाँ खड़ा था वहाँसे एक पग भी पीछेको नहीं हटा ॥ ६९ ॥ वह पृथ्वी पर खड़ा रहा और दुस्सह मारके वेगको दो घड़ी तक सहन करता रहा परन्तु भीमके प्रबल प्रहारसे पीड़ा पाकर वह उस समय निर्बल होगया ॥ ७० ॥ महाबलवान् भीमने इसप्रकार कीचकको निर्बल देखकर चेतना रहित अवस्थामें ही उसको पकड़ कर पृथ्वी पर पटक दिया उसका मस्तक उसकी नाभिमेंको दबा कर उसको जोरसे मसलने लगा ॥ ७१ ॥ और फिर क्रोधमें भरे हुए महाबलवान् भीमने कीचककी चोटीको जोरसे पकड़ कर जमीन पर पछाड़ दिया ॥ ७२ ॥ उस समय मांस की इच्छावाला सिंह जैसे बड़ेभारी मृगको पकड़ कर शोभायमान

महाबलः । शार्दूलः मिशिताकांक्षी गृहीत्वेव महागृगम् ॥ ७३ ॥ तत एनं परिश्रान्तमुपलभ्य वृकोदरः । योधयामास बाहुभ्यां पशुं रसनयो यथा ॥ ७४ ॥ नदन्तश्च महानादं भिन्नभेरीसमस्वनम् । भ्रामयामास सुचिरं विस्फुरन्तमचेतसम् ॥ ७५ ॥ प्रगृह्य तरसा दोर्भ्यां कण्ठं तस्य वृकोदरः । अपीडयत कृष्णायास्तदा कोपोपशांतये ॥७६॥ अथ तम्भग्नसर्वांगं व्याविनद्धयनाम्बरम् । आक्रम्य च कटीदेशे जानुना कीचकाधमम् । अपीडयत बाहुभ्यां पशुमारममारयत् ॥७७॥ तं विषीदन्तमाज्ञाय कीचकं पांडुनन्दनः । भूतले भ्रामयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ७८ ॥ अद्याहमनृणो भूत्वा भ्रातुर्भार्यापहारिणम् । शान्ति लब्धास्मि परमां हत्वा सैरन्ध्रिकण्टकम् ॥७९॥ इत्येवमुक्त्वा पुरुषप्रवीरस्तं कीचकं क्रोधसरागनेत्रः । अस्रस्तवस्त्राभरणं स्फुरन्तमुद्भ्रांतनेत्रं व्यसुमुत्ससर्ज ॥ ८० ॥ निष्पिष्य पाणिना पाणिं सन्दष्टौष्ठपुटं बली । समाक्-

होता है तैसेही भीमसेन महाबली कीचकको पछाड़ कर शोभा पाने लगा ॥ ७३ ॥ जब भीमने जाना कि—यह कीचक थक गया है तब जैसे पशुको रस्सीमें बांध लेते हैं तिसी प्रकार दोनो हाथोंसे कीचक को कौलियामें जकड़ लिया ॥ ७४ ॥ तब कीचक फूटे हुए नगाडेकी समान खोखला शब्द करके महा गर्जना करने लगा और अचेत होने पर भी तड़फड़ाने लगो इसकारणसे भीमने उसे बहुत समय तक भूमिपर पेंडा वेंडा घुमाया ॥ ७५ ॥ तदनन्तर भीमने एक साथ दोनो हाथोंसे उसका गला पकड़लिया और द्रौपदीका क्रोध शान्त करनेके लिये उसको दिखाया ॥ ७६ ॥ तदनन्तर जिसके सब अंग चकनाचूर होगए थे तथा जिसकी आंखोंकी पुतलियें बाहर निकल आई थीं ऐसे अधम कीचककी कमरको दोनों घुटनोंसे दबाकर तोड़ने लगा और जैसे कोई हाथसे ढोर को मारता हो तैसे ही उसको मारने लगा ॥७७॥ उस समय कीचक डकराने लगा तब भीमने उसको पृथ्वीमें चारो ओर घसीट कर उससे इस प्रकार कहा कि– ॥ ७८ ॥ आज सैरन्ध्रीको कांटेकी समान दुःख देनेवाले और मेरी भार्याका हरण करनेवाले तुझको मारकर अपने भाईके ऋणसे छूटूँगा और अत्यन्त शान्तिको प्राप्त करूँगा ॥ ७९ ॥ इसप्रकार कहकर क्रोधसे लाल २ नेत्रवाले महावीर भीमने जिसके शरीर पर से वस्त्र तथा आभूषण गिर गए थे जिसकी आखें फटगई थी तथा जो बार२ विलबिला रहा था उस कीचकको प्राणहीन करके छोड़ दिया ॥८०॥ फिर महाबलवान् भीमसेन अपने दोनों हाथोंको परस्पर मसलने लगा

स्य च संक्रुद्धो बलेन बलिनां वरः ॥ ८१ ॥ तस्य पादौ च पाणी च शिरोग्रीवां च सर्वशः । काये प्रवेशयामास पशोरिव पिनाकधृक् ॥ ८२ ॥ तं संमथितसर्वांग मांसपिण्डोपमं कृतम् । कृष्णायां दर्शयामास भीमसेनो महाबलः ॥ ८३ ॥ उवाच च महातेजा द्रौपदीं योषितां वराम् । पश्यैनमेहि पांचालि कामुकोऽयं यथाकृतः ॥ ८४ ॥ एवमुक्त्वा महाराज भीमो भीमपराक्रमः । पादेन पीडयामास तस्य कायं दुरात्मनः ॥ ८५॥ ततोऽग्नि तत्र प्रज्वाल्य दर्शयित्वा तु कीचकम् । पांचालीं स तदा वीर इदं वचनमब्रवीत् ॥ ८६ ॥ प्रार्थयन्ति सुकेशान्ते ये त्वां शीलगुणान्विताम् । एवन्ते भीरु वध्यन्ते कीचकः शोभते यथा ॥ ८७ ॥ तत्कृत्वा-दुष्करं कर्म कृष्णायाः प्रियमुत्तमम् । तथा स कीचकं हत्वा गत्वा रोषस्य वै शमम् ॥ ८८ ॥ आमंत्र्य द्रौपदीं कृष्णां क्षिप्रमायान्महानसम् । कीचकं घातयित्वा तु द्रौपदी योषितां वरा । प्रहृष्टा गतसन्तापा सभापालानुवाच ह ॥ ८९ ॥ कीचकोऽयं हतः शेते गन्धर्वैः पतिभिर्मम ।

दांतोंसे ओठोंको पीसने लगा और क्रोधसे कीचकके शरीरपर चढ़ कर जैसे शिवजीने पशुके सब अंगोंको उसके शरीरमें ही प्रविष्ट कर दिया था तैसे ही भीमने भी बल करके कीचकके हाथ पर, मस्तक तथा कण्ठ इन सब अवयवोंको शरीरमें ही प्रविष्ट कर दिया॥८१-८२॥ इस प्रकार उसके सब अवयवोंका चूरा २ करके कीचकको एक मांस के पिंडकी समान बना दिया, तदनन्तर महातेजस्वी तथा महाबली भीमने स्त्रियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदीसे कहा कि—अरी द्रौपदी यहाँ आ और मैंने इस कामीकी कैसी दुर्दशा बनाई है उसे तू देख यह कहकर द्रौपदी को कीचककी दशा दिखाई ॥ ८३—८४ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार द्रौपदीको कीचककी दुर्दशा दिखाकर भयंकर पराक्रमी भीम उस दुष्टात्मा कीचकके शरीरको अपने पैरोंसे फिर खूंदने लगा ॥ ८५ ॥ उधर देखो हे सुन्दर केशोंकी लटोंवाली शील तथा गुण भरी तेरी जो पुरुष दुष्ट अभिप्रायसे प्रार्थना करेंगे तो हे भीरु ! वहभी कीचककी समान मरण पाकर इस गतिको प्राप्त होंगे ॥ ८७ ॥ इस प्रकार भीम सेन द्रौपदीकी इच्छानुसार महा कठिन कीचकको मारनारूपी कार्य करके क्रोधसे मुक हुआ तब द्रौपदीकी अनुमति लेकर तुरत ही रसोई घरको चलागया तथा इस प्रकार कीचक को मरवा कर स्त्रियों में श्रेष्ठ द्रौपदी चित्तमें बहुत ही प्रसन्न हुई और फिर वह सन्ताप को त्याग कर बाहर आई ॥ ८८—८९ ॥ और उसने नृत्य मंदिरकी रक्षाकरनेवाले पहिरेदारोंसे कहा कि—"मेरे गंधर्व पतिओंने परस्त्री की चाहनासे मदमत्त हुए कीचकको मारडाला है । और वह नृत्य-

परस्त्रीकामसंमत्तस्तत्रोगच्छत पश्यत ॥ ९० ॥ तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या नर्तनागाररक्षिणः सहसैव समाजग्मुरादयोल्काः सहस्रशः ॥ ९१ ॥ ततो गत्वाथ तद्देशं कीचकं विनिपातितम् । गतासुं ददृशुर्भूमौ रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ९२ ॥ पाणिपादविहीनन्तु दृष्ट्वा च व्यथिता भवन् । निरीक्षन्ति ततः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥ ९३ ॥ अमानुषं कृतं कर्म तं दृष्ट्वा विनिपातितम् । क्वास्य ग्रीवा क्व चरणौ क्व पाणी क्व शिरस्तथा । इति स्म तं परीक्षन्ते गन्धर्वेण हतं तदा ॥ ९४ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि
कीचकवधे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ तस्मिन् काले समागम्य सर्वे तत्रास्य बान्धवाः । रुरुदुः कीचकं दृष्ट्वा परिवार्य समन्ततः ॥ १ ॥ सर्वे संहृष्टरोमाणः सन्त्रस्ताः प्रेक्ष्य कीचकम् । तथा सम्भिन्नसर्वांगं कूर्मं स्थल इवोद्धृतम् ॥ २ ॥ पोथितं भीमसेनेन तमिन्द्रेणेव दानवम् । संस्कारयितुमिच्छन्तो बहिर्नेतुं प्रचक्रमुः ॥ ३ ॥ ददृशुस्ते ततः कृष्णां सूत-

---

शालामें पड़ा हुआ है सो तुम नृत्यशालामें आओ और देखो ॥ ९० ॥ द्रौपदीके ऐसे कथनको सुनकर नृत्यशालाके रक्षक हाथमें जलतीहुई हजारों मसालों को लेकर नृत्यशालामें एक साथ आगए और देखा तो पृथ्वी पर लोहूलुहान हुआ कीचक मराहुआ दीखा ॥ ९१—९२ ॥ उसको हाथ पैर, कण्ठ इत्यादिसे रहित देख कर सब मनमें खेद करने लगे और बड़े आश्चर्यके साथ उसको देखते ही रहे ॥ ९३ ॥ गंधर्वोंके मारे हुए कीचकको देख कर उसकी परीक्षा करते हुए वह सब बोल उठे कि—यह कार्य मनुष्य का नहीं है अरे ! इसके कण्ठ, हाथ, पैर मस्तक इत्यादि अवयव कहाँ गए इस प्रकार मरेहुए कीचककी वह सब परीक्षा करने लगे ॥ ९४ ॥ बाईसवां अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

वैशम्पायन कहतेहैं कि-हे जनमेजय ! तदनन्तर कीचकके सब बांधव कीचककी मृत्युका समाचार सुनकर उसही समय वहां आगए और कीचक को देखकर उसके चारों ओर बैठकर रोदनशब्द करने लगे ॥ १ ॥ जलमेंसे सूखी पृथ्वी पर निकाले हुए कछुएकी समान जिसके सब अवयव शरीरमें बैठगएथे ऐसे कीचकको देखकर सबके रोमाञ्च खड़े होगए और सब डरगए ॥ २ ॥ क्योंकि—जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको कुचलकर मारडाला था तैसेही भीमने भी कीचकको कुचलकर मार डाला था । तदनन्तर उसको अन्तिम संस्कार करनेकी इच्छासे नगर के बाहर लेजाने के लिये उसके बांधव प्रयत्न करने लगे ॥ ३ ॥ इस

पुत्राः समागताः । अदूराच्चानवद्यांगीं स्तम्भमालिंग्य तिष्ठतीम् ॥४॥ समवेतेषु सर्वेषु तामूचुरुपकीचकाः । हन्यतां शीघ्रमसती यत्कृते कीचको हतः ॥ ५ ॥ अथवा नैव हन्तव्या दह्यतां कामिना सह । मृतस्यापि प्रियं कार्यं सूतपुत्रस्य सर्वथा ॥ ६ ॥ ततो विराटमूचुस्ते कीचकोऽस्याः कृते हतः । सहानेनाद्य दह्येम तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ७ ॥ पराक्रमन्तु सूतानां मत्वा राजान्वमोदत । सैरन्ध्र्याः सूतपुत्रेण सह दाहं विशाम्पतिः ॥ ८ ॥ तां समासाद्य वित्रस्तां कृष्णां कमललोचनाम् । मोमुह्यमानां ते तत्र जगृहुः कीचका भृशम् ॥ ९ ॥ ततस्तु तां समारोप्य निबध्य च सुमध्यमाम् । जग्मुरुद्यम्य ते सर्वे श्मशानाभिमुखास्तदा ॥ १० ॥ ह्रियमाणा तु सा राजन् सूतपुत्रैरनिन्दिता । प्राक्रोशन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती ॥ ११ ॥ द्रौपद्युवाच ॥ जयो जयन्तो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः । ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम् ॥ १२ ॥ येषां ज्यातलनिर्घोषा विस्फूर्जितमिवाशनेः । व्यश्रूयत

समय निर्दोषांगी द्रौपदी कीचक की लहाससे थोड़ी दूर एक थम्भसे लगकर खड़ी थी. उसको इकट्ठे हुए सूतपुत्रोंने देखा ॥४॥ तब कीचक के भाई इकट्ठे हुए सब लोगों के सामने कह उठे कि-जिसके कारण यह कीचक मारा गया है ऐसी व्यभिचारिणी इस स्त्री को झट मारडालो ॥ ५ ॥ अथवा इसको मारनेसे छोड़दो क्योंकि—इसको कामी कीचक के साथ जला देना ही ठीक होगा क्योंकि मरे हुए कीचक का हमें सर्वथा प्रिय करना चाहिये ॥ ६ ॥ फिर कीचक के भाइयों ने राजा विराट से कहा कि इस स्त्री के कारणही कीचककी मृत्यु हुई है अतः हम इस स्त्रीको कीचकके साथ जलाना चाहते हैं इसके लिये आप हमें आज्ञा दीजिये ॥ ७ ॥ राजा विराट ने सूतपुत्रोंके पराक्रमकी ओर ध्यान देकर कीचकके साथ द्रौपदीको जलादेनेकी सम्मति देदी ॥८॥ उससमय कमलको समान नेत्रोंवाली द्रौपदी भयभीत हो मूर्च्छित होगई कीचकके बंधुओंने द्रौपदीको बलात्कारसे पकड़ लिया ९ और सुंदर कमरवाली द्रौपदी को रस्सी से बांध कीचक के शवके ऊपर डाललिया और कीचकके शवको उठाकर वे सब सूतपुत्र श्मशानकी ओरको चलदिये॥१०॥हे राजन्! जब पवित्र आचारवाली द्रौपदीको शवके साथ बांधकर कीचकको श्मशानकी ओर लेजाने लगे तब पति वाली होने पर भी अनाथ बनीहुई सती द्रौपदी बोली ओ जय! ओ जयन्त! ओ विजय! ओ जयत्सेन! ओ जयद्बल! तुम मेरी पुकारको सुनो, यह सूतपुत्र मुझे लहासके साथ बांधकर लिये जाते हैं॥१२॥जिन वेगवाले गंधर्वों के धनुषोंकी प्रत्यञ्चाका शब्द महायुद्धमें भयंकर

महायुद्धे भीमघोषस्तरस्विनाम् ॥ १३ ॥ रथघोषश्च बलवान् गन्धर्वाणां तरस्विनाम्। ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम् १४ वैशम्पायन उवाच ॥ तस्यास्ताः कृपणा वाचः कृष्णायाः परिदेवितम्। श्रुत्वैवाभ्यापतद्भीमः शयनादविचारयन् ॥ १५ ॥ भीमसेन उवाच। अहं शृणोमि ते वाचं त्वया सैरन्ध्रि भाषिताम्। तस्मात्ते सूतपुत्रेभ्यो भयं भीरु न विद्यते ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्त्वा स महाबाहुर्विजजृम्भे जिघांसया। ततः स व्यायतं कृत्वा वेषं विपरिवर्त्य च ॥ १७ ॥ अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य निर्जगाम बहिस्तदा। स भीमसेनः प्राकारादारुह्य तरसा द्रुमम् ॥ १८ ॥ श्मशानाभिमुखः प्रायाद्यत्र ते कीचका गताः। स लंघयित्वा प्राकारं निःसृत्य च, पुरोत्तमात् जवेन पतितो भीमः सूतानामग्रतस्तदा ॥ १९ ॥ चितासमीपे गत्वा स तत्रापश्यद्वनस्पतिम्। तालमात्रं महास्कन्धं मूर्द्धशुष्कं विशाम्पते २० तं नागवदुपक्रम्य बाहुभ्यां परिरभ्य च। स्कन्धमारोपयामास दशव्यामं परन्तपः ॥ २१ ॥ स तं वृक्षं दशव्यामं सस्कन्धविटपं बली।

कड़ाके की समान सुनाई आता है ॥ १३ ॥ और जिन महावेगवान् गंधर्वोंके रथकी ध्वनि भी महाबलवान् है वह गंधर्व मेरी पुकारको सुनो, अरे रे यह सूतपुत्र मुझे उठाकर श्मशानमें लियेजाते हैं ॥ १४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-द्रौपदीकी दीन वाणी तथा विलापको सुनते ही भीमसेन बिना विचारे शय्यापरसे खड़ा होगया और कहने लगा ॥ १५ ॥ भीमसेन बोला कि—हे सैरंध्रि स्त्री! तू जो कुछ कह रही है मैं उसको सुनता हूँ हे भीरु तुझे अब कीचकोंकी ओरसे भय नहीं है ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—इस प्रकार कह कर कीचकोंको मारनेकी इच्छासे महाबाहु भीमसेन अच्छी प्रकार जंभाई लेकर ठीक होगया और उसने गंधर्वोंकी समान वेश धारण करलिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर एक साथ वह दीवार परसे दौड़कर नगरके दुर्गपर चढ़गया दुर्गको लांघ कर महानगरमें से बाहर निकल पड़ा और एक वृक्ष पर एकाएकी चढ़ कर द्रौपदीको जिस स्थानपर लियेजाते थे उस स्थानको उसने देखा तदनन्तर जहाँ सब कीचक जाते थे उस श्मशान भूमिकी ओर दौड़ता २ गया और सूतपुत्रोंसे पहिले ही जाकर खड़ा होगया ॥ १८—१९ ॥ भीमने चिताके समीप जाकर ताड़की समान लम्बा, बड़ी बड़ी शाखाओं वाला, ऊपर के भागसे सूखा हुआ दश कौलिया मोटा वृक्ष देखा ॥ २०॥ परन्तप भीमने दोनों हाथोंसे उस वृक्षको पकड़ कर हस्तीकी समान पृथ्वीमें से उखेड़ लिया और वह दण्डधारी यमराजकी समान दश कौलिया मोटे

प्रगृह्याभ्यद्रवत् सूतान् दण्डपाणिरिवान्तकः॥ २२ ॥ऊरुवेगेन तस्याथ न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकाः। भूमौ निपातिता वृक्षाः संघशस्तत्र शेरते २३ तं सिंहमिव संक्रुद्धं दृष्ट्वा गन्धर्वमागतम्। वित्रेसुः सर्वशः सूता विषादभयकम्पिताः॥ २४ ॥ गन्धर्वो बलवानेति क्रुद्ध उद्यम्य पादपम्। सैरन्ध्री मुच्यतां शीघ्रं यतो नो भयमागतम्॥ २५ ॥ ते तु दृष्ट्वा तदा विद्धं भीमसेनेन पादपम्। विमुच्य द्रौपदीं तत्र प्राद्रवन्नगरं प्रति २६ द्रवतस्तांस्तु सम्प्रेक्ष्य स वज्री दानवानिव। शतं पञ्चाधिकं भीमः प्राहिणोद्यमसादनम्॥ २७ ॥ वृक्षेणैतेन राजेन्द्र प्रभञ्जनसुतो बली। तत आश्वासयत् कृष्णां स विमुच्य विशाम्पते॥ २८ ॥ उवाच च महाबाहुर्पांचालीं तत्र द्रौपदीम्। अश्रुपूर्णमुखीन्दीनां दुर्धर्षः स वृकोदरः॥ २९ ॥ एवन्ते भीरु वध्यन्ते ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसम्। प्रैहि त्वं नगरं कृष्णे न भयं विद्यते तव॥ ३० ॥ अन्येनाहं गमिष्यामि विराटस्य महानसम्॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच। पंचाधिकं शतं तच्च निहतं तेन भारत। महावनमिवच्छिन्नं शिश्ये विगलितद्रु-

---

तथा शाखा प्रशाखाओंवाले महावृक्षको कंधेपर डाल कर सूतपुत्रों के सामने वेगसे दौड़ताहुआ गया ॥२१-२२॥ इस समय भीमकी जंघाओंके वेगसे बहुतसे बड़ पीपल और गूलरके ढेरके ढेर पेड़ पृथ्वी पर लम्बे होकर गिरगये थे॥२३॥सिंहकी समान कोपायमान होकर अपने ऊपर को झुककर आतेहुए भीमसेनको देखकर सब कीचक भय तथा खेदसे कांपने लगे, वह सब प्रकारसे भयभीत हो बोल उठे कि-॥२४॥ बलवान् गंधर्व वृक्ष लेकर क्रोधित हो हमारेऊपर चढ़ा आता है अतः शीघ्रतासे इस सैरंध्री को खोल दो क्योंकि—हमपर भय आन पड़ा है ॥ २५ ॥ परंतु वह इस प्रकार बातें कर रहे थे इतने में ही उस भीमके उठाये हुए वृक्षको देख कीचक द्रौपदी को छोड़ नगर की ओर भागने लगे ॥ २६ ॥ परन्तु उनको नगर की ओर भागते देख कर वज्रधारी इन्द्र जैसे दानवोंका संहार करते हैं तैसे ही भीमने अपने पासके वृक्षकी मारसे एक सौ पाँच कीचकोंको हे राजेंद्र यमलोक में पहुँचा दिया, तदनन्तर महाबाहु, प्रचण्डपराक्रमी पवनपुत्र बलवान् भीमने द्रौपदीको कीचककी काठीमेंसे खोलकर धीरज दिया तथा दीन वाणी से आंसू डालती हुई द्रौपदीसे कहा कि-॥ २७-२९ ॥ हे भीरु स्त्री! जो तुझ निरपराधिनी को पीड़ा देते हैं वे इसप्रकार मारेजाते हैं, तू नगरमें जा अब तुझे किसी प्रकारका भय नहीं है ॥ ३० ॥ मैं दूसरे मार्गसे राजा विराट की पाकशाला में पहुंच जाऊँगा ॥ ३१ ॥

मम् ॥ ३२ ॥ एवं ते निहता राजन् शतं पञ्च च कीचकाः । स च सेनापतिः पूर्वमित्येतत् सूतषट्शतम् ॥३३॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं नरा नार्यश्च संगताः । विस्मयं परमं गत्वा नोचुः किंचन भारत ॥ ३४ ॥ इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणित्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

वैशम्पायन उवाच । ते दृष्ट्वा निहतान् सूतान् राज्ञे गत्वान्य वेदयन् । गन्धर्वैर्निहता राजन् सूतपुत्रा महाबलाः ॥ १ ॥ यथा वज्रेण वै दीर्णं पर्वतस्य महच्छिरः । व्यतिकीर्णा प्रदृश्यन्ते तथा सूता महीतले ॥ २ ॥ सैरन्ध्री च विमुक्तासौ पुनरायाति ते गृहम् । सर्वं संशयितं राजन् नगरन्ते भविष्यति ॥ ३ ॥ यथारूपा च सैरन्ध्री गन्धर्वाश्च महाबलाः । पुंसामिष्टश्च विषयो मैथुनाय न संशयः ॥ ४ ॥ यथा सरन्ध्रिदोषेण न ते राजन्निदं पुरम् । विनाशमेति वै क्षिप्रं तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ५ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विराटो वाहिनीपतिः । अब्रवीत् क्रियतामेषां सूतानां परमक्रिया ॥ ६ ॥ एकस्मिन्नेव ते सर्वे सुस-

---

वैशम्पायन कहते हैं कि—महावनमें काटे हुए वृक्ष जैसे गिर पड़ें तैसे ही भीमके मारे हुए एक सौ पाँच कीचक भी भूमिमें गिर पडे ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! भीमने इस प्रकार एक सौ पाँच कीचकोंको मारडाला और पहिले सेनापति कीचकको मारडाला था उसके सहित एकसौ छः कीचक मारडाले॥ ३३ ॥ हे भारत ! ऐसे महान् आश्चर्य को देखकर स्त्री पुरुष वडा आश्चर्य करने लगे परन्तु कोई भी कुछ बोल नहीं सका ॥ ३४ ॥ तेईसवां अध्याय समाप्त ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे राजा जनमेजय ! तदनन्तर जिन नगरके मनुष्योंने यह सब देखा था उन्होंने राजाके सामने आकर निवेदन किया कि—हे राजन् ! गंधर्वोंने महावलशाली सूतपुत्रोंको मारडाला है ॥ १ ॥ और वज्रसे जैसे पर्वतका शिखर चूराचूरा होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है तैसे ही प्रत्येक कीचक गंधर्वोंके हाथसे मरण पाकर भूमिपर उलट सीधे पडे हैं ॥ २ ॥ और सैरन्ध्री उनके हाथमें से छूटकर फिर आपके घर आरही है यह सैरंध्री यदि नगरमें रहेगी तो सम्पूर्ण नगर भयमें पड़जायगा ॥ ३ ॥ क्योंकि—सैरंध्री अत्यन्त रूपवती है उसके पति गंधर्व महावलवान् हैं और पुरुषों की कामवासनापर प्रीति होती है यह बात निःसन्देह है॥४॥ अतः हे महाराज ! सैरंध्रीके अपराधसे तुम्हारा यह राज्य नष्ट न होजाय इस प्रकार की किसी रीति का आप शीघ्र ही उपाय करें तो अच्छा है ॥५॥ सेनापति राजा विराटने प्रजाके वचनोंको सुननेके अनन्तर अपने मनुष्यों को आज्ञा दी कि—मरे हुए कीचकोंकी अन्त्येष्टि क्रियो श्रेष्ठतासे करो

मिद्धे हुताशने । दह्यन्तां कीचकाः शीघ्रं रत्नैर्गन्धैश्च सर्वशः ॥ ७ ॥ सुदेष्णामब्रवीद्राजा महिषीं जातसाध्वसः । सैरन्ध्रीमागतां ब्रूया ममैव वचनादिदम् ॥ ८ ॥ गच्छ सैरन्ध्रि भद्रन्ते यथाकामं वरानने । बिभेति राजा सुश्रोणि गन्धर्वेभ्यः पराभवात् ॥ ९ ॥ न हि त्वामुत्सहे वक्तुं स्वयं गन्धर्वरक्षिताम् । स्त्रियास्त्वदोषस्तां वक्तुमतस्त्वां प्रब्रवीम्यहम् ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथ मुक्ता भयात् कृष्णा सूतपुत्रान्निरस्य च । मोक्षिता भीमसेनेन जगाम नगरं प्रति ॥ ११ ॥ त्रासितेव मृगी बाला शार्दूलेन मनस्विनी । गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा ॥ १२ ॥ तां दृष्ट्वा पुरुषा राजन् प्राद्रवन्त दिशो दश । गन्धर्वाणां भयत्रस्ताः केचिद्दृष्ट्वा न्यमीलयन् ॥ १३ ॥ ततो महानसद्वारि भीमसेनमवस्थितम् । ददर्श राजन् पांचाली यथामत्तं महाद्विपम् ॥ १४ ॥ तं विस्मयन्ती शनकैः संज्ञाभिरिदमब्रवीत् । गन्ध-

---

और एक ही चिता बनाकर उसमें अच्छी प्रकार अग्नि प्रज्वलित होजाय तब सुगंधित पदार्थ और रत्नोंके साथ सम्पूर्ण कीचकोंका शीघ्रही एकसाथ अग्निदाह करो ॥ ६-७ ॥ इस प्रकार अनुचरवर्गों को आज्ञा देनेके अनन्तर राजाको भी नगरके नष्ट होनेका मनमें भय लगरहा था इसलिये उसने पटरानी सुदेष्णासे कहा कि-जब सैरंध्री तुम्हारे घर आवे तब उससे मेरे कहने के अनुसार यह कहना कि ॥ ८ ॥ हे सुन्दरवदनि ! तेरा कल्याण हो, तेरी जहां इच्छा हो तहाँ चली जा क्योंकि —हे सुश्रोणि ! राजाजी गंधर्वोंके तिरस्कारसे डरते हैं॥९॥गंधर्व तेरी रक्षा करते हैं अतः तू त्यागनेके योग्य है यह बात राजा तुझसे अपने आप कहनेका साहस नहीं करसकते परन्तु तेरे साथ स्त्रियोंके बात चीत करनेमें कुछ दोष नहींहै इसकारण मैं राजाका सन्देशा तुझसे कहती हूँ ॥ १० ॥ वैशंपायन कहते हैं कि—हेजनमेजय ! भीम ने सूतपुत्रोंका संहार करनेके अनंतर भयमेंसे छूटीहुई द्रौपदीको राजा विराटके नगरकी ओर भेजा ॥ ११ ॥ सिंहसे डरी हुई छोटीसी मृगी की समान डरी हुईसी मनस्विनी द्रौपदी अपने वस्त्रोंको धो स्नान करके राजा विराटके नगरमें आई ।।१२।।तब हे राजन् ! उसको देखकर बहुतसे पुरुष गंधर्वोंके भयसे डरकर दशों दिशाओंमें को भागने लगे और बहुतसे पुरुषोंने उसको देख आंखें ही मीचलीं।।१३।।द्रौपदीने नगर में आतेर पाकशालाके द्वारपर मदमत्त हाथीकी समान खड़े भीमसेन को देखा॥१४॥ तब भीमको आश्चर्य उत्पन्न कराती हुई धीरेसे संज्ञाओं (इशारों)केद्वारा इस प्रकार बोली "जिस गंधर्वने मुझे दुःखमेंसे छुड़ाया

धर्वराजाय नमो येनास्मि परिमोचिता ॥ १५ ॥ भीम उवाच ॥ ये पुरा विचरन्तीह पुरुषा वशवर्तिनः । तस्यास्ते वचनं श्रुत्वा ह्यनृणा विहरन्त्युत ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः सा नर्तनागारे धनञ्जयमपश्यत । राज्ञः कन्या विराटस्य नर्तयानं महाभुजम् ॥ १७ ॥ ततस्ता नर्तनागाराद्विनिष्क्रम्य सहार्जुनाः । कन्या ददृशुरायान्तीं क्लिष्टां कृष्णामनागसम् ॥ १८ ॥ कन्या ऊचुः ॥ दिष्ट्या सैरन्ध्रि मुक्तासि दिष्ट्यासि पुनरागता । दिष्ट्या विनिहताः सूता ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसम् १९ बृहन्नलोवाच ॥ कथं सैरन्ध्रि मुक्तासि कथं पापाश्च ते हताः । इच्छामि वै तव श्रोतुं सर्वमेव यथातथम् ॥ २० ॥ सैरन्ध्र्युवाच ॥ बृहन्नले किन्तु तव सैरन्ध्र्या कार्यमद्य वै । या त्वं वससि कल्याणि सदा कन्यापुरे सुखम् ॥ २१ ॥ न हि दुःखं समवाप्नोषि सैरन्ध्री यदुपाश्नुते । तेन मां दुःखितामेवं पृच्छसे प्रहसन्निव ॥ २२ ॥ बृहन्नलोवाच । बृहन्नलापि कल्याणि दुःखमाप्नोत्यनुत्तमम् । तिर्यग्योनिगता बाले न चैनामवबुध्यसे ॥ २३ ॥ त्वया सहोषिता चास्मि त्वं च सर्वैः सहोषिता

है उस गंधर्वराजको मैं प्रणाम करती हूँ" ॥ १५ ॥ भीमसेन बोला "हे सुभगे! जो गंधर्व तेरे अधीन रहकर पहिले इस नगरमें गुप्तवास करके रहते थे, वह तेरे प्रेमपूर्ण विनयके वचनोंको सुनकर ऋण रहित हुए हैं और वह अब आनन्दसे इस नगरमें दिनों को बितावेंगे" ॥ १६ ॥ वैशंपायन कहते हैं कि तदनन्तर द्रौपदी नृत्यमंदिरमें, जहां कि अर्जुन राजा विराट की कन्याओं को नृत्य सिखाया करता था वहां उससे मिलनेको गई और अर्जुनको देखा ॥ १७ ॥ फिर निरपराधिनी होनेपरभी दुःखिनी द्रौपदी को आतेहुए देखकर अर्जुनके साथ सम्पूर्ण कन्याएं नृत्यशालामें से बाहर निकलकर बोलीं ॥ १८ ॥ कन्याओंने कहा कि-हे सैरंध्री! तू दुःखमेंसे छूटगई यह बहुत ही अच्छा हुआ, तू लौटकर आई यह भी ठीक ही हुआ और तुझसी निरपराधिनी स्त्रीको दुःख देनेवाले कीचक मारे गए यह भी बहुत अच्छा हुआ ॥ १९ ॥ बृहन्नला बोली हे सैरंध्रि! तू पापियोंके हाथमें से कैसे छूटी? तथा वह पापी किस प्रकार मारेगए? यह सब मैं तुझ से यथार्थ रीति से सुनना चाहती हूं ॥ २० ॥ सैरन्ध्री बोली कि—हे कल्याणी बृहन्नला! तुझे अब सैरंध्री से क्या काम है? क्योंकि— अब तो तू कन्याओंके अन्तःपुर में सदा सुखसे रहती है ॥ २१ ॥ जो दुःख सैरंध्री भोगती है वह दुःख तुझे नहीं मिलता है इसीसे तू मेरी हँसी करती हुईसी ऐसा पूछती है ॥ २२ ॥ बृहन्नला बोली कि-हे बाले! कल्याणि! बृहन्नलाभी नपुंसक के रूपमें बड़ा दुःख पाती है क्या इसकी तुझे खबर नहीं है? ॥ २३ ॥ मैं तेरे साथ रही हूँ और तू,

क्लिश्यन्त्यां त्वयि सुश्रोणि को नु दुःखं न चिन्तयेत् ॥ २४॥ न तु केनचिदत्यन्तं कस्यचिद्धृदयं क्वचित्। वेदितुं शक्यते नूनं तेन मां नावबुध्यसे ॥ २५ ॥ वैशम्पायन उवाच। ततः सहैव कन्याभिर्द्रौपदी राजवेश्म तत्। प्रविवेश सुदेष्णायाः समीपमुपगामिनी ॥ २६॥ ताम-ब्रवीद्राजपत्नी विराटवचनादिदम्। सैरन्ध्रो गम्यतां शीघ्रं यत्र कामयसे गतिम् ॥ २७ ॥ राजा बिभेति ते भद्रे गन्धर्वेभ्यः पराभवात्। त्वञ्चापि तरुणी सुभ्रु रूपेणाप्रतिमा भुवि। पुंसामिष्टश्च विषयो गन्धर्वाश्चातिकोपनाः ॥ २८ ॥ सैरन्ध्र्युवाच ॥ त्रयोदशाहमात्रं मे राजा क्षमतु भामिनी। कृतकृत्या भविष्यन्ति गन्धर्वास्ते न संशयः ॥ २९॥ ततो मामुपनेष्यन्ति करिष्यन्ति च ते प्रियम्। ध्रुवञ्च श्रेयसा राजा योक्ष्यते सह बांधवैः ॥ ३० ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि कीचकवधपर्वणि कीचकदाहे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ समाप्तञ्च कीचकवध पर्व ॥

अथ गोहरण पर्व।

वैशम्पायन उवाच। कीचकस्य तु घातेन सानुजस्य विशाम्पते।

हम सबोंके साथ रहीहै अतः तुझै सब मालूम ही है हे सुश्रोणि! तेरेऊपर दुःख पड़नेपर किसके मनमें दुःख नहीं होगा॥२४॥ परन्तु कोई भीमनुष्य किसी भी दिन किसी दूसरे मनुष्यके चित्तकी वृत्तियोंको भली प्रकार नहीं जान सकताइसीसे तू मेरी दशाको नही जानती है ॥२५॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-तदनन्तर द्रौपदी कन्याओंके साथ साथ राजमंदिरमें गई और सुदेष्णाके पास जाकर खड़ी होगई ॥ २६ ॥ तब रानी सुदेष्णाने राजा विराटके कहनेके अनुसार कहा कि—हे भद्रे! तेरे पति गंधर्वों के तिरस्कारसे राजा जी डरते हैं। और हे सुन्दर भ्रकुटीवाली! तू तरुणी है और पृथ्वी पर अनुपमरूप सम्पन्न है पुरुषोंको भी विषय वांछा अधिकतर होती है और गंधर्व बहुत ही क्रोधी हैं इससे राजा डरतेहैं सो हे सैरंध्रि! तुझै जहां जानेकी इच्छाहो तहाँ चलीजा ॥ २७—२८ ॥ सैरंध्री बोली कि—हे रानी! राजा केवल तेरह दिनही रहनेके लिये मुझै क्षमा करें तेरह दिनके पीछे मेरे पति गंधर्व अपना कार्य समाप्त करलेंगे इसमें संदेह नहींहै ॥२९॥ तेरह दिन पीछे गंधर्व मुझै यहाँसे लिवा जायँगे, तुम्हारा हित करेंगे तथा मेरे पतियों की ओरसे निःसन्देह राजा तथा उनके कुटुम्बियोंका भी हित होगा ॥३०॥ चौबीसवां अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ कीचक वध पर्व समाप्त ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे राजन्! कीचक तथा उसके बन्धु

अत्याहितं चिन्तयित्वा व्यस्मयन्त पृथक्जनाः ॥ १ ॥ तस्मिन् पुरे जनपदे सञ्जल्पोभूच्च संघशः । शौर्याद्धि वल्लभो राज्ञो महासत्त्वः स कीचकः ॥ २ ॥ आसीत् प्रहर्त्ता सैन्यानां दारामर्षी च दुर्मतिः। स हतः खलु पापात्मा गन्धर्वैर्दुष्टपूरुषः ॥ ३ ॥ इत्यजल्पन्महाराज परानीकविनाशनम् । देशे देशे मनुष्याश्च कीचकं दुष्प्रधर्षणम् ॥ ४ ॥ अथ वै धार्त्तराष्ट्रेण प्रयुक्ता ये बहिश्चराः । मृगयित्वा बहून् ग्रामान् राष्ट्राणि नगराणि च ॥ ५ ॥ संविधाय यथादृष्टं यथादेशप्रदर्शनम् । कृतकृत्या न्यवर्त्तन्त ते चरा नगरं प्रति ॥ ६ ॥ तत्र दृष्ट्वा तु राजानं कौरव्यं धृतराष्ट्रजम् । द्रोणकर्णकृपैः सार्द्धं भीष्मेण च महात्मना ॥ ७ ॥ संगतं भ्रातृभिश्चापि त्रिगर्तैश्च महारथैः । दुर्योधनं सभामध्ये आसीन मिदमब्रुवन् ॥ ८ ॥ चरा ऊचुः । कृतोऽस्माभिःपरो यत्नस्तेषामन्वेषणे सदा । पाण्डवानां मनुष्येन्द्र तस्मिन्महति कानने ॥ ९ ॥ निर्जने मृगसङ्कीर्णे नानाद्रुमलताकुले । लताप्रतानबहुले नानागुल्मसमावृते ॥१०॥ न च विद्मो गता येन पार्थाः सुदृढविक्रमाः । मार्गमाणाः पदन्यासं

एकसाथ ही मारे गए इस महा भयानक घटनाका विचार करके पृथक् २ वर्णके मनुष्य अचंभेमें पड़गए॥१॥ हे महाराज ! विराट नगर में तथा भिन्न२ देशोंमें मनुष्य मिलकर बातें करनेलगे कि-महाबलवान् कीचक शूरवीरपनेके कारण राजा विराटका प्यारा था ॥ २ ॥ परन्तु लोगोंको लूटनेवाला परस्त्रीकी लज्जा उतारनेवाला दुष्टबुद्धि और पापी था तब ही तो गंधर्वोंने उस दुष्टको मारडाला, है इसप्रकार शत्रु सेना संहारक कीचकके विषयमें देश २ के मनुष्य बातें करनेलगे ॥ ३-४ ॥ पाण्डवों को वनमें रहते हुए बारह वर्ष बीतगए हैं और गुप्तवास करने का तेरहवां वर्ष चल रहाहै इसकारण धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने पांडवों को ढूंढने के लिये देश,देशान्तरोंमें गुप्तदूत भेजेथे वह बहुतसे ग्रामोंमें, देशोंमें तथा नगरोंमें दुर्योधनकी आज्ञानुसार पाण्डवोंको ढूंढते फिरे तथा अपने को सौंपे हुए कार्यमें कृतकृत्य हो। हस्तिनापुरकी ओर को लौट चले ॥ ५—६ ॥ वह हस्तिनापुरमें आकर राजसभामें गए तहाँ उन्होंने द्रोणाचार्य कृपाचार्य, कर्ण, महात्मा भीष्म पितामह भाई तथा महारथी त्रिगर्त देशके राजाओंके साथ सभामें बैठेहुए, दुर्योधनसे इसप्रकार निवेदन किया ॥ ७-८ ॥ दूत बोले कि—हे नरेन्द्र ! हमने महावनमें पाण्डवों को ढूढ़नेके लिये सर्वदा बहुतही उपाय किया, हम निर्जन, पशु पक्षियोंसे भरपूर, नाना प्रकारके वृक्षोंसे और लताओंके झुंडोंसे तथा तंतुओंसे अत्यन्त भरपूर, अनेकों प्रकारके झूँडोंसे भरे ऐसे महा अरण्यके बहुतसे स्थलोंमें उनके पैरोंके चिन्हों

तेषु तेषु तथा तथा ॥ ११ ॥ गिरिकूटेषु तुंगेषु नानाजनपदेषु च । जनाकीर्णेषु देशेषु खर्वटेषु पुरेषु च ॥ १२ ॥ नरेन्द्रबहुशोन्विष्टा नैव विद्मश्च पाण्डवान् । अत्यन्तं वा विनष्टास्ते भद्रन्तुभ्यं नरर्षभ ॥ १३ ॥ वर्त्मन्यन्वेष्यमाणा वै रथिनां रथिसत्तम । न हि विद्मो गतिं तेषां वासं हि नरसत्तम ॥१४॥ किञ्चित्कालं मनुष्येन्द्र सूतानामनुगा वयम् । मृगयित्वा यथान्यायं वेदितार्थाः स्म तत्त्वतः ॥ १५ ॥ प्राप्ता द्वारवतीं सूता विना पार्थैः परन्तप । न तत्र कृष्णा राजेन्द्र पाण्डवाश्च महाव्रताः ॥ १६ ॥ सर्वथा विप्रनष्टास्ते नमस्ते भरतर्षभ । न हि विद्मो गतिं तेषां वासं वापि महात्मनाम् ॥ १७ ॥ पाण्डवानां प्रवृत्तिञ्च विद्म कर्मापि वा कृतम् । स नः शाधि मनुष्येन्द्र अत ऊर्ध्वं विशाम्पते १८ अन्वेषणे पाण्डवानां भूयः किं करवामहे । इमाञ्च नः प्रियां वीर वाचं भद्रवतीं शृणु ॥ १९ ॥ येन त्रिगर्त्ता निहता बलेन महता नृप । सूते

से बहुत खोजकी परन्तु दृढ़पराक्रमी पाण्डव किस मार्गसे गए यह हमें मालूम नहीं हुआ ॥ ९—११ ॥ और हे नरेंद्र ! ऊँचे पर्वतोंके शिखरों पर, नाना प्रकारके देशोंमें, भिन्न २ प्रकारके मनुष्योंसे भी भरपूर नगरोंमें उजाड़ स्थानोंमें तथा नगरीमें भी पाण्डवों को बहुत खोजा परन्तु कहीं भी उनका पता नहीं लगा । सो हे नरर्षभ ! प्रतीत होताहै कि वह निश्चय ही मरगए हैं, आपका कल्याण हो ॥ १२-१३ ॥ हे रथिश्रेष्ठ ! हमने लौटते समयभी मार्गमें उनको बहुत खोजा परंतु वह महारथी कहाँ रहते हैं और क्या करते हैं यह पता हमें नहीं मिला ॥ १४ ॥ हे राजन् ! हम कितने ही समय तक उनके सारथियोंके पीछे २ भटके और बहुत ध्यान देकर उनको ढूंढा इससे ठीक २ बात मालूम होगई है ॥ १५ ॥ हे परन्तप ! हमारे जाननेमें यह आया है कि इन्द्रसेन आदिक पांडवोंके सारथी पाण्डवोंके बिना अकेले ही द्वारिका पुरीमें चलगए हैं परन्तु हे राजेन्द्र ! द्रौपदी और पाण्डव द्वारिकामें नहीं हैं ॥ १६ ॥ हे भरतवंशश्रेष्ठ ! हमने खोजकी तब भी महाव्रत धारी पाण्डवोंका निवास स्थान, उनका एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाना, उनकी किस कामके करनेकी इच्छा है यह तथा उनके करे काम का पता नहीं लगा इससे सिद्ध होताहै कि-वह नष्ट होगए । हे राजन् ! अब आगेके लिये आपको जो आज्ञा देनी हो वह दीजिये और हम, पाण्डवोंको खोजनेके लिये अब क्या उपाय करें ? सो बताइये । हे वीर ! हमारी कल्याणकारी एक शुभ बात सुनो ॥१७-१९॥ हे राजन् ! राजा विराट के यहाँ कीचक नामवाला एक महाबलवान् सेनापति था जिसने त्रिगर्त देशके राजाओंको नष्ट कियाथा उस दुष्टात्मा कीचक

न राज्ञो मत्स्यस्य कीचकेन बलीयसा ॥ २० ॥ स हतः पतितः शेते गन्धर्वैर्निशि मारितः । अदृश्यमानैर्दुष्टात्मा भ्रातृभिः सह सोदरैः ॥ २१ ॥ प्रियमेतदुपश्रुत्य शत्रूणां च पराभवम् । कृतकृत्यश्च कौरव्य विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि चार-
प्रत्यागमने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ ततो दुर्योधनो राजा श्रुत्वा तेषां वचस्तदा । चिरमन्तर्मना भूत्वा प्रत्युवाच सभासदः ॥ १ ॥ सुदुःखा खलु कार्याणां गतिर्विज्ञातुमन्ततः । तस्मात् सर्वे निरीक्षध्वं क्व नु ते पाण्डवा गताः ॥ २ ॥ अल्पावशिष्टं कालस्य गतभूयिष्ठमन्ततः । तेषामज्ञातचर्यायामस्मिन् वर्षे त्रयोदशे ॥ ३ ॥ अस्य वर्षस्य शेषश्चेत् व्यतीयुरिह पाण्डवाः । निवृत्तसमयास्ते हि सत्यव्रतपरायणाः ॥ ४ ॥ क्षरन्त इव नागेन्द्राः सर्वे ह्याशीविषोपमाः । दुःखा भवेयुः संरब्धाः कौरवान् प्रति ते ध्रुवम् ॥ ५ ॥ सर्वे कालस्य वेत्तारः कृच्छ्ररूपधराः स्थिताः । प्रविशेयुर्जितक्रोधास्तावदेव पुनर्वनम् ॥ ६ ॥ तस्मात् क्षिप्रं बुभूषध्वं

को तथा उसके भाइयोंको गुप्त रहनेवाले गंधर्वोंने रात्रिमें मारडाला है और कीचक अपने सहोदर भाइयोंके साथ मृत्युपाकर पृथ्वीपर पड़ा है ॥ २०— २१ ॥ हे कुरुपुत्र ! आप इस प्रिय समाचारको सुनकर तथा शत्रुके तिरस्कारको सुनकर कृतार्थ हुए हो अब आपको जो कुछ करना हो सो करिये ॥ २२ ॥पच्चीसवां अध्याय समाप्त॥ २५ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! राजा दुर्योधनने अपने दूतोंके वचन सुननेके अनन्तर अपने मनमें बहुत कुछ विचार किया और अपने सभासदोंसे कहा कि—॥ १ ॥ किसी भी कामके फल को जानना यह बात निश्चय ही बड़ी कठिन है अतः तुम सब विचार करो कि पाण्डव कहाँ गए होंगे ॥ २ ॥ यह तेरहवां वर्ष उनके गुप्त रहनेका है, उसमें से बहुतसा समय तो बीतगया है और कुछ थोड़ासाही बाकी रहगया है ॥ ३ ॥ यह थोड़ा सा बचा हुआ समय यदि बीत जायगा तो फिर सत्यवादी पाण्डव अपनी प्रतिज्ञाके पूर्ण होनेसे अपने राज्यमें आवेंगे॥४॥ तथा मद टपकाने वाले हाथी की समान और विष उगलने वाले सर्पकी समान महाक्रोधी पाण्डव कौरवोंको अवश्यही दुःख देंगे ॥ ५ ॥ सब पाण्डव समयको जानने वाले हैं, कष्टकारक भयंकर रूपको धारण करने वाले हैं और क्रोधका विजय करनेवाले हैं अतः उनको दूसरीबार

यथा तेऽत्यन्तमव्ययम्। राज्यं निर्द्वन्द्वमव्यग्रं निःसपत्नं चिरम्भवेत् ॥ ७ ॥ अथाब्रवीत्ततः कर्णः क्षिप्रं गच्छन्तु भारत। अन्ये धूर्त्ता नरा दक्षा निभृताः साधुकारिणः ॥ ८ ॥ चरन्तु देशान् संवीताः स्फीतान् जनपदाकुलान्। तत्र गोष्ठीषु रम्यासु सिद्धप्रव्रजितेषु च ॥ ९ ॥ परिचारेषु तीर्थेष विविधेष्वाकरेषु च। विज्ञातव्या मनुष्यैस्तैस्तर्कया सुविनीतया ॥ १० ॥ विविधैस्तत्परैः सम्यक् तज्ज्ञैर्निपुणसंवृतैः। अन्वेष्टव्याः सुनिपुणैः पाण्डवाश्छन्नवासिनः ॥ ११ ॥ नदीकुञ्जेषु तीर्थेषु ग्रामेषु नगरेषु च। आश्रमेषु च रम्येषु पर्वतेषु गुहासु च ॥ १२ ॥ अथाग्रजानन्तरजः पापभावानुरागवान्। ज्येष्ठो दुःशासनस्तत्र भ्राताः भ्रातरमब्रवीत् ॥ १३ ॥ येषु नः प्रत्ययो राजंश्चारेषु मनुजाधिप। ते यान्तु दत्तदेया वै भूयस्तान् परिमार्गितुम् ॥ १४ ॥ एतच्च कर्णो यत् प्राह सर्वं मन्यामहे तथा। यथोद्दिष्टं चराः सर्वे मृगयन्तु ततस्ततः ॥ १५ ॥ एते चान्ये च भूयांसो देशाद्देशं यथाविधि। न तु तेषां गतिर्वासः प्रवृत्तिश्चोपलभ्यते ॥ १६ ॥ अत्यन्तं वा निगूढास्ते पारं चोर्मि-

---

वनमें जानापड़ै इसलिये उनको ढूंढ निकालो कि जिससे हमारा राज्य चिरकालतक घना रहे और शत्रुरहित तथा आनन्ददायक हो ॥ ६-७॥ यह सुनकर हे भरतवंशी राजन्! कर्ण बोला कि—हमारा हित चाहने वाले धूर्त और बुद्धिमान् पुरुष गुप्त रीतिसे बड़े२ देशोंमें तथा सम्पत्ति वाले नगरोंमें जायँ और तहां विद्वानोंकी बड़ी२ सभाओंमें सिद्ध पुरुषों के आश्रमोंमें, राजनगरोंमें, तीर्थोंमें तथा प्रकार २ की पर्वतोंकी गुफाओंमें जाकर इनदूतोंको बहुतही विचारयुक्त तर्कबुद्धि दौड़ाकर पाण्डवों को खोज निकालना चाहिये ८-१० तैसेही ढूंढनेके काममें कुशलतावाले पुरुषों को ढूंढनेके कार्य में तत्पर हो अपने स्वरूपको छिपाकर अनेकों प्रकारकी चतुरताके द्वारा, नदीके तट परकी कुंजोंमें, तीर्थों में ग्रामों में नगरोंमें, रमणीय आश्रमोंमें, पर्वतोंपर तथा गुफाओंमें जाकर जहां पाण्डव छिपकर बैठे हों तहांसे उन्हें ढूंढ निकालना चाहिये ॥ ११-१२॥ तदनन्तर महापापी दुर्योधनके छोटे भाई दुःशासनने दुर्योधनसे कहा कि ॥ १३ ॥ हे मनुष्याधिपते! जिन दूतों पर आपका अच्छी प्रकार विश्वास हो उनको मार्गका खर्च दो और यह पाण्डवोंको ढूंढनेके लिये फिर जायं ॥ १४ ॥ और कर्णने जो कुछ कहा है वह सब हमको मान्य है कि सम्पूर्ण दूत हमारी आज्ञानुसार पाण्डवों को ढूंढना आरंभ करें ॥ १५॥ हमारे दूत आज्ञानुसार पाण्डवोंको खोजनेके लिये देश देशमें गयथे परन्तु पाण्डवोंका निवास, उनका गमन, तथा उनकी किसी प्रकार की सूचना कोई बात भी मालूम नहीं हुई ॥ १६ ॥ अतः

मतो गताः । व्यालैश्चापि महारण्ये भक्षिताः शूरमानिनः ॥ १७ ॥ अथवा विषमं प्राप्य विनष्टाः शाश्वतीः समाः ।-तस्मान्मानसमव्यग्रं कृत्वा त्वं कुरुनन्दन । कुरु कार्यं महोत्साहं मन्यसे यन्नराधिप ॥ १८ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि कर्ण-
दुःशासनवाक्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ अथाब्रवीन्महावीर्यो द्रोणस्तत्वार्थदर्शिवान् । न तादृशा विनश्यन्ति न प्रयान्ति पराभवम् ॥ १ ॥ शूराश्च कृतविद्याश्च बुद्धिमन्तो जितेन्द्रियाः । धर्मज्ञाश्च कृतज्ञाश्च धर्मराजमनुव्रताः ॥ २ ॥ नीतिधर्मार्थतत्वज्ञं पितृवच्च समाहितम् । धर्मे स्थितं सत्यधृतिं ज्येष्ठं ज्येष्ठाऽनुयायिनः ॥ ३ ॥ अनुव्रता महात्मानं भ्रातरो भ्रातरं नृप । अजातशत्रुं श्रीमन्तं सर्वभ्रातॄननुव्रतम् ॥ ४ ॥ तेषां तथाविधेयानां निभृतानां महात्मनाम् । किमर्थं नीतिमान् पार्थः श्रेयो नैषां करिष्यति ॥ ५ ॥ तस्माद्यत्नात् प्रतीक्षन्ते कालस्योदयमागतम् । न हि ते नाशमृच्छेयुरिति पश्याम्यहं धिया ॥ ६ ॥ साम्प्रतं चैव यत्कार्यं तच्च

क्या तो शूरवीर का मान रखने वाले पांडव अच्छी प्रकार कहीं लुप रहे होंगे अथवा समुद्रके परलीपार भागगए होंगे अथवा महावन में उनको हिंसक प्राणी खागए होंगे॥१७॥अथवा वह कष्टमें पड़कर सदा के लिये चलबसे होंगे अतः हे कुरुनन्दन राजन्! तुम मनको स्थिर करके मेरा कहना मानो तो बड़े उत्साह से अपना कार्य करो ॥ १८ ॥ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे राजा जन्मेजय! तदनन्तर तत्वार्थदर्शी महापराक्रमी द्रोणाचार्य बोले कि पाण्डव जैसे महापुरुष कभी नष्ट नहीं होसकते तथा किसीसे तिरस्कार भी नही पासते ॥ १ ॥ पाण्डव शूर वीर विद्यावान् बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, कृतज्ञ तथा धर्मराजकी आज्ञानुसार चलनेवाले हैं ॥ २ ॥ तैसेही धर्मराज भी नीति धर्म तथा अर्थका तत्व जाननेवाले धर्मपर आधार रखने वाले, सच्चे धैर्यवान् सबसे बडे, अजातशत्रु श्रीमान् और सब भाइयोंके अनुकूल रहनेवाले हैं, तैसे महात्मा युधिष्ठिरको, बड़ोंके आचारके अनुसार चलनेवाले भीमादिक चारों भाई पिताकी समान मानतेहैं तथा उनकी ही आज्ञामें चलाकरते हैं ॥ ३—४ ॥ अतः नीतिमान्, पाण्डुपुत्र धर्मराज किंकर की समान अपने अधीन रहनेवाले अत्यन्त सावधान अपने भाइयोंका हित क्यों नहीं करेंगे! ॥ ५ ॥ पाण्डव उत्तम प्रयत्न करके अपने उदय कालकी वाट देखतेहोंगे परन्तु वह मरे नहीं हैं, ऐसा बुद्धिसे विचार करते हुए मेरे ध्यानमें आताहै ॥ ६ ॥ अतः अब जो काम करना हो

क्षिप्रमकालिकम् । क्रियतां साधु सञ्चिन्त्य वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम् ॥७॥ यथावत् पाण्डुपुत्राणां सर्वार्थेषु धृतात्मनाम् । दुर्ज्ञेयाः खलु शूरास्ते दुरापास्तपसावृताः ॥ ८ ॥ शुद्धात्मा गुणवान् पार्थः सत्यवान्नीतिमान् शुचिः । तेजोराशिरसंख्येयो गृह्णीयादपि चक्षुषा ॥ ६ ॥ विधाय क्रियतां तस्माद्भूयश्च मृगयामहे । ब्राह्मणैश्चारकैः सिद्धैर्ये चान्ये तद्विदो जनाः ॥ १० ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि द्रोणवाक्ये चारप्रत्याचारे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः शान्तनवो भीष्मो भरतानां पितामहः । श्रुतवान् देशकालज्ञस्तत्त्वज्ञः सर्वधर्मवित् ॥ १ ॥ आचार्यवाक्योपरमे तद्वाक्यमभिसन्दधत् । हितार्थं समुवाचैनां भारतीं भारतान् प्रति ॥२॥ युधिष्ठिरे समासक्तां धर्मज्ञे धर्मसंवृताम् । असत्सु दुर्लभां नित्यं सतां चाभिमतां सदा ॥ ३ ॥ भीष्मः समवदत्तत्र गिरं साधुभिरर्चिताम् ।

उसको अच्छी प्रकार विचार करके विना विलम्बके झट करडालो और सब विषयोंमें सूक्ष्मतासे ध्यान देनेवाले पाण्डवोंके निवासस्थानको ठीक २ खोजकर निकालो क्योंकि—पाण्डव निश्चय ही शूरवीर, तपस्वी तथा हाथमें न आनेवाले हैं और कोई ढूंढकर उन्हे पा लेवे ऐसे नहीं हैं ॥ ७—८ ॥ इनमें धर्मपुत्र युधिष्ठिर शुद्ध अन्तःकरणके गुणवान् सत्यवान्, नीतिमान् पवित्र तेजका ढेर और महाबली हैं अतः वह प्रत्यक्ष दीखजायँ तो भी मनुष्योंको मोहित करडालें इसलिये दूसरा कोई भी उन्हे पहिचान नहीं सकता ॥ ६ ॥ इसलिये सब विचार कर काम करो तथा ब्राह्मणोंके द्वारा सिद्धपुरुषोंके द्वारा चारणोंके द्वारा और दूसरे जो उनको पहिचानते हों उनके द्वारा, पाण्डवों की फिर खोज कराओ ॥ १० ॥ सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—तदनन्तर भरतवंशी राजाओंके पितामह शास्त्रसम्पन्न, देश तथा कार्यको जाननेवाले, सर्व धर्मों में निपुण भीष्म पितामह ॥ १ ॥ पहिले अध्यायके अनुसार द्रोणाचार्यके बोलचुकने पर उन के कहनेके अनुसार ही, कौरवों के हितके लिये, कौरवोंसे, पाण्डवोंके विषयमें बोले ॥ २ ॥ भीष्मपितामह की वह वाणी, धर्म पर प्रीति रखनेवाले राजा युधिष्ठिर के विषय में थी, यह बात धर्मसे भरी सत्पुरुषोंको सदा सब प्रकार से मानने योग्य थी और दुर्जन उसके मर्म भाग को भी न पहिचान सकें ऐसी गूढ़ थी ॥ ३ ॥ भीष्मपितामह पक्षपात रहित, महात्मा पुरुषोंकी मान्य बात कहते हुए कहनेलगे कि

यश्चैप ब्राह्मणः प्राह द्रोणः सर्वार्थतत्त्ववित् ॥ ४ ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नाः साधुव्रतसमन्विताः । श्रुतव्रतोपपन्नाश्च नानाश्रुतिसमन्विताः ॥ ५ ॥ वृद्धानुशासने युक्ताः सत्यव्रतपरायणाः । समयं समयज्ञास्ते पालयन्तः शुचिव्रताः ॥६॥ क्षत्रधर्मरता नित्यं केशवानुगताः सदा । प्रवीरपुरुषास्ते वै महात्मानो महाबलाः ॥ नावसीदितुमर्हन्ति उद्वहन्तः सतां धुरम् ॥७॥ धर्मतश्चैवगुप्तास्ते सुवीर्येण च पाण्डवाः । न"" मधिगच्छं शुरिनि मे धीयते मतिः ॥८॥ तत्र बुद्धिं प्रवक्ष्यामि पाण्डवान् प्रति भारत । न तु नीतिः सुनीतस्य शक्यतेऽन्वेषितुं परैः ॥९॥ यत्तु शक्यमिहास्माभिस्तान्वै सञ्चिन्त्य पाण्डवान् । बुद्ध्याप्रयुक्तं न द्रोहात् प्रवक्ष्यामि निबोध तत् ॥ १० ॥ न त्वियं मादृशैर्नीतिस्तस्य वाच्या कथञ्चन । सा त्वियं साधु वक्तव्या न त्वनीतिः कथञ्चन ॥११॥ वृद्धानुशासने तात तिष्ठता

सब विषयके तत्व को जाननेवाले द्रोणाचार्यने जो कहा है कि— ॥ ४ ॥ पाण्डव सकल शुभ लक्षणों से युक्त महात्मा पुरुषों के व्रतोंको पालने वाले शास्त्र पढ़ेहुए सदाचारी अनेकों कथाओंके प्रबन्धों को जानने वाले वृद्धोंके उपदेशोंको पालनेवाले सत्य तथा शीलपरायण समय को जाननेवाले, समयकी रक्षा करनेवाले, पवित्र नियमों वाले, नित्य क्षत्रियोंके धर्ममें तत्पर, सदा श्रीकृष्णके अनुगामी महावीर, महात्मा महाबली और महात्मापुरुषोंके कार्यरूपी भारको उठानेवाले हैं इस कारण वह दुःख भोगनेके योग्य नहीं हैं; ॥ ५-७ ॥ यह सत्य ही है पाण्डव धर्मसे तथा उत्तम प्रकार की वीरतासे रक्षित हैं, अतः वह नष्ट नहीं हुए होंगे ऐसा मेरा दृढ़ विचार है ॥ ८ ॥ हे भरतवंशी राजन्! अब मैं तुमको पाण्डवोंके खोजनेके विषयमें अपनी सम्मति कहता हूँ नीति जाननेवाले पुरुष को अपना कार्य साधने के लिये साधारण दूतों से पाण्डवों का ढुंढवाना, इसको चतुर मनुष्य नीति नहीं कहते हैं ॥ ९ ॥ तथापि पाण्डवोंके विषयमें भलेप्रकार विचार करतेहुए मुझे जो ठीक मालूम होता है, वही मैं कहता हूँ, परन्तु इससे तुम मेरे ऊपर ऐसी शङ्का न करना कि—मैं द्रोहके कारण तुमसे इस प्रकार कहताहूँ अब मैं जो कुछ कहताहूँ उस पर ध्यान दो ॥१०॥ राजा युधिष्ठिर की नीतिकी, मुझसरीखा पुरुष किसीप्रकार निन्दा नहीं कर सकता, युधिष्ठिर की नीतिको अच्छी नीति ही कहना चाहिये किसी प्रकार भी बुरी कहना ठीक नहीं है॥११॥ हे तात! वृद्धोंकी आज्ञा में रहने वालेधीर और सत्यशील विद्वान् पुरुषको सत्पुरुषोंकी सभामें

सत्यशीलिना । अवश्यं त्विह धीरेण सतां मध्ये विवक्षता ॥ १२ ॥ यथार्हमिह वक्तव्यं सर्वथा धर्मलिप्सया । तत्र नाहं तथा मन्ये यथायमितरो जनः ॥१३॥ निवासं धर्मराजस्य वर्षेऽस्मिन् वै त्रयोदश । तत्र तात न तेषां हि राज्ञा भाव्यमसाम्प्रतम् ॥ १४ ॥ पुरे जनपदे चापि यत्र राजा युधिष्ठिरः । दानशीलो वदान्यश्च निभृतो ह्रीनिषेवकः जनो जनपदे भाव्यो यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥ प्रियवादी सदा दान्तो भव्यः सत्यपरो जनः । हृष्टः पुष्टः शुचिर्दक्षो यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ १६ ॥ नासूयको न चापीर्षुर्नाभिमानी न मत्सरी । भविष्यति जनस्तत्र स्वयं धर्ममनुव्रतः ॥ १७ ॥ ब्रह्मघोषाश्च भूयांसः पूर्णाहुत्यस्तथैव च । क्रतवश्च भविष्यन्ति भूयांसो भूरिदक्षिणाः ॥ १८ ॥ सदा च तत्र पर्जन्यः सम्यग्वर्षी न संशयः । सम्पन्नसस्या च मही निरातंका भविष्यति ॥ १९ ॥ गुणवन्ति च धान्यानि रसवन्ति फलानि च । गन्धवन्ति च माल्यानि शुभशब्दा च भारती ॥२०॥ वायुश्च

कोई भी बात कहनी हो तो सर्वथा धर्म प्राप्त करनेकी इच्छासे जो सत्य बात हो वहही कहनी चाहिये, सो तुम सब साधारण लोगों ने जैसे इस तेरहवे वर्ष में युधिष्ठिरके रहनेके विषय में जिस प्रकारके विचार बांधे हैं, तैसा मैं नही मानता, हे तात जिस देशमें अथवा नगरमें राजा युधिष्ठिर रहते होंगे उस देशके अथवा नगरके राजाका अमङ्गल नहीं होना चाहिये किन्तु जिस देशमें राजा युधिष्ठिर रहतेहों उस देशके मनुष्य भी दानी उदार, जितेंद्रिय तथा लज्जाशील होने चाहिये ॥ १२—१५ ॥ और राजा युधिष्ठिर जिस देशमें रहते होंगे उस देशके मनुष्य हृष्ट पुष्ट, पवित्र चतुर प्रियवादी दान्त, श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त और सत्यपरायण होने चाहिये ॥ १६ ॥ और जहां राजा युधिष्ठिर रहते होंगे तहाँके लोग असूया दूसरेके गुणोमें दोषलगानेसे रहित, ईर्ष्यारहित अभिमानरहित मत्सरता रहित और जातिधर्मके अनुसार वर्ताव करने वाले होंगे ॥ १७ ॥ और तहाँ वेदोंकी अनन्त ध्वनियें, यज्ञोंकी पूर्ण आहुतियें, और दक्षिणावाले यज्ञ होते होंगे ॥ १८ ॥ और तहाँ सदा वर्षा अच्छी प्रकार होती होगी इसमें संदेह नहीं है, और वह देश बहुतसे अन्नवाला और पीड़ारहित भी होगा ॥ १९ ॥ और तहाँ सारवाल अन्न रसयुक्त फल सुगंधित पुष्प और शुभ शब्दोंसे युक्त वाणी बोली जाती होगी ॥ २० ॥ तैसे ही जहाँ राजा युधिष्ठिर रहते होंगे तहाँ सुखदायक पवन चलती होगी, पाखण्डसे रहित धर्मका स्वरूप देखनेमें आता होगा, और किसी को भी भय नहीं होगा ॥ २१ ॥ और तहाँ बहुतसी गौएं होंगी उनके शरीर कृश तथा बलरहित नहीं होंगे किंतु

सुखसंस्पर्शो निष्प्रतीपं च दर्शनम् । न भवं त्वाविशेत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २१ ॥ गावश्च बहुलास्तत्र न कृशा न च दुर्बलाः । पयांसि दधि सर्पीषि रसवन्ति हितानि च ॥ २२ ॥ गुणवन्ति च पेयानि भोज्यानि रसवन्ति च । तत्र देशे भविष्यन्ति यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥ रसाःस्पर्शाश्च गन्धाश्च शब्दाश्चापि गुणान्विताः । दृश्यानि च प्रसन्नानि यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥ धर्माश्च तत्र सर्वैस्तु सेविताश्च द्विजातिभिः । स्वैः स्वैर्गुणैश्च संयुक्ता अस्मिन्वर्षे त्रयोदशे ॥ २५ ॥ देशे तस्मिन् भविष्यन्ति तात पाण्डवसंयुते । सम्प्रीतिमान् जनस्तत्र सन्तुष्टः शुचिरव्ययः ॥ २६ ॥ देवतातिथिपूजासु सर्वभावानुरागवान् । इष्टदानो महोत्साहः स्वस्वधर्मपरायणः ॥ २७ ॥ अशुभाद्धि शुभप्रेप्सुरिष्टयज्ञः शुभव्रतः । भविष्यति जनस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥ त्यक्तवाक्यानृतस्तात शुभकल्याणमङ्गलः । शुभार्थेप्सुः शुभमतिर्यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥ भविष्यति जनस्तत्र

पुष्टऔर बलवान् होंगे तहां दूध दही औरघी भी रसयुक्त और हितकारक होंगे ॥ २२ ॥ तैसे ही जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे तहाँ खाने और पीनेके पदार्थ रसभरे और हितकरी ही होंगे ॥ २३ ॥ और जहाँ राजा युधिष्ठिर रहते होंगे तहाँ रस स्पर्श, गंध, तथा शब्द गुणोंसे भरपूर होंगे और फल भी प्रसन्न दीखते होंगे ॥ २४ ॥ संक्षेप में इतना कहना है कि—इस तेरहवें वर्षमें राजा युधिष्ठिर जहां रहते होंगे तहां सकल द्विजवर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, धर्म को पालते होंगे और धर्म स्वयं अपने गुणोंसे सम्पन्न होगा ॥ २५ ॥ हे तात ! जिस देशमें पाण्डव रहते होंगे उस देशमें सब लोग प्रीतियुक्त संतोषी, पवित्र तथा अकालमृत्युहीन होंगे ॥ २६ ॥ देवताओंकी पूजामें अच्छी प्रकार श्रद्धावान् दान पर प्रीति रखनेवाले अतीव उत्साहसे युक्त और अपने २ धर्ममें लगेहुए होंगे ॥ २७ ॥ जहां राजा युधिष्ठिर रहते होंगे वहां के पुरुष अशुभको छोड़ कर शुभ वस्तुकी चाहना करते होंगे यज्ञ पर प्रीति करनेवाले होंगे और श्रेष्ठ व्रतोंको धारण करते होंगे ॥ २८ ॥ और हे तात ! जहां राजा युधिष्ठिर रहते होंगे तहांके मनुष्य असत्य बातोंको छोड़नेवाले सुन्दर कल्याणयुक्त शुभ वस्तुकी इच्छा करनेवाले और शुभमतिवाले होंगे ॥ २९ ॥ तथा सदा परोपकारादि कर्मोंमें प्रीति रखनेवाले होंगे । हे तात ! ऐसे धर्मात्मा जिन युधिष्ठिरके देहमें सत्य, धैर्य, उत्तम प्रकारकी शान्ति, अचल क्षमा, लज्जा, लक्ष्मी, कीर्त्ति, महाप्रभाव, दयालुता तथा सरलता आदि गुण वास करते हैं उन धर्मराजको ब्राह्मण भी नहीं पहिचान सकते

नित्यञ्च प्रियप्रतः। धर्मात्मा शक्यते ज्ञातुं नापि तात द्विजातिभिः ॥ ३० ॥ किं पुनः प्राकृतैस्तात पार्थो विज्ञायते क्वचित्। यस्मिन् सत्यं धृतिर्दानं परा शान्तिर्ध्रुवा क्षमा ॥ ३१ ॥ ह्रीः श्रीः कीर्त्तिः परन्तेज आनृशंस्यमथार्ज्जवम्। तस्मात्तत्र निवासन्तु छन्नं यत्नेन धीमतः गतिं च परमां तत्र नोत्सहे वक्तुमन्यथा ॥ ३२ ॥ एवमेतत्तु संचिन्त्य यत्कृतं मन्यसे हितम्। तत् क्षिप्रं कुरु कौरव्य यद्येवं श्रद्दधासि मे ॥३३॥

इति महाभारते गोहरणपर्वणि चारप्रत्याचारे
भीष्मवाक्ये अष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततः शारद्वतो वाक्यमित्युवाच कृपस्तदा। युक्तं प्राप्तञ्च वृद्धेन पाण्डवान् प्रति भाषितम् ॥ १ ॥ धर्मार्थसहितं श्लक्ष्णं तत्त्वतश्च सहेतुकम्। तत्रानुरूपं भीष्मेण ममाप्यत्र गिरं शृणु ॥ २ ॥ तेषां चैव गतिस्तीर्थैर्वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम्। नीतिर्विधीयतां चापि साम्प्रतं या हिता भवेत् ॥ ३ ॥नावज्ञेयो रिपुस्तात प्राकृतोऽपि बुभूषता। किं पुनः पाण्डवास्तात सर्वास्त्रकुशला रणे॥४॥तस्मात् सन्नं

तब साधारण मनुष्य तो पहिचानःही कैसे सकेंगे, अतः ऊपर कहे देशमें राजा युधिष्ठिर गुप्तरीति से रहते होंगे सो तू प्रयत्न करके जहां वह हों तहां जा इसके सिवाय में दूसरी बात नहीं कहसकता ॥३०—३२॥ हे कुरुवंशी राजन्! राजा युधिष्ठिरके अज्ञात वासके विषयमें मैंने जो बातें कहीं हैं उनपर तुझे विश्वास आता हो तो तू उनका अच्छी प्रकार विचार कर और जो बात तुझे अच्छी जचे उसे शीघ्रही कार्यरूपमें ला ॥३३॥ अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त २८

वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय! तदनन्तर शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य बोले कि--वृद्ध भीष्मने पाण्डवोंके खोजने के लिये जो तुमसे कहा है, वह युक्तियुक्त समयानुकूल धर्म तथा अर्थसे भरा हुआ मनोहर यथार्थ हेतुवाला और कल्याणकारी तथा उचित बात है अब इस विषयमें मेरा विचार भी सुनो दूतोंसे पाण्डवोंके गुप्त विचरनेका तथा रहनेका पता लगवाओ और जिसमें अपना हित हो उस उत्तम नीतिसे काम लो, हे तात! जिस पुरुष को महाराज बननेकी इच्छा हो उसको चाहिये, कि—साधारण शत्रुको भी अप- मान नहीं करै, फिर रणमें सब प्रकारके अस्त्रोंकी चतुराई दिखानेवाले पाण्डवोंका तो अपमान किया ही कैसे जासकता है?॥ १—४॥ गूढ़ अभिप्रायवाले महात्मा पाण्डव, वेश बदल कर इस तेरहवें वर्षमें किसी स्थानमें छिपकर रहते हैं ऐसा जान पड़ता है और अब उनके

प्रविष्टेषु पांडवेषु महात्मसु। गूढभावेषु छन्नेषु काले चोदयमागते ॥५॥ स्वराष्ट्रे परराष्ट्रे च ज्ञातव्यं बलमात्मनः। उदयः पाण्डवानां च प्राप्ते काले न संशयः ॥ ६ ॥ निवृत्तसमयाः पार्था महात्मानो महाबलाः। महोत्साहा भविष्यन्ति पांडवा ह्यमितौजसः ॥ ७ ॥ तस्माद् बलञ्च कोशश्च नीतिश्चापि विधीयताम्। यथा कालोदये प्राप्ते सम्यक्तैः सन्दधामहे ॥ ८ ॥ तात बुध्यापि तत्सर्वं बुद्ध्यस्व बलमात्मनः। निवतं सर्वमित्रेषु बलवत्स्वबलेषु च ॥ ९ ॥ उच्चावचं बलं ज्ञात्वा मध्यस्थञ्चापि भारत। प्रहृष्टमप्रहृष्टञ्च सन्दधाम तथा परैः ॥ १० ॥ साम्ना भेदेन दानेन दंडेन बलिकर्मणा। न्यायेनाक्रम्य च परान् बलोच्चावनस्य दुर्बलान् ॥ ११ ॥ सान्त्वयित्वा तु मित्राणि बलञ्चा-

---

प्रकट होनेका समय पास ही आगया है, इसकारण अपनी शक्ति, अपने देशमें तथा परदेशमें कितना बल रखती है यह आपको जानना चाहिये क्योंकि—प्रतिज्ञाका समय पूरा होने पर पाण्डवोंका उदय होगा इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ५—६ ॥ महाबली महात्मा पाण्डवोंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करली है इस कारणसे अपार प्राण बलवाले पाण्डव बड़े उत्साही होजायँगे ॥ ७ ॥ इससे अब तुम सेनाको तयार करो, खजानेको भी अच्छी दशामें रक्खो तथा नीतिका उत्तम प्रयोग करो अर्थात् वेतन दान तथा दूत भेजना ये काम करो। जिससे समय आने पर हम उनसे युद्ध अथवा मेल करसकें ॥ ८ ॥ हे तात ! तुम अपनी बुद्धिके बलसे देखो कि—तुम्हारी सब सेनाकी क्या दशा है तुम्हारे बलवान् तथा निर्बल सब मित्रोंमें अटल बल कितना है ? इसको भी बुद्धिसे जाँचो ॥ ९ ॥ हे भारत ! उत्तम श्रेणीकी मध्य श्रेणीकी और नीची श्रेणीकी तुम्हारी सेना तुमसे प्रसन्न है या अप्रसन्न है, इसको भी तुम ध्यान देकर देखो, यदि सन्तुष्ट हो तो शत्रुओंके साथ युद्ध करनेको धनुषोंपर बाण चढ़ावें और जो असन्तुष्ट हों तो मेल करलें ॥ १० ॥ नीति तो यह है कि—साम दान भेद दण्ड तथा कर लेना इसके द्वारा न्यायपूर्वक शत्रुको वशमें करै नहीं तो शत्रुओंके ऊपर चढ़ाई करै अर्थात् अपने समान बलवालेको साम और भेदसे, अपनेसे अधिक बलवान् हो तो धन देकर अथवा उसके मनुष्योंमें फूट डालकर अपनेसे हीन बलवाला हो तो उसे दबाकर अथवा कर लेकर वशमें करै ॥ ११ ॥ धीरज आदि शान्ति की बातों से मित्र को वशमें करै, प्रेमपूर्वक बातचीत करके और वेतन तथा सन्मान आदि देकर जिसमें अपनी सेना सुखी हो उस प्रकार ही उसका सत्कार करके उसको वशमें कर इसप्रकार

भाव्यतां सुखम् । सुकोशबलसंवृद्धः सम्यक् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१२॥ योत्स्यसे चापि बलिभिररिभिः प्रत्युपस्थितैः ।अन्यैस्त्वं पाण्डवैर्वापि हीनैः स्वबलवाहनैः ॥ १३ ॥ एवं सर्वं विनिश्चित्य व्यवसायं स्वधर्मतः । यथाकालं मनुष्येन्द्र चिरं सुखमवाप्स्यसि ॥ १४ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि चार-
प्रत्याचारे कृपवाक्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथ राजा त्रिगर्त्तानां सुशर्मा रथयूथपः । प्राप्तकालमिदं वाक्यमुवाच त्वरितो बली ॥ १ ॥ असकृन्निकृताः पूर्वं मत्स्यशाल्वेयकैः प्रभो । सूतेनैव च मत्स्यस्य कीचकेन पुनः पुनः ॥२॥ बाधितो बन्धुभिः सार्द्धं बलाद्बलवतां विभो । स कर्णमभ्युदीक्ष्याथ दुर्योधनमभाषत ॥ ३ ॥ असकृन्मत्स्यराज्ञा मे राष्ट्रं बाधितमोजसा । प्रणेता कीचकस्तस्य बलवानभवत् पुरा ॥ ४ ॥ क्रूरामर्षी स दुष्टात्मा भुवि प्रख्यातविक्रमः । निहतः स तु गन्धर्वैः पापकर्मा नृशंसवान् ५ तस्मिन् विनिहते राजा हतदर्पो निराश्रयः । भविष्यति निरुत्साहो

सबको वशमें करनेसे धनके भण्डारकी तथा सेनाकी वृद्धिहोने पर तुम्हारे कार्य की सिद्धि भी पूर्ण रीतिसे होगी ॥ १२ ॥ हे राजेंद्र ! इस प्रकार सब कार्योंका विचार करके, सबको ठीक कर रखनेसे,सेना तथा वाहनोसे हीन पाण्डव वा दूसरे बलवान् शत्रु रोजे तुम्हारे ऊपर यदि चढ़ आवेंगे तो भी तुम उनके साथ युद्धकर सकोगे ॥ १३ ॥ और धर्मानुसार विचार करके काम करनेसे समय पड़ने पर तुम बहुत कालतक स्थिर रहनेवाले सुखको पासकोगे ॥ १४ ॥उन्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! तदनंतर रथमण्डलका स्वामी त्रिगर्तोंका राजा बलवान् सुशर्मा, कीचकोंके मरणकी बात सुनकर झट पट महाबलवान् भीष्म पितामह सुनतें इस प्रकार कर्णके सामनेको देखकर समयानुसार राजा दुर्योधनसे कहने लगा कि—हे दुर्योधन ! पहिले हमारे ऊपर मत्स्यराजने तथा शाल्ववंशी राजाओंने बारम्बार चढ़ाई करकेदुःख दिया था तथा मत्स्यराजके सूत कीचकने तो बारम्बार छल करके मुझे और मेरे बंधुओंको बहुत दुःखित किया था ॥ १-३ ॥ पहिले मत्स्यराजने बार२ दबाव देकरमेरे देशको दुःखित किया था क्योंकि उस समय बलवान् कींचक उसका सेनापति था ॥४॥ परंतु अब क्रूर ईर्ष्यालु दुष्टात्मा, पृथ्वी पर प्रसिद्ध पराक्रमी पापकर्म करनेवाले उस घातकी कीचकको गंधर्वोंने मारडाला है ॥५ ॥ इस प्रकार उसके मरनेसे असहाय हुआ राजा विराट घमण्ड तथा उत्साह

विराट इति मे मतिः॥ ६॥ तत्र यात्रा मम मता यदि ते रोचतेऽनघ। कौरवाणां च सर्वेषां कर्णस्य च महात्मनः ॥ ७ ॥ एतत् प्राप्तमहं मन्ये कार्यमात्ययिकं हि नः। राष्ट्रंतस्याभियास्यामो बहुधान्यसमाकुलम्॥ ८॥ आददामोस्य रत्नानि विविधानि वसूनि च। ग्रामान् राष्ट्राणि वा तस्य हरिष्यामो विभागशः॥ ९॥ अथवा गोसहस्राणि शुभानि च बहूनि च। विविधानि हरिष्यामः प्रतिपीड्य पुरं बलात् ॥ १० ॥ कौरवैः सह संगत्य त्रिगर्तैश्च विशाम्पते। गास्तस्यापहरामोद्य सर्वैश्चैव सुसंहताः॥ ११ ॥ संविभागेन कृत्वा तु निबध्नीमोस्य पौरुषम्। हत्वा चास्य चमूं कृत्स्नां वशमेवानयामहे ॥ १२ ॥ तं वशे न्यायतः कृत्वा सुखं वत्स्यामहे वयम्। भवतां बलवृद्धिश्च भविष्यति न संशयः॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कर्णो राजानमब्रवीत्। सूक्तं सुशर्मणा वाक्यं प्राप्तकालं हितं च नः॥ १४॥ तस्मात् क्षिप्रं विनिर्यामो योजयित्वा वरूथिनीम्। विभज्य चाप्यनीकानि यथा वा मन्यसेनघ॥ १५॥ प्राज्ञो वा कुरुवृद्धोयं सर्वेषां नः पितामहः। आचार्यश्च

से हीन होगया होगा ऐसा मेरा विचार है॥६॥ अतः हे निर्दोष राजन् मेरा तो मत्स्य देश पर चढ़ाई करनेका विचार है, परन्तु आपको सब कौरवोंको तथा कर्णको अच्छा लगे तब ही ? ॥ ७॥ यह प्राप्त हुआ कार्य हमें अवश्य ही करना चाहिये हम बहुत अन्नवाले विराटके देशपर चढ़ाई करेंगे ॥८॥ और तदनन्तर अनेक प्रकारके रत्नोंको तथा धनोंको छीन ग्राम तथा देशोंको अपने वशमें करकै यथायोग्य बांट लेंगे॥ ९॥ ऐसे नहीं तो उत्पात मचा कर उसके देशको खूब दुःखी करैं औरफिर अनेकों प्रकारकी उसकी गौओंके सुन्दर धनको हांक लावैं ॥ १०॥ इससे हे राजन्! चलोआज ही त्रिगर्त और कौरव हम सब मिलकर मत्स्यराजकी गौओंको हर लावैं ॥११॥ यदि ऐसा नहीं हो तो अपनी सेनाका विभाग करकै उसके ऊपर चढ़ाई कर उसके पराक्रमको नष्ट करडालें जिससे वह हमारे अधीन होजाय अथवा उसकी सब सेना को मार कर उसे अपने वशमे कर ही लें॥ १२॥ मत्स्यराजको न्याय से वशमें करेंगे तब हम सुखसे रहसकेंगे और आपके बलमें भी निश्चय ही वृद्धि होगी ॥ १३ ॥ त्रिगर्तराज के कथन को सुनकर कर्णने दुर्योधनसे कहा कि—'सुशर्माने' जो कुछ कहा है वह बहुत अच्छा समयानुसार तथा हमारे हितका ही है॥ १४॥ इस कारण हे निर्दोष राजन्! आप अपनी सेनाको सजाकर उसके छोटे२ विभाग करके शीघ्र ही मत्स्यराजके ऊपर चढ़ाई के लिये चलदो तो ठीक है आगेआपकी जैसी इच्छा हो ॥१५॥ ऐसा न हो तो हम सबोंके

यथा द्रोणः कृपः शारद्वतस्तथा। मन्यन्ते ते यथा सर्वे तथा यात्रा विधीयताम् ॥ १६ ॥ सम्मन्त्र्य चाशु गच्छामः साधनार्थं महीपतेः। किं च नः पाण्डवैः कार्यं हीनार्थबलपौरुषैः ॥ १७ ॥ अत्यन्तं वा प्रनष्टास्ते प्राप्ता वापि यमक्षयम्। यामो राजन्निरुद्विग्ना विराटनगरं वयम् आदास्यामो हि गास्तस्य विविधानि वसूनि च ॥ १८ ॥ वैशम्पायन उवाच। ततो दुर्योधनो राजा वाक्यमादाय तस्य तत्। वैकर्तनस्य कर्णस्य क्षिप्रमाज्ञापयत् स्वयम् ॥ १९ ॥ शासने नित्यसंयुक्तं दुःशासनमनन्तरम्। सह वृद्धैस्तु सम्मन्त्र्य क्षिप्रं योजय वाहिनीम् ॥ २० ॥ यथोद्देशं च गच्छामः सहितास्तत्र कौरवैः। सुशर्मा च यथोद्दिष्टं देशं यातु महारथः। त्रिगर्तैः सहितो राजा समग्रबलवाहनः ॥ २१ ॥ प्रागेव हि सुसंवीतो मत्स्यस्य विषयं प्रति। जघन्यतो वयं तत्र यास्यामो दिवसान्तरे। विषयं मत्स्यराजस्य सुसमृद्धं सुसंहताः ॥ २२ ॥ ते यान्तु सहितास्तत्र विराटनगरं प्रति। क्षिप्रं गोपान् समासाद्य गृह्णन्तु

पितामह बुद्धिमान् कुरुओंमें बड़े भीष्म द्रोणाचार्य,तथा शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यकी इच्छानुसार चढ़ाईके विषयमें विचार करिये ॥ १६ ॥ हम मत्स्यराजको जीतनेके लिये सब एक ही विचार करके शीघ्र ही जायँ यही ठीक है हमको धन बल और पुरुषार्थसे रहित पांडवोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥ १७ ॥ या तो पाण्डव सदाके लिये कार्यको त्याग कर छिप गए होंगे अथवा मरगए होंगे ! इससे अब अपनी घबराहटको छोड़कर राजा विराटके नगर पर चढ़ाई करें और उसकी गौओंका तथा अनेक प्रकारकी संपत्तियोंका हरण करलावें ॥ १८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—राजा दुर्योधनने त्रिगर्तराज तथा सूर्यपुत्र कर्ण के वचनको सुनकर शीघ्र ही स्वयं अपनी आज्ञामें रहनेवाले दुःशासन को आज्ञा दी कि—अब तुम वृद्ध कौरवोंके साथ विचार करके अपनी सेनाको शीघ्र ही ठीक करो ॥ १९ ॥ २० ॥ हम सब कौरव इकट्ठे होकर दक्षिण दिशाकी ओरसे चढ़ाई करें और दूसरी ओरसे सब सेना वाहन तथा त्रिगर्तोंके साथमें महारथी सुशर्मा भी नियत कीहुई दिशाकी ओरसे चढ़ाई लेजाय ॥ २१ ॥ पहिले त्रिगर्तोंका राजा सुशर्मा पूरी २ सेनासे घिर कर राजा विराटके नगर पर चढ़ाई करेगा. और उससे दूसरे दिन पीछेसे हम सब भी इकट्ठे होकर राजा विराट के सुन्दर समृद्धिवाले देशपर चढ़ाई करेंगे ॥ २२ ॥ सब त्रिगर्त इकट्ठे होकर प्रथम राजा विराटके नगर पर चढ़ाई करें और पहिले सपाममें ही ग्वालियोंके ऊपर चढ़ कर उनके पाससे गौएंरूपी बहु-

विपुलं धनम् ॥ २३ ॥ गवां शतसहस्राणि श्रीमन्ति गुणवन्ति च । वयमप्यनुगृह्णीमो द्विधा कृत्वा वरूथिनीम् ॥२४॥ वैशम्पायन उवाच । ते स्म गत्वा यथोद्दिष्टां दिशं वह्नेर्महीपते । सन्नद्धा रथिनः सर्वे सपदाता बलोत्कटाः ॥२५॥ प्रतिवैरं चिकीर्षन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः । आदातुं गाः सुशर्माथ कृष्णपक्षस्य सप्तमीम् ॥ २६ ॥अपरे दिवसे सर्वे राजन् सम्भूय कौरवाः । अष्टम्यान्ते न्यगृह्णन्त गोकुलानि सहस्रशः ।२७।

इति महाभारते विराटपर्वणि दक्षिणगोग्रहे सुशर्मादिमत्स्यदेशयाने त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

वैशम्पायन उवाच । ततस्तेषां महाराज तत्रैवामिततेजसाम् । छद्मलिङ्गप्रविष्टानां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ १ ॥ व्यतीतः समयः सम्यक् वसतां वै पुरोत्तमे । कुर्वतां तस्य कर्माणि विराटस्य महीपतेः ॥ २ ॥ कीचके तु हते राजा विराटः परवीरहा । परां सम्भावनां चक्रे कुन्तीपुत्रे युधिष्ठिरे ॥ ३ ॥ ततस्त्रयोदशस्यान्ते तस्य वर्षस्य भारत । सुशर्मणा गृहीतन्तद् गोधनं तरसा बहु ॥ ४ ॥ ततो जवेन महता

तसा धन छीन लें ॥ २३ ॥ और फिर हम भी अपनी सेनाको दो भागोंमें बाँट कर विराट नगर पर चढ़ाई करके उसकी शोभामयी और गुणोंवाली लाखों गौओंकी टोलियोंको हर लेंगे ॥ २४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे राजन् ! तदनन्तर त्रिगर्तों के राजा सुशर्माने अपने महाबली सब रथियोंको तथा पैदल योधाओंको तयार कराया और फिर राजा विराट की गौओंको हरनेके लिये तथा पहिले वैरका बदला लेनेके लिये कृष्णपक्षकी सप्तमीको अग्निकोणकी ओरसे विराट नगर पर चढ़ाई की।२५-२६। और उससे दूसरे दिन अर्थात् अष्टमीको हे राजन् ! सब कौरवोंने इकट्ठे होकर दूसरी दिशाकी ओरसे विराटके नगर पर चढ़ाई करके राजा विराटकी हजारों गौओंको कैद करलिया ॥ २७ ॥ तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ * ॥ *

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे महाराज ! अपार बलवाले, कपट वेशधारी, महात्मा पाण्डवोंको विराटनगरमें छिपकर रहतेहुए राजा विराटका काम करते २ तेरहवां वर्ष अच्छे प्रकारसे पूरा होगया था ॥ १—२ ॥ और दूसरी ओर महाबलवाले कीचकका मरण होनेसे शत्रुविनाशक राजा विराट, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर का बहुत मान करता था ॥ ३ ॥ हे भरतवंशी राजन् ! इस प्रकार तेरहवां वर्ष बीतनेके अनंतर सुशर्माने विराट नगर पर चढ़ाई की और एकाएकी पराक्रम करके उसकी बहुतसी गौओंको पकड़ लिया ॥ ४ ॥ यह देख कानोंमें

गोपः पुरमथाव्रजत् । स दृष्ट्वा मत्स्यराजञ्च रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली ॥ ५ ॥ शूरैः परिवृतं योधैः कुण्डलांगदधारिभिः । संवृतं मन्त्रिभिः सार्द्धं पांडवैश्च महात्मभिः ॥ ६ ॥ तं सभायां महाराजमासीनं राष्ट्रवर्द्धनम् । सोऽब्रवीदुपसंगम्य विराटं प्रणतस्तदा ॥ ७ ॥ अस्मान् युधि विनिर्जित्य परिभूय सबान्धवान् । गवां शतसहस्राणि त्रिगर्त्ताः कालयन्ति ते ॥ ८ ॥ तान् परीप्सस्व राजेन्द्र मा नेशुः पशवस्तव । तच्छ्रुत्वा नृपतिः सेनां मत्स्यानां समयोजयत् ॥ ९ ॥ रथनागाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम् । राजानो राजपुत्राश्च तनुत्राण्यथ भेजिरे ॥ १० ॥ भानुमन्ति विचित्राणि शूरसेव्यानि भागशः । सवज्रायसगर्भन्तु कवचं तत्र काञ्चनम् ॥ ११ ॥ विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीकोऽभ्यहारयत् । सर्वपारसवं वर्म कल्याणपटलं दृढम् ॥ १२ ॥ शतानीकादवरजो मदिराक्षोऽभ्यहारयत् । शतसूर्यं शतावर्त्तं शतबिंदु शताक्षिमत् ॥ १३ ॥ अभेद्यकल्पं मत्स्यानां राजा कवचमाहरत् । उत्सेधेयस्य पद्मानि शत सौगन्धिकानि च ॥ १४ ॥ सुवर्णपृष्ठं सूर्याभं सूर्यदत्तोऽभ्यहारयत् ।

कुण्डल धारण करनेवाला वडा गोप रथमेंसे कूदकर बड़ेवेगसे दौड़ताहुआ विराटनगर में आया और जहाँ सभामें कुण्डल तथा बाजूबन्दोंको धारण करनेवाले शूरवीर योद्धा, मंत्री, तथा महात्मा पाण्डवोंके साथ देशकी वृद्धि करनेवाला राजा विराट बैठा था उसके पास गया और वह गोप राजाको प्रणाम करकै इस प्रकार बोला कि ॥ ५—७ ॥ त्रिगर्त देशके राजाओंने मेरेसाथ युद्ध करके मुझै तथा मेरे भाइयोंको हरादिया है और आपकी एक लाख गौओंको अपने देशकी ओरको हाँक कर लिये जाताहै सो हे राजन्! आपके पशु आपकेहाथसे दूर न निकलजाँय उससे पहिले ही तुम उनकी रक्षा करो गोपकी इस बातको सुनकर राजा विराटने मत्स्य देशके योधाओंकी सेनाको सजाया ॥ ८—९ ॥ वह सेना बहुतसे रथ, हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी पुरी थी तथा फहरातीहुई ध्वजा पताकाओंसे शोभित होरही थी ॥ १० ॥ राजा तथा राजकुमार रणमें जानेके लिये क्रमसे शूर वीरोंके पहिरने योग्य चमकदार नाना प्रकारके बखतर पहिरने लगे, विराटके प्यारे भाई शतानीकने सुवर्ण से मढाहुआ दृढ़ और सब शस्त्रोंको सहनेवाला कवच पहिरा शतानीकके छोटे भाई मदिराक्षने भी तैसे ही सब प्रकारके शस्त्रोंके प्रहारको सहसकै ऐसे सोनेके मढे हुए दृढ़ कवचको पहिरा मत्स्य देशके राजा विराटने सौ सूर्य्य तथा चंद्रमाकीसी कांतिवाला सौ टिकलियोंवाला और सौ फुल्लियोंसे जड़ाहुआ बहुत ही दृढ़ कवच पहिरा, जिसके ऊपरके विशाल भाग पर

दृढमायसगर्भञ्च श्वेतं वर्म शताक्षिमत् ॥ १५ ॥ विराटस्य सुतो ज्येष्ठो वीरः शंखोऽभ्यहारयत् । शतशश्च तनुत्राणि यथास्वन्ते महारथाः ॥१६॥ योत्स्यमाना अनह्यन्त देवरूपाः प्रहारिणः । सूपस्करेषु शुभ्रेषु महत्सु च महारथाः ॥ १७ ॥ पृथक् काञ्चनसन्नाहान् रथेष्वश्वानयोजयन् । सूर्यचन्द्रप्रतीकाशे रथे दिव्ये हिरण्मये ॥ १८ ॥ महानुभावो मत्स्यस्य ध्वज उच्छ्रिश्रिये तदा । अथान्यान् विविधाकारान् ध्वजान् हेमपरिष्कृतान् ॥१९॥ यथास्वं क्षत्रिया शूरा रथेषु समयोजयन् । अथ मत्स्योऽब्रवीद्राजा शतानीकं जघन्यजम् ॥ २० ॥ कंकबल्लवगोपाला दामग्रन्थिश्च वीर्यवान् । युध्येयुरिति मे बुद्धिर्वर्त्तते नात्र संशयः ॥२१॥ एतेषामपि दीयन्तां रथा ध्वजपताकिनः । कवचानि च चित्राणि दृढानि च मृदूनि च ॥ २२ ॥ प्रतिमुञ्चन्तु गात्रेषु दीयन्तामायुधानि च । वीरांगरूपाः पुरुषा नागराजकरोपमाः॥२३॥ नेमे जातु न युद्धयेरन्निति मे धीयते मतिः । एतच्छ्रुत्वा तु नृपतेर्वाक्यं त्वरितमानसः । शतानीकस्तु पार्थेभ्यो रथान् राजन् समादिशत् ॥ २४ ॥ सहदेवाय राज्ञे

सौ कल्हार जातिके और सौ सौगंधिक जातिके कमलों की आकृतियें पंक्तिबद्ध बनीहुई थीं ऐसा विशाल था, और सूर्य्यदत्तने जो राजा विराटका एक सेनापति था सुवर्णके पत्रोंसे जड़ा सूर्यकी समान दमकता हुआ एक दृढ़ कवच पहिरा विराटके बड़े पुत्र शूरवीर शंख ने श्वेत और सौ फुल्लियें जड़ा हुआ बक्तर पहिरा यह बक्तर बहुत ही दृढ और भीतरके भागमें लोहेका बनाहुआ था, इस प्रकार सैकड़ों देवसमान महारथी अपने २ कवचोंको पहिर २ कर युद्ध करनेके लिये उद्यत होगए, और युद्धकी सामग्रीसे भरेहुए श्वेत वर्णके बड़े २ रथोंमें सुवर्ण के कवचोंवाले भिन्न भिन्न जातिके घोड़ोंको जुतवाउन में बैठकर युद्धके लिये बाहर निकले उस समय राजा विराट जो सूर्य तथा चन्द्रमाकी समान तेजस्वी रथमें बैठाथा उस मत्स्यराजके रथके ऊपर प्रथम महातेजस्वी ध्वजा चढ़ाई गई तदनन्तर दूसरे शूर वीर क्षत्रियोंने भी अपने २ रथों पर अनेकों प्रकारकी सुनहरी ध्वजाएं चढ़ा लीं इस प्रकार सबके तयार होजाने पर मत्स्य देशके राजाने अपने छोटे भाइ शतानीकसे कहा कि—॥ ११—२० ॥ कंक, बल्लव, गोपाल तथा अश्वपाल पराक्रमी मालूम होते हैं मेरी समझमें आता है वह युद्ध करेंगे और इसमें तुम सन्देह न करो ॥ २१ ॥ इससे उनको भी बैठनेके लिये ध्वजा पताकावाले रथ दो और ऊपरसे दृढ़ तथा भीतरसे कोमल ऐसे विचित्र कवच भी दो, कि—वह [illegible] कवचोंको शरीर पर धारण करें और उनको शस्त्र भी दो वह शूर वीर पुरुष ह और उनके शरीर बड़े हाथीकी सूंड़की समान गोल तथा दृढ़ हैं,

च भीमाय नकुलाय च । तान् प्रहृष्टांस्ततः सूता राजभक्तिपुरस्कृताः ॥ २५ ॥ निर्दिष्टा नरदेवेन रथान् शीघ्रमयोजयन् । कवचानि विचित्राणि मृदूनि च दृढानि च ॥ २६ ॥ विराटः प्रादिशद्यानि तेषामक्लिष्टकर्मणाम् । तान्यामुच्य शरीरेषु दंशितास्ते परन्तपाः ॥ २७ ॥ रथान् हयैः सुसम्पन्नानास्थाय च नरोत्तमाः । निर्ययुर्मुदिताः पार्थाः शत्रुसंघातमर्दिनः ॥ २८ ॥ तरस्विनश्छन्नरूपाः सर्वे युद्धविशारदाः । रथान् हेमपरिच्छन्नानास्थाय च महारथाः ॥ २९ ॥ विराटमन्वयुःपार्थाः सहिताः कुरुपुंगवाः । चत्वारो भ्रातरः शूराः पांडवाः सत्यविक्रमाः ॥ ३० ॥ भीमाश्च मत्तमातंगाः प्रभिन्नकरटा मुखाः । क्षरन्तश्चैव नागेन्द्राः सुदन्ताः षष्टिहायनाः ॥ ३१ ॥ स्वारूढा युद्धकुशलैः शिक्षिता हस्तिसादिभिः । राजानमन्वयुः पश्चाच्चलन्त इव पर्वताः ॥ ३२ ॥ विशारदानां मुख्यानां हृष्टानाञ्चारुजीविनाम् । अष्टौ रथसहस्राणि दश नागशतानि च ॥ ३३ ॥ षष्टिश्चाश्वसहस्राणि मत्स्यानामभिनिर्ययुः ।

इस कारण वह युद्ध न करसकैं ऐसा कभी होही नहीं सकता यह मेरा विचार है, राजाके इन वचनोंको सुनकर शतानीकने युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव इन चारों पार्थोंके लिये शीघ्रता से रथ जोड़नेकी सारथियोंको आज्ञा दी, और राजाकी आज्ञानुसार सारथियोंने राज भक्तिका आदर किया और रथ जोड़कर उन चारोंकेसामने खड़े करदिये उन रथोंका देखकर पाण्डव प्रसन्न हुए, फिर विराटने श्रेष्ठ कर्म करने वाले पाण्डवोंको पहिरनेके लिये भीतरसे कोमल और बाहरके भाग में कठिन ऐसे विचित्र कवच दिये और उन कवचोंको शत्रुओंको, पीड़ा देनेवाले पांडवोंने पहिरलिया ॥ २२—२७ ॥ फिर शत्रुओंका संहार करनेवाले महापुरुष पांडव घोड़ोंसे जुतेहुए रथोंमें बैठे और प्रसन्न होतेहुए राजा विराटके नगरमेंसे बाहर निकले ॥ २८ ॥ शूर वीर, तेजस्वी, युद्धमें कुशल महारथी सत्यपराक्रमी और जुदे २ नामसे छिपेहुए वेशमें रहनेवाले वे चारों भाई सुवर्णसे मढे हुए भिन्न भिन्न रथोंमें बैठकर राजा विराटके पीछे एकाएकी युद्ध करनेको चलदिये ॥ २९—३० ॥ इसके उपरान्त भयंकर गंडस्थलसे मद टपकाते सुन्दर दांतों वाले साठ वर्षकी अवस्थाके मदमत्त हाथी, जिनके ऊपर युद्ध कुशल पुरुष बैठे थे और जिनको हस्ती पर बैठनेवाले चतुर पुरुषोंने शिक्षादी थी ऐसे सैंकड़ो हाथी भी चलायमान पर्वतोंकी समान झूमते हुए राजा विराटके पीछे चलनेलगे ॥ ३१-३२ ॥ और युद्ध करनेमें कुशल मुख्य प्रसन्न रहनेवाले और श्रेष्ठ आजीविकवाले मत्स्य देशके आठ हजार रथी, दश हजार हाथीसवार और साठ हजार घुड़सवार भी

तदनीकं विराटस्य शुशुभे भरतर्षभ ॥ ३४ ॥ सम्प्रयातं तदा राजन् निरीक्षन्तं गवां पदम् । तद्बलाग्र्यं विराटस्य सम्प्रस्थितमशोभत । दृढायुधजनाकीर्णं गजाश्वरथसंकुलम् ॥ ३५ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि दक्षिणगोग्रहे मत्स्यराजरणोद्योगे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ निर्याय नगराच्छूरा व्यूढानीकाः प्रहारिणः । त्रिगर्त्तानस्पृशन्मत्स्याः सूर्ये परिणते सति ॥ १ ॥ ते त्रिगर्त्ताश्च मत्स्याश्च संरब्धा युद्धदुर्मदाः । अन्योऽन्यमभिगर्जन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः ॥ २ ॥ भीमाश्च मत्तमातंगास्तोमरांकुशनोदिताः ग्रामणीयैः समारूढाः कुशलैर्हस्तिसादिभिः ॥ ३ ॥ तेषां समागमो घोरस्तुमुलो लोमहर्षणः । घ्नतां परस्परं राजन् यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ ४ ॥ देवासुरसमो राजन्नासीत् सूर्येऽवलम्बति । पदातिरथनागेन्द्रहयारोहबलौघवान् ॥ ५ ॥ अन्योऽन्यमभ्यापततां निघ्नतां चेतरेतरम् । उदतिष्ठद्रजो

उस राजाके चारों ओर घिर कर युद्धके लिये विराटनगरमेंसे बाहर निकले, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् दृढ़ आयुधोंवाले मनुष्य हाथी घोड़े तथा रथों से भरपूर राजा विराट की श्रेष्ठ सेना गौओं के पैरों के चिन्होंको देखती हुई आगेको बढ़ने लगी वह सेना इस समय शोभा पाने लगी ॥ ३३—३५ ॥ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ * ॥

वैशम्पायन कहतेहैं कि-हे जनमेजय! मत्स्यदेशके शूरवीर योद्धाओंने नगरमेंसे बाहर निकल कर व्यूहरचना की और सायंकालके समय त्रिगर्तोंको पकड़ पाया ॥ १ ॥ त्रिगर्त और मत्स्य अत्यंत क्रोधमें भरे युद्धमें महामदोन्मत्त गौओं को लेजाने में लगे हुए और महाबली थे वह एक दूसरेको देखते ही एक दूसरेके साथ युद्ध करनेके लिये गर्जना करने लगे ॥ २ ॥ हाथी पर सवारी करनेवाले युद्धकुशल योद्धाओंके स्वामी, भयंकर हाथियोंको शत्रुसेनाकी ओर जानेके लिये तोमर और अंकुशोंका प्रहार करनेलगे, इस कारण हाथी शत्रुसेनाकी ओरको दौड़ने लगे ॥ ३ ॥ हे राजन्! सूर्यके नमते समय अर्थात् सायंकालके समय परस्पर प्रहार करनेवाले दोनों ओरके योधाओंमें देवासुरसंग्रामकी समान महाभयंकर और रोमांच खडे करने वाला संग्राम होने लगा इस युद्धमें पैदल, रथी, हाथीसवार घुड़सवार आदिका बड़ाभारी समारोह था और इन में यमलोकको बढ़ानेवाली भयंकर मार मार चल रही थी ॥ ४—५ ॥ दोनों ओरके योधा एक दूसरे पर चढ़कर एक दूसरेका संहार कररहे थे, उस समय पृथ्वी परसे इतनी धूल उड़रही थी कि—उसके कारण कुछ

भौमं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ६ ॥ पक्षिणश्चापतन् भूमौ सैन्येन रजसा-वृताः । इषुभिर्व्यतिसर्पद्भिरादित्योऽन्तरधीयत ॥ ७ ॥ खद्योतैरिव संयुक्तमन्तरिक्षं व्यराजत । रुक्मपृष्ठानि चापानि व्यतिषिक्तानि धन्विनाम् ॥ ८ ॥ पततां लोकवीराणां सव्यदक्षिणमस्यताम् । रथा रथैःसमाजग्मुः पादातैश्च पदातयः ॥ ९ ॥ सादिना सादिभिश्चैव गजैश्चापि महागजाः । असिभिः पट्टिशैः प्रासैः शक्तिभिस्तोमरैरपि ॥ १० ॥ संरब्धाः समरे राजन् निजघ्नुरितरेतरम् । निघ्नन्तः समरेन्योऽन्यं शूराः परिघबाहवः ॥ ११ ॥ न शेकुरभिसंरब्धाः शूरान् कर्त्तुं पराङ्मुखान् । छिन्नोत्तरोष्ठं सुनसं छिन्नकेशमलंकृतम् ॥ १२ ॥ अदृश्यत शिरश्छिन्नं रजोध्वस्तं सकुंडलम् । अदृश्यंस्तत्र गात्राणि शरैश्छिन्नानि भागशः ॥ १३ ॥ शालस्कन्धनिकाशानि क्षत्रियाणां महामृधे । नागभोगनिकाशैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ॥ १४ ॥ आस्तीर्णा वसुधा भाति शिरोभिश्च सकुंडलैः । रथिनां रथिभिश्चात्र सम्प्रहा-

भी दिखाई नहीं देता था ॥ ६ ॥ सेनाके पैरोंके पड़नेसे उड़ीहुई धूल के कारण पक्षी अंधेसे होकर पृथ्वी पर गिरने लगे, योधाओंके हाथोंसे छूटे हुए बाणोंसे आकाशमें सूर्यनारायण भी ढकगए ॥ ७ ॥ और तारोंसे आकाश भरगया हो ऐसी शोभा पारहा था दाहीं तथा बाईं ओर बाणोंको चलानेवाले शूर वीर धनुषधारी पृथ्वी पर गिर रहे थे और उनके सोनेकी पीठवाले धनुष दूसरोंके हाथोंमें जाते थे रथी रथियोंके सामने लड़ते थे, पैदल पैदलों के सामने लड़ते थे ॥ ८ ॥ ९ ॥ घुड़सवार घुड़सवारोंके सामने लड़ते थे, बड़े २ हाथी हाथियोंसे लड़ते थे तथा हे राजन् ! युद्धमें क्रोधमें भर योद्धा एक दूसरे पर तलवार, पट्टिश, प्रास, शक्ति, तोमर आदि चलाते थे, युद्धमें परिघकी समान भुजदण्ड वाले वीर एक दूसरे पर वार करते थे, परन्तु क्रोधमें भरेहुए वह योधा रणमें से शूरवीरोंको पीछे नहीं हटा सकते थे, इस समय बहुतसे योधाओंके मस्तक, सुन्दर नासिकावाले परन्तु ऊपर का होठ कटेहुए, दीखते थे, उस समय कितनों ही के मस्तक सुन्दर सजेहुए होने पर भी केशरहित दीखते थे, उस समय अनेकोंके मस्तक कुण्डलों वाले तथा क्षत्रियोंके बाणोंसे कटकर धूलमें सनेहुए दीखते थे और उस बड़ीभारी संग्राम भूमिमें, शालके वृक्षकी शाखाओंको समान शरीर, टेढेबडे जिधर तिधर पडेहुए दीखते थे, उस समय चंदनसे चुपडेहुए सर्पोंकी समान गोलाकार शूरोंकी भुजाओं तथा मुकुटवाले मस्तकोंसे खचा खच भरीहुई पृथ्वी अद्भुत रूपसे दिपने लगी, उस समय रथी रथियोंके

रोऽभ्यवर्त्तत ॥ १५ ॥ सादिभिः सादिनाश्चापि पदातीनां पदातिभिः ।
उपाशाम्यद्रजो भौमं रुधिरेण प्रसर्पता ॥ १६ ॥ कश्मलञ्चाविशद् घोरं
निर्मर्यादमवर्त्तत । उपाविशन् गरुत्मन्तः शरैर्गाढं प्रवेजिताः । अन्त
रिक्षे गतिर्येषां दर्शनञ्चाप्यरुध्यत ॥ १७॥ ते घ्नन्तः समरेऽन्योऽन्यं शूराः
परिघबाहवः । न शेकुरभिसंरब्धाः शूरान् कर्त्तुं पराङ्मुखान् ॥ १८ ॥
शतानीकः शतं हत्वा विशालाक्षश्चतुःशतम् । प्रविष्टौ महतीं सेनां
त्रिगर्त्तानां महारथौ ॥ १९ ॥ तौ प्रविष्टौ महासेनां बलवन्तौ मनस्विनौ
आर्च्छेतां बाहुसंरब्धौ केशाकेशि रथारथि ॥ २० ॥ लक्षयित्वा त्रिग-
र्त्तानां तौ प्रविष्टौ रथव्रजम् । अग्रतः सूर्यदत्तश्च मदिराक्षश्च पृष्ठतः
॥ २१ । विराटस्तत्र संग्रामे हत्वा पञ्चशतान् रथान् । हयानाञ्च शता-
न्यष्टौ हत्वा पञ्च महारथान् ॥ २२ ॥ चरन् स विविधान्मार्गान् रथेन
रथसत्तमः । त्रिगर्त्तानां सुशर्माणमार्च्छद्रुक्मरथं रणे ॥ २३ ॥ तौ व्य-
वाहरतां तत्र महात्मानौ महाबलौ । अन्योऽन्यमभिगर्जन्तौ गोष्ठेषु

साथ युद्ध करते थे, ॥ १०—१५ ॥ घुड़सवार घुड़सवारोंसे लड़ते थे,
पैदल पैदलोंसे लड़ते थे इस प्रकार अधिक समय होजानेके कारण
उनके शरीरमेंसे बहतेहुए रुधिरसे पृथ्वी परसे धूलि उड़ना बंद
होगई ॥१६॥तदनन्तर योधा भयंकर आवेशमें आ मर्यादाको लांघकर
लड़ने लगे जिनकी आकाशमें गति थी और जो आकाशमें उड़तेहुए
दीखते थे वे पक्षी बाणोंके प्रहारसे अत्यन्त घबड़ा गए, इससे उनकी
ऊँचे उड़नेकी गति बंद होगई और वे उड़तेमें बाणों पर बैठने लगे
॥ १७ ॥ शूर वीर पुरुष जिनके हाथ लोहेके दंडेकी समान थे वे क्रोधमें
भरकर परस्पर प्रहार करते थे तोभी कोई किसी शूरको पीछेको नहीं
हटा सकेत थे ॥ १८ ॥ इस प्रकार युद्ध करते २ महारथी महाबलवान्
तथा धैर्यधारी शतानीकने त्रिगर्तोंके सौ योद्धाओंको ठौर मारडाला
और विशालाक्षने चार सौ योद्धाओंको मार डाला तदनन्तर दोनों
जने त्रिगर्तोंकी बड़ीभारी सेनामें पहुँचे और बाहुबलके घमंडमें भरेहुए
दोनों जने शत्रुओंसे केशाकेशि और रथारथि संग्राम करने लगे
॥१९-२०॥ और युद्ध करते २ त्रिगर्तोंकी रथोंवाली सेनाको भाँपकर
शतानीक त्रिगर्तोंकी सेनामें घुसगया और उसके पीछे मदिराक्ष भी
रथसेनामें जा पहुँचा ॥ २१ ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ राजा विराट उस युद्ध
में पाँच सौ रथी आठ सौ घुड़सवार तथा पाँच महारथियोंको मार
कर, युद्धमें रथसे अनेकों प्रकारकी युद्ध करनेकी रीतिके अनुसार
रथको टेढ़सीधा चलाता हुआ सुवर्णके रथमें बैठेहुए त्रिगर्तोंके राजा
सुशर्माके ऊपर चढ़गया ॥ २२—२३ ॥ तदनन्तर जैसे गोठमें दो बैल

वृषभाविव ॥ २४ ॥ ततो राजा त्रिगर्त्तानां सुशर्मा युद्धदुर्मदः । मत्स्यं समीयाद्राजानं द्वैरथेन नरर्षभः ॥ २५ ॥ ततो रथाभ्यां रथिनौ व्यतीयतुरमर्षणौ । शरान् व्यसृजतां शीघ्रं तोयधारा घनाविव ॥ २६ ॥ अन्योन्यं चापि संरब्धौ विचेरतुरमर्षणौ । कृतास्त्रौ निशितैर्बाणैरसिशक्तिगदाभृतौ ॥ २७ ॥ ततो राजा सुशर्माणं विव्याध दशभिः शरैः । पञ्चभिः पञ्चभिश्चास्य विव्याध चतुरो हयान् ॥ २८ ॥ तथैव मत्स्यराजानं सुशर्मा युद्धदुर्मदः । पञ्चाशद्भिः शितैर्बाणैर्विव्याध परमास्त्रवित् ॥ २९ ॥ ततः सैन्यं महाराज मत्स्यराजसुशर्मणोः । नाभ्यजानत्तदान्योऽन्यं सैन्येन रजसावृतम् ॥ ३० ॥ छ ॥ छ ॥

इति विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि दक्षिणगोग्रहे विराट-
सुशर्मयुद्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच । तमसाभिप्लुते लोके रजसा चैव भारत । अतिष्ठन्वै मुहूर्त्तन्तु व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ १ ॥ ततोऽन्धकारं प्रणुदन्नुदति-

---

आपसमें गर्जना करके लड़ते हों तैसे ही महाबलवान् महात्मा विराट और त्रिगर्त्तोंका राजा परस्पर गाज कर युद्ध करने लगे ॥ २४ ॥ तदनन्तर युद्धमें दुर्मद नरश्रेष्ठ त्रिगर्त्तोंका राजा सुशर्मा रथयुद्धमें राजा विराटके साथ लड़नेको चढ़ आया ॥ २५ ॥ क्रोधमें भरे दोनों रथी एक दूसरेके सामनेको रथ बढ़ाकर अड़गए और जैसे मेघ जलकी धारें बरसातेहैं तैसे वह दोनों शीघ्रतासे बाण बर्षाने लगे ॥ २६ ॥ दोनों जने अस्त्रविद्यामें निपुण थे और दोनों तलवार शक्ति तथा गदाको भी धारण करेहुए थे । वे असहनता के कारण क्रोधमें भर गए और एक दूसरेको पैने बाणोंसे मारते हुए रणभूमिमें इधर उधर घूमनेलगे ॥ २७ ॥ तदनन्तर राजा विराटने दश बाण मारकर सुशर्माको बींधडाला और उसके चारों घोड़ोंमेंसे प्रत्येकके पाँच २ बाण मारे ॥ २८ ॥ तब महा अस्त्रवेत्ता युद्धदुर्मद, सुशर्माने पैने किये हुए पचास बाण मत्स्यराजके मारे ॥ २९ ॥ हे महाराज उस समय सेना के पैरोंसे उड़ीहुई धूलसे ढकाहुआ सुशर्मा और मत्स्यराजका सेना दल इधर उधर क्या हो रहा है यह नहीं जानसका ॥३०॥ बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! जब रात्रिके अंधकार तथा सेनाके पैरोंसे उड़ीहुई धूलके कारण सम्पूर्ण जगत्में अंधेरा छागया तब व्यूहरचना में चुनेहुए योधा दो घड़ी युद्ध बंद करके विश्राम लेने लगे ॥ १ ॥ परन्तु उसी समय अंधकारको दूर करता और

इत चन्द्रमाः। कुर्वाणो विमलां रात्रिं नन्दयन् क्षत्रियान् युधि ॥२॥ ततः प्रकाशमासाद्य पुनर्युद्धमवर्त्तत। घोररूपं ततस्ते स्म नावैक्षन्त परस्परम् ॥३॥ ततः सुशर्मा त्रैगर्त्तः सह भ्रात्रा यवीयसा। अभ्यद्रवन् मत्स्यराजं रथव्रातेन सर्वशः ॥ ४ ॥ ततो रथाभ्यां प्रस्कन्द्य भ्रातरौ क्षत्रियर्षभौ। गदापाणी सुसंरब्धौ समभ्यद्रवतां रथान् ॥५॥ तथैव तेषान्तु बलानि तानि क्रुद्धान्यथान्योऽन्यमभिद्रवंति। गदासिखड्गैश्च परश्वधैश्च प्रासैश्च तीक्ष्णाग्रसुपीतधारैः ॥ ६ ॥ बलन्तु मत्स्यस्य बलेन राजा सर्वं त्रिगर्त्ताधिपतिः सुशर्मा। प्रमथ्य जित्वा च प्रसह्य मत्स्यं विराटमोजस्विनमभ्यधावत् ॥७॥ तौ निहत्य पृथग् धुर्यावुभौ तौ पार्ष्णिसारथी। विरथं मत्स्यराजानं जीवग्राहमगृह्णताम् ॥ ८ ॥ तमुन्मथ्य सुशर्माथ युवतीमिव कामुकः। स्यन्दनं स्वं समारोप्य प्रययौ शीघ्रवाहनः ॥९॥ तस्मिन् गृहीते विरथे विराटे बलवत्तरे। प्राद्रवन्त भयान् मत्स्यास्त्रि-

---

रात्रिको निर्मल करता चन्द्रमा युद्धमें क्षत्रियोंको आनंद देता हुआ निकल आया ॥ २ ॥ इस प्रकार जब प्रकाश होगया तब दोनों ओरसे फिर भयंकर युद्ध होने लगा और एक दूसरेको न देखकर परस्पर आवेशमें भरेहुए युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥ त्रिगर्तोंका राजा सुशर्मा अपने छोटे भाईको साथ रखकर बड़े २ रथियोंके समूहके साथ मत्स्यराज विराटके ऊपर चढ़ आया, क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ दोनों भाई क्रोधमें भरकर हाथमें गदा ले अपने २ रथमेंसे नीचे कूद पड़े और राजा विराटके रथकी ओरको दौड़े ॥ ४—५ ॥ इसी प्रकार उनकी आई हुई सेनाके लोग भी क्रोधसे एक दूसरेके सामने लड़ने लगे और गदा तलवार खड्ग, फरसे तथा पानीपिये तीखी धारोंवाले प्रासोंसे परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥ उन दोनोंमें त्रिगर्तोंका राजा सुशर्मा अपनी सेनासे मत्स्यराजकी सब सेनाका संहार कर बलपूर्वक उसकी सेनाको हराकर प्राणबलवाले राजा विराटकी ओर दौड़ा ॥ ७ ॥ और उसके रथके दोनों घोड़े, पीछेके अंगरक्षक तथा सारथीको काटकर राजा विराटको रथमेंसे बाहर खेंचकर जीतेहुए ही पकड़ लिया ॥ ८ ॥ और फिर उसे अच्छेप्रकारसे धुंगलकर अपने रथमें डाल, जैसे कोई कामी पुरुष स्त्रीका हरण करता हो तैसे त्रिगर्तराज सुशर्मा राजा विराटको हरकर अपने रथको जल्दी २ हाँकता हुआ चलदिया ॥ ९ ॥ महाबली राजा विराटको रथहीन करके [illegible] जिस समय तहाँसे गया उस ही समय त्रिगर्तों से अत्यन्त [illegible] पाकर मत्स्यदेशवासी भयके कारण रणभूमिमेंसे भाग

गर्वैरर्दिता भृशम् ॥१०॥ तेषु सम्भज्यमानेषु कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। अब्रवीद्भ्रातरं वीरं मात्स्यं महाबाहुं भीमसेनमरिन्दमम् ॥ ११ ॥ मत्स्यराजः परामृष्टस्त्रिगर्तेन सुशर्मणा । तं मोक्षय महाबाहो न गच्छेद् द्विषतां वशम् ॥ १२ ॥ उषिताः स्म सुखं सर्वे सर्वकामैः सुपूजिताः।भीमसेन त्वया कार्या तस्य वासस्य निष्कृतिः ॥ १३ ॥ भीमसेन उवाच ॥ अहमेनं परित्रास्ये शासनात्तव पार्थिव । पश्य मे सुमहत्कर्म युध्यतः सह शत्रुभिः ॥ १४॥ स्वबाहुबलमाश्रित्य तिष्ठ त्वं भ्रातृभिः सह।एकान्तमाश्रितो राजन् पश्यमेऽद्य पराक्रमम् ॥ १५ ॥ सुस्कन्धोऽयं महावृक्षो गदारूप इव स्थितः। अहमेव समारुज्य द्रावयिष्यामि शात्रवान्।१६। वैशम्पायन उवाच । तं मत्तमिव मातंगं वीक्षमाणं वनस्पतिम् । अब्रवीद् भ्रातरं वीरं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥ मा भीम साहसं कार्षीस्तिष्ठत्वेष वनस्पतिः । मा त्वां वृक्षस्य कर्माणि कुर्वाणमतिमानुषम् ॥१८॥ जनाः समवबुध्येरन् भीमोऽयमिति भारत। अन्यदेवायुधं किञ्चित् प्रतिपद्यस्व मानुषम्॥१९॥ चापं

ने लगे ॥ १० ॥ जब मत्स्यदेश की सेना इसप्रकार पीड़ित होने लगी तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने महाबाहु शत्रुमर्दन भीमसेनसे कहा कि— ॥ ११ ॥ त्रिगर्त देशका राजा सुशर्मा मत्स्यराजको पकड़े लिये जाता है अतः हे महाबाहु ! भीमसेन ! वह शत्रुओंके वशमें होय, उससे पहिले ही तुम उसको शत्रुके हाथसे छुड़ाओ ॥ १२ ॥ हे भीमसेन ! हम सब उसके घर सुखसे रहे हैं और उसने हमारी सब कामनाएं पूरी करके हमारा सत्कार किया है अतः तुम्हें उसके घरमें रहनेका बदला देना चाहिये ॥१३॥ भीमसेनने कहा कि-हे राजन् मैं आप की आज्ञानुसार शत्रुके हाथसे राजा विराटकी रक्षा करूँगा और मैं अपने बाहुबलके भरोसेसे शत्रुओंके साथ युद्ध करके अपना पराक्रम दिखाऊँगा, आज आप भाइयोंके साथ एकान्तमें बैठकर देखो ॥ १४ ॥ १५ ॥ इस महावृक्षकी शाखाएं बड़ी अच्छी हैं और यह वृक्ष गदाकी समान खड़ा है सो मैं इस महावृक्षको उखाड़कर इनसे ही शत्रुओंका नाश करूँगा ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय इस प्रकार कहकर मदमत्त हाथीकी समान शूर वीर भीमसेन उस महावृक्षकी ओरको देखने लगा तब धर्मराज युधिष्ठिरने उससे कहा कि—॥ १७ ॥ अरे ओ भीम ! तू ऐसे साहस का काम मत कर, इस वृक्षका खड़ा रहने दे, हे भारत ! तुम इस महावृक्षको उखाड़कर मनुष्योंसे न होसकनेवाला काम करोगे तो (तुरत ही) सब मनुष्य पहिचान जायँगे कि—यह भीम है इससे तुम किसी दूसरे मानुषिक शस्त्रको लो ॥ १८ ॥ १९ ॥ धनुष, शक्ति,तलवार अथवा फरसा आदि

वा यदि वा शक्तिं निस्त्रिंशं वा परश्वधम्। यदेव मानुषं भीम भवेदन्यै-रलक्षितम्॥ २०॥ तदेवायुधमादाय मोक्षयाशु महीपतिम्। यमौ च चक्ररक्षौ ते भवितारौ महाबलौ॥ २१॥ सहिताः समरे तत्र मत्स्यराजं परीप्सत। वैशम्पायन उवाच॥ एवमुक्तस्तु वेगेन भीमसेनो महाबलः॥ २२॥ गृहीत्वा तु धनुःश्रेष्ठं जवेन सुमहाजवः। व्यमुञ्चच्छरवर्षाणि सतोय इव तोयदः॥ २३॥ तं भीमो भीमकर्माणं सुशर्माणमथाद्रवत्। विराटं समवीक्ष्यैनं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवत्॥२४॥ सुशर्मा चिन्तयामास कालान्तकयमोपमम्। तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तं पृष्ठतो रथपुंगवः। पश्यतां सुमहत् कर्म महद्युद्धमुपस्थितम्॥ २५॥ परावृत्तो धनुर्गृह्य सुशर्मा भ्रातृभिः सह। निमेषान्तरमात्रेण भीमसेनेन ते रथाः॥२६॥ रथानां च गजानां च वाजिनां च ससादिनाम्। सहस्रशतसंघाताः शूराणा-मुग्रधन्विनाम्॥ २७॥ पातिता भीमसेनेन विराटस्य समीपतः। पत्तयो

मेंसे जो तुम्हे रुचै उन मानुषिक शस्त्र को ग्रहण करो और दूसरे पहिचानें नहीं, इस प्रकार शीघ्रतासे राजा विराटको त्रिगर्तराजके हाथसे छुड़ाओ महाबलवान् नकुल तथा सहदेव तेरे पास रह कर तेरे रथके पहियोंकी रक्षा करेंगे और तुम सब जने इकट्ठे हो युद्धभूमिमें जाकर मत्स्यराजको त्रिगर्तोंसे छुड़ानेका प्रयत्न करो वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय! धर्मराजने इस प्रकार कहा तब महाबली भीमने शीघ्र ही महाधनुष धारण किया॥ २०—२२॥ और मेघ जैसे पानी बरसाता है तैसे ही महाबली भीमसेन वेगसे त्रिगर्तके ऊपर तथा उसकी सेना पर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥२३॥ तदनन्तर भयं-कर कर्म करने वाले राजा सुशर्माके पीछे वेगसे दौड़कर उसके रथ के समीप गया और राजा विराटके मुखके सामने को देखकर सुशर्मा से कहने लगा कि—खड़ा रह खड़ा रह॥ २४॥ महारथी सुशर्माने रथके पिछली ओरसे खड़ा रह! खड़ा रह इस प्रकार कहते हुए कालके भी काल समान भीमसेनको देख कर कहा कि—अच्छा आज ही महायुद्ध करने का हमारा भाग्य जागा है तो हम दोनों के महायुद्धके कामको हम दोनों अच्छी प्रकार देखें, यह कह कर राजा सुशर्मा अपने भाइयोंके सहित युद्ध करनेके लिये पीछेको फिरा और पलक मारने मात्रमें त्रिगर्तोंके योधा भीमसेन के सामने आकर खड़े होगए॥ २५—२७॥ त्रिगर्तराज और भीममें युद्ध होने लगा महात्मा भीमने हाथमें गदा लेकर लाखों रथोंको लाखों हाथियोंको लाखों घोड़ोंको, लाखों घुड़सवारोंको और लाखों उग्र धनुषधारी शूरोंको, राजा विराटके सामने ही मारडाला तथा त्रिगर्तोंके पैदलों

निहतास्तेषां गवां गृह्य महात्मना ॥ २८ ॥ तदृष्ट्वा तादृशं युद्धं सुशर्मा युद्धदुर्मदः । चिन्तयामास मनसा किं शेषं हि बलस्य मे।अपरोऽदृश्यते सैन्ये पुरा मग्नो महावले॥२९ ॥आकर्णपूर्णेन तदा धनुषा प्रत्यदृश्यत । सुशर्मा सायकांस्तीक्ष्णान् क्षिपते च पुनः पुनः ॥ ३० ॥ ततः समस्तास्ते सर्वे तुरगानभ्यचोदयन् । दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणास्त्रिगर्त्तान् प्रत्यमर्षणाः॥ ३१ ॥तान्निवृत्तरथान् दृष्ट्वा पाण्डवान् सा महाचमूः । वैराटिः परमं क्रुद्धो युयुधे परमाद्भुतम् ॥ ३२ ॥ सहस्रमवधीत्तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । भीमः सप्त सहस्राणि यमलोकमदर्शयत् ॥ ३३ ॥ नकुलश्चापि सप्तैव शतानि प्राहिणोच्छरैः । शतानि त्रीणि शूराणां सहदेवः प्रतापवान् ॥ ३४ ॥ युधिष्ठिरसमादिष्टो निजघ्ने पुरुषर्षभः । ततोऽभ्यपतदत्युग्रः सुशर्माणमुदायुधः॥ ३५ ॥ हत्वा तां महतीं सेनां त्रिगर्त्तानां महारथः । ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः ॥ ३६ ॥ अभिपत्य सुशर्माणं शरमभ्याहनद्भृशम् । सुशर्मापि सुसंरब्धस्त्वरमाणो युधिष्ठिरम् ॥३७॥

को भी मारडाला ॥२८॥ युद्धदुर्मद सुशर्मा इस प्रकारके युद्धको देख कर मनमें विचार करनेलगा कि—मेरी सेनामें अब वाकी ही क्या रहा है ? अर्थात् सबका नाश होगया । अरे ! मेरा भाई जो कान तक धनुष खेंचता हुआ दीखरहा था वह तो इस महावलवाली सेना में पहिले ही मारागया, ऐसा खेद करनेके अनन्तर सुशर्मा भीमसेनके ऊपर वारम्वार तीखे वाण फेंकने लगा ॥ २९—३० ॥ यह देख कर सव पाण्डव त्रिगर्तोंके ऊपर क्रोधमें भरगए और त्रिगर्तोंकी ओरको अपने रथके घोड़ोंको हाँककर उनके ऊपर दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ पाण्डवोंको त्रिगर्तोंकी ओर रथ फेरते हुए देख कर विराटकी महासेना और विराटके पुत्र अत्यन्त क्रोधमें भरगए और अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करते हुए त्रिगर्तोंसे लड़ने लग ॥ ३२ ॥ इस समय कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने एक हजार त्रिगर्तोंको मारडाला भीमने सात हज़ार त्रिगर्तोंको यमलोक का दर्शन कराया ॥ ३३ ॥ नकुलने सात सौ त्रिगर्तोंको वाणोंके प्रहारसे परलोकमें भेज दिया और प्रतापी महात्मा सहदेवने युधिष्ठिरकी आज्ञासे तीन सौ शूरोंको मारडाला और अन्तमें महाउग्र सहदेव शस्त्र उठा कर सुशर्माके ऊपर आपड़ा ॥ ३४—३५ ॥ महारथी राजा युधिष्ठिर इस प्रकार त्रिगर्तोंकी बड़ीभारी सेनाका संहार करके शीघ्रतासे सुशर्माके ऊपर चढ़गए और उसको अच्छे प्रकार वाणोंसे मारने लगे तव सुशर्माने भी अत्यन्त क्रोधमें भरकर शीघ्रतासे युधिष्ठिरके नौ वाण मारे और उनके

अविद्यन्नवभिर्वाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् । ततो राजन्नाशुकारी कुन्तीपुत्रो वृकोदरः ॥ ३८ ॥ समासाद्य सुशर्माणमश्वानस्य व्यपोथयत् पृष्ठगोपांश्च तस्याथ हत्वा परमसायकैः ॥ ३९ ॥ अथास्य सारथिं क्रुद्धो रथोपस्थादपातयत । चक्ररक्षश्च शूरो वै मदिराक्षोतिविश्रुतः ॥ ४० ॥ समायाद्विरथं दृष्ट्वा त्रिगर्त्तं प्राहरत्तदा । ततो विराटः प्रस्कन्द्य रथादथ सुशर्मणः ॥ ४१ ॥ गदां तस्य परामृश्य तमेवाभ्यद्रवद् वली । स चचार गदापाणिर्वृद्धोपि तरुणो यथा ॥ ४२ ॥ पलायमानं त्रैगर्त्तं दृष्ट्वा भीमोभ्यभाषत । राजपुत्र निवर्त्तस्व न ते युक्तं पलायनम् ॥ ४३ ॥ अनेन वीर्येण कथं गास्त्वं प्रार्थयसे वलात् । कथं चानुचरांस्त्यक्त्वा शत्रुमध्ये विषीदसि ॥ ४४ ॥ इत्युक्तः स तु पार्थेन सुशर्मा रथयूथपः । तिष्ठ तिष्ठेति भीमं स सहसाभ्यद्रवद्वली ॥ ४५ ॥ भीमस्तु भीमसंकाशो रथात् प्रस्कन्द्य पाण्डवः । प्राद्रवत्तूर्णमव्यग्रो जीवितेप्सुः सुशर्मणः ॥ ४६ ॥ तं भीमसेनो धावन्तमभ्यधावत वीर्यवान् ।

चारों घोड़ोंके चार वाण मारे इससे हे राजन् ! कुंतीपुत्र भीमसेन, शीघ्रतासे सुशर्माके रथके पास जा पहुँचा और उसने वहुत तीक्ष्ण वाण मारकर उसके घोड़ोंको तथा पीछेके भागमें खड़ेहुए अंगरक्षकों को मारडाला ॥ ३६—३९ ॥ और फिर क्रोध करकै त्रिगर्तके सारथि को रथकी वैठक परसे पृथ्वीपर गिरा दिया इतनेमें ही राजा विराट का चक्ररक्षक मदिराक्ष जो शूर वीर और परम प्रसिद्ध था वह तहाँ आगया और त्रिगर्तको रथहीन पड़ा देखतेही उसे वाणोंसे मारने लगा तव तुरत ही विराट राजा सुशर्माके रथसे नीचे कूद पड़ा और वलवान् राजा विराट उसकीही गदा लेकर उसके सामने लड़नेको दौड़ा इस समय राजा विराट वृद्ध था तो भी तरुणपुरुष की समान रणभूमिमें घूमरहा था ॥ ४०-४२ ॥ अन्तमें राजा सुशर्मा भागनेलगा तव भीमने उससे कहा कि—हे राजपुत्र ! पीछेको लौट, तुझे भागना योग्य नहीं है ॥ ४३ ॥ तू ऐसे पराक्रमसे किस प्रकार वलपूर्वक गौओंको लेजाना चाहता है ? और अपने सेवकोंको छोड़कर शत्रुओंके वीचमें क्यों खेद कर रहा है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार रथियोंके समूहके स्वामी सुशर्मासे भीमने कहा, तव सुशर्माने भीमसे कहा कि—ठीक है अव तू खड़ा रह ! खड़ा रह ! यह कह कर सुशर्मा एक साथ भीमके ऊपर चढ़ आया ॥ ४५ ॥ तुरतही भीमकी ही समान (अनुपम) भीम अपने रथमेंसे नीचे कूद पड़ा और सुशर्माके प्राणलेनेकी इच्छासे सावधान हो, सिंह जैसे छोटेसे मृगको पकडनेके लिये उसके पीछे दौड़ता है वैसे ही पराक्रमी भीम भी भागतेहुए त्रिगर्तराको पकड़ने को

त्रिगर्त्तराजमादातुं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ४७ ॥ अभिद्रुत्य सुशर्माणं केशपक्षे परामृशत् । समुद्यम्य तु रोषात्तं निष्पिपेश महीतले ॥ ४८ ॥ पदा मूर्ध्नि महाबाहुः प्राहरद्विलपिष्यतः । तस्य जानुं ददौ भीमो जघ्ने चैनमरत्निना ॥ स मोहमगमद्राजा प्रहारवरपीडितः ॥ ४९ ॥ तस्मिन् गृहीते विरथे त्रिगर्तानां महारथे । अभज्यत बलं सर्वं त्रैगर्त्तं तद्भयातुरम् ॥ ५० ॥ निवर्त्य गास्ततः सर्वाः पाण्डुपुत्रा महारथाः । अवजित्य सुशर्माणं धनं चादाय सर्वशः ॥ ५१ ॥ स्वबाहुबलसम्पन्ना ह्रीनिषेधा यतव्रताः । विराटस्य महात्मनः परिक्लेशविनाशनाः ॥ ५२ ॥ स्थिताः समक्षं ते सर्वे त्वथ भीमोऽभ्यभाषत ॥ ५३ ॥ नायं पापसमाचारो मत्तो जीवितुमर्हति । किं नु शक्यं मया कर्त्तुं यद्राजा सततं घृणी ॥ ५४ ॥ गले गृहीत्वा राजानमानीय विवशं वशम् । तत एनं विचेष्टन्तं बध्वा पार्थो वृकोदरः ॥ ५५ ॥ रथमारोपयामास विसंज्ञं पांशुगुण्ठितम् । अभ्येत्य रणमध्यस्थमभ्यगच्छद्युधिष्ठिरम् ॥ ५६ ॥ दर्शयामास भीमस्तु सुशर्माणं नराधिपम् । प्रोवाच पुरुषव्याघ्रो

लिये उस के पीछे वेगसे दौड़ने लगा ॥ ४६—४७ ॥ और उसने उसकी चोटी खेंचकर सुशर्मा को पकड़ लिया तथा फिर उस को उठाकर पृथ्वी पर पटक दिया और अच्छे प्रकार रगड़ा ॥ ४८ ॥ जब सुशर्मा रोने लगा तब उसके शिरमें वेग से लात मारी और पेट में घुटेली दी तथा मुट्ठी बांधकर उसके गाल पर ऐसा मुक्का मारा कि उस जारकी मारसे पीडित हुआ त्रिगर्तराज मूर्छित होगया ॥४९॥ फिर भीमसेनने रथहीन हुए त्रिगर्तोंके महारथी राजा सुशर्माको पकड़ लिया यह देख भयसे घबड़ाई हुई उस त्रिगर्तोंकी सेनामें भग्गी पड़ गई ॥ ५० ॥ तब महारथी पाण्डवोंने सब गौओंको पीछेको लौटाया और सुशर्माको हराकर उसका सब धन छीन लिया तथा बाहुबलवाले लज्जाशील व्रतधारी क्लेशोंका नाश करनेवाले महात्मा पाण्डव राजा विराटके सामने जाकर खड़े होगए उस समय पहिले भीमसेन बोला कि—॥ ५१—५३ ॥ यह पाप कर्म करनेवाला मेरे पाससे जीता चला जाय यह ठीक नहीं है परन्तु जब महाराज सदासे दयालु हैं तो मैं कर ही क्या सकता हूँ ॥ ५४ ॥ इसप्रकार कह कर पराधीन चेतनारहित राजा सुशर्मा, जो जैसे होसके तैसे भागनेके लिये तड़फ रहा था उसकी गरदन पकड़ कर रस्सी से बांधा तथा धूलमें सने हुए चेतनता रहित पड़े हुए उसको रथमें डाल कर जहां रणभूमिमें राजा युधिष्ठिर थे तहां लेगया ॥ ५५—५६ ॥ जब राजा युधिष्ठिरके पास सुशर्माको लेजाकर दिखाया तब पुरुषव्याघ्र राजा

भीममाहवशोभिनम् ॥ ५७ ॥ तं राजा प्राहसद्दृष्ट्वा मुच्यतां वै नराधमः । एवमुक्तोऽब्रवीद्भीमः सुशर्माणं महाबलम् ॥ ५८ ॥ भीम उवाच । जीवितुं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु । दासोऽस्मीति त्वया वाच्यं संसत्सु च सभासु च ॥ ५९ ॥ एवन्ते जीवितं दद्यामेष युद्धजितो विधिः । तमुवाच ततो ज्येष्ठो भ्राता सप्रणयं वचः ॥ ६० ॥ युधिष्ठिर उवाच । मुञ्च मुञ्चाधमाचारं प्रमाणं यदि ते वयम् । दासभावं गतो ह्येष विराटस्य महीपतेः । अदासो गच्छ मुक्तोऽसि मैवं कार्षीः कदाचन ॥ ६१ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि दक्षिणगोग्रहे सुशर्मनिग्रहे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

वैशम्पायन उवाच । एवमुक्ते तु सव्रीडः सुशर्मासीदधोमुखः । स मुक्तोऽभ्येत्य राजानमभिवाद्य प्रतस्थिवान् ॥ १ ॥ विसृज्य तु सुशर्माणं पाण्डवास्ते हतद्विषः । स्वबाहुबलसम्पन्ना ह्रीनिषेवा यतव्रताः । संग्रामशिरसो मध्ये तां रात्रिं सुखिनोऽवसन् ॥ २ ॥ ततो विराटः कौन्तेया-

---

युधिष्ठिर उसको देख कर हँसे और युद्धमें शोभा पानेवाले भीमसेन से बोले कि—इस नराधमको छोड दो तब महाबली सुशर्मासे भीमने कहा कि-॥५७-५८॥ ओ मूढ़ ! यदि तू जीवित रहना चाहता हो तो मैं तुझसे जो कहता हूँ उसको सुन और उसीप्रकार बर्ताव करनेकी प्रतिज्ञा कर, तुझै विद्वानोंकी सभामें और साधारण पुरुषोंकी सभाओं में यह कहना होगा कि-मैं दास हूँ ॥ ५९ ॥ यदि इस प्रतिज्ञाको तू स्वीकार करै तो मैं तुझै जीताहुआ छोड़ूँ क्योंकि-युद्धमें जीतेहुओंके ऐसा कहनेकी रीति है, यह सुनकर बड़े भाई युधिष्ठिरने प्रेमके साथ कहा कि—हे भीमसेन ! जो तुम मुझै मान्य समझते हो तथा मेरे कहनेका मान रखना हो तो इस नीच आचरणवाले पुरुषको छोड़दो, यह राजा विराटका दास हो ही चुका है, इसप्रकार कहकर त्रिगर्तराजसे कहा कि-तुझै दास भावसे छोड़ा जाता है अतः अब तू दास नहीं है जा चला जा और अब कभी ऐसा न करना ॥ ६०-६१ ॥ तेंतीसवां अध्याय समाप्त

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! युधिष्ठिरने यह बात कही उसको सुन कर सुशर्माने लज्जासे अपना मुख नीचा करलिया और भीमसेनके छोड़देने पर भरी सभामें राजा विराटके पास गया और उनको प्रणाम करके अपने देशकी ओरको चला गया ॥ १ ॥ भुजदण्डों का बल रखनेवाले लज्जाशील तथा सदाचरण पाण्डवोंने इस प्रकार अपने शत्रुओंको नष्ट कर सुशर्माको कैद करा और राजा विराटके सामने उसको नमाकर छोड़ दिया और उस रातको रणभूमिमें ही सुखसे रहे ॥२॥ राजा विराटने अलौकिक पराक्रम करनेवाले कुन्ती

नतिमानुपविक्रमान् । अर्च्चयामास वित्तेन मानेन च महारथान् ॥ ३ ॥ विराट उवाच । यथैव मम रत्नानि युष्माकं तानि वै तथा । कार्यं कुरुत वै सर्वे यथाकामं यथासुखम् ॥ ४ ॥ ददाम्यलंकृताः कन्या वसूनि विविधानि च । मनसश्चाप्यभिप्रेतं युद्धे शत्रुनिवर्हणाः ॥ ५ ॥ युष्माकं विक्रमादद्य मुक्तोहं स्वस्तिमानिह । तस्माद्भवन्तो मत्स्यानामीश्वराः । सर्व एवहि ॥ ६ ॥ वैशम्पायन उवाच । तथेति वादिनं मत्स्यं कौरवेयाः पृथक् पृथक् । उचुः प्रांजलयः सर्वे यधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ७ ॥ प्रतिनन्दाम ते वाक्यं सर्वं चैव विशाम्पते । एतेनैव प्रतीताः स्म यत्त्वं मुक्तोद्य शत्रुभिः ॥ ८ ॥ ततोब्रवीत् प्रीतमना मत्स्यराजो युधिष्ठिरम् । पुनरेव महाबाहुर्विराटो राजसत्तमः ॥ ९ ॥ एहि त्वामभिषेक्ष्यामि मत्स्यराजस्तु नो भवान् ॥ १० ॥ मनसश्चाप्यभिप्रेतं यथेष्टं भुवि दुर्लभम् । तत्तेहं संप्रदास्यामि सर्वमर्हति नो भवान् ॥ ११ ॥ रत्नानि गाः सुवर्णञ्च मणि-

---

पुत्रोंका बहुत ही सन्मान किया और बहुतसा धन तथा वस्त्रादि देकर अच्छी प्रकार सत्कार करके उनसे कहा कि—॥ ३ ॥ मेरे हाथमें जो उत्तम रत्न तथा उत्तमोत्तम पदार्थ हैं वे सब जैसे मेरे हैं तैसे ही तुम्हारे भी हैं तुम सब मेरे नगरमें रह कर, तुमको जैसे सुख मिलैं उसी प्रकार अपनी इच्छानुसार कार्य करो ॥ ४ ॥ हे युद्धमें शत्रुओंका संहार करनेवाले वीर पुरुषो ! कहो तो मैं तुम्हे शृंगारकी हुई उत्तम कन्याएं विवाह दूँ अनेकों प्रकारके उत्तम पदार्थ दूँ और तुम्हारे मनकी कामनाओंको भी पूरी करूँ ॥ ५ ॥ क्योंकि—तुम्हारे पराक्रमसे आज मैं कुशल पूर्वक शत्रुओंके हाथसे छूटा हूँ, इस लिये मुझे इतना ही कहना है कि-तुम सब मत्स्यदेशके राजा हो ॥ ६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि मत्स्यराजके ऐसे स्नेह भरे वचन सुनकर युधिष्ठिर आदि सब पाण्डव हाथ जोड़ कर विराटसे विनयपूर्वक अलग २ कहनेलगे कि-॥ ७ ॥ हे राजन् ! हम आपकी सब बातोंको मानते हैं और आप शत्रुके हाथसे छूटगए इतने से ही हम मनमें सन्तुष्ट हैं और हमें दूसरे किसी पदार्थ की इच्छा नहीं है ॥ ८ ॥ तब महाबाहु राजाओंमें श्रेष्ठ राजा विराटने प्रसन्न होकर फिर युधिष्ठिरसे कहा कि—॥ ९ ॥ तुम मेरे पास आओ मैं तुम्हारा राज्य सिंहासन पर अभिषेक करूँ और तुम हमारे राजा बनो ॥ १० ॥ हे व्याघ्रपादगोत्रोत्पन्न विप्रेन्द्र ! मेरे पास रत्न, गौ, सुवर्ण मणि मोती आदि जो कुछ पदार्थ हैं वे मनको अच्छेलगनेवाले पदार्थ पृथ्वी पर मिलने दुर्लभ हैं वे सब पदार्थ मैं आपको देता हूँ क्योंकि तुम मेरी सब वस्तुओंको ग्रहण करसकते हो मैं आपको सब प्रकार

मुक्तामथापि चावैयाघ्रपद्य विप्रेन्द्र सर्वथैव नमोस्तु ते॥१२॥त्वत्कृतेऽद्य पश्यामि राज्यं सन्तानमेव च। यतश्च जातसंरम्भो न च शत्रुवशं गतः॥ १३ ॥ ततो युधिष्ठिरो मत्स्यं पुनरेवाभ्यभाषत। प्रतिनन्दामि ते वाक्यं मनोज्ञं मत्स्य भाषसे॥ १४॥ आनृशंस्यपरो नित्यं सुसुखी सततं भव। गच्छन्तु दूतास्त्वरितं नगरं तव पार्थिव॥ १५॥ सुहृदां प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम्। ततस्तद्वचनान्मत्स्यो दूतान् राजा समादिशत्॥१६॥सआचक्षध्वं पुरं गत्वा संग्रामे विजयं मम। कुमार्यः समलंकृत्य पर्यागच्छन्तु मे पुरात्॥ १७॥वादित्राणि च सर्वाणि गणिकाश्च स्वलंकृताः।एतां चाज्ञां ततः श्रुत्वा राज्ञामत्स्येन नोदिताः।तामाज्ञां शिरसा कृत्वा प्रस्थिता हृष्टमानसाः॥ १८ ॥ते गत्वा तत्र तां रात्रिमथ सूर्योदयं प्रति। विराटस्य पुराभ्याशे दूता जयमघोषयन्॥ १९॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि विराटजयघोषे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

वैशम्पायन उवाच॥ याते त्रिगर्तान्मत्स्ये तु पशूंस्तान्वै परीप्सति

से नमस्कार करता हूँ॥ ११—१२॥ मैं तुम्हारे कारणसे ही आज राज्यको और सन्तानोंको देखनेका भाग्यशाली हुआ हूँ क्योंकि मुझे (कैद होनेका) डर लग रहा था तो भी मैं शत्रुओंके वशमें न होकर उनके हाथसे छूटगया हूँ॥ १३॥ यह सुन कर युधिष्ठिरने मत्स्यराज से फिर कहा कि हे मत्स्यराज! आप मनोहर वाक्य कहते हैं इस लिये मैं आपके वचनोंको सराहता हूँ॥१४॥ हे राजन्! आप सर्वदा सब पर दयालु रहते हैं ईश्वर आपको सदा सुखी रक्खें आप ऐसा करें कि आपके दूत इस विजयसमाचारको आपके संबंधियोंको पहुँचानेके लिये तथा नगरमें विजयके बाज बजवानेके लिये शीघ्रता से नगरमें जायं यह सुनकर मत्स्यराजने दूतोंको आज्ञा दी कि—तुम नगरमें जाकर संग्राममें पाईहुई मेरा विजयकी सूचना सबको दो और राजा वा कि—कुमारियें सौभाग्यके अलंकार तथा वस्त्र पहिर कर मुझे आशीर्वाद देनेके लिये नगरमेंसे बाहर मेरे सन्मुख आवें अनेकों प्रकारके बाजे बजाते हुए लेनेके लिये मेरे सामने आवें और गणिकायें भी सजकर मुझे लेनेके लिये सन्मुख आवें मत्स्यराजकी देखी आज्ञा होते ही दूत राजाकी आज्ञाको मस्तक पर चढ़ा कर प्रसन्न होतेहुए नगरकी ओरको दौड़गए॥ १५—१८॥ वे रात्रिमें चलने न सूर्योदयके समय विराटनगरके समीपमें आ पहुँचे तब दूतों ने विजयकी घोषणा करना प्रारंभ की॥१९॥चौंतीसवां अध्याय समाप्त

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे महाराज! मत्स्यदेशका राजा विराट

दुर्योधनः सहामात्यो विराटमुपयादथ ॥ १ ॥ भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च कृपश्च परमास्त्रवित्। द्रौणिश्च सौबलश्चैव तथा दुःशासनः प्रभो २ विविंशतिर्विकर्णश्च चित्रसेनश्च वीर्यवान्। दुर्मुखो दुःशलश्चैव ये चैवान्ये महारथाः ॥ ३॥ एते मत्स्यानुपागम्य विराटस्य महीपतेः। घोषान् विद्राव्य तरसा गोधनं जहुरोजसा ॥ ४ ॥ षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति च। महता रथवंशेन परिवार्य समन्ततः ॥ ५ ॥ गोपालानां तु घोषस्य हन्यतां तैर्महारथैः। आरावः सुमहानासीत् सम्प्रहारे भयंकरे ॥ ६ ॥ गोपाध्यक्षो भयत्रस्तो रथमास्थाय सत्वरः। जगाम नगरायैव परिक्रोशंस्तदार्त्तवत् ॥ ७ ॥ स प्रविश्य पुरं राज्ञो नृपवेश्माभ्ययात्ततः। अवतीर्य रथात्तूर्णमाख्यातुं प्रविवेश ह ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा भूमिञ्जयं नाम पुत्रं मत्स्यस्य मानिनम्। तस्मै तत् सर्वमाचष्ट राष्ट्रस्य पशुकर्षणम् ॥ ९ ॥ षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति ते। तद्वि-

---

अपनी गौओंकी रक्षा करनेके लिये त्रिगर्त्तोंके पीछे गया था वह अभी लौटकर आया भी नहीं था, यह अवसर देख कर दुर्योधन भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार गौओंको हरनेके लिये मंत्रियोंके साथ विराटके देश पर चढ आया ॥ १ ॥ भीष्म, द्रोणाचार्य, अस्त्र विद्यामें चतुर कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा शकुनि, दुःशासन, विविंशति, विकर्ण, पराक्रमी चित्रसेन, दुर्मुख, दुःशल तथा और महारथी भी अर्जुनके साथ आए ॥ २ ॥ ये महारथी एकसाथ विराटनगर पर चढ़ आए और राजा विराटके ग्वालोंके ग्रामोंको उजाड़ डाला, बलात्कारसे उनकी गौओंके समूहोंको हर कर लेजानेका आरम्भ करनेलगे ॥३—४॥ और सब गोठोंको रथोंसे चारों ओर घेर कर साठ हजार गौओंको महारथी कौरव हांककर लेजानेलगे तथा रोकनेको आनेवाले गोपालोंका महाभयंकर संहार करनेलगे, उस समय ग्वालिये वडा हाहाकार करके रोनेलगे ॥ ५—६ ॥ इन सब ग्वालियोंमें एक बड़ा गोपाल जो सबका स्वामी था वह डरगया और रथमें बैठकर घबडाया हुआसा हाय२ करता हुआ शीघ्रतासे समाचार देनेके लिये नगरकी ओरको दौड़ा ॥ ७ ॥ और नगरमें पहुँच कर राजमहलके पास जा रथसे नीचे उतर कर समाचार कहनेके लिये राजभवनमें गया ॥ ८ ॥ तहाँ मत्स्यराजके अभिमानी पुत्र भूमिञ्जयको देखा तब उसको अपने देशकी गौएं छिनजानेकी सब बात सुनाई ॥९॥ और कहा कि-साठ हजार गौओंको कौरव अपने देशमें हाँक कर लिये जाते हैं इसलिये हे देशकी वृद्धि करनेवाले राजकुमार ! तुम गौओंके समूहको जीतनेके लिये सावधान

जेतुं समुत्तिष्ठ गोधनं राष्ट्रवर्द्धन ॥ १० ॥ राजपुत्रहितप्रेप्सुः क्षिप्रं निर्याहि च स्वयम् । त्वां हि मत्स्यो महीपालः शून्यपालमिहाकरोत् ॥ ११ ॥ त्वया परिषदो मध्ये श्लाघते स नराधिपः । पुत्रो ममानुरूपश्च शूरश्चेति कुलोद्वहः ॥ १२ ॥ इष्वस्त्रे निपुणो योधः सदा वीरश्च मे सुतः । तस्य तत्सत्यमेवास्तु मनुष्येन्द्रस्य भाषितम् ॥ १३ ॥ आवर्त्तय कुरून् जित्वा पशून् पशुमतांवर । निर्दहैषामनीकानि भीमेन शरतेजसा ॥ १४ ॥ धनुश्च्युतै रुक्मपुंखैः शरैः सन्नतपर्वभिः । द्विषतां भिन्ध्यनीकानि गजानामिव यूथपः ॥ १५ ॥ पाशोपधानां ज्यातन्त्रीं चापदण्डां महास्वनाम् । शरवर्णां धनुर्वीणां शत्रुमध्ये प्रवादय ॥ १६ ॥ श्वेता रजतसंकाशा रथे युज्यन्तु ते हयाः । ध्वजञ्च सिंहं सौवर्णमुच्छ्रयन्तु तव प्रभो ॥ १७ ॥ रुक्मपुंखाः प्रसन्नाग्रा मुक्ता हस्तवता

होकर उनके सामने लड़नेको तयार होजाओ ॥१०॥ हे राजपुत्र ! तुम देशका मंगल चाहते हो तो शीघ्र ही नगरसे बाहर निकलकर वैरिओं का तिरस्कार करो क्योंकि—मत्स्य देशके राजा विराटने अपने पीछे तुम्हें राज्यका रक्षक नियत किया है और तुम्हारे हाथमें राज्यका भार सौंपा है ॥ ११ ॥ और सभामें भी राजा विराट तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करतेहुए कहते हैं कि—मेरा पुत्र मेरे समान ही गुणी शूर वीर तथा कुलके गौरवको बढ़ानेवाला है ॥ १२ ॥ सदा धनुषको छोड़नेमें योधा और वीर है । अपने पिता महाराज विराटके उस कथनको आज सत्य करो ॥ १३ ॥ हे पशुओंके श्रेष्ठ रक्षकोंमें श्रेष्ठ ! तुम आज कौरवों को हराकर पशुओंको लौटा लाओ और बाणोंके भयंकर तेजसे उनकी सेनाओंको जलाकर भस्म करदो ॥१४॥ और नमीहुई गांठवाले तथा सुनहरी पर लगेहुए बाणोंको धनुषमेंसे छोड़कर जैसे हाथियोंके समूह का स्वामी हाथियोंको मारता है तैसे ही तुम वैरिओंकी सेनाका संहार करो॥१५॥पाश ही (धनुषकी डोरीके अन्तिम भागपरकी खुंटियेंरूपी) जिसमें तार बांधनेकी कीलें हैं, जिसमें प्रत्यञ्चारूपी तार लगा हुआ है, धनुषका कमठरूपी जिसमें वीणाका डंडा है, जो बड़ाभारी शब्द करनेवाली है, जिसमें बाणोंके निकलनेकी सड़सड़ाहट निकलनारूप अक्षर हैं ऐसी धनुषरूपी वीणाको तुम वैरियों के मध्यमें बजाओ १६ अपने श्वेतवर्णके चांदीकी समान दमकतेहुए घोड़ोंको रथमें जोड़ो, तथा हे महाराज ! सुनहरी सिंहके चिन्हकी ध्वजाको अपने रथपर फहराओ ॥१७॥ तुम अपने दृढ़हाथसे सुवर्णकी पूंछवाले प्रसन्नमुख तथा राजाओंके मार्गमें अड़चन डालनेवाले बाणोंको मारकर सूर्यके

रथपा । छादयन्तु शराः सूर्यं रातां मार्गनिरोधकाः ॥ १८ ॥ रणे जित्वा कुरून् सर्वान् वज्रपाणिरिवासुरान् । यशो महदवाप्य त्वं प्रविशेदं पुरं पुनः ॥ १९ ॥ त्वं हि राष्ट्रस्य परमा गतिर्मत्स्यपतेः सुतः । यथा हि पाण्डुपुत्राणामर्जुनो जयतां वरः ॥ २० ॥ एवमेव गतिर्नूनं भवान् विषयवासिनाम् । गतिमन्तो वयं त्वद्य सर्वे विषयवासिनः॥२१॥ वैशम्पायन उवाच । स्त्रीमध्य उक्तस्तेनासौ तद्वाक्यमभयंकरम् । अन्तःपुरे श्लाघमान इदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे गोपवाक्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

उत्तर उवाच । अद्याहमनुगच्छेयं दृढधन्वा गवां पदम् । यदि मे सारथिः कश्चिद्भवेदश्वेषु कोविदः ॥ १ ॥ तं त्वहं नाधिगच्छामि यो मे यन्ता भवेन्नरः । पश्यध्वं सारथिं क्षिप्रं मम युक्तं प्रयास्यत ॥ २॥ अष्टाविंशतिरात्रं वा मासं वा नूनमन्तत । यत्तदासीन्महद्युद्धं तत्र मे सारथिर्हतः ॥ ३ ॥ स लभेयं यदा त्वन्यं हययानविदं नरम् । त्वरावानद्य या-

---

मार्गको ढकदो॥१८॥ और वज्रधारी इन्द्रने पहिले जैसे असुरोंको हराया था वैसे ही रणमें सब कौरवोंको हरा बड़ा भारी यश प्राप्त करके तुम इस नगरमें प्रवेश करो ॥१९॥ तुम मत्स्यराज के पुत्र हो अब महाराज घरमें नहीं होतेहैं तब मत्स्यदेशकी रक्षा करनेका और देख भाल करनेका काम आपको ही माना जाता है, अधिक क्या कहूँ जैसे विजयी अर्जुन पाण्डवोंका आधार है॥२०॥ तैसे ही इस देशमें रहनेवालों के आप निश्चय ही आधार हो, इसलिये आज हम सब देशवासी तुम्हारा ही आधार रखते हैं॥२१॥ वैशम्पायन कहते हैं कि-हे जनमेजय ! उस ग्वालियेने अंतःपुरमें स्त्रियोंके बीचमें बैठेहुए उत्तर से इसप्रकार कहा तब उत्तर अपनी प्रशंसा करताहुआ इसप्रकार अभय देनेवाले वचन कहनेलगा ॥ २२ ॥ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ छ ॥

उत्तर बोला कि—हे महागोप ! मेरे धनुष बहुत ही दृढ हैं, और इसी समयमें मैं गौओंके पैरोंके चिन्हों पर होकर बाहर जानेको उद्यत हूँ परन्तु यदि कोई घोड़ोंको नहि जाननेवाला पुरुष मेरा सारथी बने तो ही यह काम मुझसे होसकता है ॥ १ ॥ इस लिये तुम मेरी चढाईके लिये झटपट किसी चतुर सारथी को खोजकर लाओ, क्योंकि—मुझे तो ऐसा कोई पुरुष यहाँ पर दीखता नहीं, जो मेरा सारथी बने ॥२॥ पहिले जब अट्ठाईस रात्रि तक अथवा एक महीने तक अथवा उससे कुछ कम दिनों तक महायुद्ध हुआ था उसमें मेरा सारथि मारागया है ॥ ३ ॥ इस लिये मुझे यदि कोई भी दूसरा

ग्वाहं समुच्छ्रितमहाध्वजम् ॥ ४ ॥ विगाह्य तत् पुरानीकं गजवाजिरथाकुलम्। शस्त्रप्रतापनिर्वीर्यान् कुरून् जित्वानये पशून् ॥ ५ ॥दुर्योधनं शान्तनवं कर्णं वैकर्त्तनं कृपम । द्रोणञ्च सह पुत्रेण महेष्वासान् समागतान् ॥ ६ ॥ वित्रासयित्वा संग्रामे दानवानिव वज्रभृत् । अनेनैव मुहूर्त्तेन पुनः प्रत्यानये पशून् ॥ ७ ॥ शून्यमासाद्य कुरवः प्रयान्त्यादाय गोधनम्। किन्तु शक्यं मया कर्त्तुं यदहं तत्र नाभवम् ॥ ८ ॥ पश्येयुरद्य मे वीर्यं कुरवस्ते समागताः। किन्तु पार्थोऽर्जुनः साक्षादयमस्मान् प्रबाधते ॥ ९ ॥ वैशम्पायन उवाच। श्रुत्वा तदर्जुनो वाक्यं राज्ञः पुत्रस्य भाषतः।अतीतसमये काले प्रियां भार्यामनिन्दिताम्॥१०॥द्रुपदस्यसुतां तन्वीं पांचालींपावकात्मजाम् ।सत्यार्जवगुणोपेतां भर्त्तुः प्रियहिते रताम् ॥ ११ ॥ उवाच रहसि प्रीतः कृष्णां सर्वार्थकोविदः । उत्तरं ब्रूहि कल्याणि क्षिप्रं मद्वचनादिदम् ॥ १२॥ अयं वै पाण्डवस्यासीत् सारथिः सम्मतो

रथ को हाँकना जाननेवाला सारथि मिलजाय तो मैं शीघ्रतासे चढ़ाई कर फहरातीहुई बड़ी २ ध्वजाओंवाली हाथी, रथ, तथा घोड़ों से भरपूर वैरीकी सेनामें प्रवेश कर शस्त्रोंके प्रतापसे कौरवों को निस्तेज कर उनका तिरस्कार करूँ और गौओंको लौटाल लाऊँ ॥४॥ ॥ ५ ॥ इन्द्र जैसे रणमें दानवोंका नाश करता है, तैसे ही मैं भी रणमें दुर्योधन भीष्म सूर्यके पुत्र कर्ण कृपाचार्य द्रोणाचार्य और उनके पुत्र अश्वत्थामा तथा इकट्ठे हुए दूसरे बड़े २ धनुषधारियोंका भयभीत करके एक मुहूर्तमें पशुओं को लौटाकर लादूंगा ॥ ६—७ ॥ कौरव योधाओंसे रहित सूने देशको पाकर गौएं लिये जाते हैं परन्तु मैं उस समय वहाँ नहीं था और अब मुझसे हो ही क्या सकता है ? ॥ ८ ॥ यदि ये कौरव इकट्ठे होकर चढ़ आए हैं तो अच्छा ! आज वे मेरे पराक्रमको देखें ! वे मेरे पराक्रमको देख कर आपसमें कहेंगे कि-अरे क्यो साक्षात् पृथापुत्र अर्जुन ही हमारे ऊपर चढाई करके हमें दुःखित कर रहा है ? ॥ ९ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि–हे जनमेजय ! इस प्रकार बोलते हुए राजपुत्रकी बातको सुन कर सब बातों में चतुराई रखनेवाला अर्जुन प्रसन्न हुआ और अब उसके गुप्तवनवासका समय भी बीतगया था इससे उसने सत्य व्रतवाली आर्जव आदि गुण सम्पन्न अपने पतिका हितकरनेमें तत्पर रहनेवाली, पवित्र आचार वाली, अपनी प्रियतमा और अग्निकी पुत्री द्रौपदीको एकान्तमें बुला कर कहा कि—॥ १०--१२ ॥ हे कल्याणि! मैं तुझसे जो कुछ कहता हूँ, सो तू अभी उत्तरसे कह दे कि—यह बृहन्नला बहुत ही दृढ़ और अर्जुनका मान्य सारथि था और यह बड़े २ संग्रामों में जाकर चतुर

दृढः। महायुद्धेषु संसिद्धः स ते यन्ता भविष्यति ॥ १३ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तस्य तद्वचनं स्त्रीषु भाषतश्च पुनः पुनः। न सामर्षत पांचाली बीभत्सोः परिकीर्त्तनम् ॥ १४ ॥ अथैनमुपसंगम्य स्त्रीमध्यात् सा तपस्विनी। व्रीडमानेव शनकैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥ योऽसौ बृहद्वारणाभो युवा सुप्रियदर्शनः। बृहन्नलेति विख्यातः पार्थस्यासीत् स सारथिः ॥ १६ धनुष्यनवरश्चासीत्तस्य शिष्यो महात्मनः। दृष्टपूर्वो मया वीर चरन्त्या पाण्डवान् प्रति ॥ १७ ॥ यदा तत् पावको दावमदहत् खाण्डवं महत्। अर्जुनस्य तदानेन संगृहीता हयोत्तमाः ॥ १८ ॥ तेन सारथिना पार्थः सर्वभूतानि सर्वशः। अजयत् खाण्डवप्रस्थे नहि यन्तास्ति तादृशः ॥ १९ ॥ उत्तर उवाच। सैरन्ध्रि जानामि तथा युवानं नपुंसको नैव भवेद्यथासौ। अहं न शक्नोमि बृहन्नलां शुभे वक्तुं स्वयं यच्छ हयान्ममेति वै ॥ २० ॥ द्रौपद्युवाच। येयं कुमारी सुश्रोणी भगिनी ते यवीयसी। अस्याः सा वीर वचनं करिष्यति न संशयः ॥ २१ ॥ यदि वै सारथिः स स्यात् कुरून् सर्वान्न संशयः। जित्वा गाश्च समादाय ध्रुवमागमनं भवेत् ॥ २२ ॥ एवमुक्तः स सैरन्ध्रया भगिनीं प्रत्यभाषत।

बनगया है इसको तुम अपना सारथि बनाओ ॥१३॥ राजपुत्र उत्तर बारम्बार स्त्रियोंमें अर्जुनका नाम लेकर बातें करने लगा तब तो उसका कहना द्रौपदीसे सहन नहीं होसका ॥ १४ ॥ इससे तपस्विनी द्रौपदी स्त्री मण्डलीमेंसे उठकर उत्तरके पास गई और लजाती हुई धीरे २ उससे कहनेलगी ॥ १५ ॥ कि—यह जो बड़े हाथीकी समान आकार वाला तरुण और दर्शनीय है और बृहन्नला नामसे प्रसिद्ध हुआ है यह मनुष्य पहिले अर्जुनका सारथी था ॥ १६ ॥ यह महात्मा अर्जुन का धनुर्विद्यामें मुख्यशिष्यहै और जब मैं पाण्डवोंके पास रहती थी तो मैंने पहिले इसे तहाँ देखाथा ॥१७॥ जब अग्निने खाण्डव वनको जला-डालाथा तब यह पुरुष अर्जुनकेरथके घोड़ोंको पकड़ रहाथा ॥१८॥ और इस श्रेष्ठ सारथीको साथमें लेनेसे ही अर्जुन खाण्डवप्रस्थमें रहकर सब प्राणियोंका पराजयकरसकाथाइसकीसमान दूसराकोईसारथीनहीं है ॥१९॥ उत्तर बोला कि-अरी सैरंध्रि ! मैं इस तरुण पुरुषको जानता हूँ इसकी समान पुरुष नपुंसकहोहीनहींसकतापरन्तु हेकल्याणि ! मैं अपने आप बृहन्नलाके पास जाकर कैसे कहसकता हूँ कि—तू मेरे घोड़ों का सारथिपना कर ॥ २० ॥ द्रौपदी बोली कि—हे वीर ! तेरी यह सुन्दर कमरवाली छोटी बहिन जो उत्तरा है इसका कहना बृहन्नला अवश्य करेगी ॥ २१ ॥ यदि यह तुम्हारा सारथी बन जायगी तो तुम सब कौरवोंको जीतकर अवश्य ही गौओंको लौटालाओगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ इस प्रकार सैरंध्रीने कहा तब उत्तरने अपनी

गच्छ त्वमनवद्यांगि तामानय बृहन्नलाम् ॥ २३ ॥ सा भ्रात्रा प्रेषिता शीघ्रमगच्छन्नर्त्तनागृहम् । यत्रास्ते स महाबाहुश्छन्नः सत्रेण पाण्डवः

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे
बृहन्नलासारथ्यकथने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ सा प्राद्रवत्कांचनमाल्यधारिणी ज्येष्ठेन भ्रात्रा प्रहिता यशस्विनी । सुदक्षिणा वेदिविलग्नमध्या सा पद्मपत्राभनिभा शिखण्डिनी ॥१॥ तन्वी शुभांगी मणिचित्रमेखला मत्स्यस्य राज्ञो दुहिता श्रिया वृता । तन्नर्त्तनागारमरालपक्ष्मा शतह्रदा मेघमिवान्वपद्यत ॥ २ ॥ सा हस्तिहस्तोपमसंहितोरुः स्वनिंदिता चारुदती सुमध्यमा । आसाद्य तं वै वरमाल्यधारिणी पार्थं शुभा नागवधूरिव द्विपम् ॥ ३ ॥ सा रत्नभूता मनसः प्रियार्चिता सुता विराटस्य यथेन्द्रलक्ष्मीः । सुदर्शनीया प्रमुखे यशस्विनी प्रीत्याब्रवीदर्जुनमायतेक्षणा ॥ ४ ॥ सुसंहतोरुं कनकोज्वलत्वचं पार्थः कुमारीं स तदाभ्यभाषत । किमागमः कांचनमाल्यधारिणि मृगाक्षि किं त्वं त्वरितेव भामिनि । किं ते मुखं

बहिनसे कहा कि—हे निर्दोषांगी बहिन ! तू बृहन्नलाके पास जाकर उसे यहाँ बुला ला ॥ २३ ॥ भाईके कहनेसे उत्तरा कुमारी नृत्यमंदिर में जहाँ महाबाहु अर्जुन, बृहन्नलाके वेशमें छिपा बैठा था वहाँ तुरंत गई ॥ २४ ॥ छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! बड़े भाईने अर्जुनको बुलालानेके लिये उत्तराको आज्ञा दी, तब सुवर्णकी मालाको धारण करनेवाली, यशस्विनी बड़े भाईकी आज्ञामें रहने वाली, यज्ञकी वेदीकी समान पतली कमरवाली, कमलके पत्रमें निवास करनेवाली लक्ष्मीकी समान कान्तिवाली, लम्बे केशोंवाली, शरीरसे दुर्बल शुभाङ्गी, मणियों से जड़ी विचित्र मेखलाको धारण किये शोभासम्पन्न पतले पलकोंवाली हाथीकी सूंडकी समान एक दूसरेसे सटी हुई गोलाकार जंघाओंवाली, निर्दोष, सुन्दर दांतोंवाली, सुन्दर कमरवाली, सुन्दर पुष्पोंकी मालाको धारण किये स्त्रियोंमें श्रेष्ठ मनोहारिणी आदर करने योग्य इन्द्रकी लक्ष्मीकी समान परम दर्शनीय विशालनेत्रा राजा विराटकी पुत्री उत्तरा कुमारी, बिजली जैसे मेघके पास जाती है और श्रेष्ठ हथिनी जैसे हाथीके पास जाती है तैसे ही नृत्यमंदिरमें बैठे हुए सुन्दर तथा एक दूसरेके साथ सटी हुई जंघाओंवाले तथा सुवर्णकी समान उज्वल, कांतिवाले अर्जुनके पास जानेको झपटी और प्रेमके साथ अर्जुनके पास जाकर खड़ी होगई उसको देखते ही अर्जुनने उस कुमारीसे बूझा कि—अरी सुवर्णकी माला धारण करनेवाली

सुन्दरि न प्रसन्नमाचक्ष्व तत्त्वं मम शीघ्रमंगने॥५॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स तां दृष्ट्वा विशालाक्षीं राजपुत्रीं सखीं सखा । प्रहसन्नब्रवीद्राजन् किमागमनमित्युत ॥ ६ ॥ तमब्रवीद्राजपुत्री समुपेत्य नरर्षभम् । प्रणयम्भावयन्ती सा सखीमध्य इदं वचः ॥ ७ ॥ गावो राष्ट्रस्य कुरुभिः काल्यन्ते नो बृहन्नले । ता विजेतुं मम भ्राता प्रयास्यति धनुर्धरः ॥८॥ नाचिरं निहतस्तस्य संग्रामे रथसारथिः । तेन नास्ति समः सूतो योऽस्य सारथ्यमाचरेत् ॥ ९ ॥ तस्मै प्रयतमानाय सारथ्यर्थं बृहन्नले । आचचक्षे हयज्ञाने सैरन्ध्री कौशलं तव ॥ १० ॥ अर्जुनस्य किलासीस्त्वं सारथिर्दयितः पुरा । त्वयाऽजयत् सहायेन पृथिवीं पाण्डवर्षभः॥ ॥ ११ ॥ सा सारथ्यं मम भ्रातुः कुरु साधु बृहन्नले । पुरा दूरतरं गावो ह्रियंते कुरुभिर्हि नः ॥ १२ ॥ अथैतद्वचनं मेऽद्य नियुक्ता न करिष्यसि । प्रणयादुच्यमाना त्वं परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ १३ ॥ एवमुक्तस्तु सुश्रोण्या तया सख्या परन्तपः । जगाम राजपुत्रस्य सकाशममितौजसः ॥ १४ ॥ तमाव्रजन्तं त्वरितं प्रभिन्नमिव कुंजरम् । अन्व-

---

मृगनयनी कुमारी तू दौड़ी २ क्यों आई है ? हे सुन्दर कुमारी ! तेरे मुख पर उदासी क्यों छाई है ? यह तू मुझे शीघ्र ही बता ॥ १-५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—विशालनेत्रा और सखीरूपसे रहनेवाली राजकन्या को देख कर अर्जुनने हँसते २ बूझा कि—तू यहां किस लिये आई है ॥ ६ ॥ इस पर राजपुत्री विनयको दिखाती हुई नरश्रेष्ठ अर्जुनके पास गई और सखियोंके मध्यमें इस प्रकार बोली कि—७ हे बृहन्नला ! कौरव हमारे राज्यकी गौओंको हर कर लिये जाते हैं उनको जीतनेके लिये मेरा भाई धनुष धारण करकै जानेवाला है परंतु थोडे दिन हुए रणमें उसका सारथी मर गया था सो अब उसके समान कोई सारथी नहीं है कि—जो मेरे भाईका सारथीपना करै ९ हे बृहन्नले मेरा भाई सारथीको ढूढ़ताथा उस समय सैरंध्रीने तेरा घोड़ों के विषयका ज्ञान, मेरे भाईके सामने कहा और बताया कि—बृहंनला पहिले अर्जुनका प्यारा सारथी था और पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने तेरी सहायतासे पृथ्वीको जीता था ॥ १०-११ ॥ इस लिये हे बृहन्नला ! तू मेरे भाईके सारथिपनेको भली प्रकार कर और वह भी, कौरव हमारी गौओंको दूर न लेजांय उससे पहिले ही अपना सारथिपना करकै दिखा ॥ १२ ॥ आज मैं प्रेमके साथ तुझसे यह वचन कहती हूँ यदि तू मेरा कहना नहीं मानेगी तो मैं अपने प्राणको छोड़दूंगी १३ इसप्रकार सुन्दर [illegible]वाली कुमारी उत्तराने परन्तप अर्जुनसे कहा तब बृहन्नलाके रूपमें रहनेवाला अर्जुन उठा और अपार बलवाले राजकुमारके पास जानेको चला ॥ १४ ॥ इस समय मद टपकाते हुए

गच्छन्तिशालाक्षी शिशुर्गजवधूरिव ॥ १५ ॥ दूरादेव तु तां प्रेक्ष्य राजपुत्रोऽभ्यभाषत । त्वया सारथिना पार्थः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ॥ १६ ॥ पृथिवीमजयत् कृत्स्नां कुन्तीपुत्रो धनंजयः । सैरन्ध्री त्वां समाचष्टे सा हि जानाति पाण्डवान् ॥ १७ ॥ संयच्छ मामकानश्वांस्तथैव त्वं बृहन्नले । कुरुभिर्योत्स्यमानस्य गोधनानि परीप्सतः १८ अर्जुनस्य किलासीस्त्वं सारथिर्दयितः पुरा । त्वयाऽजयत्सहायेन पृथिवीं पाण्डवर्षभः ॥ १९ ॥ एवमुक्ता प्रत्युवाच राजपुत्रं बृहन्नला । का शक्तिर्मम सारथ्यं कर्त्तुं संग्राममूर्धनि ॥ २० ॥ गीतं वा यदि वा नृत्यं वादित्रं वा पृथग्विधम् । तत्करिष्यामि भद्रन्ते सारथ्यं तु कुतो मम २१ उत्तर उवाच ॥ बृहन्नले गायनो वा नर्त्तनो वा पुनर्भव । क्षिप्रं मे रथमास्थाय निगृह्णीष्व हयोत्तमान् ॥ २२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स तत्र नर्मसंयुक्तमकरोत्पाण्डवो बहु । उत्तरायाः प्रमुखतः सर्वं जानन्नरिन्दमः ॥ २३ ॥ ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य कवचं शरीरे प्रत्यमुञ्चत । कुमार्यस्तत्र

तरुण हाथीके पीछे जैसे हथिनी चलती है तैसे ही झपट कर जाते हुए अर्जुनके पीछे २ राजकुमारी चलनेलगी ॥ १५ ॥ बृहन्नलाको दूरसे ही देखकर उत्तर उससे कहने लगा कि—अर्जुनने तेरे सारथीपनेसे खाण्डव वनमें अग्निको तृप्त किया था ॥ १६ ॥ तथा कुन्तीपुत्र अर्जुनने सम्पूर्ण पृथ्वीको जीता था यह बात सैरंध्री कहतीहै क्योंकि यह पाण्डवोंको जानती है ॥ १७ ॥ इस लिये हे बृहन्नला मैं गौओंके समूहोंको लौटानेकी इच्छासे कौरवोंके सामने संग्राम करूँ उस समय मेरे घोड़ोंको भी तू उसीप्रकार पकड़कर नियममें रखना ।१८। क्योंकि—तू पहिले पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनका प्यारा सारथी था और तेरी ही सहायतासे अर्जुनने पृथ्वीको जीता था ॥ १९ ॥ इस प्रकार राजपुत्र उत्तरने बृहन्नलासे कहा तब उसने उत्तर दिया कि—रणके मुहाने पर सारथीपना करनेकी मुझमें क्या शक्ति है ? ॥ २० ॥ गाना, नाचना अथवा प्रकार २ के बाजे बजवाने हों तो मैं यह काम कर सकूँगी, आपका कल्याण हो मैं सारथीपना किसप्रकार कर सकती हूँ ॥ २१ ॥ उत्तर बोला कि-हे बृहन्नला ! तू गायकपन तथा नटपना पीछे करना परन्तु अब तो शीघ्रतासे रथ पर बैठ कर मेरे श्रेष्ठ घोड़ोंको रणमें पकड़े रह ॥ २२ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि इसके पीछे शत्रुओंको दमन करनेवाला अर्जुन सब जानता था तो भी उत्तराके मुखके सामने बड़ा गेगलापन दिखाने लगा॥२३। उसने कवचको ऊँचा उठा शरीर पर डाल लिया तहां जो विशालनेत्रा कुमारियें थीं उन्हों ने तब अर्जुनको ऐसा करते देख कर जोरसे

तं दृष्ट्वा प्राहसन् पृथुलोचनाः ॥ २४ ॥ स तु दृष्ट्वा विमुह्यन्तं स्वयमेवोत्तरस्ततः । कवचेन महार्हेण समनह्यद्बृहन्नलाम् ॥ २५ ॥ स बिभ्रत् कवचञ्चाग्र्यं स्वयमप्यंशुमत्प्रभम् । ध्वजञ्च सिंहमुच्छ्रित्य सारथ्ये समकल्पयत् ॥ २६ ॥ धनूंषि च महार्हाणि बाणांश्च रुचिरान् बहून् आदाय प्रययौ वीरः स बृहन्नलसारथिः ॥ २७ ॥ अथोत्तरा च कन्याश्च सख्यस्तामब्रुवंस्तदा । बृहन्नले आनयेथा वासांसि रुचिराणि च २८ पांचालिकार्थं चित्राणि सूक्ष्माणि च मृदूनि च । विजित्य संग्रामगतान् भीष्मद्रोणमुखान्कुरून् ॥ २९ ॥ एवं ता ब्रुवतीः कन्याः सहिताः पाण्डुनन्दनः । प्रत्युवाच हसन् पार्थो मेघदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ ३० ॥ बृहन्नलोवाच ॥ यद्युत्तरोयं संग्रामे विजेष्यति महारथान् । अथाहरिष्ये वासांसि दिव्यानि रुचिराणि च ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु बीभत्सुस्ततः प्राचोदयद्रथान् । कुरूनभिमुखः शूरो नानाध्वजपताकिनः ॥ ३२ ॥ तमुत्तरं वीक्ष्य रथोत्तमे स्थितं बृहन्नलायाः सहितं महाभुजम् । स्त्रियश्च कन्याश्च द्विजाश्च सुव्रताः प्रद-

---

खिलखिला कर हँसने लगीं ॥ २४ ॥ अर्जुनको कवच पहिरते में उलझता देख कर उत्तरने अपने आप ही बहुमूल्य कवच बृहन्नलाको पहिराया ॥२५॥ और फिर अपने आप भी सूर्यकी समान कान्तिमान् कवच पहिरा फिर सिंहके चिन्हवाली ध्वजा रथ पर चढा दी और बृहन्नलाको सारथीके स्थान पर बैठाया ॥ २६ ॥ और फिर शूरवीर उत्तर, बहुमूल्य धनुष और बहुतसे उत्तम बाण लेकर बृहन्नला को सारथी बना रणभूमिकी ओरको चल दिया ॥ २७ ॥ उस समय कुमारी उत्तराने तथा उसकी दूसरी सखियोंने कहा कि--हे बृहन्नला तुम रणभूमिमें लडनेको आयेहुए भीष्म, द्रोण इत्यादि कौरव योद्धाओंको जीतकर हमारी गुडियोंके लिये अनेक प्रकारके सूक्ष्म और कोमल सुन्दरसे वस्त्र लेते आना ॥ २८ ॥ २९ ॥ पाण्डुपुत्र अर्जुनने उस समय हँसकर मेघ और नगाडेकी समान गम्भीर स्वरमें, ऊपर कहे अनुसार बोलती हुई कन्याओंसे कहा॥३०॥बृहन्नला, बोली कि—यह उत्तर कुमार यदि रणभूमिमें महारथियोंको हरा देगा तो मैं तुम्हारे लिये मनोहर और दिव्य वस्त्र लाऊँगी ॥ ३१ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–ऐसा कहकर शूरवीर अर्जुनने अनेकों प्रकार की ध्वजा पताकाओंवाली कौरवोंकी सेनाकी ओरको अपने रथके घोड़ोंको हाँक दिया ॥ ३२ ॥ विशालबाहु उत्तर कुमारको बृहन्नलाके साथ बड़े रथमें बैठाहुआ देखकर उत्तम नियमोंमें रहनेवालीं स्त्रियें, कन्याएं तथा ब्राह्मण उनका शुभ शकुन करनेके लिये दाहिनी ओरको

क्षिणं चक्रुरथोचुरङ्गनाः ॥ ३३ ॥ यदर्जुनस्यर्षभतुल्यगामिनः पुराभवत् खाण्डवदाहमंगलम् । कुरून् समासाद्य रणे बृहन्नले सहोत्तरेणाद्य तदस्तु मंगलम् ॥ ३४ ॥ * ॥ * . ॥ . * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे
उत्तरनिर्याणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ स राजधान्या निर्याय वैराटिरकुतोभयः । प्रयाहीत्यब्रवीत्सूतं यत्र ते कुरवो गताः ॥ १ ॥ समवेतान् कुरून् सर्वान् जिगीषूनवजित्य वै । गास्तेषांक्षिप्रमादाय पुनरेष्याम्यहं पुरम् ॥२॥ ततस्तांश्चोदयामास सदश्वान् पाण्डुनन्दनः । ते हया नरसिंहेन नोदिता वातरंहसः । आलिखन्त इवाकाशमूहुः कांचनमालिनः ॥ ३ ॥ नातिदूरमथो गत्वा मत्स्यपुत्रधनंजयौ । अवेक्षेताममित्रघ्नौ कुरूणां बलिनां बलम् ॥ ४ ॥ श्मशानमभितो गत्वा आससाद कुरूनथ । तां शमीमन्ववीक्षेतां व्यूढानीकांश्च सर्वशः ॥ ५ ॥ तदनीकं महत्तेषां विबभौ सागरोपमम् । सर्पमाणमिवाकाशे वनं बहुलपादपम् ॥ ६ ॥ ददृशे पार्थिवो रेणुर्जनितस्तेन सर्पता । दृष्टिप्रणाशो भूतानां दिवस्पृ-

---

निकल कर गए और स्त्रियें आशीर्वाद देती हुईं कहनेलगीं कि—३३ हे बृहन्नला! बैलकीसी ऊँची चालवाले अर्जुनको खाण्डववनके जलते समय पहिले जैसा मङ्गल हुआ था, वह मङ्गल आज भी रणमें कौरवों के साथ भेटा होने पर उत्तर कुमारको प्राप्त हो ॥ ३४ ॥ सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे जनमेजय! किसीसे न डरनेवाला विराट कुमार उत्तर रथमें बैठकर बाहर निकला और उसने सारथीसे कहा, हे कि-सूत! जहाँ कौरव गएहैं उधरको ही रथ लेकर चल॥१॥ विजयकी चाहनावाले इकट्ठेहुए सब कौरवोंको जीतकर और शीघ्र ही उनसे गौएं लेकर मैं अपने नगरमें घुसूँगा, इसमें, कुछ सन्देह नहीं है॥२॥ यह सुनकर मनुष्योंमें सिंहसमान पाण्डुकुमार बली अर्जुनने पवन की समान वेगवाले रथमें जुड़ेहुए उत्तमजातिके घोड़ोंको हाँका और सुवर्णकी माला पहिरेहुए वे घोड़े आकाशमेंको उड़ते हुएसे दौड़ने लगे ॥ ३ ॥ अधिक दूर नहीं पहुँचे थे, कि—वैरियोंका संहार करने वाले मत्स्यराजके पुत्र उत्तर और अर्जुनने बलवान् कौरवोंके सेना दलको देखा ॥ ४ ॥ दोनों योधा श्मशानके समीपमें जा पहुँचे तब उन्होंने शमीके पेड़को और सब ओर व्यूहरचनासे खड़ेहुए कौरव दलको देखा ॥ ५ ॥ कौरवोंका बड़ाभारी सेनादल समुद्रकी समान और आकाशमें चलतेहुए बहुतसे वृक्षोंवाले वनकी समान प्रतीत होता था ॥ ६ ॥ हे कुरुनन्दन! कौरवोंकी सेनाके चलनेके कारण

म्कुलत्तम ॥ ७ ॥ तदनीकं महद्दृष्ट्वा गजाश्वरथसंकुलम् । कर्णदुर्योधनकृपैर्गुप्तं शान्तनवेन च ॥ ८ ॥ द्रोणेन च सपुत्रेण महेष्वासेन धीमता । हृष्टरोमा भयोद्विग्नः पार्थं वैराटिरब्रवीत् ॥ ९ ॥ उत्तर उवाच ॥ नोत्सहे कुरुभिर्योद्धुं रोमहर्षं हि पश्य मे । बहुप्रवीरमत्युग्रं देवैरपि दुरासदम् ॥ १० ॥ प्रतियोद्धुं न शक्यामि कुरुसैन्यमनन्तकम् । नाशंसे भारतीं सेनां प्रवेष्टुं भीमकार्मुकाम् ॥ ११ ॥ रथनागाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम् । दृष्ट्वैव हि परानाजौ मनः प्रव्यथतीव मे ॥ १२ ॥ यत्र द्रोणश्च भीष्मश्च कृपः कर्णो विविंशतिः । अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥ १३ ॥ दुर्योधनस्तथा वीरो राजा च रथिनां वरः । द्युतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥१४॥ दृष्ट्वैव हि कुरूनेतान् व्यूढानीकान् प्रहारिणः । हृषितानि च रोमाणि कश्मलञ्चागतं मम ॥ १५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अविजातो विज्ञातस्य मौर्ख्यात्धूर्त्तस्य पश्यतः । परिदेवयते मन्दः सकाशे सव्य-

पृथ्वी पर बडी धूल उड रही थी, उससे प्राणियोंकी आँखें अन्धी हुई जाती थीं और वह धूल आकाशतक छागई थी ॥ ७ ॥ हाथी घोडे और रथोंसे भरेहुए उस बडेभारी सेनादलकी रक्षा कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, भीष्म, बडेभारी धनुषधारी बुद्धिमान् द्रोणाचार्य तथा उनका पुत्र अश्वत्थामा आदि कररहे थे. यह देखते ही विराटकुमार उत्तरके तो रोमांच खड़े होगए (फुरहरी आगई) और उसने भय से घबड़ाकर बृहन्नलाका रूप धारण करनेवाले अर्जुनसे कहा ॥ ८ ॥ ९ ॥ उत्तर बोला, कि—कौरवोंके साथ युद्ध करनेको मेरी आह नहीं पड़ती, देखो मेरे शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगए, कौरवों की सेनामें अनेकों बड़े २ वीर हैं, यह सेना बडी डरावनी है, इस अपार सेनादलका सामना तो देवता भी नहीं करसकते, इसलिये भयानक धनुष धारण करनेवाले भरतवंशी राजाओंकी सेनामें मैं घुसना नहीं चाहता क्योंकि-मैं इनके सामने खडा होकर लड़ नहीं सकूँगा ॥ १० ॥ ११ ॥ यह सेना रथ हाथी और घोड़ोंसे खचाखच भरी है, रणभूमिमें शत्रुओंको देखते ही मेरा मन घबड़ायाजाता है ॥ १२ ॥ जिस कौरवोंकी सेनामें द्रोणाचार्य्य भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त बाल्हीक, वीर और महारथी दुर्योधन, ये सब कान्तिमान्, बडे धनुषधारी और संग्राम करनेमें चतुर हैं, इन व्यूहरचनासे गठित होकर खडेहुए कौरव योधाओंको देखकर मेरे रोमटे खडे होते हैं और मुझे मूर्छासी आई जाती है ॥ १३—१५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-फिर साधारण और मन्द बुद्धि उत्तरकुमार, हीजडेके रूपमें छिपे हुए असाधारण स्वभाववाले

साक्षिनः ॥ १६ ॥ त्रिगर्त्तान्मे पिता यातः शून्ये सम्प्रणिधाय माम् । सर्वां सेनामुपादाय न मे सन्तीह सैनिकाः ॥ १७ ॥ सोऽहमेको बहून् बालः कृतास्त्रानकृतश्रमः । प्रतियोद्धुं न शक्यामि निवर्त्तस्व बृहन्नले ॥ १८ ॥ बृहन्नलोवाच ॥ भयेन दीनरूपोसि द्विषतां हर्षवर्द्धनः । न च तावत्कृतं कर्म परैः किंचिद् रणाजिरे ॥ १९ ॥ स्वयमेव च मामात्थ वह मां कौरवान् प्रति । सोहं त्वां तत्र नेष्यामि यत्रैते बहुला ध्वजाः ॥ २० ॥ मध्यमामिषगृध्राणां कुरूणामाततायिनाम् । नेष्यामि त्वां महाबाहो पृथिव्यामपि युध्यताम् ॥ २१ ॥ तथा स्त्रीषु प्रतिश्रुत्य पौरुषं पुरुषेषु च । कत्थमानोभिनिर्याय किमर्थन्न युयुत्ससे ॥ २२ ॥ न चेद्विजित्य गास्तास्त्वं गृहान् वै प्रतियास्यसि । प्रहसिष्यन्ति वीरास्त्वां नरा नार्यश्च संगताः ॥ २३ ॥ अहमप्यत्र सैरन्ध्रया स्याता सारथ्यकर्मणि । न च शक्याम्यनिर्जित्य गाः प्रयातुं परं प्रति ॥ २४ ॥ स्तोत्रेण चैव सैरन्ध्रयास्तव वाक्येन तेन च । कथं न युध्येयमहं कुरून् स-

अर्जुनके देखते हुए उसके सामने मूर्खतावश शोक करने लगा कि— ॥ १६ ॥ मेरे पिता मुझे सूने नगरमें अकेला छोड़ सब सेनाको साथ लेकर त्रिगर्तोंके साथ लड़नेको चलेगए हैं और मेरे पास कुछ भी सैनिक नहीं हैं ॥१७॥ बालक और शस्त्रविद्यामें अभ्यासशून्य अकेला मैं, इन शस्त्रविद्याके पारगामी बहुतसे कौरवोंके साथ रण नहीं करसकूँगा ! इसकारण हे बृहन्नले ! तू यहाँसे पीछेको लौट चल ॥ १८ ॥ बृहन्नलाने कहा, कि–तू भय से दीन होकर वैरी के आनन्द को क्यों बढ़ाता है ? वैरिओंने अभी तो रणभूमिमें किसीप्रकार का पराक्रम करके नहीं दिखाया है, इतनेमें ही तू क्यों डराजाता है ॥ १९ ॥ तूने आप ही तो मुझसे कहा था, कि—तू मुझे कौरवोंके समीप पहुँचा दे, इसकारण मैं तुझे तहाँ ही लेजाऊँगी, कि—जहाँ वे बहुतसी ध्वजायें दीखरही हैं ॥ २० ॥ जैसे गिद्ध पक्षी मांसको चाहते हैं, तैसे ही गौओंका हरण करनेकी इच्छावाले आततायी कौरवोंके बीचमें, हे महाबाहो ! मैं तुझे लेजाऊँगा, कि जो कौरव भूमि के लिये लड़ रहे हैं ॥ २१ ॥ तूने स्त्री और पुरुषोंके सामने अपने पराक्रमकी बड़ी प्रशंसा करी है और तू लड़नेके लिये चढ़कर आया है फिर अब संग्राम क्यों नहीं करता है ? ॥ २२ ॥ यदि तू अपनी गौओं को बिना जीते ही घरको लौटकर जायगा तो स्त्रियें, पुरुष और शूर वीर इकट्ठे होकर तेरी हँसी करेंगे ॥ २३ ॥ मुझसे भी सैरन्ध्रीने सारथीपनेका काम करनेको कहा था, सो मैं तो अब गौओंको जीते बिना नगरमें जा नहीं सकता ॥ २४ ॥ सैरन्ध्रीने इतनी प्रशंसा करी और

र्वान् स्थिरो भव ॥ २५ ॥ उत्तर उवाच ॥ कामं हरन्तु मत्स्यानां भूयांसः कुरवो धनम् । प्रहसन्तु च मां नार्यो नरा वापि बृहन्नले ॥२६॥ संग्रामे न च कार्यं मे गावो गच्छन्तु चापि मे । शून्यं मे नगरञ्चापि पितुश्चैव बिभेम्यहम् ॥ २७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युक्त्वापाद्रवद्भीतो रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली त्यक्त्वा मानं च दर्पञ्च विसृज्य सशरन्धनुः ॥ २८ ॥ बृहन्नलोवाच ॥ नैष शूरैः स्मृतो धर्मः क्षत्रियस्य पलायनम् । श्रेयस्तु मरणं युद्धे न भीतस्य पलायनम् ॥ २९ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु कौन्तेयः सोवप्लुत्य रथोत्तमात् । तमन्वधावद्धावन्तं राजपुत्रं धनंजयः ॥ ३० ॥ दीर्घां वेणीं विधुन्वानः साधु रक्ते च वाससी । विधूय वेणीं धावन्तमजानन्तोऽर्जुनं तदा ३१ सैनिकाः प्राहसन् केचित्तथारूपमवेक्ष्य तम् । तं शीघ्रमभिधावन्तं सम्प्रेक्ष्य कुरवोऽब्रुवन् ॥ ३२ ॥ क एष वेशसंछन्नो भस्मन्येव हुताशनः ।

तुमने भी मुझसे बड़े आग्रहसे कहा था फिर मैं सब कौरवोंके साथ क्यों न संग्राम मचाऊँ ? इसलिये अब तू डटजा ॥ २५ ॥ उत्तरने कहा हे बृहन्नला ! मत्स्यराजकी गौओंके बहुतसे समूहोंको भले ही कौरव हरकर लेजायँ और स्त्रियें वा पुरुष भी भले ही मेरी हँसी करें ॥२६॥ मेरी गौएं भी भले ही चलीजायँ, मेरा नगर, रक्षकोंके विना भले ही सूना रहै और चाहे मैं अपने पिताके सामने काँपताहुआ खड़ा रहूँ, परन्तु रणभूमिमें मेरा कुछ काम नहीं है ॥ २७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—ऐसा कहकर कुण्डलधारी उत्तर मान तथा गर्वको छोड़कर और बाणों सहित धनुषको फेंक कर रथमेंसे कूद पड़ा और नगरकी ओरको भागने लगा ॥ २८ ॥ तब बृहन्नलाने उसको पुकार कर कहा, कि—क्षत्रियका रणमेंसे भागजाना इसको शूर पुरुषोंने धर्म नहीं कहा है, अरे ! रणमें मरजाना ही अच्छा है, डरकर भागजाना अच्छा नहीं है॥२९॥ वैशम्पायन कहतेहैं, कि-ऐसा कहकर कुन्तीकुमार धनंजय भी उस उत्तम रथपरसे नीचे कूद पड़ा और उस भागतेहुए राजकुमार के पीछे २ (पकड़नेको) दौड़नेलगा ॥ ३० ॥ शरीर पर धारण किये हुए सुन्दर लाल वस्त्र तथा शिर परके खुलेहुए बालोंको इधर उधर को उड़ाताहुआ अर्जुन, जिस समय खुले बालोंवाले राजकुमारके पीछे दौड़रहा था, उस समय उसके स्वरूपको देखकर कितने ही सैनिक जो अर्जुनको नहीं पहिचानते थे वे खिलखिलाकर हँसनेलगे तथा अर्जुनको शीघ्रतासे दौड़ता देखकर कौरव कहने लगे, कि—॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ जैसे राखके भीतर आग हो तैसे स्त्रीके वेशमें छिपाहुआ यह

किंचिदस्य यथा पुंसः किंचिदस्य यथा स्त्रियः ॥ ३३ ॥ सारूप्यमर्जुनस्येव क्लीवरूपं बिभर्त्ति च । तदेवैतच्छिरो ग्रीवं तौ बाहू परिघोपमौ । तद्वदेवास्य विक्रान्तं नायमन्यो धनंजयात् ॥ ३४ ॥ अमरेष्विव देवेन्द्रो मानुषेषु धनंजयः । एकः कोऽस्मानुपायायादन्यो लोके धनंजयात् ॥ ३५ ॥ एकः पुत्रो विराटस्य शून्ये सन्निहितः पुरे । स एष किल निर्यातो बालभावान्न पौरुषात् ॥ ३६ ॥ सत्रेण नूनं छन्नं हि चरन्तं पार्थमर्जुनम् । उत्तरः सारथिं कृत्वा निर्यातो नगराद्बहिः ॥३७॥ स नो मन्यामहे दृष्ट्वा भीत एष पलायते । तन्नूनमेष धावन्तं जिघृक्षति धनंजयः ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इति स्म कुरवः सर्वे विमृशन्तः पृथक् पृथक् । न च व्यवसितुं किञ्चिदुत्तरं शक्नुवन्ति ते ॥ ३९ ॥ छन्नं तथा तं सत्रेण पाण्डवं प्रेक्ष्य भारत । उत्तरन्तु प्रधावन्तमभिद्रुत्य धनंजयः । गत्वा पदशतं तूर्णं केशपक्षे परामृशत् ॥ ४० ॥ सोऽर्जुनेन परामृष्टः पर्यदेवयदार्त्तवत् । बहुलं कृपणञ्चैव विराटस्य सुतस्तदा॥४१॥

पुरुष न जाने कौन है ? इसका कुछ भाग पुरुषकासा और कुछ भाग स्त्रीकासा प्रतीत होताहै ॥ ३३ ॥ इसका रूप तो अर्जुनकेसा ही है, परन्तु यह तो नपुंसकके रूपको धारण कियेहुए है, इसका मस्तक और कण्ठ अर्जुनकेसा है और लोहदण्डसे इसके भुजदण्ड भी अर्जुनकेसे ही मालूम होते हैं तथा इसकी छलाँगें भी अर्जुनकीसी ही दीखती हैं, इसलिये यह अर्जुनके सिवाय दूसरा नहीं है ॥ ३४ ॥ जैसे देवताओंमें इन्द्र है तैसे ही मनुष्योंमें अर्जुन एक है, लोकमें अर्जुनके सिवाय दूसरा कौन हमारेऊपरचढ़कर आसकता है?॥३५॥राजा विराट का पुत्र अकेला उत्तर ही राजा और सेनासे सूनी राजधानीमें नगरकी रक्षा करनेको रहगया था, वह अपनी मूर्खतासे लड़नेको बाहरनिकल आया है, कुछ पराक्रमसे लड़नेको बाहर निकलकर नहीं आया है ३६ अर्जुन आजकल हीजड़ेके वेशमें छुपकर घूमा करता है, उत्तर उसको ही सारथी बनाकर लड़नेको नगरसे बाहर निकल आया है ॥ ३७ ॥ मालूम होताहै, वह उत्तर हमें देखकर डरगया है, इसीकारण भागा-जाता है और भागते हुए उत्तरको पकड़नेकी इच्छासे यह अर्जुन उस के पीछे दौड़ रहा है ॥ ३८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे भरतवंशी जनमेजय ! इस प्रकार वे सब जुदे२ प्रकारसे विचार करनेलगे परन्तु कपटवेशमें छुपेहुएअर्जुनको देखकर भी किसी प्रकारका निश्चय नहीं करसके, उत्तरको भागतेहुए देखकर अर्जुन उसके पीछे दौड़ा और सौ पग आगे जाते ही शीघ्रतासे उसकी चोटी पकड़ली॥३९॥४०॥ अर्जुनने जब उत्तरको पकड़लिया तब विराटपुत्र उत्तर कायर पुरुषकी समान

उत्तर उवाच ॥ शृणुयास्त्वं हि कल्याणि बृहन्नले सुमध्यमे । निवर्त्तय रथं क्षिप्रं जीवन् भद्राणि पश्यति ॥ ४२ ॥ शातकुम्भस्य शुद्धस्य शतं निष्कान् ददामि ते । मणीनष्टौ च वैदूर्यान् हेमबद्धान्महाप्रभान् ॥४३॥ हेमदण्डप्रतिच्छन्नं रथं युक्तञ्च सुव्रतैः । मत्तांश्च दश मातंगान् मुंच मान्त्वं बृहन्नले ॥ ४४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमादीनि वाक्यानि विलपन्तमचेतसम् । प्रहस्य पुरुषव्याघ्रो रथस्यान्तिकमानयत् ॥४५॥ अथैनमब्रवीत् पार्थो भयार्त्तं नष्टचेतनम् । यदि नोत्सहसे योद्धुं शत्रुभिः शत्रुकर्षण । एहि मे त्वं हयान् यच्छ युध्यमानस्य शत्रुभिः ॥ ४६ ॥ प्रयाहि तद्रथानीकं मद्बाहुबलरक्षितः । अप्रधृष्यतमं घोरं गुप्तम्वीरैर्महारथैः ॥ ४७ ॥ मा भैस्त्वं राजपुत्राग्र्य क्षत्रियोसि परन्तप । कथं पुरुषशार्दूल शत्रुमध्ये विषीदसि ॥ ४८ ॥ अहं वै कुरुभिर्योत्स्ये विजेष्यामि च ते पशून् । प्रविश्यैतद्रथानीकमप्रधृष्यं दुरासदम् ॥ ४६ ॥ यंता भव नरश्रेष्ठ योत्स्येहं कुरुभिः सह । एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्वैराटिमपराजितः ।

रोनेलगा ॥ ४१ ॥ उत्तर रोता २ बोला कि—हे कल्याणी और सुन्दर कमरवाली बृहन्नले ! तू मेरी बात सुन और रथको शीघ्र ही पीछेको लौटा, जो जीता रहता है वह अनेकों कल्याणकी बातें देखता है ४२ हे बृहन्नले ! मैं तुझे शुद्ध सुवर्णकी सौ मुहरें, सुवर्णमें जड़ेहुए बड़े चमकदार आठ वैदूर्यमणि, सुवर्णके दण्डोंवाला तथा सधेहुए घोड़ोंसे जुता रथ और मदोन्मत्त दश हाथी दूँगा परन्तु तू मुझे छोड़दे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—इसप्रकार बिलखता २ उत्तर कुमार बौखलासा होकर विलाप करनेलगा और पुरुषोंमें सिंहसमान अर्जुन खिलखिला कर हँसता हुआ उसको पकड़ कर रथके पास ले आया ॥ ४५ ॥ फिर अर्जुन भयभीत और अचेत (होशगुम) हुए उत्तरकुमारसे कहनेलगा, कि—अरे ओ वैरिनाशन ! यदि शत्रुओंके साथ लड़नेकी तेरी इच्छा नहींहै तो मैं वैरियोंके सामने जाकर लड़ता हूँ, परन्तु तू मेरे साथ चल और इस रथ पर बैठकर घोड़ोंको थामे रह ॥ ४६ ॥ मैं अपने भुजबलसे ही तेरी रक्षा करूँगा, तू केवल शूर वीर महारथियोंकी रक्षा कीहुई और जिसके भीतर घुसना सहज नहीं है ऐसी भयानक रथियोंकी सेनामें रथको लेचल ॥ ४७ ॥ हे श्रेष्ठ राजकुमार ! तू वैरियोंको ताप देनेवाला क्षत्रिय है, डरै मत, अरे पुरुष सिंह ! वैरियोंके बीचमें आकर क्यों घबड़ायाजाता है ? ॥४८॥ जिस को रोकना तथा जिसके भीतर घुसना सहज नहीं है ऐसी इस कौरवोंकी रथसेनामें घुसकर मैं कौरवोंके साथ युद्ध करूँगा और तेरी गौओंको जीतकर लाऊँगा ॥ ४६ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं कौरवोंके सामने

समाश्वास्य मुहूर्त्तन्तमुत्तरं भरतर्षभ ॥ ५० ॥ तत एनं विचेष्टन्तमकामं भयपीडितम् । रथमारोपयामास पार्थः प्रहरताम्वरः ॥ ५१ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे उत्तराश्वासने अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ तं दृष्ट्वा क्लीववेषेण रथस्थं नरपुंगवम् । शमीमभिमुखं यान्तं रथमारोप्य चोत्तरम् ॥ १ ॥ भीष्मद्रोणमुखास्तत्र कुरवो रथिसत्तमाः । वित्रस्तमनसः सर्वे धनञ्जयकृताद्भयात् ॥ २ ॥ तानवेक्ष्य हतोत्साहानुत्पातानपि चाद्भुतान् । गुरुः शस्त्रभृतां श्रेष्ठो भारद्वाजाभ्यभाषत ॥ ३ ॥ चण्डाश्च वाताः संवान्ति रूक्षाः शर्करवर्षिणः । भस्मवर्णप्रकाशेन तमसा संवृतं नभः ॥ ४ ॥ रूक्षवर्णाश्च जलदा दृश्यन्तेद्भुतदर्शनाः । निःसरन्ति च कोशेभ्यः शस्त्राणि विविधानि च ॥ ५ ॥ शिवाश्च विनदन्त्येता दीप्तायां दिशि दारुणाः। हयाश्चाश्रूणि मुंचन्ति ध्वजाःकम्पन्त्यकम्पिताः ॥ ६ ॥ यादृशान्यत्ररूपाणि सन्दृश्यन्ते बहूनि च । यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु साध्वसं समुपस्थितम् ॥ ७ ॥ रक्षध्वमपि चात्मानं

जाकर युद्ध करूंगा, परन्तु तू मेरा सारथि बनजा, हे भरतसत्तम ! जनमेजय ! इसप्रकार अजित अर्जुनने उत्तरकुमारसे कहकर उसको दो घड़ीतक समझाया ॥ ५० ॥ फिर भी युद्ध करना न चाहतेहुए जड़समान बने तथा भयभीत हुए उत्तरकुमारको योधाओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने रथ पर बैठालदिया ॥ ५१ ॥ अड़तीसवां अध्याय समाप्त ३८

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! नपुंसकके वेशमें रहनेवाला नरपुंगव अर्जुन उत्तर कुमारको रथमें बैठालकर अपने आप भी रथमें बैठा और फिर शमीके वृक्षकी ओरको गया, महारथी भीष्म और द्रोण आदि सब कौरव अर्जुनको देखते ही उसके भयसे मनमें अकुला उठे ॥ १ ॥ २ ॥ अपने साथके महारथियोंका उत्साह भङ्ग हुआ देखकर तथा अचंभेमें डालनेवाले उत्पातों (कुशकुनों) को देखकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्य बोलउठे कि—॥ ३ ॥ पवन प्रचण्ड और रूखे चल रहे हैं तथा आकाशमेंसे धूलि बरसा रहे हैं, राखकैसे भूरे रङ्गके अंधेरेसे आकाश ढकगया है ॥ ४ ॥ अद्भुत दीखनेवाले रूखे मेघ आकाशमें छायेहुए दीखरहे हैं, अनेकों प्रकारके शस्त्र म्यानोंमेंसे निकले पड़ते हैं ॥ ५ ॥ जैसे आग लग रही हो ऐसे प्रकाशवाली दिशाओंमें ये भयानक गीदड़ियें रो रही हैं, घोड़े आंसू बहारहे हैं, विना हिलाये ही झंडे हिलेजाते हैं ॥ ६ ॥ ये सब जैसे चिह्न दीख रहे हैं, इनसे मालूम होता है, कि–कोई भयदायक घटना होने का अवसर समीप ही आगया है, इसकारण तुम सब सावधान होकर खड़े होजाओ ॥ ७ ॥ सेनाको व्यूह बनाकर खड़ी करो और तुम

व्यूढस्य वाहिनीमपि। वैशसं च प्रतीक्षस्व रक्षस्वश्चापि गोधनम् ॥८॥ एष वीरो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृताम्वरः। आगतः क्लीववेषेण पार्थो नास्त्यत्र संशयः ॥९॥ (१) नदीज लंकेशवनारिकेतुर्नगाह्वयो नाम नगारिसूनुः। एषोऽङ्गनावेषधरः किरीटी जित्वाद्य वयं नेष्यति चाद्य गावः ॥१०॥ स एष पार्थो विक्रान्तः सव्यसाची परन्तपः। नायुद्धेन निवर्त्तेत सर्वैरपि सुरासुरैः ॥११॥ क्लेशितश्च वने शूरो वासवेनापि शिक्षितः। अमर्षवशमापन्नो वासवप्रतिमो युधि। नेहास्य प्रतियोद्धारमहं पश्यामि कौरवाः ॥१२॥ महादेवोपि पार्थेन श्रूयते युधि तोषितः। किरातवेषप्रच्छन्नो गिरौ हिमवति प्रभुः ॥१३॥ कर्ण उवाच ॥ सदा भवान् फाल्गुनस्य गुणैरस्मान् विकत्थसे। न चार्जुनः कलापूर्णो मम दुर्योधनस्य च ॥१४॥ दुर्योधन उवाच ॥ यद्येष पार्थो

अपनी रक्षा आप करो तथा अवसर पर चाहे जैसी मारकाट करनी पड़े, उसको भी करके गौओंकी रक्षा करो ॥ ८ ॥ सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ यह महाधनुषधारी वीर अर्जुन नपुंसक के वेशमें हमारे ऊपर चढ़आया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ हे गङ्गापुत्र भीष्म ! जिसकी ध्वजामें हनुमान् विराजते हैं और जो पर्वतके वैरी इन्द्रका पुत्र है वह अर्जुन स्त्रीका वेश धारण करके यहाँ आया है, यह आज जिसको जीतकर गौओंको विराटनगरीमें लौटा ले जायगा उस दुर्योधनकी तुम रक्षा करो ॥ १० ॥ यह चढ़कर आया हुआ वैरियों को दुःखदायक महापराक्रमी सव्यसाची अर्जुन, सब देवता और दानव इकट्ठे होकर आजायँ तो उनके साथ भी युद्ध किये बिना लौटनेवाला नहीं है ॥ ११ ॥ इस शूरने वनमें कष्ट भोगा है और इन्द्रसे अस्त्रविद्या सीखली है, यह क्रोधमें भरकर इन्द्रकी समान रणमें लड़नेवाला है इसकारण हे कौरवो ! मैं तो यहां अपनी सेनामें इसके सामने पड़कर लड़नेवाला किसीको देखता नहीं हूँ ॥ १२ ॥ सुननेमें आया है, कि—अर्जुनने हिमालय पर्वत पर भीलके रूपमें छिपेहुए महादेव के साथ युद्ध करके उनको भी प्रसन्न करलिया है ॥ १३ ॥ कर्णने कहा कि—हे द्रोणाचार्य ! तुम सदा ही अर्जुनके गुण गाकर हमारी निन्दा किया करते हो, परन्तु अर्जुन मेरे और दुर्योधनके सोलहवे भागकी समान भी नहीं है ॥ १४ ॥ दुर्योधनने कहा, कि—हे राजा

(१) हे नदीज गाङ्गेय भीष्म, लङ्केशस्य रावणस्य वनं तस्यारिर्नाशको हनुमान् सः केतुर्ध्वजो यस्य सः, नगो वृक्षस्तन्नामा,नामेति निश्चितम्, नगारिः पर्वतारिरिन्द्रस्तस्य सूनुः, किरीटी एतन्नाम्ना प्रसिद्धोऽर्जुनः, वै जित्वा, वो युष्माकं गाः धेनूः नेष्यति, तं दुर्योधनम्, अत्र पालय।

राधेयः कृतं कार्यं भवेन्मम । ज्ञाताः पुनश्चरिष्यन्ति द्वादशाब्दान्विशाम्पते ॥ १५ ॥ अथैव कश्चिदेवान्यः क्लीववेषेण मानवः । शरैरेनं सुनिशितैः पातयिष्यामि भूतले ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तस्मिन् ब्रुवति तद्वाक्यं धार्त्तराष्ट्रे परन्तपः । भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः पौरुषं तदपूजयन् ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे अर्जुनप्रशंसायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ तां शमीमुपसङ्गम्य पार्थो वैराटिमब्रवीत् । सुकुमारं समाज्ञाय संग्रामे नातिकोविदम् ॥ १ ॥ समादिष्टो मया क्षिप्रं धनूंष्यवहरोत्तर । नेमानि हि त्वदीयानि सोढुं शक्ष्यन्ति मे बलम् । भारञ्चापि गुरुं वोढुं कुञ्जरं वा प्रमर्दितुम् ॥ २ ॥ मम वा बाहुविक्षेपं शत्रूनिह विजेष्यतः । तस्माद्भूमिञ्जयारोह शमीमेतां पलाशिनीम् ॥ ३ ॥ अस्यां हि पाण्डुपुत्राणां धनूंषि निहितान्युत । युधिष्ठिरस्य भीमस्य बीभत्सोर्यमयोस्तथा ॥ ४ ॥ ध्वजाः शराश्च शूराणां दिव्यानि कवचानि च । अत्र चैतन्महावीर्यं धनुः पार्थस्य गाण्डि-

---

कर्ण ! यदि अर्जुन होगा तब तो हमारा काम ही सिद्ध होजायगा क्योंकि पाण्डव पहिचानेगए तो फिर बारह वर्षतक वनमें जाकर विचरेंगे।१५। और यह कोई दूसरा ही मनुष्य हीजड़ेका रूप धारण करके यहां आया होगा तो मैं इसको खूब तेज कियेहुए बाणोंसे भूमिपर सुलादूंगा ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—परन्तप धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने ऐसा कहा, तब भीष्म,द्रोणाचार्य कृपाचार्य और अश्वत्थामाने उसके ऐसे साहसकी बड़ी प्रशंसा की ॥ १७ ॥ उनतालीसवां अध्याय समाप्त

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! सामने खड़ेहुए शमीवृक्षके समीप जानेपर, अर्जुनने विराटके पुत्र उत्तरको सुकुमार और संग्राम के विषयमें अनजान देखकर कहा, कि ॥ १ ॥ अरे उत्तर ! मेरी आज्ञा है, कि—तू इस शमीके पेड़परसे शीघ्र ही शस्त्रोंको नीचे उतार, क्योंकि तेरे ये शस्त्र मेरे बलको नही सहसकेंगे, मेरे अधिक भारको भी नहीं सहसकेंगे और न हाथियोंका ही नाश करसकेंगे ॥ २ ॥ मेरे हाथके धक्कोंको भी नहीं सहसकेंगे और यहाँ हमें जीतनेकी इच्छावाले शत्रुओंकी मारको भी नहीं सहसकेंगे, इसकारण हे राजकुमार ! तू इस पत्तोंसे भरेहुए शमीके वृक्षपर शस्त्रोंको उतारनेके लिये चढ़जा ॥३॥ इस शमीके पेड़ पर पांडुके पुत्र युधिष्ठिर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवके धनुष रक्खेहुए हैं ॥ ४ ॥ तथा शूरवीरोंकी ध्वजाएं बाण और दिव्य कवच भी इस शमीपर रक्खेहुए हैं और महापराक्रमभरा,

थम् ॥ ५ ॥ एकं शतसहस्रेण सम्मितं राष्ट्रवर्द्धनम् । व्यायामसहमत्यर्थं तृणराजसमं महत् ॥ ६ ॥ सर्वायुधमहामात्रं शत्रुसम्बाधकारकम् । सुवर्णविकृतं दिव्यं श्लक्ष्णमायतमव्रणम् ॥ ७ ॥ अलम्भारं गुरुं वोढुं दारुणं चारुदर्शनम् । तादृशान्येव सर्वाणि बलवन्ति दृढानि च । युधिष्ठिरस्य भीमस्य बीभत्सोर्यमयोस्तथा ॥ ८ ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि उत्तरगोग्रहे अर्जुनास्त्रकथने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

उत्तर उवाच ॥ अस्मिन् वृक्षे किलोद्बद्धं शरीरमिति नः श्रुतम् । तदहं राजपुत्रः सन् स्पृशेयं पाणिना कथम् ॥ १ ॥ नैवं विधं मया युक्तमालब्धुं क्षत्रयोनिना । महता राजपुत्रेण मन्त्रयज्ञविदा सता ॥ २ ॥ स्पृष्टवन्तं शरीरं मां शववाहमिवाशुचिम् । कथं वा व्यवहार्यं वै कुर्वीथास्त्वं बृहन्नले ॥ ३ ॥ बृहन्नलोवाच ॥ व्यवहार्यश्च राजेन्द्र शुचिश्चैव भविष्यसि । धनूंष्येतानि मा भैस्त्वं शरीरं नात्र विद्यते ॥ ४ ॥ दायादं मत्स्यराजस्य कुले जातं मनस्विनाम् । त्वां कथं निन्दितं कर्म कारयेयं

एक लाख धनुषोंकी समान बलयुक्त, देशका उन्नतिकारक, बड़ीभारी मारको पूर्णरूपसे सहसकनेवाला, ताड़के वृक्षकी समान बड़ा, सब प्रकारके आयुधोंमें बड़े विस्तारवाला, शत्रुओंको पीड़ादायक; सोने से मढ़ाहुआ, चिकना लम्बा और छिद्ररहित, दारुण काम करनेवाला और देखनेमें सुन्दर अर्जुनका गाण्डीव नामक धनुष भी इस शमीके पेड़पर ही रक्खा है, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेवके ये सब शस्त्र बड़े बलभरे और शत्रुओंके सामने टकर झेलनेमें दृढ़ हैं ॥ ५-८ ॥ चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ * ॥ *

उत्तर कुमारने उत्तर दिया, कि—हे सारथी ! तू मुझसे इस शमीके वृक्षपर चढ़नेको कहता है परन्तु मैंने सुनाहै, कि—इस पेड़के ऊपर मनुष्यका मृत शरीर बाँधागया है सो मैं राजकुमार होकर इस मुरदेको अपने हाथसे कैसे छूलूँ ? ॥ १ ॥ मैं एक मुख्य राजकुमार हूँ, वेदमंत्र और यज्ञके विषयको जानता हूँ तथा क्षत्रियकी जाति में उत्पन्न हुआ हूँ, इस लिये मुझे इस मुरदेको छूना उचित नहीं है ॥ २ ॥ यदि मैं इस मृतकके शरीरको छुऊँगा तो मुरदा उठाने वालोंकी समान अपवित्र होजाऊँगा तो फिर हे बृहन्नले ! मुझे तू स्पर्शके भी अयोग्य क्यों करे देती है ? ॥ ३ ॥ बृहन्नला बोली, कि—हे राजेन्द्र ! तू व्यवहार करनेके योग्य और पवित्र ही रहैगा, डरै मत, इसमें मृतशरीर नहीं है, किन्तु बँधेहुए जो दीखरहे हैं, ये धनुष हैं ॥ ४ ॥ हे राजकुमार ! तू मत्स्य राजका पुत्र है और स्वतन्त्र चित्तवाले क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ

सूतात्मज ॥ ५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्तः स पार्थेन रथात् प्रस्कन्द्य कुण्डली । आरुरोह शमीवृक्षं वैराटिरवशस्तदा ॥ ६ ॥ तमन्वशासच्छत्रुघ्नो रथे तिष्ठन् धनंजयः । अवरोपय वृक्षाग्राद्धनूंष्येतानि मा चिरम् ॥ ७ ॥ परिवेष्टनमेतेषां क्षिप्रं चैव व्यपानुद । सोपहृत्य महार्हाणि धनूंषि पृथुवक्षसाम् । परिवेष्टनपत्राणि विमुच्य समुपानयत् ८ तथा सन्नहनान्येषां परिमुच्य समन्ततः । अपश्यद् गाण्डिवं तत्र चतुर्भिरपरैः सह ॥ ९ ॥ तेषां विमुच्यमानानां धनुषामर्कवर्चसाम् । विनिश्चेरुः प्रभा दिव्या ग्रहाणामुदयेष्विव ॥ १० ॥ स तेषां रूपमालोक्य भोगिनामिव जृम्भताम् । हृष्टरोमा भयोद्विग्नः क्षणेन समपद्यत ॥ ११॥ संस्पृश्य तानि चापानि भानुमन्ति बृहन्ति च । वैराटिरर्जुनं राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे अस्त्रारोपणे
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

है, इसलिये मैं तुझसे निन्दित काम कैसे करासकता हूँ ? ॥ ५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—इसप्रकार अर्जुनके कहने पर वह कुण्डलधारी विराटकुमार उत्तर वेवश होकर उसी समय रथमेंसे नीचे कूद पड़ा और शमीके पेड़पर चढ़गया ॥ ६ ॥ उसके पेड़पै चढ़जाने पर शत्रुओंका संहार करनेवाले अर्जुनने रथ पर बैठे २ उससे कहा, कि–तू पेड़की शाखामें बँधेहुए धनुषोंको नीचे उतार और इन धनुषोंके ऊपर जो पत्ते लिपटेहुए हैं उनको झटपट अलग करदे, देर न कर, तदनन्तर राजकुमार उत्तरने विशाल वक्षःस्थलवाले पाण्डवोंके बहुमूल्य धनुषोंको शमीकेपेड़परसे शीघ्र ही नीचे उतारा और उनके ऊपर लिपटेहुए पत्तोंको अलग करकै उन धनुषोंको तथा उनकी प्रत्यञ्चाओंको अर्जुनके पास लाकर रक्खा और फिर अन्य चार धनुषों सहित गाण्डीव धनुषको उत्तर टकटकी लगाकर देखनेलगा ॥ ७—९ ॥ जिस समय सूर्यकी समान तेजस्वी धनुषोंके ऊपरसे बन्धन खोलेगए उस समय, ग्रह उदय होकर उनकी दिव्य कान्ति जैसे बाहर फैलजाती है तैसे ही उन धनुषोंकी दिव्य कान्ति भी चारों ओर फैल गई ॥१०॥ जभाड़ोंको चाटतेहुएसर्पोंकी समान उन धनुषोंके रूपको देखकर वह विराटकुमार क्षणभरमें भयसे घबड़ा उठा और उसके शरीर पर रोमांच खड़े होगए ॥ ११ ॥ तदनन्तर वह उत्तर कुमार उन तेजभरे बडे २ धनुषोंको हाथसे उठा२ कर अर्जुनसे इसप्रकार बूझनेलगा ॥ १२ ॥ इकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ *

उत्तर उवाच ॥ बिन्दवो जातरूपस्य शतं यस्मिन्निपातिताः । सहस्रकोटिसौवर्णाः कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ १ ॥ वारणा यत्र सौवर्णाः पृष्ठे भासन्ति दंशिताः । सुपार्श्वं सुग्रहञ्चैव कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ २ ॥ तपनीयस्य शुद्धस्य पृष्ठे यस्येन्द्रगोपकाः। पृष्ठे विभक्ता शोभन्ते कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ ३ ॥ सूर्या यत्र च सौवर्णास्त्रयो भासन्ति दंशिताः । तेजसा प्रज्वलन्तो हि कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ ४ ॥ शलभा यत्र सौवर्णास्तपनीयविभूषिताः सुवर्णमणिचित्रञ्च कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ ५ ॥ इमे च कस्य नाराचाः सहस्रा लोमवाहिनः । समन्तात् कलधौताग्रा उपासंगे हिरण्मये ॥ ६ ॥ विपाठाः पृथवः कस्य गार्ध्रपत्राः शिलाशिताः हारिद्रवर्णाः सुमुखाः पीताः सर्वायसाः शराः ॥ ७ ॥ कस्यायमसितश्चापः पञ्चशार्दूललक्षणः । वराहकर्णव्यामिश्रान् शरान् धारयते दश ॥ ८ ॥ कस्येमे पृथवो दीर्घाश्चन्द्रबिम्बार्धदर्शनाः । शतानि सप्त तिष्ठन्ति नाराचा रुधिराशनाः ॥ ९ ॥ कस्येमे शुकपत्राभैः पूर्वैरर्धैः

उत्तरने बूझा, कि—हे बृहन्नला ! जिसमें सुवर्णकी सौ फुल्लियें जड़ी हैं और जिसके दोनो सिरे बड़े ही मजबूत हैं ऐसा यह उत्तम धनुष किसका है ? ॥ १ ॥ जिसकी पीठ पर सोनेके चमकदार हाथी चितेहुए हैं, जिसके दोनों छोर और मध्यभाग बड़े सुन्दर हैं ऐसा यह धनुष किसका है ? ॥ २ ॥ और जिस धनुषकी पीठ पर निर्मल सुवर्णके लाल पीले रङ्ग भरे इन्द्रगोप कीड़ेके साठ चित्र अलग २ शोभा पारहे हैं ऐसा यह सबसे उत्तम धनुष किसका है ? ॥ ३ ॥ और जिस के ऊपर चमचमाहटवाले सोनेके तीन सूरज चितेहुए हैं, जो कि—तेजके कारण जलतेहुएसे प्रतीत होते हैं ऐसा उत्तम यह धनुष किसका है ? ॥ ४ ॥ जिस पर मीनेसे शोभायमान सोनेके पटबीजने चितेहुए हैं तथा सोनेकी चन्द्रिकाएं जड़ी होनेसे जो विचित्र दीखता है ऐसा यह उत्तम धनुष किसका है ॥ ५ ॥ अग्रभागमें सुनहरी कियेहुए परों वाले सुवर्णके भाथोंमें भरेहुए ये सहस्रों बाण किसके हैं ?॥६॥ जिनके पिछले भाग गिद्ध पक्षियोंके परोंकेसे हैं, जिनको सान धरकर तेज किया है, जो पीले रङ्गके तीखे मुखवाले, पानी पिये, केवल लोहेके और मोटे २ दण्डोंवाले हैं ऐसे ये बाण किसके हैं ? ॥ ७ ॥ जिसके ऊपर पाँच बाघोंके चित्र बने हैं ऐसा यह काले रङ्गका भाथा किसका है? कि—जिसमें सुअरके कानकेसे नोकदार दश बाण भरेहुए हैं ॥ ८ ॥ मोटे, लम्बे, आधे चन्द्रमाके आकारके तथा वैरियोंका रुधिर पीने-वाले ये सात सौ बाण भी किसके हैं ? ॥ ९ ॥ जिनका अगला आधा भाग तोतेके परोंकेसा हरे रंगका है और ऊपरका आधा भाग केवल लोहेका है ऐसे शिला पर घिसकर तेज कियेहुए पानी पिलायेहुए

सुवाससः । उत्तरैरायसैः पीतैर्हेमपुंखैः शिलाशितैः ॥ १० ॥ गुरुभारसहो दिव्यः शात्रवाणां भयंकराः कस्यायं सायको दीर्घः शिलीपृष्ठः शिलीमुखः ॥ ११ ॥ वैयाघ्रकोशे निहितो हेमचित्रत्सरुर्महान् । सुफलश्चित्रकोशश्च किंकिणीसायको महान् ॥ १२ ॥ कस्य हेमत्सरुर्दिव्यः खड्गः परमनिर्मलः । कस्यायं विमलः खड्गो गव्ये कोशे समर्पितः ॥ १३ ॥ हेमत्सरुरनाधृष्यो नैषध्यो भारसाधनः कस्य पाञ्चनखे कोशे सायको हेमविग्रहः ॥ १४ ॥ प्रमाणरूपसम्पन्नः पीत आकाशसन्निभः कस्य हेममये कोशे सुतप्ते पावकप्रभे ॥ १५ ॥ निस्त्रिंशोऽयं गुरुः पीतः सायकः परनिर्व्रणः कस्यायमसितः खड्गो हेमबिन्दुभिरावृतः ॥१६॥ आशीविषसमस्पर्शः परकायप्रभेदनः । गुरुभारसहो दिव्यः सपत्नानां भयप्रदः ॥ १७ ॥ निर्दिशस्व यथातत्त्वं यथा पृष्टा बृहन्नले । विस्मयो मे परो जातो दृष्ट्वा सर्वमिदं महत् ॥ १८ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि उत्तरवाक्यं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

और सुनहरी परोंवाले ये सोनेके बाण किसके हैं ? ॥ १० ॥ यह बहुत से बोझेको सहसकनेवाली वैरियोंको भयदायक. दिव्य, जिसका मुख मेंडककेसा है और जिसकी मूठपर मेंडकका चित्र बना है ऐसी यह लम्बी तलवार किसकी है ? ॥ ११ ॥ विचित्रप्रकारके बाघके चमडेके म्यानमें बन्दकी हुई पानी पिलाकर रँगीहुई, सुन्दर सोनेकी मूठ और तीखी धारवाली तथा घूंघरू लगी हुई यह तलवार किसकी है ? ॥ १२ ॥ तथा सोनेकी मूठवाली बड़ी ही चमकदार यह तेजस्वी और दिव्य तलवार, कि—जो बैलके चमडेके म्यानमें बंदकी हुई है, सो किसकी है ? ॥ १३ ॥ और सोनेकी मूंठवाली, किसीसे पीछेको न हटाईजासकनेवाली, निषध देशमें बनीहुई तथा वैरीकी मारको झेलनेवाली और सब सोनेसे मढ़ीहुई तलवार जो बकरेके चमड़ेके म्यान में बन्द है सो किसकी है ? ॥ १४ ॥ अग्निकी समान कान्तिवाली बड़ी ही तेजस्वी,सुनहरी म्यानमें बन्द,दर्शनीय, उचित लम्बाववाली, वजन में भारी पानीदार, वैरियोंके हथियारोंसे अड़ने पर चोट न खानेवाली और सोनेकी फुलियोंसे शोभायमान यह काले लोहेकी आकाशकेसे रङ्गवाली तलवार किसकी है ? ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस तलवारका स्पर्श विषैले सर्पकेसा है और यह वैरीकी कायाको काटनेवाली है, बड़ी मारको सहनेवाली, वैरियोंको भयदायक और दिव्य है ॥ १७ ॥ हे बृहन्नले ! मैंने जो प्रश्न किये इनके तू ठीक २ उत्तर दे, इन सब उत्तम वस्तुओंको देखकर मुझे बड़ा अचरज होताहै ॥ १८ ॥ बयालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥ छ ॥ छ ॥

बृहन्नलोवाच ॥-यन्मां पूर्वमिहापृच्छः शत्रुसेनापहारिणम्। गाण्डीवमेतत् पार्थस्य लोकेषु विदितं धनुः ॥ १ ॥ सर्वायुधमहामात्रं शातकुम्भपरिष्कृतम् : एतत्तदर्जुनस्यासीत् गाण्डीवं परमायुधम् ॥ २ ॥ यत्तच्छतसहस्रेण सम्मितं राष्ट्रवर्धनम्। येन देवान् मनुष्यांश्च पार्थो विजयते मृधे ॥ ३ ॥ चित्रमुच्चावचैर्वर्णैः श्लक्ष्णमायतमव्रणम्। देवदानवगन्धर्वैः पूजितं शाश्वतीः समाः॥ ४ ॥ एतद्वर्षसहस्रन्तु ब्रह्मा पूर्वमधारयत्। ततोऽनन्तरमेवाथ प्रजापतिरधारयत्॥ ५॥ त्रीणि पञ्च शतं चैव शक्रोऽशीति च पञ्च च। सोमः पञ्चशतं राजा तथैव वरुणः शतम्। पार्थः पञ्च च षष्टिं च वर्षाणि श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥ महावीर्यं महादिव्यमेतत्तद्धनुरुत्तमम् । एतत् पार्थमनुप्राप्तं वरुणाच्चारुदर्शनम् ॥ ७ ॥ पूजितं सुरमर्त्येषु बिभर्त्ति परमं वपुः। सुपार्श्वं भीमसेनस्य जातरूपग्रहं धनुः। येन पार्थोऽजयत् कृत्स्नां दिशं प्राचीं परन्तपः ॥ ८ ॥ इन्द्रगोपकचित्रञ्च यदेतच्चारुदर्शनम्। राज्ञो युधिष्ठिरस्यैतद्वैराटे धनुरुत्तमम ॥ ९ ॥ सूर्या यस्मिंस्तु सौवर्णाः प्रकाशन्ते

बृहन्नलाने कहा, कि—हे उत्तर! तूने जो पहिलले मुझसे धनुषों के विषयमें बूझा है, सो इस धनुषका नाम गाण्डीव है और वैरियों की सेनाका नाश करनेवाला यह धनुष अर्जुनका है और यह जगत् में प्रसिद्ध है॥ १॥ सब शस्त्रोंमें उत्तम सोनेसे मढ़ा एक लाख धनुषों की समान बलसे भरा और देशकी उन्नति करनेवाला यह धनुष अर्जुनका है और इस धनुषसे धनञ्जय संग्राममें देवता और मनुष्य को जीतता था ॥ २ ॥ ३ ॥ घटिया बढ़िया रङ्गोंसे चित्रविचित्र दीखनेवाला कोमल, विशाल और छिद्ररहित इस धनुषका देवता, दानव और गन्धर्वोंने बहुत वर्षोंतक पूजन किया था ॥४॥ पहिले ब्रह्माजीने एक हजार वर्षतक इस धनुषको धारण किया था ॥ ५ ॥ फिर प्रजापतिने पाँच सौ तीन वर्षतक तिसके पीछे इन्द्रने पिचासी वर्ष तक चन्द्रमाने पाँच सौ वर्षतक और राजा वरुणने सौ वर्षतक धारण किया था और उसके पीछे महापराक्रमी, परमदिव्य इस उत्तम धनुषको श्वेतवाहन पार्थने वरुणसे पाया था और उसने पैंसठ वर्षाकाल अर्थात् साढे बत्तीस वर्षतक धारणकिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ बड़ा स्वरूपवान् देवता और मनुष्योंमें आदर पायाहुआ, सुन्दर पीठवाला चाँदी से मढे मध्यभागवाला यह जो (दूसरा) धनुष है सो भीमसेनका है इसीसे भीमसेनने सब पूर्वदिशाको जीता था ॥ ८ ॥ हे विराटकुमार जिस धनुष पर इन्द्रगोपके चिन्ह हैं वह दर्शनीय उत्तम धनुष राजा युधिष्ठिरका है ॥ ९ ॥ जिस धनुष पर सोनेके सूर्य अपने तेजकी चम-

प्रकाशिनः । तेजसा प्रज्वलन्तो वै नकुलस्यैतदायुधम् ॥ १० ॥ शलभा यत्र सौवर्णास्तपनीयविचित्रिताः । एतन्माद्रीसुतस्यापि सहदेवस्य कार्मुकम् ॥ ११ ॥ ये त्विमे क्षुरसंकाशाः सहस्रा लोमवाहिनः एतेऽर्जुनस्य वैराटे शराः सर्पविषोपमाः ॥ १२ ॥ एते ज्वलन्त संग्रामे तेजसा शीघ्रगामिनः । भवन्ति वीरस्यात्यर्था व्यूहतः समरे रिपून् ॥१३॥ ये चेमे पृथवो दीर्घाश्चन्द्रबिम्बार्धदर्शनाः । एते भीमस्य निशिता रिपुक्षयकराः शराः ॥ १४ ॥ हारिद्रवर्णा ये त्वेते हेमपुंखाः शिलाशिताः नकुलस्य कलापोऽयं पंचशार्दूललक्षणः॥१५॥येनासौ व्यजयत् कृत्स्नां प्रतीचीं दिशमाहवे । कलापो ह्येष तस्यासीन् माद्रीपुत्रस्य धीमतः१६ ये त्विमे भास्कराकाराः सर्वपारसवाः शराः । एते चित्रक्रियोपेताः सहदेवस्य धीमतः१७ये त्विमे निशिताः पीताः पृथवो दीर्घवाससः । हेमपुंखास्त्रिपर्वाणो राज्ञ एते महाशराः॥१८॥ यस्त्वयं सायको दीर्घः शिलीपृष्ठः शिलीमुखः । अर्जुनस्यैव संग्रामे गुरुभारसहो दृढः ॥ १९ ॥ वयाघ्रकोशः सुमहान् भीमसेनस्य सायकः । गुरुभारसहो दिव्यः

चमाहटसे दमक रहे हैं, यह धनुष नकुलका है ॥ १० ॥ जिसके ऊपर सोनेके और मीनाकारीके रङ्गके चमकतेहुए विचित्र पतंगोंसे चित्र रहे हैं, यह धनुष माद्रीतनय सहदेवका है ॥ ११ ॥ हे उत्तर! तेज कियेहुए छुरोंकी समान तीखी धार और सुन्दर परोंवाले तथा सर्पके विषकी समान महाजहरीले ये जो हजारों वाण पडे हैं सो अर्जुनके हैं॥१२॥ रणभूमिमें तेजसे झलझलाते और कभी कम न होनेवाले ये बाण संग्रामभूमिमें वैरियोंके नाश कर्त्ता वीर अर्जुनके हैं ॥ १३ ॥ ये मोटे दण्डेवाले आधे चन्द्रमाके आकारके, तेज कियेहुए वैरियोंके नाशकर्त्ता, हलदीकी समान पीले, सुनहरी परोंवाले सान पर लगाकर तेजकिये हुए भीमसेनके हैं, यह पाँच सिंहोंके चित्रोंवाला म्यान बुद्धिमान् माद्रीतनय नकुलका है और नकुलने रणमें इन शस्त्रोंसे पश्चिम,दिशाको जीता था॥१४ १६॥और ये सूर्यकेसे चमकदार वैरियोंके नाशक बाण बुद्धिमान् सहदेवके हैं, ये बाण बड़ा अद्भुत काम करते हैं ॥ १७ ॥ ये तेज कियेहुए, पानीदार मोटे लम्बे, सोनेकी पूंछ और तीन गाँठोंवाले बड़े २ बाण महाराज धर्मराजके हैं ॥१८॥ और जिसकी पीठ तथा मुख पर मैंढकका चित्र है तथा जो लम्बी और संग्राममें बड़े २ शस्त्रोंके सामने टक्कर झेलनेवाली और दृढ़ है, ऐसी यह तलवार अर्जुनकी है ॥ १९ ॥ बड़ी भयानक, संग्राममें शस्त्रोंके सामने बड़ी टक्कर झेलनेवाली दिव्य और बड़ी लम्बी जो तलवार बाघके

शात्रवाणां भयंकरः ॥ २० ॥ सुफलश्चित्रकोशश्च हेमत्सरुरनुत्तमः निस्त्रिंशः कौरवस्यैव धर्मराजस्य धीमतः ॥ २१ ॥ यस्तु पांचनखे कोशे निहितश्चित्रयोधने । नकुलस्यैव निस्त्रिंशो गुरुभारसहो दृढः ॥ २२ ॥ यस्त्वयं विपुलः खड्गो गव्ये कोशे समर्पितः । सहदेवस्य विद्ध्येतं सर्वभारसहं दृढम् ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोग्रहणपर्वणि उत्तरगोग्रहे आयुधवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

उत्तर उवाच । सुवर्णविकृतानीमान्यायुधानि महात्मनाम् । रुचिराणि प्रकाशन्ते पार्थानामाशुकारिणाम् ॥ १ ॥ क्व नु स्विदर्जुनः पार्थः कौरव्यो वा युधिष्ठिरः । नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ २ ॥ सर्व एव महात्मानः सर्वामित्रविनाशनाः राज्यमक्षैः पराकीर्य न श्रूयन्ते कथञ्चन ॥ ३ ॥ द्रौपदी क च पांचाली स्त्रीरत्नमिति विश्रुता । जितानक्षैस्तदा कृष्णा तानेवान्वगमद्वनम् ॥ ४ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अहमस्म्यर्जुनः पार्थः सभास्तारो युधिष्ठिरः । वल्लवो भीमसेनस्तु पितुस्ते रसपाचकः ॥ ५ ॥ अश्वबन्धोऽथ नकुलः सहदेवस्तु गोकुले । सैरन्ध्रीं द्रौपदीं विद्धि यत्

स्यानमें धरी है यह भीमसेनकी है ॥ २० ॥ ऐसी ही अच्छे फलवाली विचित्रस्यानमें वन्द, सोनेकी मूंठवाली यह सबसे उत्तम तलवार बुद्धिमान् धर्मराजकी है ॥ २१ ॥ तथा शस्त्रोंकी वड़ीभारी मारके सामने टक्कर झेलनेवाली और अनेकों प्रकारके रणमें काम देनेवाली यह जो मजबूत तलवार बकरेके चमड़ेके स्यानमें बन्द है वो नकुलकी है ॥ २२ ॥ और सब ही शस्त्रोंकी मारके सामने टक्कर लेनेवाली, मजबूत और लम्बी यह तलवार जो वैलके चमड़ेके स्यानमें वन्द है, इस को सहदेवकी जानो ॥ २३ ॥ तितालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

उत्तर बोला, कि—हे बृहन्नले ! शीघ्र पराक्रम करनेवाले जिन महात्मा पाण्डवोंके सुनहरी और सुन्दर ये शस्त्र चमचमा रहे है, वे वैरियोंका नाशकरनेवाले कुन्तीनन्दन अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा भीमसेन जुएमें राज्यको हारकर वनमें चले गए थे, वे आजकल कहाँ है, यह बात कुछ सुनने में ही नहीं आती ॥ १—३ ॥ और राजा द्रुपदकी बेटी पाञ्चाली, जो कि—स्त्रियोंमें एक रत्नरूप प्रसिद्ध है; वह भी जुएमें हारे हुए पाण्डवों के साथ ही वनमें गई है वह भी (नजाने) कहाँ है ॥ ४ ॥ अर्जुनने कहा, कि-मैं ही कुन्तीका पुत्र अर्जुन हूँ, जो तेरे पिताके सभासद् हैं वही युधिष्ठिर हैं, तेरे पिता का भोजन पकानेवाला वल्लव भीमसेन है ॥ ५ ॥ घोड़ोंका शिक्षक

कृते कीचकाः हताः ॥ ६ ॥ उत्तर उवाच॥ दश पार्थस्य नामानि यानि पूर्वं श्रुतानि मे । प्रब्रूयास्तानि यदि मे श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥ ७ ॥ अर्जुन उवाच ॥ हन्त तेऽहं समाचक्षे दश नामानि यानि मे । वैराटे शृणु तानि त्वं यानि पूर्वं श्रुतानि ते ॥ ८ ॥ एकाग्रमनसो भूत्वा शृणु सव समाहितः । अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः किरीटी श्वेतवाहनः । बीभत्सुर्विजयः कृष्णः सव्यसाची धनंजयः ॥ ९ ॥ उत्तर उवाच ॥ केनासि विजयो नाम केनासि श्वेतवाहनः । किरीटी नाम केनासि सव्यसाची कथं भवान् ॥ १० ॥ अर्जुनः फाल्गुनः जिष्णुः कृष्णो बीभत्सुरेव च । धनञ्जयश्च केनासि ब्रूहि तन्मम तत्त्वतः ॥ ११ ॥ श्रुता मे तस्य वीरस्य केवला नामहेतवः । तत्सर्वं यदि मे ब्रूयाः श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥१२॥ अर्जुन उवाच ॥ सर्वान् जनपदान् जित्वा वित्तमादाय केवलम् । मध्ये धनस्य तिष्ठामि तेनाहुर्मां धनञ्जयम् १३ अभिप्रयामि संग्रामे यदहं युद्धदुर्मदान् । नाजित्वा विनिवर्त्तामि तेन मां विजयं विदुः ॥१४॥ श्वेताः कांचनसन्नाहा रथे युज्यन्ति मे हयाः।

नकुल है, जो गौओंके समूहमें रक्षक बनाहुआ है वह सहदेव है और जिस सैरंध्रीके लिये कीचक मारेगए हैं उसको द्रौपदी जान ॥ ६ ॥ उत्तर बोला, कि—मैंने पहिले अर्जुनके जो दश नाम सुने हैं, उन दश नामोंको यदि तू मेरे सामने कहदेय तो मैं तेरी सब बातोंका विश्वास करलूं ॥ ७ ॥ अर्जुनने कहा, कि—हे उत्तर ! मेरे जो दश नाम तूने पहिले सुने हैं, उन नामोंको मैं तुझसे कहता हूँ, सुन ॥ ८ ॥ मैं जो कहता हूँ, उस सबको तू एकाग्र मन करकै सावधान होकर सुनता जा, मेरे नाम अर्जुन, फाल्गुन, जिष्णु किरीटी, श्वेतवाहन, बीभत्सु, विजय, कृष्ण सव्यसाची और धनंजय ये दश हैं ॥९ ॥ उत्तरने कहा, तुम विजय नामवाले किस कारणसे हो ? किन गुणोंसे श्वेत वाहन नामवाले हो, किन गुणोंसे किरीटी नामवाले हो और सव्यसाची कैसे हो ? ॥ १० ॥ तथा अर्जुन फाल्गुन, जिष्णु, कृष्ण, बीभत्सु तथा धनंजय नाम भी किस कारणसे पड़ा है मुझै ठीक २ बताओ ॥ ११ ॥ मैंने वीर अर्जुनके केवल नाम ही सुने हैं, परन्तु ये नाम पड़ने के कारण मेरे सुननेमें नहीं आये हैं, इसलिये यदि तुम मुझसे उन सब नामोंके कारण कहो तो मुझै तुम्हारे कहने पर विश्वास आवै ॥ १२ ॥ अर्जुनने कहा, कि-मैं सब देशोंको जीत केवल धन लाकर उसके बीचमें खड़ा रहता हूँ, इसकारण लोग मुझै धनञ्जय कहते हैं।१३। और संग्राममें जाकर युद्धमें महामदमत्त वैरियोंको हराये बिना पीछे कोनहीं लौटता हूँ, इसलिये लोग मुझै विजय कहते हैं॥१४॥मैं जिस

संग्रामे युध्यमानस्य तेनाहं श्वेतवाहनः ॥१५॥ उत्तराभ्यां फल्गुनीभ्यां नक्षत्राभ्यामहं दिवा । जातो हिमवतः पृष्ठे तेन मां फाल्गुनं विदुः १६ पुरा शक्रेण मे दत्तं युध्यतो दानवर्षभैः । किरीटं मूर्ध्नि सूर्याभं तेनाहुर्मां किरीटिनम् ॥ १७ ॥ न कुर्यां कर्म बीभत्सुं युध्यमानः कथञ्चन । तेन देवमनुष्येषु बीभत्सुरिति विश्रुतः॥१८॥उभौ मे दक्षिणौ पाणी गाण्डीवस्य विकर्षणे । तेन देवमनुष्येषु सव्यसाचीति मां विदुः ॥१९॥ पृथिव्यां चतुरन्तायां वर्णो मे दुर्लभः समः । करोमि कर्म शुक्लञ्च तस्मान्मामर्जुनं विदुः ॥२०॥ अहं दुरापो दुर्धर्षो दमनः पाकशासनिः । तेन देवमनुष्येषु जिष्णुर्नाम्नास्मि विश्रुतः ॥२१ ॥ कृष्ण इत्येव दशमं नाम चक्रे पिता मम । कृष्णावदातस्य सतः प्रियत्वाद् बालकस्य वै ॥ २२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः स पार्थं वैराटिरभ्यवादयद-

समय संग्राममें लडनेको जाता हूँ उस समय सोनेके बखतरवाले सफेद घोडे मेरे रथमें जुडते हैं, इसलिये लोग मुझे श्वेतवाहन कहते हैं ॥१५॥ मैं उत्तराफालगुनी नक्षत्रमें दिनके समय हिमालय पर्वत पर उत्पन्न हुआ हूँ, इसलिये लोग मुझे फाल्गुन कहते हैं ॥ १६ ॥ पहिले मैं बडे २ दैत्योंके सामने लडनेको गया था उस समय इन्द्रने मेरे मस्तक पर सूर्यकी समान चमकता हुआ मुकुट पहराया था, इसकारण मुझे किरीटी कहते हैं ॥ १७ ॥ युद्ध करते समय मैं कभी भी बीभत्सु (भयानक) काम नहीं करता हूँ, इस कारण देवता और मनुष्योंमें बीभत्सु (१) नामसे प्रसिद्ध हुआ हूँ ॥ १८ ॥ गाण्डीवको खेंचनेमें मेरे दोनो हाथ कुशल हैं, इसकारण देवता और मनुष्योंमें मुझे सव्य साची कहते हैं ॥ १९ ॥ चारों समुद्र पर्यन्तकी पृथ्वीपर मुझसा गौर वर्ण मिलना कठिन है और मैं निर्मल (श्वेत) कर्म करता हूँ, इस कारण मेरा अर्जुन नाम पड़ा है ॥ २० ॥ मैं दुर्लभ. दुराधर्ष सब वैरियोंको दबानेवाला और इन्द्रका पुत्र हूँ, इसकारण देवता और मनुष्यों में मैं जिष्णु नामसे प्रसिद्ध हूँ ॥ २१ ॥ और दशवां कृष्ण नाम मेरा पिताने रक्खा है मैं कृष्ण कहिये चित्तको खचनेवाले उज्वल वर्णका और बालक होनेसे पिताको बड़ा प्यारा था, इसकारण उन्होने लाडमें मेरा कृष्ण नाम धरलिया था ॥ २२ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! अर्जुनके नामोंके कारण उसके मुखसे ही सुनकर उत्तर कुमार अर्जुनके समीपमें गया और प्रणाम करके कहनेलगा, कि–म भूमिञ्जय नामवाला राजा विराटका पुत्र हूँ और मेरा नाम उत्तरभीहै

(१) बीभत्सु शब्द सुख और कल्याण अर्थवाची भदि धातु से सन् प्रत्यय होकर बना है और इसका अर्थ है सुख तथा कल्याण चाहने वाला।

न्तिकात् । अहं भूमिञ्जयो नाम नाम्नाहमपि चोत्तरः ॥ २३ ॥ दिष्ट्या त्वां पार्थ पश्यामि स्वागतं ते धनञ्जय । लोहिताक्ष महाबाहो नागराजकरोपम ॥ २४ ॥ यदज्ञानादवोचं त्वां क्षन्तुमर्हसि तन्मम । यतस्त्वया कृतं पूर्वं चित्रं कर्म सुदुष्करम् । अतो भयं व्यतीतं मे प्रीतिश्च परमा त्वयि ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे अर्जुनपरिचये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

उत्तर उवाच ॥ आस्थाय रुचिरं वीर रथं सारथिना मया । कतमं यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया ॥१॥ अर्जुन उवाच । प्रीतोऽस्मि पुरुषव्याघ्र न भयं विद्यते तव । सर्वान्नुदामि ते शत्रून् रणे रणविशारद ॥ २ ॥ स्वस्थो भव महाबाहो पश्य मां शत्रुभिः सह । युध्यमानं विमर्देऽस्मिन् कुर्वाणं भैरवं महत् ॥ ३ ॥ एतान् सर्वानुपासंगान् क्षिप्रं बध्नीहि मे रथे । एकञ्चाहर निस्त्रिंशं जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा त्वरावानुत्तरस्तदा । अर्जुनस्यायुधान् गृह्य शीघ्रेणावातरत्ततः ॥ ५ ॥ अर्जुन उवाच । अहं

॥ २३ ॥ हे पार्थ ! मैं आपका दर्शन कर रहाहूँ, यह मेरा अहोभाग्य है, हे धनंजय हे लोहितनेत्र ! हे महाबाहो ! हे हस्तिराजकी सूँडकी समान गोलाकार अर्जुन ! तुम हमारे यहां आये यह बड़ा ही अच्छा हुआ ॥ २४ ॥ मैं पहिले आपको पहिचानता नहीं था, इस कारण अनजानपनेमें मैंने आपसे यदि कुछ कहदिया हो तो वह आपको क्षमा करदेना चाहिये, तुमने पहिले भी अचरजमें डालनेवाले बड़े २ कठिन काम किये हैं इसकारण मेरे मनमें जोकुछ भय था वह अब दूर होगया और तुम्हारे ऊपर मेरी बड़ी भारी प्रीति है ॥ २५ ॥ चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ * ॥ * ॥ *

उत्तर फिर कहनेलगा, कि—आप इस सुन्दर रथमें विराजकर कहिये कौनसी सेनामें जायँगे, मुझ सारथीको आज्ञा दीजिये तो मैं आपको उस ही सेनामें लेचलूँ ॥१॥ अर्जुनने कहा, कि-हे पुरुषव्याघ्र ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, अब तुझ कुछ भय नहीं है, हे रणचतुर ! मैं रणमेंसे तेरे सब वैरियोंको भगादूँगा॥२॥ हे महाबाहो! तू शांत हो और मैं शत्रुओं के साथ लड़ते समय जो महाभयंकर काम करूँ उसको तू देख ॥ ३ ॥ अब तो तू इन सब बाण भरनेके भार्थोंको शीघ्र ही मेरे रथसे बाँधदे और सोनेसे मँढीहुई अकेली तलवारको ही ले आ ॥ ४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—उत्तर, अर्जुनके सब शस्त्रोंको लेकर शमीके पेड़परसे नीचे उतरा ॥ ५ ॥ तब अर्जुन बोला कि-मैं तेरे लिये कौरवोंके साथ

वै कुरुभिर्योत्स्याम्यवजेष्यामि ते पशून् ॥ ६ ॥ संकल्पपत्तविक्षेपं बाहुप्राकारतोरणम् । त्रिदण्डतूणसम्बाधमनेकध्वजसंकुलम् ॥ ७ ॥ ज्याक्षेपणं क्रोधकृतं नेमीनिनददुन्दुभिः । नगरं ते मया गुप्तं रथोपस्थं भविष्यति ॥८॥ अधिष्ठितो मया संख्ये रथो गाण्डीवधन्वना । अजेयः शत्रुसैन्यानां वैराटे व्येतु ते भयम् ॥ ९ ॥ उत्तर उवाच । बिभेमि नाहमेतेषां जानामि त्वां स्थिरं युधि । केशवेनापि संग्रामे साक्षादिन्द्रेण वा समम् । इदन्तु चिन्तयन्नेवं परिमुह्यामि केवलम् ॥ निश्चयञ्चापि दुर्मेधा न गच्छामि कथञ्चन ॥ ११ ॥ एवं युक्तांगरूपस्य लक्षणैः सूचितस्य च । केन कर्मविपाकेन क्लीवत्वमिदमागतम् ॥ १२ ॥ मन्ये त्वां क्लीबवेषेण चरन्तं शूलपाणिनम् । गन्धर्वराजप्रतिमं देवं वापि शतक्रतुम् ॥ १३ ॥ अर्जुन उवाच । भ्रातुर्न्नियोगात्ज्येष्ठस्य

संग्राम करूँगा और तेरी गौओंको कौरवोंसे जीतकर लाऊँगा ॥ ६ ॥ मैं अपने बाहुबलसे तेरे रथके आसपासके भागोंकी रक्षा करूँगा, तिससे वह तुझे एक नगरसा (रक्षा करनेवाला) होजायगा, इस रथमें धुरी पहिये आदि जो अङ्ग हैं, उनको नगरमें रहनेके घररूप जान, मेरी दोनों भुजाओंको किलेका द्वारसमान जान, क्रोधसे खेंची हुई धनुषकी डोरीको पानी जानेका पतनाला रूप जान, रथके पहियों के शब्दको नगाड़ोंका शब्द जान, त्रिदण्ड अर्थात् घोडेसवार हाथी सवार और रथी इन तीनप्रकार की सेनाओंके भाथे आदि शस्त्रोंके समूहसे जैसे नगर भरपूर होताहै तैसे ही इस रथके आस पासके भाग भी तीन डंडे और भाथोंसे भरेहुए हैं, नगरमें जैसे बहुतसी ध्वजा पताका होती हैं तैसे ही इस रथके ऊपर भी ध्वजा पताका फहरा रही हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ मैं गाण्डीव धनुषको धारण करकै संग्रामके समय तेरे रथ पर बैठूँगा' कि—जिससे शत्रुओंकी सेना तुझै नहीं जीतसकैगी तेरी ही विजय होगी । हे उत्तर ! अब तेरा भय दूर हो ॥ ९ ॥ उत्तरने कहा, कि—अब मैं इनसे डरता नहीं हूँ, क्योंकि—मैं जानता हूँ, कि—तुम संग्राममें श्रीकृष्णके साथ और साक्षात् इन्द्रके साथ भी लडसकते हो ॥ १० ॥ परन्तु केवल एक ही बात का विचार करने में मुझै घबराहट होती है और मैं तुच्छबुद्धि होनेसे किसी प्रकार उसका निश्चय भी नहीं करसकता हूँ॥११॥तुम्हारा ऐसा योग्य रूपवान् शरीर है शरीर पर शूर वीरपनेके लक्षण भी दीखते हैं, तो भी किस कर्मके फलसे तुम्हें यह नपुंसकपना मिला है?॥१२॥मैं तुमकोनपुंसकके वेशमें फिरनेवाले त्रिशूलधारी शिव वा गन्धर्वराज अथवा इन्द्रदेव मानता हूँ ॥ १३ ॥ अर्जुनने कहा कि—मैंने अपने बड़े भाईकी आज्ञासे

सम्वत्सरमिदं व्रतम् । चरामि व्रतचर्यञ्च सत्यमेतद् ब्रवीमि ते १४ नास्मि क्लीवो महाबाहो परवान् धर्मसंयुतः । समाप्तव्रतमुत्तीर्णं विद्धि मां त्वं नृपात्मज ॥ १५ ॥ उत्तर उवाच । परमोऽनुग्रहो मेऽद्य यत्तस्तर्को न मे वृथा । नहीदृशाः क्लीवरूपा भवन्ति तु नरोत्तम॥१६॥ सहायवानस्मि रणे युध्येयममरैरपि ।साध्वसं हि प्रनष्टं मे किं करोमि ब्रवीहि मे ॥ १७ ॥ अहन्ते संग्रहीष्यामि हयान् शत्रुरथारुजान् । शिक्षितो ह्यस्मि सारथ्ये तीर्थतः पुरुषर्षभ ॥ १८ ॥ दारुको वासुदेवस्य यथा शक्रस्य मातलिः । तथा मां विद्धि सारथ्ये शिक्षितं नरपुङ्गव १६ यस्य याते न पश्यन्ति भूमौ क्षिप्तं पदं पदम् । दक्षिणां यो धुरां युक्तः सुग्रीवसदृशो हयः ॥ २० ॥ योऽयं धुरं धुर्यवरो वामां वहति शोभनः । तं मन्ये मेघपुष्पस्य जवेन सदृशं हयम् ॥ २१ ॥ योऽयं काञ्चनसन्नाहः

सालभर हुआ तबसे इस व्रतको आरम्भ किया है और इस व्रतका मैं पालन कररहा हूँ, यह बात मैं तुझसे सत्य कहता हूँ ॥ १४ ॥ हे महाबाहो ! मैं नपुंसक नहीं हूँ, किन्तु दूसरेके अधीन और धर्मप्रेमी होनेसे ऐसे वेषमें रहता हूँ, परन्तु हे राजकुमार ! अब व्रत समाप्त हो गया और मुझे इस व्रतके पार हुआ जान ॥ १५ ॥ उत्तरने कहा, कि—हे नरोत्तम ! तुमने आज मुझसे सच्ची बात कहकर मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है, मेरे मनमें पहिले जो विचार उठा था, कि-ऐसे लक्षणों वाले पुरुष नपुंसक नहीं होसकते वह मेरा अनुमान झूठा नहीं था ॥ १६ ॥ अब रणमें सहायता पाया हुआ मैं देवताओंके साथ भी युद्ध करूँगा, मेरा भय दूर होगया, अब मुझे आज्ञा दीजिये कि-मैं क्या काम करूँ ? ॥ १७ ॥ हे महात्मा अर्जुन ! मैंने अपने पितासे सारथीपना सीखा है, इसकारण रणभूमिमें वैरियोंके रथका चूरा २ करडालनेवाले तुम्हारे घोड़ोंको मैं अच्छी तरह पकड़े रहूँगा ॥ १८ ॥ जैसे वासुदेवका दारुक और इन्द्रका मातलि है तैसे ही हे नरपुंगव ! तुम मुझे सारथीके काममें चतुर जानो ॥ १६ ॥ मेरे रथमें दाहिनी धुरीकी ओर जो घोडा अगले भागमें जुताहुआ है, वह सुग्रीव नामक घोड़ेकी समान वेगवाला है, चलतेमें यह भूमि पर किस समय पैर रखता है, यह बात लोगोंको दीखती ही नहीं ॥ २० ॥ और जो यह श्रेष्ठ घोडा मेरे रथके बाईं ओरके जोत में जुताहुआ है इस घोड़ेको मैं मेघपुष्प घोड़ेकी समान शीघ्र चलनेवाला मानता हूँ ॥ २१ ॥ और यह सुवर्णके बखतरवाला सुन्दर घोडा मेरे रथके बाईं ओरके पिछले जोतमें जुताहुआ है, इसको मैं वेगमें शैब्य घोडेकी समान बलवान्

पार्ष्णिं वहति शोभनः। समं शैब्यस्य तं मन्ये जवेन बलवत्तरम् ॥२२॥ योयं वहति मे पार्ष्णिं दक्षिणामभितः स्थितः। बलाहकादपि मतः स जवे वीर्यवत्तरः॥२३॥ त्वामेवायं रथो वोढुं संग्रामेऽर्हति धन्विनम्। त्वञ्चेमं रथमास्थाय योद्धुमर्हो मतो मम ॥२४॥ वैशम्पायन उवाच। ततो विमुच्य बाहुभ्यां वलयानि स वीर्यवान्। चित्रे काञ्चनसन्नाहे प्रत्यमुञ्चत्तदा तले ॥ २५ ॥ कृष्णान् भंगिमतः केशान् श्वेतेनोद्ग्रथ्य वाससा। अथासौ प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिः प्रयतमानसः। अभिदध्यौ महाबाहुः सर्वास्त्राणि रथोत्तमे ॥ २६ ॥ ऊचुश्च पार्थं सर्वाणि प्राञ्जलीनि नृपात्मजम्। इमे स्म परमोदाराः किंकराः पाण्डुनन्दन ॥ २७ ॥ प्रणिपत्य ततः पार्थः समालभ्य च पाणिना। सर्वाणि मानसानीह भवतेत्यभ्यभाषत ॥ २८ ॥ प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनोऽभवत्। अधिज्यन्तरसा कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद्धनुः ॥ २९ ॥ तस्य विक्षिप्यमाणस्य धनुषोऽभून्महाध्वनिः। यथा शैलस्य महता शैलेनैवावजघ्नतः ॥ ३० ॥ स निर्घातोभवद्भूमिर्दिक्षु वायुर्ववौ भृशम्। पपात

मानता हूँ ॥२२॥ और यह जो घोड़ा मेरे रथके दाहिनी ओरके जोतमें पीछेको जुताहुआ है इसको मैंने वेगमें बलाहक घोडेसे भी अधिक वेगवाला मान रक्खा है ॥ २३ ॥ इस कारण यह रथ संग्राममें आपसे धनुषधारीको ही सवारी देनेके योग्य है और मेरी समझमें तुम भी इस रथमें वैठकर युद्ध करनेके योग्य ही हो ॥२४॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–इसके पीछे वीर अर्जुनने दोनो भुजाओंमेंसे कडे निकालकर सुवर्णसे चित्रेहुए कवचमें डालदिये और उनके स्थानमें धनुषकी डोरीका घाव न होजाय इसलिये चमडेकी पट्टियें बाँधलीं ॥ २५ ॥ माथे परके काले घुंघराले बालोंको स्वेत वस्त्रसे ऊपरको बाँधकर महाबाहु अर्जुन स्नान करकै शुद्ध हुआ तथा उत्तर कुमारके रथमें पूर्वको मुख करकै बैठा और मनको नियममें रखकर जो अस्त्र अपने को वरदानमें मिले थे उन सबोंका स्मरण करनेलगा ॥ २६ ॥ तब सब अस्त्र दोनों हाथ जोडकर अर्जुनसे कहने लगे, कि-हे पांडुनन्दन ये हम परमउदार आपके किंकर आ पहुँचे हैं ॥ २७ ॥ अर्जुनने उन सब अस्त्रोंको प्रणाम करकै हाथसे छुआ और उनसे कहनेलगा, कि-तुम सब मेरे मनमें निवास करो (तत्काल सब अस्त्रोंने अर्जुनके मनमें निवास किया)॥२८॥ इसप्रकार सब अस्त्रोंको ग्रहण करकै अर्जुन के मुखपर आनन्द छागया और उसने जोरसे गाण्डीव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उसका टङ्कार किया ॥२९॥ अर्जुनने ज्योंही गांडीव धनुषको खैंचा, कि–उसमेंसे ऐसा बड़ाभारी शब्द हुआ, कि–मानो कोई बड़ाभारी पहाड़ दूसरे पहाड़के साथ टकरागया ॥ ३० ॥ उस

महती चोल्का दिशो न प्रचकाशिरे । भ्रान्तध्वजं खन्तदासीत् प्रकम्पितमहाद्रुमम् ॥ ३१ ॥ तं शब्दं कुरवोऽजानन् विस्फोटमशनेरिव । यदर्जुनो धनुःश्रेष्ठं बाहुभ्यामाक्षिपद्रथे ॥ ३२ ॥ उत्तर उवाच । एकस्त्वं पाण्डवश्रेष्ठ बहूनेतान्महारथान् । कथं जेष्यसि संग्रामे सर्वशस्त्रास्त्रपारगान् ॥३३॥ असहायोसि कौन्तेय ससहायाश्च कौरवाः । अतएव महाबाहो भीतस्तिष्ठामि तेऽग्रतः ॥ ३४ ॥ उवाच पार्थो मा भैषीः प्रहस्य स्वनवत्तदा ॥ ३५ ॥ युध्यमानस्य मे वीर गन्धर्वैः सुमहाबलैः । सहायो घोषयात्रायां कस्तदासीत् सखा मम ॥ ३६ ॥ तथा प्रतिभये तस्मिन् देवदानवसंकुले । खाण्डवे युध्यमानस्य कस्तदासीत् सखा मम ॥ ३७ ॥ निवातकवचैः सार्द्धं पौलोमैश्च महाबलैः । युध्यतो देवराजार्थं कः सहायस्तदाभवत् ॥ ३८ ॥ स्वयम्वरे तु पाञ्चाल्या राजभिः सह संयुगे । युध्यतो बाहुभिस्तात कः सहायस्तदाभवत् ॥ ३९ ॥ उपजीव्य गुरुन्द्रोणं शक्रं वैश्रवणं यमम् । वरुणं पाव-

---

धनुषके शब्दसे भूमि दहलनेसी लगी दिशाओंमें बडे जोरकी आँधी चलनेलगी, आकाशमेंसे बडे २ आगके ऊके गिरनेलगे, दिशाओंमें जरा उजाला नहीं रहा (घोर अंधेरा होगया) आकाशमें ध्वजाएं फड़२ उड़नेलगीं, बडे २ वृक्ष काँपउठे ॥३१॥ और भयानक वज्रपात का समान उस धनुषके शब्दको सुनकर कौरवोंने जाना, कि-अर्जुनने अपने रथमें बैठकर अपने श्रेष्ठ धनुष पर टङ्कार दी है ॥ ३२ ॥ उस समय उत्तर कहने लगा. कि-हे श्रेष्ठ पाण्डव ! तुम तो अकेले हो, इन सब अस्त्र शस्त्रोंके पारगामी बहुतसे महारथियोंको संग्राममें कैसे जीतसकोगे ? ॥ ३३ ॥ हे कुन्तीनन्दन ! तुम असहाय हो और कौरवों के बहुतसे सहायक हैं, इस कारण हे महाबाहो ! मैं आपके आगे भयभीत हुआ खड़ाहूँ ॥३४॥ उस समय अर्जुनने खिलखिलाके हँसकर कहा, कि-हे उत्तर ! तू डरै मत ॥ ३५ ॥ हे वीर ! मैं जिस समय घोषयात्रा में महाबली गन्धर्वोंके साथ लडा था, उस समय सहायक रूपसे मेरा कौनसा मित्र था ? ॥ ३६ ॥ और जब महाभयानक देव दानवोंसे भरे खाण्डववनमें मैंने युद्ध किया था उस समय मेरा कौन मित्र था ॥ ३७ ॥ मैंने इन्द्रके लिये निवातकवच और महाबली पौलोमोंके साथ संग्राम किया था उस समय भी मेरा सहायक कौन हुआ था ? ॥ ३८ ॥ हे तात ! द्रौपदीके स्वयम्वरमें अनेकों राजाओंके साथ मैं रणभूमिमें जूझ रहा था, उस समय भी मेरा सहायक कौन हुआ था ? ॥ ३९ ॥ मैंने गुरु द्रोणाचार्य, इन्द्र, कुवेर, यम, वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, लक्ष्मीपति कृष्ण और पिनाकधनुषधारी शंकरकी सेवा

कञ्चैव रूपं कृष्णं च माधवम् ॥ ४० ॥ पिनाकपाणिनं चैव कथमेतान्न योधये । रथं वाहय मे शीघ्रं व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ४१ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरार्जुन-
योर्वाक्यं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

वैशम्पायन उवाच । उत्तरं सारथिं कृत्वा शमीं कृत्वा प्रदक्षिणम् । आयुधं सर्वमादाय प्रययौ पाण्डवर्षभः ॥ १ ॥ ध्वजं सिंहं रथात्तस्मादपनीय महारथः । प्रणिधाय शमीमूले प्रायादुत्तरसारथिः ॥ २ ॥ दैवीं मायां रथे युक्तां विहितां विश्वकर्मणा । कांचनं सिंहलांगूलं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ३ ॥ मनसा चिन्तयामास प्रसादं पावकस्य च । स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ध्वजे भूतान्यदेशयत् ॥ ४ ॥ सपताकं विचित्राङ्गं सोपासंगं महाबलम् । खात्पपात रथे तूर्णं दिव्यरूपं मनोरमम् ॥५॥ रथं तमागतं दृष्ट्वा दक्षिणं प्राकरोत्तदा । रथमास्थाय बीभत्सुः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥ बद्धगोधांगुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः । ततः प्रायादुदीचीं च कपिप्रवरकेतनः ॥ ७ ॥ स्वनवन्तं महाशंखं बलवानरिमर्द्दनः । प्राधमद् बलमास्थाय द्विषतां लोमहर्षणम्

करी है, फिर मैं कौरवोंके साथ क्यों न लड़ूं तू मेरे रथको शीघ्र चला और अपने मनके भयको दूर कर ॥ ४० ॥ ४१ ॥ पैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥　*　॥　*　॥　*　॥　*　॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने उत्तरको सारथी बना, शमीके पेडकी प्रदक्षिणा कर और सब शस्त्रों को लेकर चलनेका विचार किया, चलते समय महारथी अर्जुनने सिंह के चिन्हवाली ध्वजाको उस रथ परसे उतार, शमीके पेड़की जड़में धरदिया और विश्वकर्माकी बनायी हुई दैवी मायामयी, सर्वसंहार कारिणी वानरके चिन्हवाली सोनेकी ध्वजाका और प्रसन्न होकर अग्निके दिये हुए रथका मनमें ध्यान किया, उस समय ही ध्वजा पताकाओं वाला और अनेकों प्रकारकी संग्रामकी सामिग्रियोंसे भरा, विचित्र प्रकारके अवयवोंसे मजबूत, बडे बलवाला, मनोहर और दिव्यस्वरूप एक रथ आकाशमेंसे नीचे उतर आया और उस समय अग्नि देवताने उसके स्मरण पर ध्यान देकर उसके रथकी ध्वजा पताकाओंमें सब भूतोंको उपस्थित रहनेकी आज्ञा दी, रथको आया हुआ देखकर श्वेतवाहन नामवाले अर्जुनने गोहके चमडेके मोजे हाथोंमें पहरलिये, धनुष हाथमें उठालिया और फिर दिव्य रथकी प्रदक्षिणा करके उसमें बैठगया तथा उत्तरको सारथी के स्थान पर बैठाकर जिसकी ध्वजामें वानरोंमें श्रेष्ठ हनूमान विराज मान हैं ऐसा अर्जुन उत्तर दिशाकी ओरको चलदिया ॥ १—७ ॥

॥ ८ ॥ ततस्ते जवना धूर्या जानुभ्यामगमन्महीम् । उत्तरश्चापि सन्त्रस्तो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ९ ॥ संस्थाप्य चाश्वान् कौन्तेयः समुद्यम्य च रश्मिभिः । उत्तरं च परिष्वज्य समाश्वासयदर्जुनः ॥ १० ॥ अर्जुन उवाच । मा भैस्त्वं राजपुत्राग्र्य क्षत्रियोसि परन्तप । कथं नु पुरुषव्याघ्र शत्रुमध्ये विषीदसि ॥ ११ ॥ श्रुतास्ते शंखशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः कुञ्जराणां च नदतां व्यूढानीकेषु तिष्ठताम् ॥ १२ ॥ स त्वं कथमिहानेन शंखशब्देन भीषितः । विषण्णरूपो वित्रस्तः पुरुषः प्राकृतो यथा ॥ १३ ॥ उत्तर उवाच ॥ श्रुता मे शंखशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः । कुंजराणां निनदतां व्यूढानीकेषु तिष्ठताम् ॥ १४ ॥ नैवंविधः शंखशब्दः पुरा जातु मया श्रुतः । ध्वजस्य चापि रूपं मे दृष्टपूर्वं नहो दृशम् ॥ १५ ॥ धनुषश्चैव निर्घोषः श्रुतपूर्वो न मे क्वचित् । अस्य शंखस्य शब्देन धनुषो निःस्वनेन च ॥ १६ ॥ अमानुषाणां शब्देन भूतानां ध्वजवासिनाम् । रथस्य च निनादेन मनो मु-

---

और शत्रुओंकी सेनाके समीप पहुँचते ही वैरिविनाशन बलवान् अर्जुनने घोर शब्द करने वाले बडेभारी शंखको खूब जोरसे बजाया उसको सुनकर वैरियोंके रोमाञ्च खडे होगए ॥ ८ ॥ वे अग्निदेवताके दियेहुए बड़े वेगवाले घोडे भी दौड़ते २ भूमिपर घुटने टेकगए उस समय रथकी अगली बैठक पर बैठाहुआ उत्तर भयभीत होकर रथ के भीतरको खिसक बैठा ॥ ९ ॥ उस समय अर्जुनने बागडोरोंको खेंचकर घोड़ोंको खडा किया और उत्तरको छातीसे लगा उसको बहुत ही धीरज देकर शान्त किया ॥ १० ॥ अर्जुनने कहा, कि—हे बड़े राजकुमार ! डरे मत हे परन्तप ! तू क्षत्रिय है, हे पुरुषसिंह ! तू वैरियोंके बीचमें आकर घबड़ायाजाता है ॥ ११ ॥ तूने शंखोंके और भेरियोंके तो बहुतसे शब्द सुने होंगे और व्यूहरचनावाली सेना में खड़े २ चिंघारतेहुए हाथियोंके भी बहुतसे शब्द सुने होंगे ॥ १२ ॥ तो भी तू इस शंखके शब्दको सुनकर क्यों डरगया ? अरे साधारण मनुष्यकी समान भयभीत होकर तेजोहीन क्यों होगया ? ॥ १३ ॥ उत्तरने कहा, कि—मैंने शंख तथा भेरीके बहुतसे शब्द सुने हैं तथा व्यूहरचनामें खड़े हाथियोंकी चिंघारें भी सुनी हैं ॥ १४ ॥ परंतु ऐसा शंखका शब्द पहिले मैंने कभी नहीं सुना तथा मैंने पहिले किसी ध्वजाका ऐसा रूप भी नहीं देखा ॥ १५ ॥ तथा धनुषकी टङ्कारका ऐसा शब्द भी मैंने पहिले कहीं नहीं सुना, इसकारण इस शङ्खके शब्दसे, धनुषकी टङ्कार से ध्वजामें रहनेवाले अलौकिक भूतोंके

हन्ति मे भृशम् ॥ १७ ॥ व्याकुलाश्च दिशः सर्वा हृदयं व्यथतीव मे । ध्वजेन पिहिताः सर्वा दिशो न प्रतिभान्ति मे ॥ १८ ॥ गाण्डीवस्य च शब्देन कर्णौ मे बधिरीकृतौ । स मुहूर्तं प्रयातं तु पार्थो वैराटिमब्रवीत् ॥ १९ ॥ अर्जुन उवाच ॥ एकान्ते रथमास्थाय पद्भ्यां त्वमवपीडयन् । दृढं च रश्मीन् संयच्छ शंखं ध्मास्याम्यहं पुनः ॥ २० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततः शंखमुपाध्मासीद्दारयन्निव पर्वतान् । गुहा गिरीणां च तदा दिशः शैलांस्तथैव च । उत्तरश्चापि संलीनो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ २१ ॥ तस्य शंखस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च । गाण्डीवस्य च शब्देन पृथिवी समकम्पत ॥ २२ ॥ तं समाश्वासयामास पुनरेव धनञ्जयः ॥ २३ ॥ द्रोण उवाच ॥ यथा रथस्य निर्घोषो यथा मेघ उदीर्यते । कम्पते च यथा भूमिर्नैषोऽन्यः सव्यसाचिनः २४ शस्त्राणि न प्रकाशन्ते न प्रहृष्यन्ति वाजिनः । अग्नयश्च न भासन्ते समिद्धास्तन्न शोभनम् ॥ २५ ॥ प्रत्यादित्यं च नः सर्वे मृगा घोरप्र-

---

शब्द और रथकी गड़गड़ाहटसे मेरा मन बहुत ही घबड़ा रहा है ॥ १६ ॥ १७ ॥ सब दिशायें व्याकुल होगई हैं, मेरी छाती दुखी सीजाती है और इस ध्वजाने सब दिशायें ढकगई हैं, इसकारण वे मुझे दीखती ही नहीं॥ १८ ॥ तथा इस गाण्डीव धनुषके टङ्कारशब्द से मेरे कान बहिरे होगए हैं,इसप्रकार दो घड़ीतक बातें करके विराट कुमार, रथको हाँककर मार्गको जानेलगा तब पार्थने उससे कहा १९ अर्जुन बोला, कि—हे राजकुमार ! तू रथकी बैठक पर अच्छे प्रकार निर्भय होकर बैठ और दोनों पैरोंसे रथकी बैठकको जकड़ ले तथा घोड़ोंकी बागडोरको दृढ़तासे पकड़े रह, अब मैं फिर शङ्खको बजाता हूं ॥ २० ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—ऐसा कहकर अर्जुन पहाड़, पहाड़ोंकी गुफायें, दिशायें तथा टीलोंको फाड़ताहुआसा शंखको बजानेलगा, उस समय उत्तर, फिर रथके भीतरको दुबक कर बैठ गया ॥ २१ ॥ उस शंखके शब्द, रथके पहियोंकी घरघराहट और गाण्डीव धनुषकी टङ्कारसे पृथ्वी काँपनेलगी ॥ २२॥ धनञ्जयने फिर भयभीत हुए उत्तरको धीरज देकर शान्त किया ॥ २३ ॥ उस समय कौरवसेनामें द्रोणाचार्य बोलउठे, कि—यह रथकी घरघराहट मेघके गर्जनेकीसी होरही है और भूमि काँपरही है, इसकारण यह योधा धनञ्जयके सिवाय और कोई नहीं है ॥ २४ ॥ हमारे शस्त्रोंकी चमक नष्टसी होगई, घोड़े उदास होगए और वेदियोंमें धधक२ जलनेवाले अग्नि भी प्रकाशहीन होगए, इसकारण कुछ अशुभ होनेवाला है ॥ २५ ॥ हमारे हाथी घोड़े आदि सब वाहन सूर्यकी ओरको

वादिनः । ध्वजेषु च निलीयन्ते वायसास्तन्न शोभनम् ॥ २६ ॥ शकुनाश्चापसव्या नो वेदयन्ति महद्भयम् ॥ २७ ॥ गोमायुरेष सेनायां रुदन्मध्येन धावति । अनाहतश्च निष्क्रान्तो महद्वेदयते भयम् ॥ २८ ॥ भवतां रोमकूपाणि प्रहृष्टान्युपलक्षये । ध्रुवं विनाशो युद्धेन क्षत्रियाणां प्रदृश्यते ॥ २९ ॥ ज्योतींषि न प्रकाशन्ते दारुणा मृगपक्षिणः । उत्पाता विविधा घोरा दृश्यन्ते क्षत्रनाशनाः ॥ ३० ॥ विशेषत इहास्माकं निमित्तानि विनाशने । उल्काभिश्च प्रदीप्ताभिर्बाध्यते पृतना तव । वाहना न्यप्रहृष्टानि रुदन्तीव विशाम्पते ॥ ३१ ॥ उपासते च सैन्यानि गृध्रास्तव समन्ततः । तप्स्यसे वाहिनीं दृष्ट्वा पार्थबाणप्रपीडिताम् । पराभूता च वः सेना न कश्चिद्योद्धुमिच्छति ॥ ३२ ॥ विवर्णमुखभूयिष्ठाः सर्वे योधा विचेतसः । गाः संप्रस्थाप्य तिष्ठामो व्यूढानीकाः प्रहारिणः

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे औत्पातिको नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

दृष्टि करके जोरसे चीखें मार रहे हैं और कौए हमारी ध्वजाओं पर बैठ २ कर उड़जाते हैं, यह भी कुछ अच्छा शकुन नहीं होता है २६ और ये पक्षी हमारे बाईं ओर आ आकर बड़े भयकी सूचना कररहे हैं ॥ २७ ॥ और यह गीदड़ रोता रोता घायलहुए विना ही हमारी सेनाके बीचमेंको होकर भागा चलाजाता है, यह हमें बड़े भारी भय की सूचना देताहै ॥ २८ ॥ हे कौरवो ! मैं देखता हूँ, कि-तुम्हारे रोमाञ्च खड़े होरहे हैं, इससे दीखता है, कि—इस युद्धसे अवश्य ही क्षत्रियोंका नाश होगा ॥ २९ ॥ सूर्य, नेत्र, वाणी और मनकी गति रुकगई है, इसीसे उनका प्रकाश बन्द होगया है, पशु और पक्षी भी घोररूप से रोते हैं तथा क्षत्रियोंके नाशको सूचित करनेवाले अनेकों प्रकारके भयानक उत्पात देखनेमें आरहे हैं ॥ ३० ॥ इसमें भी हमारे नाशके अपशकुन विशेषरूपसे देखनेमें आते हैं और हे राजन् ! प्रज्वलितहुए उल्के तेरी सेना पर गिरते हैं और उनसे तेरी सेना भस्म हुईजाती है तथा तेरे वाहन भी उदास और रोतेहुएसे दीखते हैं ॥ ३१ ॥ और गिद्ध तेरी सेनाके चारों ओर आकर बैठे हैं, सो जब तू अर्जुनके बाणों के प्रहारसे अपनी सेनाको दुःखित हुई देखेगा, उस समय तेरे मनको दुःख होगा, निःसन्देह तेरी सेना अब ही हारी बैठी है इसमें किसी को भी युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है ॥ ३२ ॥ सब योधाओंके मुख अधिकतर निस्तेज होगए हैं और उनके मन उदास होगए हैं, सो गौओंको अभी हस्तिनापुरकी ओर भेजकर हम सब योधा व्यूहरचनामें खडे होजायँ ॥ ३३ ॥ छियालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥

वैशम्पायन उवाच। अथ दुर्योधनो राजा समरे भीष्ममब्रवीत्।
द्रोणं च रथशार्दूलं कृपञ्च सुमहारथम्॥ १ ॥ उक्तोऽयमर्थ आचार्यो
मया कर्णेन चासकृत्। पुनरेव प्रवक्ष्यामि न हि तृप्यामि तं ब्रुवन्
॥ २ ॥ पराभूतैर्हि वस्तव्यं तैश्च द्वादश वत्सरान्। वने जनपदे ज्ञातैरेव
एव पणो हि नः॥ ३ ॥ तेषां न तावन्निर्वृत्तं वर्तते तु त्रयोदशम्।
अज्ञातवासो बीभत्सुरथास्माभिः समागतः ॥४॥ अनिवृत्ते तु निर्वासे
यदि बीभत्सुरागतः। पुनर्द्वादश वर्षाणि वने वत्स्यन्ति पाण्डवाः॥५॥
लोभाद्वा ते न जानीयुरस्मान् वा मोह आविशत्। हीनातिरिक्तमेतेषां
भीष्मो वेदितुमर्हति॥ ६ ॥ अर्थानां च पुनर्द्वैधे नित्यं भवति संशयः।
अन्यथा चिन्तितो ह्यर्थः पुनर्भवति सोऽन्यथा॥ ७ ॥ उत्तरं मार्गमाणानां
मत्स्यानाञ्च युयुत्सताम्। यदि बीभत्सुरायातस्तदा कस्यापराध्नुमः॥८॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-इसके अनन्तर राजा दुर्योधनने रणभूमि
में खडेहुए भीष्मपितामह महारथियोंमें सिंहसमान द्रोणाचार्य और
श्रेष्ठ महारथी कृपाचार्यसे कहा, कि॥१॥मैंने तथा कर्णने यह बात द्रोणा-
चार्य तथा कृपाचार्यसे बार बार कही है तो भी मैं फिर वही बात तुम्हारे
आगे कहता हूँ, क्योंकि—यह बात ऐसी अच्छी है, कि-इसको कहते
हुए मेरी तृप्ति ही नहीं होती॥ २ ॥ (जुआ खेलते समय) हमारी
यह बात ठहरी थी, कि—हारेहुए पाण्डव बारह वर्ष पर्यन्त वनमें
अथवा देशमें प्रकटरूपसे रहें और एक वर्ष छुपे रहें ॥ ३ ॥ उस
ठहरावके अनुसार उनके छुपे रहनेका तेरहवां वर्ष अभी पूरा नहीं
हुआ है तो भी अर्जुन अज्ञातवासको छोड़कर प्रकटरूपसे हमारे
साथ लडनेको आया है॥ ४ ॥ अब यदि अज्ञातवासका तेरहवां वर्ष
पूरा हुए बिना अर्जुन हमारे साथ युद्ध करनेको चढ़ आया है तो
पाण्डवोंको फिर बारहवर्ष वनवास करना पडैगा॥ ५ ॥ तेरहवां वर्ष
पूरा हुआ है या नहीं हुआ है, इस विषयमें या तो उन्होने (राज्यके)
लोभसे भूल की है अथवा हमारी अपनी ही भूल होती है, इस बात
का निर्णय करनेकी योग्यता भीष्मजी रखते हैं, कि—ठहरनेके अनु-
सार वर्ष पूरे होगए या अभी कम हैं॥ ६ ॥ जिन बातोंमें दुविधा पड़
जाती है, उनमें सदा सन्देह ही रहता है, इस दशामें बात विचारी
होतीऔर है, परन्तु निकलती कुछ और ही बात है॥ ७ ॥ हम उत्तर
दिशाके गोठोंकी गौओंको हरनेके लिये खोजते हुए मत्स्योंके साथ
लडनेकी इच्छासे यहाँ आये थे, तब भी अर्जुन यदि हमारे साथ
लडनेको चढ आया है, तो इसमें हमने किसका अपराध किया है ?

त्रिगर्त्तानां वयं हेतोर्मत्स्यान् योद्धुमिहागताः। मत्स्यानां विप्रकारांस्ते बहूनस्मानकीर्त्तयन् ॥ ९ ॥ तेषां भयाभिभूतानां तदस्माभिः प्रतिश्रुतम् प्रथमं तैर्गृहीतव्यं मत्स्यानां गोधनं महत्। सप्तम्यामपराह्णे वै तथा तैस्तु समाहितम् ॥ १० ॥ अष्टम्यां पुनरस्माभिरादित्यस्योदयं प्रति । इमा गावो गृहीतव्या गते मत्स्ये गवास्पदम् ॥ ११ ॥ ते वा गाश्चान-यिष्यन्ति यदि वा स्युः पराजिताः। अस्मान् वा ह्युपसन्धाय कुर्य्युर्म-त्स्येन सङ्गतम् ॥ १२ ॥ अथवा तानपाहाय मत्स्यो जनपदैः सह। सर्वया सेनया सार्द्धं संवृतो भीमरूपया। आयातः केवलं रात्रिमस्मान् योद्धुमिहागतः ॥ १३ ॥ तेषामेव महावीर्यः कश्चिदेषः पुरःसरः। अस्मान् जेतुमुपायातो मत्स्यो वापि स्वयं भवेत् ॥ १४ ॥ यद्येष राजा मत्स्यानां यदि वीभत्सुरागतः। सर्वैर्योद्धव्यमस्माभिरिति नः समयः कृतः ॥ १५ ॥ अथ कस्मात् स्थिता ह्येते रथेषु रथसत्तमाः। भीष्मो

॥८॥ हम तो त्रिगर्त्तोंके कारणसे यहाँ मत्स्योंके साथ युद्ध करनेको आये हैं, क्योंकि—त्रिगर्त्तोंने हमारे तुम्हारे सामने मत्स्योंके बहुतसे अपराध गाये थे ॥ ९ ॥ वे मत्स्योंके भयसे हार मान बैठे थे, इसकारण हमने उनसे प्रतिज्ञा करली थी, कि—कृष्ण पक्षकी सप्तमीको सायङ्कालके समय पहिले तुम मत्स्योंके दक्षिण ओरके गोठोंमें गौओंके बहुतसे समूहका हरण करो ॥ १० ॥ और (हमने कहदिया था, कि—) मत्स्यराज अपनी गौओंके लौटालनेके लिये दक्षिणकी ओरके गोठों की गौओंके पीछे चढ़कर आवैगा, तब अष्टमीके दिन सूर्योदयके समय उत्तरके गोठोंकी गौओंका हरण हम करेंगे ॥ ११ ॥ अब त्रिगर्त्त या तो गौओंका हरण करके लाते होंगे और यदि हारगए होंगे तो हमें बीच में डालकर मत्स्यराजसे मेल करनेको हमारे पास आते होंगे ॥ १२ ॥ अथवा वह मत्स्यराज त्रिगर्त्तोंको जीतकर अपनी भयावनी सब सेना तथा देशवासी लोगोंके सहित हमसे लड़नेको रातका छापा मारनेके लिये यहाँ आयाहोगा॥१३॥ और उसके योधाओंमेंका यह कोई पराक्रमी योधा, उनसे पहिलेही हमें जीतनेके लिये यहाँ आयाहोगा, अथवा मत्स्यराज आप ही चढ़कर आया होगा॥१४॥ परन्तु इस रथमें बैठकर आनेवाला मनुष्य चाहे मत्स्यराज हो और चाहे अर्जुन ही हो, चाहे कोईभी हो, हम सबोंको उसके साथ लडना है, यह तो हमारी प्रतिज्ञा ही है ॥ १४ ॥ फिर भी इस समय रथमें बैठेहुए भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विकर्ण और अश्वत्थामा आदि महारथी मनमें उत्साहहीन होकर क्यों बैठे हैं ? क्षत्रियोंका युद्धके सिवाय और किसी बातमें कल्याण ही

द्रोणः कृपश्चैव विकर्णो द्रौणिरेव च ॥१६॥ सम्भ्रान्तमनसः सर्वे काले ह्यस्मिन्महारथाः । नान्यत्र युद्धाच्छ्रेयोऽस्ति तथात्मा प्रणिधीयताम् ॥१७॥ आच्छिन्ने गोधनेऽस्माकमपि देवेन वज्रिणा । यमेन वापि संग्रामे को हास्तिनपुरं व्रजेत् ॥ १८ ॥ शरैरेभिः प्रणुन्नानां भग्नानां गहने वने को हि जीवेत् पदातीनां भवेदश्वेषु संशयः ॥१९॥ दुर्योधनवचः श्रुत्वा राधेयस्त्वब्रवीद्वचः । आचार्यं पृष्ठतः कृत्वा तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २० ॥ जानाति हि मतं तेषामतस्त्रासयतीह नः । अर्जुने चास्य सम्प्रीतिमधिकामुपलक्षये ॥ २१ ॥ तथा हि दृष्ट्वा बीभत्सुमुपायान्तं प्रशंसति । यथा सेना न भज्येत तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २२ ॥ ह्रेषितं ह्युपशृण्वाने द्रोणे सर्वं विघट्टितम् । अदेशिका महारण्ये ग्रीष्मे शत्रुवशं गताः । यथा न विभ्रमेत्सेना तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २३ ॥ इष्टा हि पाण्डवा नित्यमाचार्यस्य विशेषतः । आसयन्नपरार्धाश्च

नहीं है, इसलिये सबजने युद्ध करनेका मनमें उत्साह रक्खो ॥१६॥१७॥ यदि साक्षात् वज्रधारी इन्द्र और यमराज भी आकर संग्राममें हमसे गोधनको छीनकर लेजाना चाहैं तो फिर हस्तिनापुरको कौन जाता है? ॥ १८ ॥ यदि हमारी सेनामेंसे कोई गहन वनमेंको भागकर जायँगे तो हम उनको इनबाणोंसे बींधडालेंगे, इस दशामें पैदलोंमेंसे कौन जीता बचैगा? परन्तु हाँ घुड़सवार भागें और उनमेंसे कदाचित् कोई जीता रहजाय ! यह संदेह है ॥ १९ ॥ दुर्योधनकी इस बातको सुनकर राधाका पुत्र कर्ण कहनेलगा, कि-द्रोणाचार्य को सेनाके मुहाने परसे हटाकर पीछेकी ओर खड़ाकरो तब युद्ध करनेका विचार करो(क्योंकि—इन डरेहुए द्रोणाचार्यको देखकर और भी डरजायँगे) ॥ २०॥ द्रोणाचार्य पाण्डवोंके विचारको जानते हैं, इसकारण यह हमें वृथा ही डराया करते हैं, मेरी समझमें अर्जुनके ऊपर द्रोणाचार्यका प्रेम अधिक है ॥ २१ ॥ तभी तो यह अर्जुनको आताहुआ देखकर उसकी सराहना कररहे हैं, परन्तु अब हमें ऐसी नीतिसे काम करना चाहिये, कि— जिसमें हमारी सेना भाग न जाय ॥ २२ ॥ तो भी यदि कदाचित् तुम द्रोणाचार्यको सेनाके मुहाने पर रक्खोगे तो अर्जुनके घोड़ोंकी हिन हिनाहटको सुनतेही यह भयभीत होजायँगे, और यह भयभीत होकर भागे, कि-सब सेनामें भग्गी पड़जायगी, हम परदेशमें आयेहुए हैं, यह घोरवन है, गरमी की ऋतु है और इस समय हम वैरीके वशमे आपड़े हैं, इसकारण ऐसी नीतिसे कामलो, कि-जिसमे सेनामें भग्गी न पड़जाय ॥ २३ ॥ द्रोणाचार्यको सदासे ही पाण्डव अधिक प्यारे हैं,

कथ्यते स्म स्वयं तथा ॥ २४ ॥ अश्वानां हेषितं श्रुत्वा कः प्रशंसापरो भवेत् । स्थाने वापि व्रजन्तो वा सदा हेषन्ति वाजिनः ॥२५॥ सदा च वायवो वान्ति नित्यं वर्षति वासवः । स्तनयित्नोश्च निर्घोषः श्रूयते बहुशस्तथा ॥ २६॥ किमत्र कार्यं पार्थस्य कथं वा स प्रशस्यते । अन्यत्र कामाद् द्वेषाद्वा रोषादस्मासु केवलात् ॥ २७ ॥ आचार्या वै कारुणिकाः प्राज्ञाश्चापापदर्शिनः । नैते महाभये प्राप्ते सम्प्रष्टव्याः कथञ्चन ॥ २८ ॥ प्रासादेषु विचित्रेषु गोष्ठीषूपवनेषु च । कथा विचित्राः कुर्वाणाः पण्डितास्तत्र शोभनाः ॥ २९ ॥ बहून्याश्चर्यरूपाणि कुर्वाणा जनसंसदि । इष्वास्त्रे चोपसन्धाने पण्डितास्तत्र शोभनाः ॥ ३० ॥ परेषां विवरज्ञाने मनुष्यचरितेषु च । हस्त्यश्वरथचर्यासु खरोष्ट्राजाविकर्मणि ॥ ३१ ॥ गोधनेषु प्रतोलीषु वरद्वार-

---

इसीसे पाण्डवोंने अपना काम साधनेकेलिये द्रोणाचार्यको तुम्हारे पास छोड़रक्खा है और द्रोणाचार्य भी स्वयं ऐसी ही बातें करतेहैं ॥२४॥ यदि यह बात नहीं होती तो दूसरा कौन घोड़ोंकी हिनहिनाहटको सुनकर अर्जुनकी प्रशंसा करने लगता ? घोड़ोंका तो स्वभाव ही होता है, कि—वे अपने थान पर बँधेहुए वा चलतेमें हिनहिनाया करते हैं ॥ २५ ॥ सदा ही पवन चला करते हैं, नित्य ही इन्द्र वर्षा किया करता है, तथा मेघका गरजन भी अनेकों वार सुननेमें आता है (इसमें नई बात क्या है) ॥ २६ ॥ इसमें अर्जुनका कौन काम है ? नजाने उसकी सराहना क्यों कीजातीहै ? अर्जुनका भला चाहनेके सिवाय तथा हमारे ऊपर केवल द्वेष और क्रोध होनेके सिवाय क्या इसमें और कुछ कारण है ? ॥ २७ ॥ आचार्य तो दयालु, बुद्धिमान् और हिंसासे विरुद्ध विचार वाले होते हैं, इसकारण किसी बड़ेभारी भयका समय आजाय तो इन से किसी प्रकारकी भी सलाह नहीं करनी चाहिये ॥ २८ ॥ सुन्दर महलोंमें और बगीचोंमें सभायें हों तो वहाँ नाना प्रकारकी कथायें कहने में ही पण्डितोंकी शोभा होतीहै ॥ २९ ॥ और मनुष्योंकी सभामें बहुत से विनोदके कामकरते हुए तथा यज्ञके कपालादि पात्रोंका प्रोक्षण आदि करनेमें ही पण्डित शोभा पाते हैं ॥ ३० ॥ और दूसरे पण्डितों के छिद्र देखनेमें, मनुष्योंके चरित्रोंको जाननेमें, हाथी घोड़े रथ आदि पर चढ़नेमें तथा गधे, ऊँट, बकरे और भेड़ोंके गुण दोषोंकी परीक्षा और चिकित्सा के काममें, गौओंकी परीक्षा करनेमें, मौहल्लोंमें तथा घरोंके सुन्दर द्वारोंपर अनेकों प्रकारके बलिदान देनेके काममें, तथा अन्न आदिको लगेहुए कीड़े आदि के दोष दूर

सुखेषु च । अन्नसंस्कारदोषेषु पण्डितास्तत्र शोभनाः ॥ ३२ ॥ पण्डि-
तान् पृष्ठतः कृत्वा परेषां गुणवादिनः । विधीयतां तथा नीतिर्यथा
वध्यो भवेत्परः ॥ ३३ ॥ गावश्च सम्प्रतिष्ठाप्य सेनां व्यूह्य समन्ततः ।
आरक्षाश्च विधीयन्तां यत्र योत्स्यामहे परान् ॥ ३४ ॥ * ॥
इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे दुर्योधनवाक्ये
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

कर्ण उवाच । सर्वानायुष्मतो भीतान् सन्त्रस्तानिव लक्षये । अयु-
द्धमनसश्चैव सर्वांश्चैवानवस्थितान् ॥ १ ॥ यद्येष राजा मत्स्यानां
यदि बीभत्सुरागतः । अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ २ ॥
मम चापप्रयुक्तानां शराणां नतपर्वणाम् । नावृत्तिर्गच्छतां तेषां सर्पा-
णामिव सर्पताम् ॥ ३ ॥ रुक्मपुंखाः सुतीक्ष्णाग्रा मुक्ता हस्तवता
मया । छादयंतु शराः पार्थं शलभा इव पादपम् ॥ ४ ॥ शराणां पुंख-
सक्तानां मौर्व्याभिहतया दृढम् । श्रूयतां तलयोः शब्दो भेर्यो राहतयो-
रिव ॥ ५ ॥ समाहितो हि बीभत्सुर्वर्षाण्यष्टौ च पञ्च च । जातस्नेहश्च

करनेके लिये कियेजातेहुए वैश्वदेव आदि कर्ममें ही पण्डित
अच्छी संगति देसकते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ परन्तु युद्धके विषय में तो,
वैरियोंके गुण गानेवाले पण्डितोंको पीछे रखकर उस नीतिसे
काम लो, जिसमें शत्रुको माराजासके ॥ ३३ ॥ अब तुम सेनाको व्यूह-
रचनासे खड़ी करो, उसके बीचमें गौओंको खड़ी करलो और चारों
ओरसे रक्षकोंको खड़े रखकर अपनी रणभूमिकी सम्हाल रक्खो कि
जहाँ खड़े होकर हम वैरियोंके साथ लड़ेंगे ॥ ३४ ॥ सैतालीसवां
अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥ * ॥ छ ॥ छ ॥

कर्ण फिर कहनेलगा, कि—तुम सबों पर दृष्टि डालता हूँ तो तुम
सब आयुष्मान्, डरेहुए युद्धकी ओरसे उदासीन और चलायमान
चित्तवाले मालूम होते हो ॥ १ ॥ परन्तु चाहे यह मत्स्योंका राजाबि-
राट हो और चाहे बीभत्सु अर्जुन ही चढ़कर आया हो जैसे किनारा
समुद्रको रोकता है तैसे ही मैं इसको रोकूँगा ॥ २ ॥ मेरे धनुषमेंसे
नमेहुए पर्ववाले बाण, सर्पोंकी समान जब सरासर छूटने लगते हैं
तो वे निशानेसे चूकते नहीं हैं ॥ ३ ॥ मैं अपने सधेहुए हाथसे सुन-
हरी परोंवाले और तीखे मुखवाले बाणोंको छोड़ूंगा तब जैसे टीड़ियें
पेड़ोंको ढकदेती हैं तैसे ही वे बाण अर्जुनको ढकदेंगे ॥ ४ ॥ परोंमें
लगेहुए बाणोंको धनुषकी डोरीपर चढ़ाकर जब अच्छे प्रकार खेंचकर
टङ्कारका शब्द कियाजाता है,उस समय दो नगाड़ोंके एकसाथ बजने
की समान मेरी दोनो हथेलियोंका शब्द होता है, उसको तुम सुनना
॥ ५ ॥ अर्जुन तेरह वर्षतक वनमें रहनेसे दयालु बनगयाहै इसकारण

युद्धे स्मिन् मयि सम्प्रहरिष्यति ॥ ६ ॥ पात्रीभूतश्च कौन्तेयो ब्राह्मणो गुणवानिव । शरौघान् प्रतिगृह्णातु मया मुक्तान् सहस्रशः ॥ ७ ॥ एष चैव महेष्वासस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । अहं चापि नरश्रेष्ठादर्जुनान्नाधरः क्वचित् ॥ ८ ॥ इतश्चेतश्च निर्मुक्तैः काञ्चनैर्गार्ध्रवाजितैः। दृश्यतामद्य वै व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ॥ ९ ॥ अद्याहमृणमक्षय्यं पुरा वाचा प्रतिश्रुतम् । धार्त्तराष्ट्रस्य दास्यामि निहत्य समरेऽर्जुनम् ॥ १० ॥ अन्तराच्छिद्यमानानां पुंखानां व्यतिशीर्यताम् । शलभानामिवाकाशे प्रचारः सम्प्रदृश्यताम् ॥ ११ ॥ इन्द्राशनिसमस्पर्शं महेन्द्रसमतेजसम् । अर्दयिष्याम्यहं पार्थमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ १२ ॥ रथादतिरथं शूरं सर्वशस्त्रभृतां वरम् । विवशं पार्थमादास्ये गरुत्मानिव पन्नगम् ॥ १३ ॥ तमग्निमिव दुर्द्धर्षमसिशक्तिशरेन्धनम् । पाण्डवाग्निमहं दीप्तं प्रदहन्तामिवाहितम् ॥ १४ ॥ अश्ववेगपुरो वातो रथौघस्तनयित्नुमान् । शरधारो महामेघः शमयिष्यामि पांडवम् ॥ १५ ॥

इस युद्धमें मेरे ऊपर स्नेहके साथ प्रहार करैगा ॥ ६ ॥ और मैं भी एक गुणवान् ब्राह्मणकी समान अर्जुनको सुपात्र समझकर उसके ऊपर हजारों बाण छोडूंगा, वह उन बाणोंके समूहोंको ग्रहण करैगा ॥ ७ ॥ मेरा यह बड़ाभारी धनुष तीनोंलोकोंमें प्रसिद्ध है और मैं भी अर्जुनसे किसी बातमें कम नहीं हूँ ॥ ८ ॥ गिजज्ञ पक्षीकी समान वेगवाले सोनेके जिन बाणोंको मैं छोड़ता हूँ, उन सोनेके बाणोंसे छाया हुआ आकाश तारागणोंसे भराहुआ सा दीखताहै यह बात आज तुम अवश्य देखना ॥ ९ ॥ मैंने पहिले जो प्रतिज्ञा की थी, आज मैं रणमें अर्जुनको मार उस प्रतिज्ञाको पूरी करके अपने ऊपरसे दुर्योधनके अक्षय ऋणको चुका दूँगा ॥ १० ॥ बीचमें ही पूँछें कटजानेवाले मेरे बाण टीड़ियोंकी समान आकाशमें इधर उधर घूमेंगे उसको तुम देखना ॥ ११ ॥ अर्जुनका शरीर छूनेमें इन्द्रके वज्रसा दृढ़ और महेन्द्रकी समान तेजस्वी है तो भी जैसे हाथीको बलतेहुए ऊके दिखाकर दुःखी कियाजाता है, तैसे ही मैं भी अर्जुनको दुःखी करूँगा ॥ १२ ॥ और जैसे गरुड़ सांपको पकड़ लेताहै तैसे ही मैं भी महारथी, शूर और सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनको बेवश करके पकड़लूँगा ॥ १३ ॥ अर्जुन, तलवार शक्ति और बाणरूपी इंधनवाले, किसीसे भी न बुझसकै ऐसे धकधकातेहुए अग्निरूप होकर जब वैरियोंको जलाने लगेगा ॥ १४ ॥ तब जिसके आगे घोड़ोंका वेगरूप पवन चलता है, रथोंके जथेरूप मेघ जिसमें गर्जना करते हैं ऐसा महामेघरूप मैं भी बाणरूपी जलकी वर्षा करके अर्जुनरूप आगको शान्त करदूँगा ॥ १५ ॥ और

मत्कार्मुकविनिर्मुक्ताः पार्थमाशीविषोपमाः । शराः समभिसर्पन्तु वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १६ ॥ सुतेजनै रुक्मपुंखैः सुधौतैर्नतपर्वभिः । आचितं पश्य कौन्तेयं कर्णिकारैरिवाचलम् ॥ १७ ॥ जामदग्न्यान्मया ह्यस्त्रं यत्प्राप्तमृषिसत्तमात् । तदुपाश्रित्य वीर्यञ्च युध्येयमपि वासवम् ॥ १८ ॥ ध्वजाग्रे वानरस्तिष्ठन् भल्लेन निहतो मया । अद्यैव पततां भूमौ विनदन् भैरवान् रवान् ॥ १९ ॥ शत्रोर्मया विपन्नानां भूतानां ध्वजवासिनाम् । दिशः प्रतिष्ठमानानामस्तु शब्दो दिवङ्गमः ॥ २० ॥ अद्य दुर्य्योधनस्याहं शल्यं हृदि चिरस्थितम् । समूलमुद्धरिष्यामि बीभत्सुं पातयन् रथात् ॥ २१ ॥ हताश्वं विरथं पार्थं पौरुषे पर्य्यवस्थितम् । निःश्वसन्तं यथा नागमद्य पश्यन्तु कौरवाः ॥ २२ ॥ कामं गच्छन्तु कुरवो धनमादाय केवलम् । रथेषु वापि तिष्ठन्तो युद्धं पश्यन्तु मामकम् ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे कर्णविकत्थने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

जैसे सांप भटमें घुसते हैं, तैसेही मेरे धनुषमें से छूटेहुए विषैले सर्पके समान अर्जुनके शरीरमें प्रवेश करेंगे ॥ १६ ॥ खूब तेज किये सोने की पूंछवाले, अच्छा पानी पिये और नमेहुए पर्ववाले मेरे बाणोंसे जब अर्जुन ढकजायगा तब वह कनेरके पेड़ोंसे ढकेहुए पहाड़सा मालूम होगा, उसको देखना ॥ १७ ॥ मुझे ऋषिवर परशुरामजीसे जो अस्त्र मिला है, उस अस्त्रके और अपनी वीरताके आधार पर मैं इन्द्रसे भी लड़सकता हूँ ॥ १८ ॥ अरे ! जरा देखना तो, अर्जुनकी ध्वजाके ऊपर जो वानर बैठा है उसको भी भालेसे मारडालूँगा और वह आजही भयानक चीखें मारताहुआ भूमिपर लोटैगा ॥ १९ ॥ मैं वैरीकी ध्वजामें रहनेवाले प्राणियोंको बाणोंकी मार देकर ध्वजामें से नीचे गिरादूंगा तब वो चीखें मारतेहुए इधर उधर दिशाओंमेंको भागते फिरेंगे, उस समय उनका हाहाकार धुर आकाश तक पहुँचेगा ॥२०॥ आजमें अर्जुनको रथमें से नीचे गिराकर, दुर्योधनके हृदयमें जो चिर कालसे काँटा चुभरहा है, उसको जड़मूलसे निकाल दूंगा ॥ २१ ॥ और अर्जुनके घोड़े मरजायँगे तथा जब वह रथहीन होजायगा तब महाबलवान् सर्पकीसमान फुंकारें मारता फिरैगा, वह दशा भी हे कौरवों ! आज तुम देखोगे ॥ २२ ॥ कौरवोंको यदि केवल गोधन लेकर जानेकी इच्छा होय तो वे भले ही केवल गौओंके समूहको लेकर चले जायँ और यदि वे रथों पर बैठकर संग्राम देखना चाहते हों तो आनन्दसे मेरा संग्राम देखें ॥ २३ ॥ अड़तालीसवां अध्याय समाप्त ॥

कृप उवाच। सदैव तव राधेय युद्धे क्रूरतरा मतिः। नार्थानां प्रकृतिं वेत्सि नानुबंधमवेक्षसे॥१॥ मया हि बहवः सन्ति शास्त्रमाश्रित्य चिन्तिताः। तेषां युद्धन्तु पापिष्ठं वेदयन्ति पुराविदः॥२॥ देशकालेन संयुक्तं युद्धं विजयदं भवेत्। हीनकालं तदेवेह फलं न लभते पुनः। देशे काले च विक्रान्तं कल्याणाय विधीयते॥३॥ आनुकूल्येन कार्य्याणामन्तरं संविधीयते। भारं हि रथकारस्य न व्यवस्यन्ति पण्डिताः॥४॥ परिचिन्त्य तु पार्थेन सन्निपातो न नः क्षमः। एकः कुरूनभ्यरक्षदेकश्चाग्निमतर्पयत्॥५॥ एकश्च पञ्च वर्षाणि ब्रह्मचर्य्यमधारयत्। एकः सुभद्रामारोप्य द्वैरथे

यह सुनकर कृपाचार्य कहनेलगे, कि-हे राधाके पुत्र कर्ण! तेरी बुद्धि सदाही युद्धके विषयमें बडी ही कुटिलतासे भरी रहतीहै परन्तु तू कार्यों के स्वरूपको वा उनके परिणामको नहीं देखता है (अर्थात् क्या कभी जुएसे प्रयोजन सिद्ध होसकना है और कुछ पदार्थ मिल भी जायँ तो क्या उनसे परिणाममें सुख मिलसकता है? इस समय भी तुझे यह ज्ञान नहीं है, कि—ये गौएं कैसे मिलजायँगी और यदि यहांसे ले भी गए तो इसका क्या फल निकलेगा ?) ॥१॥ मैंने शास्त्रमें अपनी रक्षा करनेके लिये अनेकों प्रकारकी कपटकी युक्तियोंका विचार किया है परन्तु उनमें युद्ध सबसे अधिक पापिष्ठ है, ऐसा प्राचीन शास्त्रवेत्ताओं ने जाना है ॥ २ ॥ देश और काल के अनुसार जो युद्ध कियाजाता है वह ही विजय देताहै, परन्तु कुसमयमें कियाहुआ वही युद्ध विजय नहीं देसकता (देखो आजकल गरमीके दिन हैं वाहन थककर जल न मिलनेसे शीघ्र ही मरजायँगे और यह पहाडी स्थान भी ठीक नहीं है) देश और कालको देखकर परिश्रम कियाजाय तो ही उसमेंसे अच्छा फल निकलता है ॥ ३ ॥ देश और कालकी अनुकूलताका विचार करनेसे ही कार्य्य फलदायक होताहै, परन्तु इसके विना काम में सफलता नहीं होती, रथ बनानेवाला रथमें बैठनेवाले योधाओं से कहता है, कि—यह रथ बड़ा ही मजबूत है यदि तुम इसमें बैठकर संग्राममें चढ़ाई करोगे तो इन्द्रादि देवताओंको भी हरादोगे, परन्तु उसके कहनेमात्र से ही देशकालका विचार किये विना चतुर योधा युद्धका उद्योग नहीं करते हैं ॥ ४ ॥ जरासा भी विचार करनेसे ध्यानमें आजायगा, कि—अर्जुन के सामने पड़ने की हममें शक्ति नहीं है, क्योंकि—वह अकेला ही कौरवोंकी रक्षा के लिये चित्रसेनके साथ युद्ध करनेको चढ़गया था और उसने अकेले ही अग्निको तृप्त किया था ॥ ५ ॥ उसने अकेले ही पाँच वर्षतक ब्रह्म-

कृष्णमाह्वयत् ॥ ६ ॥ एकः किरातरूपेण स्थितं रुद्रमयोधयत् । अस्मिन्नेव वने पार्थो हृतां कृष्णामवाजयत् ॥ ७ ॥ एकश्च पञ्च वर्षाणि शक्रादस्त्राण्यशिक्षत । एकः सोऽयमरिं जित्वा कुरूणामकरोद्यशः ॥ ८ ॥ एको गन्धर्वराजानं चित्रसेनमरिन्दमः । विजिग्ये तरसा संख्ये सेनां प्राप्य सुदुर्जयाम् ॥ ९ ॥ तथा निवातकवचाः काल खञ्जाश्च दानवाः । दैवतैरप्यवध्यास्ते एकेन युधि पातिताः ॥ १० ॥ एकेन हि त्वया कर्ण किं नामेह कृतं पुरा । एकैकेन यथा तेषां भूमिपाला वशे कृताः ॥११॥ इन्द्रोऽपि हि न पार्थेन संयुगे योद्धुमर्हति । यस्तेनाशंसते योद्धुं कर्त्तव्यं तस्य भेषजम् ॥ १२ ॥ आशीविषस्य क्रुद्धस्य पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् । अवमुच्य प्रदेशिन्या दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥१३॥ अथवा कुञ्जरं मत्तमेक एव चरन्वने । अनंकुशं समारुह्य नगरं गन्तुमिच्छसि ॥१४॥ समिद्धं पावकं चैव घृतमेदोवसाहुतम् । घृताक्तश्चीर-

---

चर्यका पालन किया था और उसने अकेले ही सुभद्राको हरकर रथमें बैठेहुए श्रीकृष्णको युद्ध करनेके लिये पुकारा था ॥ ६ ॥ उस अकेलेने ही भीलकेरूपमें सामने आयेहुए महादेवके साथ युद्ध किया था और इस ही वनमेंसे अर्जुन, हरण कीहुई द्रौपदीको फिर जीतकर लाया था ॥ ७ ॥ और इस अर्जुनने अकेले ही पाँच वर्षतक स्वर्गमें रहकर इन्द्रसे अस्त्रविद्या सीखी थी और इसने अकेले ही शत्रुओंको हराकर कुरुवंशका यश फैलाया है और इस अर्जुनने अकेले ही, जिनको संग्राममें जीतना कठिन है ऐसे गन्धर्वोंकी सेनाके सामने जाकर बलात्कारसे चित्रसेन गन्धर्वको जीतलिया था ॥ ८ ॥ ९ ॥ ऐसे ही निवातकवच और कालखञ्ज नामवाले दानव, कि—जिनको देवता भी नहीं मारसकते थे, उनको भी अकेले अर्जुनने ही युद्धमें मारडाला था ॥ १० ॥ और हे कर्ण ! उस अर्जुनने जैसे अकेले ही, पहिले सब राजाओंको अपने वशमें करलिया था तैसे अकेले तूने बता पहिले किसी संग्राममें कोई करतूत की है ? ॥ ११ ॥ इन्द्र भी संग्राममें अर्जुनके सामने युद्ध नहीं करसकता, फिर भी जो तू उसके साथ युद्ध करना चाहता है (तो तू बावला होगया दीखता है) इसकी कुछ औषध करनी चाहिये ॥ १२ ॥ अनुमान होताहै, इसकारण ही तू दाहिना हाथ ऊँचा करके कोपमें भरेहुए विषधर सर्पके मुखमें हाथ डालकर अँगुलीसे उसकी डाढ़ उखेड़ना चाहता है ॥ १३ ॥ अथवा तू वनमें फिरते हुए मतवाले हाथीके ऊपर बिना अंकुशके अकेला ही सवारी करके मानो नगरमें जाना चाहता है ॥ १४ ॥ अथवा तू शरीर पर चीथड़े लपेट, घीमें सराबोर हो, घी चर्बी और मेदके होमनेसे चेतन होकर

वासास्त्वं मध्येनोत्सत्तुमिच्छसि ॥ १५ ॥ आत्मानं कः समुद्बध्य कण्ठे
बध्वा महाशिलाम्। समुद्रं तरते दोर्भ्यां तत्र किं नाम पौरुषम् ॥ १६ ॥
अकृतास्त्रः कृतास्त्रं वै बलवन्तं सुदुर्बलः। तादृशं कर्ण यः पार्थं योद्धु-
मिच्छेत् स दुर्मतिः ॥ १७ ॥ अस्माभिर्ह्येष निकृतो वर्षाणीह त्रयोदश।
सिंहःपाशविनिर्मुक्तो न नः शेषं करिष्यति ॥ १८ ॥ एकांते पार्थमासीनं
कूपेऽग्निमिव संवृतम्। अज्ञानादभ्यवस्कन्द्य प्राप्ताः स्मो भयमुत्तमम् ॥ १९ ॥
सह युध्यामहे पार्थमागतं युद्धदुर्मदम्। सैन्यास्तिष्ठन्तु संयत्ता व्यूढा-
नीकाः प्रहारिणः ॥ २० ॥ द्रोणो दुर्योधनो भीष्मो भवान् द्रौणिस्तथा
वयम्। सर्वे युध्यामहे पार्थं कर्ण मा साहसं कृथाः ॥ २१ ॥ वयं व्यव-
सितं पार्थं वज्रपाणिमिवोद्धतम्। षड्रथाः प्रतियुध्येम तिष्ठेम यदि सं-
हिताः ॥ २२ ॥ व्यूढानीकानि सैन्यानि यत्ताः परमधन्विनः।

बलतेहुए अग्निके बीचमेंको निकलना चाहता है ॥ १५ ॥ अपने कण्ठ
में बड़ीभारी शिला बांधकर तथा अपने सब शरीरको डोरीसे जकड़
कर कौनसा पुरुष दोनो हाथोंसे समुद्रको तरनेका साहस करैगा ?
॥ १६ ॥ हे कर्ण ! जो शस्त्रविद्या न जानता हो ऐसा बहुत ही दुर्बल
पुरुष यदि शस्त्रविद्या जाननेवाले बलवान् अर्जुनके साथ युद्ध करना
चाहे तो उसको निपट मूर्ख ही समझना चाहिये ॥ १७ ॥ हमने
कपट से धोखा दे तेरह वर्षतक वनमें निकालकर अर्जुनको दुःख
दिया है, परन्तु अब तो वह शेर जालमेंसे छूटगया है सो अब वह
हममसे किसीको भी बाकी नहीं छोड़ेगा, किन्तु सबका ही संहार
करडालैगा ॥ १८ ॥ जैसे कुएके भीतर अग्नि छिपा हुआ हो
तैसे अर्जुन एकान्त में गुप्त रहता था, तहां ही हम अनजानमें
आपहुँचे हैं, इसकारण हम बड़ेभारी भयमें आपडे हैं ॥ १९ ॥ रणमें
मदमत्त होकर जूझनेवाला अर्जुन, हमारे सामने लड़नेको चढ़ा
चला आरहा है, इसकारण हम सबोंको इकट्ठे होकर उसके साथ
लड़ना चाहिये, इसकारण अब हमारे योधा शस्त्र आदि धारण करके
व्यूहरचनासे सावधान होकर खड़े होजायँ ऐसाकरो ॥ २० ॥ द्रोण,
दुर्योधन, भीष्मपितामह तू, अश्वत्थामा तथा हम सब इकट्ठे होकर
अर्जुनके साथ युद्ध करेंगे, पर भैया कर्ण ! तू अकेले अपने ही साहस
को रहनेदे ॥ २१ ॥ वज्रधारी इन्द्रकी समान संग्राममे उद्धत होकर विचरने
वाला अर्जुन युद्ध करनेको चढ़आया है, सो यदि हम छहों रथी इकट्ठे
होकर युद्ध करेंगे तो भी उसके सामने रणमें नहीं ठहर सकेंगे ॥ २२ ॥
अब सेनाको व्यूह रचकर खड़ी करदो, और बड़े२ धनुषधारी साव-
धान होकरउद्योग करनेमें लगजायँ तब ही, जैसे दैत्य, इन्द्र के साथ

युध्यामहेऽर्जुनं संख्ये दानवा इव वासवम् ॥ २३ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरगोग्रहे
कृपवाक्यं नाम एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

अश्वत्थामोवाच ॥ न च तावज्जिता गावो न च सीमान्तरं गताः न हास्तिनपुरं प्राप्तास्त्वञ्च कर्ण विकत्थसे ॥ १ ॥ संग्रामांश्च बहून् जित्वा लब्ध्वा च विपुलं धनम् । विजित्य च परां सेनां नाहुः किंचन पौरुषम् ॥ २ ॥ दहत्यग्निरवाक्यस्तु तूष्णीं भाति दिवाकरः । तूष्णीं धारयते लोकान् वसुधा सचराचरान् ॥ ३ ॥ चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि विहितानि स्वयम्भुवा । धनं तैरधिगन्तव्यं यच्च कुर्वन्न दुष्यति ॥४॥ अधीत्य ब्राह्मणो वेदान् याजयेत यजेत वा । क्षत्रियो धनुराश्रित्य यजेच्चैव न याजयेत् ॥५॥ वैश्योऽधिगम्य वित्तानि ब्रह्मकर्माणि कारयेत् शूद्रः शुश्रूषणं कुर्यात्त्रिषु वर्णेषु नित्यशः । वंदनायोगविधिभिर्वैतसीं वृत्तिमास्थितः ॥ ६ ॥ वर्त्तमानो यथाशास्त्रं प्राप्य चापि महीमिमाम्

युद्ध करते हैं तैसे अर्जुनके साथ जूझसकैंगे ॥ २३ ॥ उनञ्चासवां अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

इसके पीछे अश्वत्थामाने कहा, कि—हे कर्ण ! अभी तो हमने योधाओंको जीता भी नहीं है, अभी दूसरी सीमापर भी नहीं पहुँचे हैं और न हस्तिनापुरमें ही पहुँचे हैं, फिरभी तू झूठी बड़ाई क्यों बघार रहा है? ॥ १ ॥ जैसे अग्नि विना ही कुछ कहे दूसरेको जलाडालता है, सूर्य चुपचाप ही अपना प्रकाश करता है, और पृथ्वी भी विना कुछ बोलेचाले ही अपनी पीठ पर चराचर सब लोकोंको धारण करती है, तैसेही शूर पुरुष अनेकों संग्रामोमें विजय पाकर बहुतसा धन इकट्ठा करके और वरीकी सेनाको जीतकर अपनी वीरता का जराभी बखान नहीं करते हैं, किन्तु नम्र ही रहते हैं, जिस२ कामसे धन मिलसकै और जिन कामोंके करने से करनेवालेको दोष न लगैं, ऐसे कर्म स्वयम्भू ब्रह्माने चारों वर्णोंके लिये पहिलेसे ही रचरक्खे हैं ॥ २—४ ॥ ब्राह्मण वेदोंको पढ़कर यज्ञ करै और दूसरोंको यज्ञ करावै, क्षत्रिय वेदाभ्यास के साथ धनुषविद्याका अभ्यास करके यज्ञ आदि वैदिक कर्म करै, परन्तु दूसरोंको करावै नहीं, ॥ ५ ॥ वैश्य खेती व्यापार आदि करके धन इकट्ठाकरैं और वेदमें कहेहुए कर्म करैं तथा शूद्र बेंतके पेडकी समान नम्रता धारण करके तथा प्रणाम करके सेवा आदिसे ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सदा आज्ञाका पालन किया करैं, ऐसा धर्मशास्त्रों में बताया है ॥ ६ ॥ परम भाग्यवान् पुरुष इसप्रकार शास्त्रके अनुसार

सत्कुर्वन्ति महाभागा गुरून् सुविगुणानपि ॥ ७ ॥ प्राप्य द्यूतेन को राज्यं क्षत्रियस्तोष्टुमर्हति। तथा नृशंसरूपोऽयं धार्त्तराष्ट्रश्च निर्घृणः ८ तथाभिगम्य वित्तानि को विकत्थेद्विचक्षणः। निकृत्यावञ्चनायोगैश्च-रन्वैतंसिको यथा॥९॥कतम द्वैरथं युद्धं यत्राजैषीर्धनञ्जयम्। नकुलं सहदेवं वा धनं येषां त्वया हृतम्॥१०॥ युधिष्ठिरो जितः कस्मिन् भीमश्च बलिनां वरः। इन्द्रप्रस्थं त्वया कस्मिन् संग्रामे निर्जितं पुरा ॥११॥तथैव कतमद्युद्धं यस्मिन् कृष्णा जिता त्वया। एकवस्त्रा सभां नीता दुष्टकर्मन् रजस्वला ॥ १२॥ मूलमेषां महत् कृत्तं सारार्थी चन्दनं यथा। कर्म कारयिथाः सूत तत्र किं विदुरोऽब्रवीत्॥ १३ ॥ यथाशक्ति मनुष्याणां शममालक्षयामहे। अन्येषामपि सत्वानामपि कीटपिपीलिकैः। द्रौपद्यास्तं परिक्लेशं न क्षन्तुं पाण्डवोऽर्हति ॥ १४ ॥ क्षयाय धार्तराष्ट्राणां

सदाचारका पालन करतेहैं और नीतिसे इस सब पृथ्वीको जीतलेने पर भी अपनेसे विरुद्ध वर्त्ताव करनेवाले गुरुजन गुणरहित हों तो भी उनका सत्कार ही करते हैं ॥ ७ ॥ बड़े ही क्रूर और निर्लज्ज धृतराष्ट्के पुत्रने जुआ खेलकर राज्य पाया है और उसमें ही ज्यों त्यों वे सन्तोष मानते हैं इसप्रकार जुएसे राज्य पाकर कौनसा क्षत्रिय सन्तोष मानेगा?॥८॥जैसे व्याधा शठता और छल कपटके उपायोंसे धन इकट्ठा करता है और उससे अपनी आजीविका चलाता है तैसे ही शठता और छल कपटसे धन इकट्ठा करके कौन चतुर पुरुष अपनी बड़ाई करैगा ? ॥ ९ ॥ अर्जुन के साथ तेरा आमने सामने रथमें बैठकर कौनसा युद्ध हुआ था, कि—जिसमें तूने अर्जुनको जीता है औरनकुल वा सहदेवके साथ कौनसा युद्ध किया था कि-जिनका धन तूने हरलिया है॥१०॥और कौनसे युद्धमें युधिष्ठिरको वा बलवानोमें श्रेष्ठ भीमसेनको तूने जीता है और पहिले कौनसे संग्राममें तूने इन्द्रप्रस्थको जीतकर लिया था ? ॥ ११ ॥ अरे कुकर्मी ! तूने वह कौनसा युद्ध किया था, कि-जिसमें द्रौपदीको जीताथा, वह विचारी रजस्वला दशामें ही एक वस्त्र पहरेहुए राजसभामें लाई गई थी ॥ १२ ॥ जैसे धनको चाहनेवाला पुरुष चन्दनके पेड़को काट डालता है, तैसे ही हे सूत ! तूने भी द्रौपदीका अपमान करके पाण्डवरूपी चन्दनके वृक्षकी बड़ीभारी जड़को काटडाला था और पाण्डवोंसे कपटका जुआ खिलवाया था, परन्तु उस समय सभामें विदुरने तुझ से क्या कहा था, उसको तू याद कर ॥ १३॥ मनुष्य और कीडे कीड़ा आदि प्राणी भी हम देखते हैं, कि—अपनी शक्तिके अनुसार क्षमाको धारण करते हैं, परन्तु अर्जुन, द्रौपदीके ऊपर जो अत्याचार किया गया था-उसको क्षमा नहीं करसकता ॥ १४ ॥ यह धनंजय तो धृतरा-

प्रादुर्भूतो धनंजयः।त्वं पुनः पण्डितो भूत्वा वाचं वक्तुमिहेच्छसि।१५। वैरान्तकरणो जिष्णुर्न नः शेषं करिष्यति ॥१६॥ नैव देवाश्च गन्धर्वाश्च सुराश्च च राक्षसान्। भयादिह न युध्येत कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥१७॥ यं यमेषोतिसंक्रुद्धः संग्रामे निपतिष्यति। वृक्षं गरुत्मान् वेगेन विनिहत्यतमेष्यति ॥१८॥ त्वत्तो विशिष्टं वीर्येण धनुष्यमरराट्समम्। वासुदेवसमं युद्धे तं पार्थं को न पूजयेत् ॥१९॥ दैवं दैवेन युध्येत मानुषेण च मानुषम्। अस्त्रं ह्यस्त्रेण यो हन्यात् कोऽर्जुनेन समः पुमान् ॥२०॥ पुत्रादनन्तरं शिष्य इति धर्मविदो विदुः। एतेनापि निमित्तेन प्रियो द्रोणस्य पाण्डवः ॥२१॥ यथा त्वमकरोर्द्यूतमिन्द्रप्रस्थं यथाहरः। यथानैषीः सभां कृष्णां तथा युध्यस्व पाण्डवम् ॥२२॥ अयं ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्मस्य कोविदः। दुर्द्यूतदेवी गान्धारः शकुनिर्युध्यतामिह ॥२३॥ नाक्षान् क्षिपति गाण्डीवं न कृतं द्वापरं न चाज्वलतो निशितान् बाणां-

द्रके पुत्रोंका संहार करनेके लिये ही जन्मा है और फिर भी तू पण्डित बनकर बोलनेकी शक्तिका बड़ा भारी आडम्बर दिखानो चाहताहै ॥ १५ ॥ अर्जुन तो वैरका अन्त करनेवाला है, इसकारण वह हमें जड़मूलसे ही उखाड़डालेगा ॥ १६ ॥ कुन्तीनन्दन अर्जुन, देवता, गन्धर्व सुर और असुरोंके सामने भी भय खाकर पीछेको नहीं हटैगा ॥१७॥ वह जब अत्यन्त क्रोधमें भरकर रणमें जिस २ के ऊपर चढ़ाई करैगा, उस समय जैसे गरुड़ वेगसे वृक्षके ऊपर गिरकर उसका नाश करदेता है तैसे ही उसका भी संहार ही करडालेगा ॥ १८ ॥ वीरतामें तुझसे बढ़ाहुआ और धनुष चलानेमें देवराज इन्द्रकी समान तथा संग्राम करनेमें वासुदेवकी समान अर्जुनका सत्कार कौन नहीं करैगा ? ॥ १९ ॥ अर्जुन संग्रामके समय देवताओंके साथ देवताओंकी समान पराक्रमसे लड़ता है, गन्धर्वोंके सामने गन्धर्वोंकेसे बलसे लडता है और मनुष्योंके सामने मनुष्यबलसे लड़ता है तथा जो अस्त्रका अस्त्र से नाश करताहै ऐसे अर्जुनकी समान दूसरा कौन पुरुष होगा ? २० धर्मको जाननेवाले कहते हैं,कि-पुत्रसे उतरकर शिष्यको मानै, इस कारणसे भी द्रोणाचार्य्यको अर्जुन प्यारा है॥२१॥सो अब जिसप्रकार तूने जुआ खेलाथा, जिसप्रकार तूने इन्द्रप्रस्थको जीता था और जिस प्रकार तूने सभामें द्रौपदीको जोरावरीसे बुलाया था तैसे ही तू आज भी अर्जुनके साथ संग्राम करना ! ॥ २२ ॥ गन्धारदेशका राजा तेरा मामा यह शकुनि बुद्धिमान् है क्षत्रियके धर्ममें बड़ा निपुण है और कपटका जुआ खेलना जानता है, यह आज भले ही संग्राममें खड़ा होकर युद्ध करै ॥ २३॥ गाण्डीव धनुष कुछ सत्ययुग, द्वापर, त्रेता

स्तांस्तान् क्षिपति गांडिवम् ॥२४॥ न हि गाण्डीवनिर्मुक्ता गार्ध्रपक्षाः सुतेजनाः । नांतरेष्ववतिष्ठन्ते गिरीणामपि दारणाः ॥२५॥ अन्तकः पवनो मृत्युस्तथाग्निर्वडवामुखः । कुर्युरेते क्वचिच्छेषं न तु क्रुद्धो धनंजयः ॥ २६ ॥ यथा सभायां द्यूतं त्वं मातुलेन सहाकरोः । तथा युध्यस्व संग्रामे सौबलेन सुरक्षितः ॥ २७ ॥ युध्यन्तां कामतो योधा न हि योत्स्ये धनंजयम् । मत्स्यो ह्यस्माभिरायोध्यो यद्यागच्छेद्गवां पदम् ॥ २८ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि द्रौणिवाक्यं नाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

भीष्म उवाच । साधु पश्यति वै द्रौणिः कृपः साध्वनुपश्यति । कर्णस्तु क्षत्रधर्मेण केवलं योद्धुमिच्छति ॥१॥ आचार्यो नाभिवक्तव्यः पुरुषेण विजानता । देशकालौ तु सम्प्रेक्ष्य योद्धव्यमिति मे मतिः॥ २॥ यस्य सूर्यसमाः पञ्च सपत्नाः स्युः प्रहारिणः । कथमभ्युदये तेषां न

और कलियुग नामके फाँसे नहीं डालेगा, किन्तु वह धधकतेहुए और सानपर धरेहुए तीखे बाणोंकी ही वर्षा करैगा ! ॥ २४ ॥ और गाण्डीव धनुषमेंसे छूटेहुए गिद्ध पक्षीके परोंवाले और पर्वतको भी तोड़डालनेवाले अति तेजस्वी बाण निशानेमें चिपटे नहीं रहते हैं किन्तु संहार करके आर पार निकलजाते हैं ॥ २५ ॥ सबका संहार करनेवाले काल, पवन, मृत्यु और वड़वानल कोप करैं तो वह भी कुछ भागको शेष रहने देते हैं, परन्तु क्रोधमें भरा हुआ अर्जुन तो कुछ भी नहीं बचने देगा ॥ २६ ॥ इसलिये तू अपने मामा शकुनि के साथ रहकर, जैसे सभामें जुआखेला था तैसे ही अब भी मामा शकुनिकी रक्षामें रह कर रणभूमिमें संग्राम करना ॥ २७ ॥ और दूसरे योधा भी अपनी इच्छानुसार भले ही युद्ध करैं,परन्तु मैं अर्जुनके साथ युद्ध नहीं करूँगा, यदि मत्स्यराज यहाँ गौएं लेनेको आवेगा तो उस के साथ मैं लड़ूंगा, क्योंकि—मेरी लड़ाई मत्स्यराजके साथ है, कुछ अर्जुनके साथ नहीं है ॥ २८ ॥ पचासवां अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥ छ ॥

इसके अनन्तर भीष्मजी बोले, कि—इन अश्वत्थामा और कृपाचार्यने जो कुछ कहा और इन्होने जो जो अपना अभिप्राय बताया है वह बहुत ही अच्छा है और कर्ण ता अपने क्षत्रियधर्मके अनुसार केवल युद्ध ही करना चाहता है ॥ १ ॥ और द्रोणाचार्यके ऊपर दोष लगाना यह समझदार मनुष्यका काम नहा है, मेरा तो यह विचार है, कि—हम सब अच्छेप्रकारसे देश कालका विचार करलैं तब युद्ध करैं, ॥ २ ॥ परन्तु सूर्यकी समान तेजस्वी पाँच २ शत्रु जिसके ऊपर चोट कररहे हों,ऐसे मनुष्यका उदय करने में पण्डित भी कैसे मोहित

प्रमुह्येत पंडितः ॥ ३ ॥ स्वार्थे सर्वे विमुह्यन्ति येऽपि धर्मविदो जनाः तस्माद्राजन् ब्रवीम्येष वाक्यं ते यदि रोचते ॥ ४ ॥ कर्णो हि यदवोचत्वाः तेजःसञ्जननाय तत् । आचार्य्यपुत्रः क्षमतां महत् कार्यमुपस्थितम् ॥ ५ ॥ नायं कालो विरोधस्य कौन्तेये समुपस्थिते । क्षन्तव्यं भवता सर्वमाचार्य्येण कृपेण च ॥ ६ ॥ भवतां हि कृतास्त्रत्वं यथादित्ये प्रभा तथा । यथा चन्द्रमसो लक्ष्मीः सर्वथा नापकृष्यते ॥७॥ एवं भवत्सु ब्राह्मण्यं ब्रह्मास्त्रञ्च प्रतिष्ठितम् । चत्वार एकतो वेदाः क्षात्रमेकत्र दृश्यते ॥ ८ ॥ नैतत्समस्तमुभयं कस्मिंश्चिदनुशुश्रुम । अन्यत्र भारताचार्य्यात् सपुत्रादिति मे मतिः ॥ ९ ॥ वेदान्ताश्च पुराणानि इतिहासं पुरातनम् । जामदग्न्यमृते राजन् को द्रोणादधिको भवेत् ॥ १० ॥ ब्रह्मास्त्रं चैव वेदाश्च नैतदन्यत्र दृश्यते । आचार्य-

---

न हो?।३धर्मको जाननेवाले मनुष्यभी, अपना स्वार्थ साधनेके लिये क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये, इसका निर्णय करने समय उलझनमें पड़जातेहैं इस कारण हे राजन्! (दुर्योधन!) यदि तुझे अच्छी लगे तो मैं तुझसे एक बात कहता हूँ, उसको सुन ॥४॥ कर्णने तेरे सामने द्रोणाचार्यकी निन्दा करने में जो बातें कहीहैं वह उनको दुःखित करनेके लिये नहीं कही हैं, किन्तु द्रोणाचार्य का उत्साह बढ़ानेके लिये कहीहैं, इसलिये आचार्य के पुत्र अश्वत्थामा को, उसके कहने पर क्षमाकरनी चाहिये, क्योंकि-इस समय हमारे सामने बड़ा भारी काम उपस्थितहै ॥ ५ ॥ और जबकि-अर्जुन हमारे ऊपर चढ़कर आरहाहै तो ऐसे समय हमें भीतर ही भीतर आपसमें विरोध नहीं करना चाहिये, किन्तु आपको द्रोणाचार्यको और अश्वत्थामा को क्षमा ही करनी चाहिये ॥ ६॥ जैसे सूर्य में रहनेवाला तेज कभी भी कम नहीं होता और चन्द्रमा मे रहनेवाला लावण्य भी कभी कम नहीं होता तैसे हा तुममें जो अस्त्र विद्याका ज्ञान रहता है, वहभी सर्वथा कम होनेवाला नहीं है ॥ ७ ॥ तुममें ब्राह्मणपना और ब्रह्मास्त्र की विद्या ये दोनो हैं, एक मनुष्य में चारों वेदोंका ज्ञान होता है तो दूसरेमें क्षत्रियपना देखनेमें आताहै ॥ ८ ॥ परन्तु ये दोनो बातें पूर्ण रीतिसे द्रोणाचार्य्यमें और उनके पुत्र अश्वत्थामामें ही हैं, मेरी समझमें और कहीं ये दोनो बातें हैं ही नहीं ॥ ९ ॥ हे राजन्! पुराना इतिहास, पुराण और उपनिषदोंको जाननेमें द्रोणाचार्य से चढ़ाबढ़ा परशुरामजी के सिवाय दूसरा कौन है? ॥ १० ॥ ब्रह्मास्त्रका ज्ञान और चारों वेदोंका ज्ञान ये दोनो बातें पूर्णरीतिसे एक पुरुष जानता हो यह बात तुम्हारे सिवाय और कहीं देखनेमें नहीं आतीं, इस लिये हे आचार्यकुमार अश्वत्थामा! क्षमा

पुत्रः क्षमतां नायं कालो विभेदने ॥ ११ ॥ सर्वे संहत्य युध्यामः पाकशासनिमागतम् ॥ १२ ॥ बलस्य व्यसनानीह यान्युक्तानि मनीषिभिः मुख्यो भेदो हि तेषान्तु पापिष्ठो विदुषां मतः ॥ १३ ॥ अश्वत्थामोवाचनैवं न्याय्यमिदं वाच्यमस्माकं पुरुषर्षभ। किन्तु रोषपरीतेन गुरुणा भाषिता गुणाः ॥ १४ ॥ शत्रोरपि गुणा ग्राह्या दोषा वाच्या गुरोरपि। सर्वथा सर्वयत्नेन पुत्रे शिष्ये हितं वदेत् ॥ १५ ॥ दुर्योधन उवाच। आचार्य एव क्षमतां शान्तिरत्र विधीयताम्। अभिद्यमाने तु गुरौ तद्वृत्तं रोषकारितम् ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच। ततो दुर्योधनो द्रोणं क्षमयामास भारत। सह कर्णेन भीष्मेण कृपेण च महात्मना ॥ १७ ॥ द्रोण उवाच ॥ यदेतत् प्रथमं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत्। तेनैवाहं प्रसन्नो वै नीतिरत्र विधीयताम् ॥ १८ ॥ यथा दुर्योधनं पार्थो नोपसर्पति संगरे। साहसाद्यदि वा मोहात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ १९ ॥ वनवासे ह्यनिर्वृत्ते दर्शयेन्न धनंजयः। धनञ्जा-

करो, क्योंकि—यह समय आपसमें लडनेका नहीं है ॥ ११ ॥ इंद्रका पुत्र अर्जुन लडनेको चढ़कर आरहा है, अब हम सब इकट्ठे होकर युद्ध करनेको तयार होजायँ ॥ १२ ॥ विद्वानोंने सेनाके जिन व्यसनों (खराबियों) का वर्णन किया है, उन सबोंमें मुख्य व्यसन आपसके कलहको माना है, जो कि—बड़ा ही पापिष्ठ है ॥ १३ ॥ अश्वत्थामाने कहा, कि—हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपको न्यायसे भरीहुई हमारी इस बात की निन्दा नहीं करना चाहिये क्योंकि आचार्यने केवल उपके छलकी याद आनेसे क्रोधमें भरकर अर्जुनके गुण गाये हैं ॥ १४ ॥ शास्त्रमें कहा है, कि—शत्रुके भी गुणोंको ग्रहण करै और गुरुमें भी दोष हों तो उनको स्पष्ट कहदेय और जहाँतक होसके सर्वथा पुत्र और शिष्य के हितकी ही बात कहे ॥१५॥ दुर्योधनने कहा कि—हे आचार्यजी ! मेरे ऊपर क्षमा करिये और इस समय यहां शान्तिही बनाये रखना चाहिये, क्योंकि यदि गुरुके मनमें भेदभाव नहीं होगा, तबही हमारा बाकी का काम सिद्ध होगा ॥१६॥ वैशम्पायन कहतेहैं, कि—हे भारत ! आपसमें इस प्रकार बातचीत होजानेपर दुर्योधनने कर्ण, महात्मा भीष्म और कृपाचार्य सहित द्रोणाचार्यके पास जाकर क्षमा मांगी ॥ १७ ॥ तब द्रोणाचार्य शान्त होकर बोले, कि—शन्तनुनन्दन भीष्मने तो पहिलेही यह कहाथा, कि—आपसमें कलह न करो किन्तु क्षमा रक्खो, मैं तो इतने से ही प्रसन्न होगया था, अच्छा अब नीतिसे काम करो ॥ १८ ॥ संग्राम करते समय अर्जुनका दुर्योधनके ऊपर दाँत है, इसलिये वह साहससे वा मोहसे दुर्योधन के ऊपर न चढ़ आवै, इसकेलिये कुछ राजनीति चलानी चाहिये ॥ १९ ॥ पाण्डवोंके वनवासके तेरहवर्षजाने

लभमानो वै नाद्य तत् क्षन्तुमर्हति ॥ २० ॥ यथा नायं समायुज्ज्या-धार्तराष्ट्रान् कथञ्चन । न च सेनापराजय्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २१ ॥ उक्तं दुर्योधनेनापि पुरस्ताद्वाक्यमीदृशम् । तदनुस्मृत्य गाङ्गेय यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे द्रोणवाक्ये एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

भीष्म उवाच । कला काष्ठाश्च युज्यन्ते मुहूर्त्ताश्च दिनानि च । अर्द्ध-मासाश्च मासाश्च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥ १ ॥ ऋतवश्चापि युज्यन्ते तथा सम्वत्सरा अपि । एवं कालविभागेन कालचक्रं प्रवर्त्तते ॥ २ ॥ तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषाञ्च व्यतिक्रमात् । पञ्चमे पचमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥ ३ ॥ एषामभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादश क्षपाः त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्त्तते मतिः ॥ ४ ॥ सर्वं यथावच्चरितं यद्यदेभिः प्रतिश्रुतम् । एवमेतत् ध्रुवं ज्ञात्वा ततो बीभत्सुरागतः ॥ ५ ॥ सर्वे चैव महात्मानः सर्वे धर्मार्थकोविदाः। येषां युधिष्ठिरो राजा कस्मा-

पूरे हुए हैं या नहीं, इसविषयमें दुर्योधन को सन्देह है, परन्तु अर्जुन तेरह वर्ष पूरे हुए विना कभी भी अपना दर्शन नही देगा तथा आज हमसे गौएं लिये विना भी लौटकर नहीं जायगा और न आज हमें क्षमा ही करेगा ॥ २० ॥ इसलिये वह जिसप्रकार धृतराष्ट्रके पुत्रों के ऊपर न चढ़ आवे तथा सेनाका पराजय भी न करसके, ऐसी ही नीतिसे काम लो ॥२१ ॥ हे गङ्गानन्दन भीष्म ! मेरी समान दुर्योधनने भी पहिले, तेरह वर्ष पूरे हुएहैं या नहीं, यह प्रश्न आपसे किया था, इसलिये आप, पाण्डवों का तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास पूरा हुआ है या नहीं, इसका विचार करके ठीक २ उत्तर दीजिये ॥ २२ ॥ इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ * ॥ * ॥

भीष्मजी बोले, कि—कला, काष्ठा, मुहूर्त्त, दिन, पक्ष, महीने, नक्षत्र ग्रह, ऋतु तथा संवत्सर आदि कालके भिन्न २ भाग मिलकर एक कालचक्र बना है, वह कालचक्र कला काष्ठा आदिके विभागसे घूमा करता है ॥ १ ॥ २ ॥ उनमें सूर्य और चन्द्रमा नक्षत्रोंको लाँघजाते हैं तब कालकी कुछ वृद्धि होनेसे पाँचवें २ वर्षमें दो २ महीने बढ़ा करते हैं ॥ ३ ॥ इससे मेरी समझमें तो यह आता है, कि—इन पाण्डवोंको वनवास करतेहुए तेरह वर्षसे भी पाँच महीने बारह रातको समय अधिक होगया है ॥ ४ ॥ इन पाण्डवोंने जो २ प्रतिज्ञायें की थीं उन सबका ठीक २ पालन किया है और अर्जुन भी इस विषयके ठीक २ निश्चयको जानकर ही हमारे ऊपर चढ़कर आया है ॥ ५ ॥ वे सब

धर्मेऽपराध्नुयुः ॥ ६ ॥ अलुब्धाश्चैव कौन्तेयाः कृतवन्तश्च दुष्करम् । न चापि केवलं राज्यमिच्छेयुस्तेऽनुपायतः ॥ ७ ॥ तदैव ते हि विक्रान्तुमीषुः कौरवनन्दनाः । धर्मपाशनिबद्धास्तु न चेलुः क्षत्रियव्रतात् ॥ ८ ॥ यच्चानृत इति ख्यायाद्यः स गच्छेत्पराभवम् । वृणुयुर्मरणं पार्था नानृतत्वं कथञ्चन ॥ ९ ॥ प्राप्तकाले तु प्राप्तव्यं नोत्सृजेयुर्नरर्षभाः । अपि वज्रभृता गुप्तं तथावीर्या हि पाण्डवाः ॥ १० ॥ प्रतियुध्येम समरे सर्वशस्त्रभृतां वरं । तस्माद्यच्च कल्याणं लोके सद्भिरनुष्ठितं । तत्संविधीयतां शीघ्रं मा वो ह्यर्थोऽभ्यगात्परं ॥ ११ ॥ नहि पश्यामि संग्रामे कदाचिदपि कौरव । एकांतसिद्धिं राजेन्द्र संप्राप्तश्च धनञ्जयः ॥ १२ ॥ संप्रवृत्ते तु संग्रामे भावाभावौ जयाजयौ । अवश्यमेकं स्पृशतो दृष्टमेतदसंशयं ॥ १३ ॥ तस्माद्युद्धोचितं कर्म कर्म वा

हीं महात्मा और सब धर्म तथा अर्थमें प्रवीण हैं, फिर जिनमें राजा युधिष्ठिर नेता हों वे धर्मके विषयमें अपराध (चूक) क्यों करने लगे हैं? ॥ ६ ॥ पाण्डव लोभी नहीं हैं और उन्होंने बड़ा कठिन काम किया है, इसकारण वे केवल अनीतिसे कभी भी राज्य लेना नहीं चाहेंगे ॥ ७ ॥ कुरुकुलनन्दन पाण्डव चाहते तो तब (वनवासकालमें) ही पराक्रम करसकते थे, परन्तु वे धर्मपाशमें बँधेहुए थे, इसीकारण क्षत्रियोंके नियमसे नहीं हटे ॥ ८ ॥ इसलिये जो यह कहैगा, कि—अर्जुन असत्यवादी है वह तिरस्कार ही पावेगा, क्योंकि—पाण्डव मृत्युको स्वीकार करलेंगे, परन्तु मिथ्याभाषणको कभी स्वीकार नहीं करेंगे ॥ ९ ॥ इसीप्रकारसे वे नरश्रेष्ठ पाण्डव ऐसी वीरता भी रखते हैं, कि—समय आनेपर वज्रधारी इंद्रकी रक्षामें से भी अपनी पाने योग्य (हक्ककी) वस्तुको नहीं छोड़ेंगे ॥ १० ॥ ऐसे श्रेष्ठ पांडवोंमें जो सब शस्त्रधारियोंमें उत्तम है उस अर्जुनके सामने हमें रणभूमि में लड़ना है, इसलिये अब जो काम करनेसे हमारा कल्याण हो और जिस कामको जगत्में सत्पुरुषोंने किया हो, उस कामको शीघ्र ही करो कि—जिससे तुम्हारी गौएं दूसरेके हाथमें न चलीजायँ ॥ ११ ॥ हे कुरुवंशी राजेन्द्र! युद्धमें केवल विजय ही हो यह मैंने कभी नहीं देखा, यह देखो! अर्जुन समीप ही आगया ॥ १२ ॥ संग्रामका आरंभ होजाने पर जीना, मरना अथवा जीतना हारना ये बातें अवश्य ही किसी एकके पास आती हैं यह बात निःसन्देह देखनेमें आई है ॥ १३ ॥ इसकारण हे राजेन्द्र! या तो युद्धके उपयोगी काम अथवा धर्मोचित काम (युद्ध न करके इनके साथ मेलकर राज्य देदेना) इन दोनोंमेंसे एक काम शीघ्र करो, क्योंकि—अर्जुन समीप ही आप-

धर्मसंहितं। क्रियतामाशु राजेन्द्र संप्राप्तश्च धनंजयः ॥ १४ ॥ दुर्योधन उवाच। नाहं राज्यं प्रदास्यामि पांडवानां पितामह। युद्धोपचारिकं यत्तु तच्छीघ्रं प्रविधीयतां ॥ १५ ॥ भीष्म उवाच। अत्र यां मामिका बुद्धिः श्रूयतां यदि रोचते। सर्वथा हि मया श्रेयो वक्तव्यं कुरुनंदन ॥ १६ ॥ क्षिप्रं बलचतुर्भागं गृह्य गच्छ पुरं प्रति। ततो परश्चतुर्भागो गाः समादाय गच्छतु ॥ १७ ॥ वयं चार्धेन सैन्यस्य प्रतियोत्स्याम पांडवम्। अहं द्रोणश्च कर्णश्च अश्वत्थामा कृपस्तथा। प्रतियोत्स्याम वीभत्सुमागतं कृतनिश्चयम् ॥ १८ ॥ मत्स्यं वा पुनरायातमागतं वा शतक्रतुम्। अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् १६ वैशम्पायन उवाच ॥ तद्वाक्यं रुरुचे तेषां भीष्मेणोक्तं महात्मना। तथा हि कृतवान् राजा कौरवाणामनन्तरम् ॥ २० ॥ भीष्मः प्रस्थाप्य राजानं गोधनं तदनन्तरम्। सेनामुख्यान्व्यवस्थाप्य व्यूहितुं सम्प्रचक्रमे ॥ २१ ॥ भीष्म उवाच ॥ आचार्य मध्ये तिष्ठ त्वमश्वत्थामा तु

हुँचा है ॥ १४ ॥ दुर्योधनने उत्तर दिया, कि—हे पितामह! चाहे सो हो परंतु मैं पाण्डवोंको राज्य नहीं दूँगा, इसलिये जो काम युद्धके उपयोगी हो उसको ही शीघ्र करो ॥ १५ ॥ भीष्मजीने कहा, कि-हे कुरुनन्दन! मुझे तुझसे सर्वथा तेरे कल्याणकी बातें कहनी चाहिये, इसलिये इस विषयमें मेरा जो कुछ विचार है वह मैं तुझसे कहता हूँ, यदि अच्छा लगै तो सुनले ॥१६॥ सेनामेंसे चौथाई भागको साथ लेकर तू नगरकी ओरको जा, और सेनाका दूसरा चौथा भाग गौओंको लेकर नगरकी ओरको जाय, बाकीकी जो आधी सेना रहैगी, उसको लेकर मैं, द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य संग्राम करनेका निश्चय करकै आयेहुए अर्जुनके साथ लड़ेंगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ उसमें कदाचित् राजा विराट या इन्द्र लड़नेको आवेगा तो भी जैसे किनारा समुद्रको रोके रहता है तैसे ही मैं उनको आगै बढ़नेसे रोकदूँगा ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! महात्मा भीष्मकी यह बात कौरवोंको अच्छी लगी और कौरवोंके राजा दुर्योधनने फिर ऐसा ही किया (दुर्योधन चौथाई सेनाको साथ लेकर हस्तिनापुरकी ओरको चलदिया और चौथाई सेनाने गौओंके साथ हस्तिनापुरको पयान किया) ॥ २० ॥ इसप्रकार भीष्मने राजा दुर्योधनको और उसके पीछै गोधनको भेजकर सेनाके मुखियाओंको सामने खड़ा करकै व्यूहरचनाका आरम्भ किया ॥ २१ ॥ भीष्मजीने कहा, कि हे द्रोणाचार्य! तुम सब सेनाके बीचमें खड़े रहो, अश्वत्थामा सेना

सव्यतः । कृपः शारद्वतो धीमान् पार्श्वं रक्षतु दक्षिणम् ॥२२॥ अग्रतः सूतपुत्रस्तु कर्णस्तिष्ठतु दंशितः । अहं सर्वस्य सैन्यस्य पश्चात् स्था-स्यामि पालयन् ॥ २३ ॥ छ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि
भीष्मसैन्यव्यूहे द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥५२॥

वैशम्पायन उवाच ॥ तथा व्यूढेष्वनीकेषु कौरवेयेषु भारत । उपायादर्जुनस्तूर्णं रथघोषेण नादयन् ॥ १ ॥ ददृशुस्ते ध्वजाग्रं वै शुश्रुवुश्च महास्वनम् । दोधूयमानस्य भृशं गांडीवस्य च निःस्वनम् ॥ २ ॥ ततस्तु सर्वमालोक्य द्रोणो वचनमब्रवीत् । महारथमनुप्राप्तं दृष्ट्वा गांडीवधन्विनम् ॥ ३ ॥ द्रोण उवाच ॥ एतद्ध्वजाग्रं पार्थस्य दूरतः सम्प्रकाशते । एष घोषः सरथजो रोरवीति च वानरः ॥ ४ ॥ एष तिष्ठन् रथश्रेष्ठे रथे च रथिनां वरः । उत्कर्षति धनुःश्रेष्ठं गांडीव-मशनिस्वनम् ॥ ५ ॥ इमौ च बाणौ सहितौ पादयोर्मे व्यवस्थितौ । अपरौ चाप्यतिक्रांतौ कर्णौ संस्पृश्य मे शरौ ६निरुष्य हि वने वासं कृत्वा

के बाईं ओर और शरद्वान्के पुत्र बुद्धिमान् कृपाचार्य दाहिनी ओर खडे होकर सेनाकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ कर्ण शरीर पर कवच धारण करके सेनाके मुहाने पर खड़ा होय और मैं सब सेनाके पीछे रक्षा करने को खडा होऊँगा ॥ २३ ॥ बावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे भरतवंशी जनमेजय ! कौरवोंकी सब सेना व्यूहरचनामें चुनीजाकर खड़ी होगई, इतनेमें ही अर्जुन भी रथ की घरघराहटके साथ तहाँ आपहुँचा ॥ १ ॥ कौरव दूरसे ही अर्जुन के रथकी ध्वजाकी चोटीको देखनेलगे, रथके पहियोंकी घरघराहट तथा बडे जोरसे खेंचेहुए गाण्डीव धनुषके टंकारशब्दको सुननेलगे ॥ २ ॥ यह सब निहार कर तथा गाण्डीव धनुषधारी महारथी अर्जुन को आतेहुए देखकर द्रोणाचार्य बोल उठे ॥ ३ ॥ द्रोणाचार्यने कहा कि हे महारथियो ! दूरसे ही मालूम होती है, वह अर्जुनकी ध्वजाकी चोटी दीखरही है, यह जो घरघराहट सुनाई आ रहा है सो उसके रथका ही है और रथकी चोटी पर बैठाहुआ वानर बार २ किलका रियें भररहा है ॥ ४ ॥ यह रथमें बैठाहुआ, वज्रकी समान टङ्कारका शब्द करनेवाले गाण्डीव धनुषको जो खेंच रहा है वही महारथी अर्जुन है ॥ ५ ॥ देखो ये दो बाण एक साथ मेरे पैरोंके आगे आपडे, देखो ये दूसरे दो बाण मेरे कानोंको छूकर सरसरातेहुए आकाशकी ओरको चलेगए ॥ ६ ॥ अर्जुन वनवास करनेके पीछे अलौकिक परा-क्रम करकै दो बाण मेरे चरणोंमें छोड़कर मुझे प्रणाम करता है और

कर्मातिमानुषम्। अभिवादयते पार्थः श्रोत्रे च परिपृच्छति ॥ ७ ॥ चिरदृष्टोऽयमस्माभिः प्रज्ञावान्बांधवप्रियः। अतीव ज्वलितो लक्ष्म्या पांडुपुत्रो धनंजयः ॥ ८ ॥ रथी शरी चारुतली निषंगी शंखी पताकी कवची किरीटी। खड्गी च धन्वी च विभाति पार्थः शिखी वृतः स्रुग्भिरिवाज्यसिक्तः ॥९॥ अर्जुन उवाच ॥ इषुपाते च सेनाया हयान् संयच्छ सारथे। यावत्समीक्षे सैन्येऽस्मिन् क्वासौ कुरुकुलाधमः॥१०॥ सर्वानेताननादृत्य दृष्ट्वा तमतिमानिनम्। तस्य मूर्ध्नि पतिष्यामि तत एते पराजिताः ॥ ११ ॥ एष व्यवस्थितो द्रोणो द्रौणिश्च तदनन्तरम्। भीष्मः कृपश्च कर्णश्च महेष्वासाः समागताः ॥१२॥ राजानं नात्र पश्यामि गाः समादाय गच्छति। दक्षिणं मार्गमास्थाय शंके जीवपरायणः ॥१३॥ उत्सृजैतद्रथानीकं गच्छ यत्र सुयोधनः ॥ तत्रैवयोत्स्ये वैराटे नास्ति

दो बाणोंसे मेरे कानोंको छूकर मेरा कुशलसमाचार बूझरहा है ॥७॥ बुद्धिमान्, बान्धवों पर प्रेम रखनेवाले और लक्ष्मीसे अत्यन्त दिपते हुए इस पाण्डुनन्दन धनञ्जयको हमने आज बडे दिनोंमें देखा है ८ अर्जुन, धनुष, बाण, हाथके मोजे, भाथा, शंख, पताका, बख्तर मुकुट तलवार आदि अपनी संग्रामकी सब सामग्रीके साथ रथमें बैठकर हमारे ऊपर चढ़कर आया है ॥९॥ इसप्रकार कौरवोंकी सेना में अर्जुन के विषयमें बहुत प्रकारकी बातें होरही थीं, इसी अवसर में अर्जुन ने अपने सारथीसे कहा, कि—हे सारथी ! तू कौरवोंकी सेनासे एक धनुष पड़नेकी बराबर दूर रथके घोड़ोंको खडे रख, कि-जबतक मैं अच्छे प्रकार देखलूं, कि-इस सेनामें वह कुरुकुलाधम दुर्योधन कहां है॥१०॥ मैं इन सबोंका अनादर करताहुआ उस अभिमानीको देखकर उसके शिर पर ही जाकर गिरूँगा, कि—जिससे इन सबोंके भी मान मर-जायँगे ॥ ११ ॥ ऐसा कहकर अर्जुन कौरवोंकी सेनाकी ओरको देखने लगा और फिर बोला, कि—यह जो आगे ही खड़े हैं ये द्रोणाचार्य हैं, इनके दूसरी ओर अश्वत्थामा खड़ा है, यह सेनाके पीछे भीष्म खडे हैं, यह कृपाचार्य खड़े हैं और यह कर्ण है, ये सब ही श्रेष्ठ धनुष-धारी आये हैं ॥ १२ ॥ परन्तु दुर्योधन इनमें कहीं नहीं दीखता, इससे सन्देह होता है, कि—दुर्योधन अपने प्राणोंको बचानेके लिये गौओं को लेकर दक्षिण दिशाके मार्गसे हस्तिनापुरको (भाग) गया होगा ॥ १३ ॥ (ऐसा विचार कर उसने उत्तरको पुकारकर कहा कि) ओ विराटनन्दन ! इस रथसेनाको छोड़दे और जिधर दुर्योधन हो उधर को रथ हाँक दे, मैं तहां ही लडूंगा, विना मांस (लाभ) का युद्ध

युद्धं निरामिषम् । तं जित्वा विनिवर्त्तिष्ये गाः समादाय वा पुनः ॥१४॥ वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्तः स वैराटिर्हयान् संयम्य यत्नतः । निशम्य च ततो रश्मीन् यत्र ते कुरुपुंगवाः ॥ १५ ॥ अचोदयत्ततो वाहान् यत्र दुर्योधनो गतः । उत्सृज्य रथवंशन्तु प्रयाते श्वेतवाहने । अभिप्रायं विदित्वा च कृपो वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ नैषोऽन्तरेण राजानं बीभत्सुः स्थातुमिच्छति । तस्य पार्ष्णिं गृहीष्यामो जवेनाभिप्रयास्यतः ॥ १७ ॥ न ह्येनमभिसंक्रुद्धमेको युध्येत संयुगे । अन्यो देवात् सहस्राक्षात् कृष्णाद्वा देवकीसुतात् । आचार्याच्च सपुत्राद्वा भारद्वाजान्महारथात् ॥ १८ ॥ किं नो गावो करिष्यन्ति धनं वा विपुलं तथा । दुर्योधनः पार्थजले पुरा नौरिव मज्जति ॥ १९ ॥ तथैव गत्वा बीभत्सुर्नाम विश्राव्य चात्मनः । शलभैरिव तां सेनां शरैः शीघ्रमवाकिरत् ॥ २० ॥ कीर्यमाणाः शरौघैस्तु योधास्ते पार्थचोदितैः । नापश्यन्नावृतां भूमिं

किस कामका ? मैं उसको जीतकर और उससे गौएं लेकर ही लौट कर आऊँगा ॥ १४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! अर्जुन की इस बातको सुनकर विराटनन्दन उत्तरने जहाँ बड़े२ कौरव खड़े थे, उधरसे बागडोरोंको खेंचकर घोड़ोंको खड़ा करलिया और फिर जिधरको दुर्योधन जारहा था उधरको ही घोड़े हाँक दिये ॥ १५ ॥ श्वेतवाहन अर्जुन, वहाँ खड़ीहुई रथसेनाको छोड़कर दूसरी ओरको जानेलगा, उसी समय कृपाचार्य उसके अभिप्रायको समझकर कहने लगे, कि—॥ १६ ॥ यह अर्जुन, दुर्योधन के न होनेपर हमारे साथ लड़नेको खडा होना नहीं चाहता, इसलिये हमें भी शीघ्रताके साथ दुर्योधनके पीछे दौड़तेहुए पार्थ की पिछाडी पकडनी चाहिये ॥१७॥ क्योंकि—अर्जुन जब अत्यन्त कोपमें भरजाता है, तब इन्द्र, देवकी नन्दन कृष्ण, महारथी द्रोणाचार्य तथा महारथी अश्वत्थामाके सिवाय दूसरा कोई भी पुरुष अकेला उसके साथ नहीं लड़सकता ॥ १८ ॥ हमारे पहुँचनेसे पहिले ही, जैसे नाव पानीमें डूबजाती है तैसे यदि दुर्योधन अर्जुनके हाथसे मारागया तो फिर ये बहुतसी गौएं हमारे किस काम आवेंगी तथा बहुतसा धन भी किस काम आवेगा ? १९ (ऐसी बातें करते २ कौरव भी उसके पीछे चलदिये) परन्तु इतने में ही वह अर्जुन दुर्योधनके समीप जापहुँचा और उसको अपना नाम सुनाकर उसकी सेनाके ऊपर टीड़ियोंकी समान बाणोंकी वर्षा करनेलगा ॥ २० ॥ अर्जुन जब कौरवयोधाओंके ऊपर बाणोंके समूहों की वर्षा करनेलगा तब उससे भूमि और आकाश ढकगए, जिससे

नान्तरिक्षञ्च पक्षिभिः ॥२१॥ तेषामापततां युद्धे नापयानेऽभवन्मतिः। शीघ्रत्वमेव पार्थस्य पूजयन्ति स्म चेतसा ॥ २२ ॥ ततः शंखं प्रदध्मौ स द्विषतां लोमहर्षणम्। विस्फार्य च धनुःश्रेष्ठं ध्वजे भूतान्यचोदयत् ॥ २३ ॥ तस्य शंखस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च। गाण्डीवस्य च घोषेण पृथिवी समकम्पत। अमानुषाणां भूतानां तेषां च ध्वजवासिनाम् ।२४। ऊर्ध्वं पुच्छान्विधुन्वाना रेभमाणाः समन्ततः। गावः प्रतिन्यवर्त्तन्त दिशमास्थाय दक्षिणाम् ॥ २५ ॥ * ॥ *

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि गोनिवर्त्तने त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ स शत्रुसेनां तरसा प्रणुद्य गास्ता विजित्याथ धनुर्धराग्र्यः। दुर्योधनायाभिमुखं प्रयातो भूयो रणं सोऽभिचिकीर्षमाणः ॥१॥ गोषु प्रयातासु जवेन मत्स्यान् किरीटिनं कृतकार्यञ्च मत्वा। दुर्योधनायाभिमुखं प्रयातं कुरुप्रवीराः सहसाभिपेतुः ॥ २ ॥ तेषामनीकानि बहूनि गाढं व्यूढानि दृष्ट्वा बहुलध्वजानि। मत्स्यस्य पुत्रं

योधा आकाश वा भूमिपरकी किसी वस्तुको नहीं देखसके ॥ २१ ॥ तो भी जो संग्राम करनेको रणभूमिमें आये थे उन्होने वहाँसे भागजानेका विचार नहीं किया, किन्तु वहाँ खड़ेहुए अर्जुनके शीघ्र २ हाथ चलानेकी प्रशंसा करनेलगे ॥ २२ ॥ तदनन्तर अर्जुनने वैरिओंके रोमाञ्च खड़े करनेवाला शंख बजाया और श्रेष्ठ धनुष पर टङ्कार देकर ध्वजामेंके प्राणियोंको भी किलकिलानेकी प्रेरणा करी ॥ २३ ॥ अर्जुनके शङ्खके शब्द रथके पहियोंकी घरघराहट और गाण्डीव धनुषके टङ्कार शब्दसे तथा ध्वजामें रहनेवाले प्राणियोंके किलकिल शब्दसे भूमि कांपउठी ॥ २४ ॥ और गौएं ऊपरको पूंछ कर उनको घुमाती २ रँभाकर चारों ओरसे लौट पड़ीं और दक्षिण दिशाकी ओरको भागने लगीं ॥ २५ ॥ तरेपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! उस धनुषधारियों में श्रेष्ठ अर्जुनने तुरन्त ही शत्रुसेनाका नाश करकै सब गौओंको जीतलिया और फिर युद्ध करनेकी इच्छासे दुर्योधनकी ओरको चलदिया ॥ १ ॥ इतनेमें ही कौरवोंके जो श्रेष्ठ योधा दुर्योधनकी सहायता करनेको आरहे थे वे, गौओंको शीघ्रतासे मत्स्य नगरकी ओरको लौटतीहुईं देखकर, अर्जुनको अपने काममें सफल हुआ जानकर तथा दुर्योधनके ऊपर चढ़कर आतेहुए देखकर एकसाथ अर्जुनके ऊपर टूटपड़े ॥ २ ॥ उस समय कौरवोंकी अनेकों ध्वजाओंवाली और दृढ़ताके साथ व्यूह रचनामें खड़ीहुई बहुतसी सेनाको देखकर, शत्रुओंका नाश करनेवाले

क्षिपतां निहन्तां वैराटिमामन्त्र्य ततोऽभ्युवाच ॥३॥ एतेन तूर्णं प्रतिपादयेमान् श्वेतान् हयान् काञ्चनरश्मियोक्त्रान्।जवेन सर्वेण कुरु प्रयत्नमासादये ऽहं कुरुसिंहवृन्दम् ॥ ४ ॥ गजो गजेनेव मया दुरात्मा योद्धुं समाकांक्षति सूतपुत्रः । तमेव मां प्रापय राजपुत्र दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम् ॥ ५ ॥ स तैर्हयैर्वातजवैर्बृहद्भिः पुत्रो विराटस्य सुवर्णकक्षैः । व्यध्वंसयत्तद्रथिनामनीकं ततोऽवहत् पाण्डवमाजिमध्ये।।६॥ तं चित्रसेनो विशिखैर्विपाठैः संग्रामजिच्छत्रुसहो जयश्च । प्रत्युद्ययुर्भारतमापतन्तं महारथाः कर्णमभीप्समानाः ॥ ७ ॥ ततः स तेषां पुरुषप्रवीरः शरासनार्चिः शरवेगतापः। व्रातं रथानामदहत्समन्युर्वनं यथाग्निः कुरुपुंगवानाम् ॥ ८ ॥ तस्मिंस्तु युद्धे तुमुले प्रवृत्ते पार्थं विकर्णोऽतिरथं रथेन । विपाठवर्षेण कुरुप्रवीरो भीमेन भीमानुजमाससाद ॥ ९ ॥ ततो विकर्णस्य धनुर्विकृष्य जाम्बूनदाग्र्योपचितं दृढज्यम् । अपात-

अर्जुनने विराटनन्दन उत्तर को पुकार कर कहा, कि- ॥३॥ ओ विराटनन्दन ! तू इन सुवर्ण की बागडोर और जोतोंवाले स्वेत घोड़ोंको खूब वेगसे इस मार्गमेंको होकर, झट दौड़ानेका उद्योग कर तो मैं कौरवों की ओरके सिंहसमान योधाओंमें श्रेष्ठ कर्णके पास पहुँचजाऊँ ॥४॥ जैसे हाथी हाथीके सामने युद्ध करना चाहताहै तैसेही यह दुष्टात्मा सूतपुत्र कर्ण मेरे सामने संग्राम करना चाहता है, इसलिये हे राजकुमार दुर्योधनका आश्रय मिलनेसे घमण्डमें भरेहुए सूतपुत्र कर्ण के पास तू मुझे शीघ्र ही लेचल ॥ ५ ॥ यह सुनकर विराटकुमार उत्तर ने पवनकी समान वेगवाले और सुवर्णकी झूलें ओढे, बड़े २ घोड़ोंको वेगसे दौड़ाया और रथियोंकी सेनाके जमावको तोड़ताहुआ रणभूमि के मध्यभागमें पाण्डवको लेगया ॥ ६ ॥ उस समय चित्रसेन, संग्रामजित्, शत्रुसह और जय आदि महारथी कर्णकी रक्षाकरनेकी इच्छासे विपाट नामक बाणोंके साथ चढ़कर आतेहुए अर्जुनके सामनेको दौड़ गए ॥ ७ ॥ परन्तु जैसे अग्निक्रोधमें भरकर वनको जलाडालता है,तैसे ही पुरुषोंमें महावीर अर्जुन, धनुषरूपी अग्निसे और बाणोंके वेगरूपी तापसे कौरवोंके बड़े २ योधाओंके रथोंके समूहको क्रोध में आकर जलानेलगा ॥ ८ ॥ जिस समय वह महाघोर युद्ध होनेलगा, उस समय कुरुवंशमें परमश्रेष्ठ योधा विकर्ण, रथमें बैठकर भयानक विपाट नामक बाणोंकी वर्षा करताहुआ अतिरथी भीमसेनके छोटेभाई अर्जुनके ऊपर चढ़ आया ॥ ९ ॥ अर्जुनने, जिसकी दोनों ओरकी अनियें सोनेसे मढ़ी हुई थीं और जिसका रोदा बड़ा मजबूत था ऐसे विकर्णके धनुषको काट डाला और फिर उसके रथकी ध्वजाको भी काट टुकड़े २ कर

यत्तं ध्वजमस्य मध्य छिन्नध्वजः सोऽप्यपयाज्जवेन ॥ १० ॥ तं शात्रवाणां गणबाधितारं कर्माणि कुर्वन्तममानुषाणि । शत्रुन्तपः पार्थममृष्यमाणः स मार्द्दयच्छरवर्षेण पार्थम् ॥ ११ ॥ स तेन राज्ञातिरथेन विद्धो विगाहमानो ध्वजिनीं कुरूणाम् । शत्रुन्तपं पञ्चभिराशु विध्वा ततोऽस्य सूतं दशभिर्जघान ॥ १२ ॥ ततः स विद्धो भरतर्षभेण बाणेन गात्रावरणातिगेन । गतासुराजौ निपपात भूमौ नगो नगाग्रादिव वातरुग्णः ॥ १३ ॥ नरर्षभास्तेन नरर्षभेण वीरा रणे वीरतरेण भग्नाः । चकम्पिरे वातवशेन काले प्रकम्पितानीव महावनानि ॥ १४ ॥ हतास्तु पार्थेन नरप्रवीरा गतासवोर्व्यां सुषुपुः सुवेषाः । वसुप्रदा वासवतुल्यवीर्याः पराजिता वासवजेन संख्ये ॥ १५ ॥ सुवर्णकार्ष्णायसवर्मनद्धा नागा यथा हैमवताः प्रवृद्धाः । तथा स शत्रून् समरे विनिघ्नन् गाण्डीवधन्वा पुरुषप्रवीरः ॥ १६ ॥ चचार संख्ये विदिशो दिशश्च दहन्निवाग्निर्वनमातपान्ते । प्रकीर्णपर्णानि यथा वसन्ते विशातयित्वा

भूमिपर गिरादिया, उसके धनुषका ध्वजा कटी, कि उसी समय विकर्ण तो तहाँ से तुरन्त भाग ही गया ॥ १० ॥ इस समय तहाँ शत्रुन्तप नामका राजा खड़ा हुआ था वह शत्रुओंके समूहको निस्तेज करनेवाले अर्जुनको, जो मनुष्योंसे न होसके ऐसा काम करते देखकर उस कर्मको सह नासका, इसकारण अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगा॥११॥ इसप्रकार कौरवोंकी सेनामें पहुँचेहुए अर्जुनको, उस अतिरथी राजाने बाणोंके प्रहारसे बींधडाला, तब अर्जुनने भी तुरन्त पांच बाण मारकर शत्रुन्तपको बींधदिया और दश बाणोंसे उसके सारथीको मारडाला भरतवंशमें श्रेष्ठ अर्जुनने, शरीर पर पहरेहुए बखतरको भेदनेवाले बाण से शत्रुन्तप को बींधडाला, सो वह तुरंत ही मरगया और जैसे पवन से टूटाहुआ वृक्ष पहाडके शिरपरसे नीचे गिरता है तैसे ही भूमि पर गिरपडा ॥ १३ ॥ इसप्रकार कौरवों के दलके महा शूरवीर योधाओं में महावीर धनंजय के प्रहार करने पर भागड पड़गई और किसी२ समय जैसे आँधीसे बडे २ वन काँपने लगते हैं तैसे ही कौरवदल काँपनेलगा ॥ १४ ॥ उस संग्राममें सुन्दर वेशधारी बहुतसे धनका दान करनेवाले और इन्द्रकी समान पराक्रमी बड़े २ अच्छे वीरोंको इंद्रनन्दन अर्जुनने रणमें हराकर मार डाला और वे प्राणहीन होकर रणभूमिमें सोगए ॥ १५ ॥ कौरवदलके ये योधा हिमालय पर्वत पर उत्पन्न हुए वृद्ध अवस्थाके हाथीसे मालूम होते थे, वे शरीरों पर सुवर्ण और फौलादके बखतर पहरेहुए थे, गरमीकी ऋतुमें जैसे अग्नि वनको जलाताहुआ चारों ओर घूमता है तैसे ही गाण्डीवधारी महा-

पवनोम्बुदांश्च ॥ १७ ॥ तथा सपत्नान् विकिरन् किरीटी चचार संख्येऽतिरथो रथेन । शोणाश्ववाहस्य हयान्निहत्य वैकर्त्तनभ्रातुरदीनसत्त्वः । एकेन संग्रामजितः शरेण शिरो जहाराथ किरीटमाली १८ तस्मिन् हते भ्रातरि सूतपुत्रो वैकर्त्तनो वीर्यमथाददानः । प्रगृह्य दन्ताविव नागराजो महर्षभं व्याघ्र इवाभ्यधावत् ॥ १९ ॥ स पाण्डवं द्वादशभिः पृषत्कैर्वैकर्त्तनः शीघ्रमथो जघान । विव्याध गात्रेषु हयांश्च सर्वान् विराटपुत्रश्च करे निजघ्ने ॥ २० ॥ तमापतन्तं सहसा किरीटी वैकर्त्तनं वै तरसाभिपत्य । प्रगृह्य वेगं न्यपतज्जवेन नागं गरुत्मानिव चित्रपक्षः ॥ २१ ॥ तावुत्तमौ सर्वधनुर्धराणां महाबलौ सर्वसपत्नसाहौ । कर्णस्य पार्थस्य निशम्य युद्धं दिदृक्षमाणाः कुरवोभितस्थुः ॥ २२ ॥ स पाण्डवस्तूर्णमुदीर्णकोपः कृतागसं कर्णमुदीक्ष्य हर्षाद्

शूर अर्जुन रथमें बैठकर शत्रुओंका संहार करता हुआ रणभूमिमें फिरता था, और वसन्तऋतुमें पवन जैसे वृक्षोंके पत्तोंको इधर उधर बखेर देता है तथा आकाशमें के बादलों को तित्तर बित्तर करदेता है, तैसे ही महारथी अर्जुनभी रथमें बैठकर वैरियों का संहार करता हुआ रणभूमिमें घूमता था, फिर अलौकिक प्रबल पराक्रमी किरीटमाली अर्जुनने कर्णके भाई संग्रामजित्के रथमें जडेहुए लाल घोडोंको मारडाला और एक ही बाणसे संग्रामजित्का शिर काटडाला ॥ १६-१८ ॥ उस भाईके मारेजाते ही सूर्यनन्दन कर्णको वीरताका बडा आवेश आगया और बडा गजराज जैसे पहाडके दो शिखरोंके ऊपरको धावा करके जाता है और व्याघ्र जैसे बडेभारी बलपर चढके जाताहै तैसे ही कर्ण भी बड़े जोरमें भरकर अर्जुनके ऊपरको चढ़कर गया ॥ १९ ॥ तुरन्त ही सूर्यपुत्र कर्णने बारह बाणोंसे अर्जुनके सब अङ्गोंको बींध डाला और उसके सब घोडोंके शरीरोंमें भी बाण छेद दिये तथा विराटनन्दन उत्तरके हाथको भी घायल करदिया ॥ २० ॥ ऐसे वेग से कर्णको आतेहुए देखकर विचित्र परोंवाला गरुड़ जैसे वेगसे साँप के ऊपर चढ़कर आता है, तैसे ही अर्जुन भी बडे वेगसे एकायकी कर्णके ऊपर आटूटा ॥ २१ ॥ अर्जन और कर्ण ये दोनो सब धनुष धारियोंमें बढकर महाबली और सब वैरियोंके सामने टक्कर झेलने वाले थे; जब कौरवोंने सुना, कि-कर्ण और अर्जुनका युद्ध होनेलगा तो वे इस युद्धको देखनेके लिये चारों ओर खडे होगए ॥ २२ ॥ पाण्डुनन्दन अर्जुन, अपराधी कर्णको देखते क्षण ही क्रोधके आवेश में भरगया और उसने बडी प्रसन्नतासे कर्णके ऊपर भयानक बाणोंके समूहों की वर्षा करके एक क्षणमें कर्णके घोड़े, रथ और कर्णको

छणेन साश्वं सरथं ससारथिमन्तर्दधे घोरशरौघवृष्ट्या ॥ २३ ॥ ततः सुविद्धा सरथाः सनागा योधा विनेदुर्भरतर्षभाणाम् । अन्तर्हिता भीष्ममुखाः सहाश्वाः किरीटिना कीर्णरथाः पृषत्कैः ॥ २४ ॥ स चापि तानर्जुनबाहुमुक्तांश्छरान् शरौघैः प्रतिहत्य वीरः । तस्थौ महात्मा सधनुः सबाणः सविस्फुलिंगोऽग्निरिवाशु कर्णः ॥ २५ ॥ ततस्तु बभूव तलतालशब्दः सशंखभेरीपणवप्रणादः । प्रक्ष्वेडितज्यातलनिःस्वनन्तं वैकर्त्तनं पूजयतां कुरूणाम् ॥ २६ ॥ उद्धूतलांगूलमहापताकध्वजोत्तमांसाकुलभीषणान्तम् । गांडीवनिर्ह्रादकृतप्रणादं किरीटिनं प्रेक्ष्य ननाद कर्णः ॥ २७ ॥ स चापि वैकर्त्तनमर्दयित्वा साश्वं ससूतं सरथं पृषत्कैः ॥ तमाववर्ष प्रसभं किरीटी पितामहं द्रोणकृपौ च दृष्ट्वा । ॥ २८ ॥ स चापि पार्थं बहुभिः पृषत्कैर्वैकर्त्तनो मेघ इवाभ्यवर्षत् ॥ तथैव कर्णश्च किरीटमाली संछादयामास शितैः पृषत्कैः ॥ २९ ॥ तयोः सुतीक्ष्णान् सृजतोः शरौघान् महाशरौघास्त्रविवर्द्धने रणे । रथे वि-

बाणोंके ढेरके नीचे ढकदिया ॥२३॥ भीष्म आदि बडे २ योधा उनके रथ और घोडोंके ऊपर भी बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनने उनको ढक दिया और भरतवंशी महापुरुषोंके योधा, रथ तथा घोडोंको भी अच्छेप्रकारसे घायल करदिया तब वैरिदलके योधा रणभूमिमें गर्जना करनेलगे ॥ २४ ॥ और महात्मा वीर कर्णने सामनेको बाण मारकर अर्जुनके हाथमेंसे छूटेहुए बाणोंके टुकड़े २ करडाले और चिनगारियें बरसातेहुए अग्निकी समान वह धनुष और बाण लिये झपाटेके साथ रणभूमिमें आकर खड़ा होगया ॥२५ ॥ तब तो कौरव धनुषोंके रोदों का और हाथकी तालियोंका शब्द करतेहुए कर्णका सत्कार करनेलगे, वे तालियें बजानेलगे और शंख, नगाड़े तथा धौंसोंके शब्दभी करनेलगे ।२६। अर्जुनके रथकी ध्वजा पताकोवाली बल्लीपर ऊपरको पूँछ उठाये जो वानर बैठाथा उसकी पूछ बड़ीऊंची पताकासो मालूम होतीथी और उस पताकाकी बल्लीपर बैठेहुए अति आकुल भूत आदि भी अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी टंकारके साथ २ बड़ा शब्द कररहे थे, ऐसे अर्जुनको देखकर कर्ण गरजनेलगा ॥ २७ ॥ तब किरीटी अर्जुनने, घोड़े, सारथी और रथसहित कर्णके ऊपर बाणोंकी वर्षा करके उसको खूब ही घायल किया और फिर द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्यकी ओरको देखकर जोरके साथ भीष्म पितामहके ऊपर बाणोंकी वर्षा करी ॥ २८ ॥ सूर्यनन्दन कर्णनेभी अर्जुनके ऊपर मेघकी समान बहुतसे बाणोंकी वर्षा करी, तैसेही किरीटमालीने भी तीखे बाणोंसे कर्णको ढकदिया ॥ २९ ॥ जहां बड़े२ बाणोंके समूह और अस्त्रोंसे मारकाट चलरही थी ऐसे रण

लग्नाविव चन्द्रसूर्यौ घनान्तरेणानुददर्श लोकः ॥ ३० ॥ अथाशुकारी चतुरो हयांश्च विव्याध कर्णो निशितैः किरीटिनः । त्रिभिश्च यन्तारममृष्यमाणो विव्याध तूर्णं त्रिभिरस्य केतुम् ॥ ३१ ॥ ततोऽभिविद्धः समरावमर्दी प्रबोधितः सिंह इव प्रसुप्तः । गाण्डीवधन्वा ऋषभः कुरूणामजिह्मगैः कर्णमियाय जिष्णुः ॥ ३२ ॥ शरास्त्रवृष्ट्या निहतो महात्मा प्रादुश्चकारातिमनुष्यकर्म । प्राच्छादयत् कर्णरथं पृषत्कैर्लोकानिमान् सूर्य्य इवांशुजालैः ॥ ३३ ॥ स हस्तिनेवाभिहतो गजेन्द्रः प्रगृह्य भल्लान्निशितान्निषङ्गात् । आकर्णपूर्णञ्च धनुर्विकृष्य विव्याध गात्रेष्वथ सूतपुत्रम् ॥ ३४ ॥ अथास्य बाहूरुशिरोललाटं ग्रीवां वराङ्गानि परावमर्दी । शितैश्च बाणैर्युधि निर्बिभेद गाण्डीवमुक्तैरशनिप्रकाशः ॥ ३५ ॥ स पार्थमुक्तरिपुभिः प्रणुन्नो गजो गजेनेव जितस्तर-

---

में जब कि-वे दोनो एक दूसरेके ऊपर तीखे बाण फेंक रहे थे उस समय वे दोनो रथोंमें बैठेहुए लोगोंका, मेघोंके मध्यमें रथों पर बैठे हुए सूर्य चन्द्रमासे दीखते थे ॥ ३० ॥ इसप्रकार संग्राम चल रहा था उस समय कर्णने आवेश में भरकर बड़ी ही शीघ्रतासे ठीक कियेहुए बाण मार कर अर्जुनके चारों घोड़ोंको बींधडाला, तीन बाण सारथीके छेद दिये और तीन बाणोंसे उसकी ध्वजाको काटडाला ॥ ३१ ॥ इसप्रकार बाणोंके प्रहारसे जब अर्जुन घायल होगया तब, संग्रामके समय वैरिओंका प्राणान्त करनेवाला अर्जुन, सोकर उठेहुए सिंहकी समान जागगया और वह कुरुओंमें श्रेष्ठ गाण्डीव धनुषमें से कर्णके ऊपर सीधे बाण मारताहुआ उसके सामनेको बढ़नेलगा ॥ ३२ ॥ महात्मा धनञ्जयने, कर्णके बाण और अस्त्रोंकी वर्षासे घायल होजाने पर, मनुष्योंसे न होसकने वाला पराक्रम करना आरम्भ करदिया और जैसे सूर्य किरणोंके समूहसे इस जगत्को ढकदेता है तैसे ही धनञ्जयने भी बाणोंकी वर्षा करके कर्णके रथको ढकदिया ॥ ३३ ॥ एक हाथीके प्रहार करने पर जसे दूसरा बड़ा हाथी जोर में भरकर उसके ऊपरको चढ़ आता है तैसे ही अर्जुन भी कर्णके प्रहारसे आवेशमें आकर कर्णके ऊपर टूटपड़ा और उसने भाथेमेंसे भालेके आकारके तीखे बाण तुरन्त ही बाहर निकाल लिये और धनुषको कानोंतक खेंच उससे कर्णके सब शरीरमें बाणोंका प्रहार करकें उसको घायल करडाला ॥ ३४ ॥ अरिमर्दन अर्जुनने इस संग्राममें गाण्डीव धनुषमेंसे वज्रकी समान तेजस्वी और तेज कियेहुए बाण मारकर कर्णकी भुजा, जंघा, मस्तक, ललाट और कण्ठ आदि उत्तम २ अङ्गोंको घायल करडाला ॥ ३५ ॥ उस समय, जैसे आवेशमें भराहुआ हाथी, हाथीसे हारकर

स्वी । विहाय संग्राममशिरः प्रयातो वैकर्त्तनः पाण्डवबाणतप्तः ॥ ३६ ॥
इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोग्रहे कर्णापयाने
चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

वैशम्पायन उवाच । अपयाते तु राधेये दुर्य्योधनपुरोगमाः । अनीकेन यथास्वेन शनैराच्छेन्त पाण्डवम् ॥ १ ॥ बहुधा तस्य सैन्यस्य व्यूढस्यापततः शरैः । अधारयत वेगं स वेलेव तु महोदधेः ॥ २ ॥ ततः प्रहस्य बीभत्सुः कौन्तेयः श्वेतवाहनः । दिव्यमस्त्रं प्रकुर्वाणः प्रत्यायाद्रथसत्तमः ॥ ३ ॥ यथा रश्मिभिरादित्यः प्रच्छादयति मेदिनीम् । तथा गांडीवनिर्मुक्तैः शरैः पार्थो दिशो दश ॥ ४ ॥ न रथानां न चाश्वानां न गजानां न वर्मणाम् । अनिविद्धं शितैर्बाणैरासीत् द्व्यङ्गुलमन्तरम् ॥ ५ ॥ दिव्ययोगाच्च पार्थस्य हयानामुत्तरस्य च । शिक्षाशिल्पोपपन्नत्वादस्त्राणाञ्च परिक्रमात् । वीर्यवत्वं द्रुतं चाग्र्यं दृष्ट्वा जिष्णोरपूजयन् ॥ ६ ॥ कालाग्निमिव बीभत्सुं निर्दहन्तमिव

भागजाता है तैसे ही सूर्यनन्दन बली कर्ण धनञ्जयके गाण्डीव धनुष में से छोडे हुए बाणोंसे घायल होकर घावोंके घावोंसे व्याकुल होनेके कारण रणभूमिके मुहाने को छोड़ शीघ्रतासे भागाहुआ चलागया ॥ ३६ ॥ चौअनवां अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥ * ॥ *

वैशम्पायन कहते हैं, कि—राधाके पुत्र कर्णके रणभूमिमें से भाग-जाने पर दुर्योधन आदि कौरव योधा अपनी २ सेनाके साथ धीरे धीरे अर्जुनके ऊपर टूटपडे ॥ १ ॥ परन्तु उस समय जैसे किनारा समुद्रके वेगको सहता है तैसे अर्जुनने भी व्यूहरचनामें गँठकर चढ़के आये और बाणोंकी वर्षा करतेहुए कौरवोंकी सेनाके वेगको रोका ॥ २ ॥ फिर रथियोंमे श्रेष्ठ श्वेत घोडोंवाले कुन्तीनन्दन धनंजयने हँसते २ कौरवोंकी सेना पर धावा किया और उनको दिव्य अस्त्रोंसे मारनेलगा ॥ ३ ॥ जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे पृथ्वीको ढकदेता है तैसे ही पार्थने गाण्डीव धनुषमेंसे निकलेहुए बाणोंसे दशों दिशाओं को ढकदिया ॥ ४ ॥ न रथियोंके, न रथोंमें न घोडोंमें न हाथियोंमें और न कवचोंमें कोई ऐसा था कि जो तीखे बाणोंसे घायल न हुआ हो, केवल दो २ अंगुल स्थान बचा था और सब स्थान घायल होरहे थे ॥ ५ ॥ विजयपानेवाले पार्थका दिव्य अस्त्रोंको चलाना, उत्तरका घोडों को हाँकनेकी विद्याको अच्छेप्रकार जानना और कलाओंका ज्ञान तथा अस्त्रोंको रणभूमिमें इधर उधरको घुमाना, वीरता और उत्तमताके साथ शीघ्रतासे अस्त्रोंका छोडना आदि देखकर सब वैरी अर्जुन की बडाई करनेलगे ॥ ६ ॥ जैसे प्रलयकालका अग्नि प्रजाओंको भस्म

प्रजाः । नारयः प्रेक्षितुं शेकुर्ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ७ ॥ तानि प्रस्ता-
न्यनीकानि रेजुरर्जुनमार्गणैः । शैलं प्रति बलाभ्राणि व्याप्तानीवार्क-र-
श्मिभिः ॥ ८ ॥ अशोकानां वनानीव छन्नानि बहुशः शुभैः । रेजुः
पार्थशरैस्तत्र तदा सैन्यानि भारत ॥ ९ ॥ अर्जोर्जुनशरैः शीर्णं शुष्य-
त्पुष्पं हिरण्मयम् । छत्राणि च पताकाश्च खे दधार सदागतिः ॥ १० ॥
स्वबलत्रासनात्त्रस्ताः परिपेतुर्दशो दश । रथांगदेशानादाय पार्थ-
च्छिन्नयुगा हयाः ॥ ११ ॥ कर्णकक्षविषाणेषु ह्यन्तरोष्ठेषु चैव ह ।
मर्मस्वंगेषु चाहत्यापातयत् समरे गजान् ॥ १२ ॥ कौरवाग्रगजाना-
न्तु शरीरैर्गतचेतसाम् । क्षणेन संवृता भूमिर्मेघैरिव नभस्तलम् १३
युगान्तसमये सर्वं यथा स्थावरजंगमम् । कालक्षयमशेषेण दहत्यग्र-
शिखः शिखी । तद्वत् पार्थो महाराज ददाह समरे रिपून् ॥ १४ ॥
ततः सर्वास्त्रतेजोभिर्धनुषो निःस्वनेन च । शब्देनामानुषाणां च भू-
तानां ध्वजवासिनाम् । भैरवं शब्दमत्यर्थं वानरस्य च कुर्वतः ॥ १५ ॥

करने लगता है तैसे ही जब अर्जुन भी रणमें वैरियोंको भस्म करने
लगा, तब वैरी, धधकतेहुए अग्निकी समान पार्थकी ओरको देख
भी नहीं सके॥७॥जैसे पहाड़के ऊपर महाबली मेघ सूर्यकी किरणोंसे
छाजाते हैं तैसे ही धनंजयके बाणोंसे ढकीहुई कौरवोंकी बलवती सेना
भी शोभाको प्राप्त हुई॥८॥ हे भारत ! उस समय तहाँ अर्जुनके बाणों
से अधिकतर ढकीहुई कौरवसेनाएं पुष्पोंसे ढकेहुए अशोकके वनों
की समान शोभाको प्राप्त हुईं ॥९॥ जैसे पीले चम्पाके फूलोंकी माला
मेंसे गिरेहुए एक सूखतेहुए फूलको वायु आकाशमें उड़ाये फिरता है
तैसे ही अर्जुन भी अपने बाणोंसे वैरियोंके छत्र और पताकाओंको
आकाशमें उड़ा रहा था ॥ १० ॥ अर्जुनके बाणोंसे जिनके जोत कट
गए हैं ऐसे वैरियोंके घोडे अपनी सेनामेंकी व्याकुलतासे भयभीत
होगए और रथोंकी धुरियोंके एक ओरके भागोंको ले२ कर दशों
दिशाओंमेंको भागनेलगे ॥ ११ ॥ संग्रामभूमिमें हाथियोंके, कान,
कोख, दाँत और भीतरके होठ इन सब अङ्गोंमें घायल करके गिरा
दिया ॥ १२ ॥ कौरवोंकी सेनामें आगे चलनेवाले हाथी मर २ कर
गिरे तो उनके शरीरोंसे क्षणभरमें ढकीहुई पृथ्वी, मेघोंसे ढकेहुए
आकाशसी प्रतीत होनेलगी ॥ १३ ॥ हे महाराज जैसे प्रलयकालमें
अग्नि अपनी भयानक लपटोंसे इस चराचर सब जगत्को जला
कर भस्म करडालता है तैसे ही रणमें अर्जुन भी रिपुओंको जलाने
लगा ॥ १४ ॥ फिर रिपुनाशी बलवान् अर्जुनने सब प्रकारके अस्त्रोंके
तेजोंसे, धनुषकी टङ्कारसे, ध्वजामें रहनेवाले अलौकिक प्राणियोंके

दैवारिपाश्च बीभत्सुस्तस्मिन् दीर्योंधगे बले। भयमुत्पादयामास बल वानरिमर्दनः ॥ १६ ॥ रथशक्तिममित्राणां प्रागेव निपतद्भुवि। सोपयात्सहसा पश्चात् साहसाच्चाभ्युपेयिवान् ॥ १७ ॥ शरव्रातैः सुतीक्ष्णाग्रैः समादिष्टैः खगैरिव। अर्जुनस्तु खमावव्रे लोहितप्राशनैः खगैः ॥ १८ ॥ अत्र मध्ये यथार्कस्य रश्मयस्तिग्मतेजसः। दिशासु च तथा राजन् न संख्याताः शरास्तदा ॥ १९ ॥ सकृदेवानतं शेकू रथमभ्यसितुं परे। अलभ्यः पुनरश्वैस्तु रथात् सोऽतिप्रपादयेत् ॥ २० ॥ ते शरा द्विट्शरीरेषु यथैव न ससज्जिरे। द्विडनीकेषु बीभत्सोर्न ससज्ज रथस्तदा ॥ २१ ॥ स तद्विक्षोभयामास ह्यरातिबलमञ्जसा। अनन्तभोगो भुजगः क्रीडन्निव महार्णवे ॥ २२ ॥ अस्यतो नित्यमत्यर्थं सर्वमेवातिगस्तथा। अश्रुतः श्रूयते भूतैर्धनुर्घोषः किरीटिनः २३ सन्ततास्तत्र मातंगा बाणैरल्पान्तरान्तरे। संवृतास्ते न दृश्यन्ते मेघा

शब्दोंसे, वानर के डरावने किलकिल शब्दसे तथा शंखके शब्दसे वैरियोंकी सेनाको भयभीत करडाला ॥ १५ ॥ १६॥ वैरियोंके शरीरों की शक्तिको प्रथम दर्शनमात्रसे ही नष्ट करदिया और फिर असमर्थोंके ऊपर हाथ छोड़ना अनुचित विचार कर धनंजय आप ही तहाँसे चलागया और फिर एकायकी उनके साथ युद्ध करनेको चढ़आया १७ रुधिरका स्वाद चखनेवाले तीखी चोंचके पक्षियोंको आज्ञा देने पर जैसे उनसे आकाश ढकजाता है तैसे ही अर्जुनने रुधिर पीनेवाले और बड़ी ही तेज धारके बहुतसे बाण धनुषमेंसे छोड़कर आकाश को छादियो ॥ १८ ॥ उस समय हे राजन्! जैसे एक पात्रमें सूर्यकी किरणें सङ्कोचसे रहतीं हैं तैसे ही दिशाओंमें भी असंख्यों बाण संकोचसे रहे थे ॥१९॥ जब अर्जुनका रथ बहुत ही समीप आपहुँचता था उस समय एकवार ही शत्रु उसको पहिचानसकते थे, क्योंकि-- वे ज्यों ही उसको देखते थे, कि—इतनेमें ही अर्जुन उनको रथमेंसे गिरा घोड़ों सहित परलोकमें भेजदेता था ॥२०॥ जैसे अर्जुनके बाण वैरिओंके शरीरोंमें घुसकर अटकते नहीं थे, किंतु पार पार निकल जाते थे तैसे ही उसका रथ भी उस समय शत्रुओंकी सेनामें अटके विना निकलाहुआ चलाजाता था ॥ २१ ॥ अनन्त फणोंवाले शेषनाग जैसे महासागरमें सुखसे विहार करके उसको वँघोलडालते हैं तैसे ही अर्जुनने भी कौरवदलमें विनाश्रमके घूमकर उनमें खलबली डाल दी ॥ २२ ॥ जिस समय अर्जुन वार २ धनुषको खैंचकर बाणोंको फेंकता था उस समय, पहिले कभी न सुनेहुए सब शब्दोंसे बड़ेचढ़े उसके धनुषकी टंकारके शब्दको लोग सुनते थे॥२३॥ उस रणभूमिमें

इव गभस्तिभिः ॥ २४ ॥ दिशोनुभ्रमतः सर्वाः सव्यदक्षिणमस्यतः । सततं दृश्यते युद्धे सायकासनमण्डलम् ॥ २५ ॥ पतन्त्यरूपेषु यथा चक्षूंषि न कदाचन । नालक्ष्येषु शराः पेतुस्तथा गाण्डीवधन्वनः २६ मार्गो गजसहस्रस्य युगपद्गच्छतो वने । यथा भवेत्तथा जज्ञे रथमार्गः किरीटिनः ॥ २७ ॥ नूनं पार्थजयैषित्वाच्छक्रः सर्वामरैः सह । हन्त्यस्मानित्यमन्यन्त पार्थेन निहताः परे ॥ २८ ॥ घ्नन्तमत्यर्थमहितान् विजयन्तम्र मेनिरे । कालमर्जुनरूपेण संहरन्तमिव प्रजाः ॥ २९ ॥ कुरुसेनाशरीराणि पार्थेनैवाहतान्यपि । सेदुः पार्थहतानीव पार्थकर्मानुशासनात् ॥ ३० ॥ ओषधीनां शिरांसीव द्विषच्छीर्षाणि सोन्वयात् । अवनेशुः कुरूणां हि वीर्याण्यर्जुनजाद्भयात् ॥ ३१ ॥ अर्जुनानिलभिन्नानि वनान्यर्जुनविद्विषाम् । चक्रुर्लोहितधाराभिर्धरणीं लोहितान्तराम् ॥ ३२ ॥ लोहितेन समायुक्तैः पांशुभिः पवनोद्धतैः । बभूवुर्लोहि-

---

बाणोंसे घायल होकर थोड़ी दूर पर पड़ेहुए हाथियोंके समूह, सूर्यकी किरणोंसे छायेहुए मेघोंसरीखे दीखते थे ॥२४॥ अर्जुन सब दिशाओंमें को घूम २ कर दाहिने बायें ओरको बराबर बाण छोड़ता था, इसकारण रणमें उसका धनुष मण्डलाकारसा दीखता था ॥ २५ ॥ आंखें जैसे कभी आकाररहित पदार्थोंपर नहीं पड़तीं तैसे ही अर्जुनके बाण निशानेसे बचकर किसी दूसरे स्थान पर नहीं पड़े ॥२६॥ इकट्ठे होकर वनमें जातेहुए हजारों हाथियोंको जैसे मार्ग मिलजाता है तैसे ही कौरवदलमें जातेहुए अर्जुनके रथको भी चाहे तहाँ मार्ग मिल जाता था ॥ २७ ॥ अर्जुन जिन शत्रुओंको मारडालता था वे शत्रु यह मानलेते थे, कि—अवश्य ही इन्द्र अर्जुनकी विजय चाहता है इस कारण वही सब देवताओंके साथ आकर हमें मारडालता है ॥ २८ ॥ रणभूमिमें सबका पूरा २ संहार करतेहुए अर्जुनको देखकर वे समझतेथे, कि—यह तो अर्जुनके रूपमें प्रजाका संहार करनेवाला काल ही चढ़ आया है ॥ २९ ॥ अर्जुनने कौरवदलके योधाओंके शरीरोंको ऐसा घायल करडालाथा कि—उसकी उपमा अर्जुनके युद्धके सिवाय और किसी संग्रामसे दी ही नहीं जासकती ॥ ३० ॥ उसने धानोंकी बालोंकी समान शत्रु सेनाके शिर क्रम २ से काटडाले, उस समय अर्जुनके भयसे कौरवोंका बल जरा २ नष्ट होगया अर्जुन के शत्रुरूपी वन अर्जुनरूपी पवनसे छिन्न भिन्न होगए और रुधिररूपी लाल निर्यास (वृक्षमद) से भूमि बड़ी ही लाल २ होगई ॥ ३२ ॥ रुधिरसे लाल रङ्गकी हुई धूलि, पवनसे आकाशमें उड़नेलगी,

तास्तत्र भृशमादित्यरश्मयः ॥ ३३ ॥ सार्कं खन्तत् क्षणेनासीत् सन्ध्यायामिव लोहितम् । अप्यस्तं प्राप्य सूर्योऽपि निवर्त्तेत न पांडवः॥३४ तान् सर्वान् समरे शूरः पौरुषे समवस्थितान् । दिव्यैरस्त्रैरचिन्त्यात्मा सर्वानार्च्छद्धनुर्धरान् ॥ ३५ ॥ स तु द्रोणं त्रिसप्तत्या क्षुरप्राणां समार्पयत् । दुःसहं दशभिर्बाणैर्द्रौणिमष्टाभिरेव च ॥ ३६ ॥ दुःशासनं द्वादशभिः कृपं शारद्वतं त्रिभिः । भीष्मं शान्तनवं षष्ट्या राजानञ्च शतेन ह । कर्णञ्च कर्णिना कर्णे विव्याध परवीरहा ॥ ३७ ॥ तस्मिन् विद्धे महेष्वासे कर्णे सर्वास्त्रकोविदे । हताश्वसूते विरथे ततोऽनीकमभज्यत ॥ ३८ ॥ तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पार्थमाजिस्थितं पुनः । अभिप्रायं समाज्ञाय वैराटिरिदमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ आस्थाय रुचिरं जिष्णो रथं सारथिना मया । कतमं यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया ॥ ४० ॥ अर्जुन उवाच ॥ लोहिताश्वमरिष्टं यं वैयाघ्र-

---

इसकारण सूर्य की किरणें भी बहुत ही लाल २ होगईं ॥ ३३ ॥ कुछ ही देरमें सूर्य सहित वह आकाश, जैसे सन्ध्याकालमें होताहै तैसे लाल २ होगया, फिर सूर्यनारायण अपनी किरणोंको रोककर अस्ताचलको प्राप्त होगए, तो भी अर्जुन अपने बाणोंका छोड़नेसे नहीं रुका ॥ ३४ ॥ किन्तु जिसके मनकी बात न जानीजाय ऐसा वीर अर्जुन, रणभूमि में अपने बलपर ठहरेहुए और धनुषको धारण करनेवाले सब योधाओंके सामने अपने दिव्य अस्त्रोंकी सहायतासे फिर लड़ने को चलदिया ॥ ३५ ॥ पहिले झपाटे में ही उसने क्षुप्र नामके तिहत्तर बाण द्रोणाचार्यके मारे, दश बाण दुःसह नामवाले कौरवके मारे और आठ बाण अश्वत्थामाके मारे॥३६॥ बारह दुःशासनके और तीन शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यके मारे, साठ शन्तनुके पुत्र भीष्मके मारे, सौ दुर्योधनके मारे और फिर वैरियोंका संहार करनेवाले वीर अर्जुनने कर्णि नामका बाण मारकर कर्णके कानको बींधदिया ॥ ३७ ॥ महाधनुर्धारी और सब अस्त्रविद्यामें चतुर कर्णके कानको बींध देनेपर उसके रथके घोड़ोंको और सारथिको भी मारडाला तब कर्ण रथहीन होगया और उसकी सेनामें भागड़ पड़गई ॥ ३८ ॥ शत्रु की सेना में भागड़ पड़ीहुई देखकर और अर्जुनको रणमें खड़ा देखकर तथा उसके अभिप्रायको समझकर उत्तर इसप्रकार कहनेलगा कि—॥३९॥ हे विजयपानेवाले ! मनोहर रथमें बैठकर इस सारथिके साथ अब कौनसी सेनामें जाना चाहते हो ? आपके आज्ञा देते ही मैं उस सेना की ओरको चलूंगा ॥४०॥ अर्जुनने कहा, कि-हे उत्तर ! लाल घोड़े और

मनुपश्यसि । नीलां पताकामाश्रित्य रथे तिष्ठन्तमुत्तर ॥ ४१ ॥ कृपस्यैतदनीकाग्रं प्रापयस्वैतदेव माम्। एतस्य दर्शयिष्यामि शीघ्रास्त्रं दृढधन्विनः ॥ ४२ ॥ ध्वजे कमण्डलुर्यस्य शातकौम्भमयः शुभः। आचार्य एष हि द्रोणः सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ ४३ ॥ सदा ममैष मान्यस्तु सर्वशस्त्रभृतामपि । सुप्रसन्नं महावीरं कुरुष्वैनं प्रदक्षिणम् ॥ ४४॥ अत्रैवावरोहैनमेष धर्मः सनातनः । यदि मे प्रथमं द्रोणः शरीरे प्रहरिष्यति ॥ ४५ ॥ ततोस्य प्रहरिष्यामि नास्य कोपो भवेदिति । अस्याविदूरे हि धनुर्ध्वजाग्रे यस्य दृश्यते ॥ ४६ ॥ आचार्यस्यैष पुत्रो वै अश्वत्थामा महारथः । सदा ममैष मान्यस्तु सर्वशस्त्रभृतामपि ॥ ४७ ॥ एतस्य त्वं रथं प्राप्य निवर्तेथाः पुनः पुनः । य एष तु रथानीके सुवर्णकवचावृतः ॥ ४८ ॥ सेनाग्र्येण तृतीयेन व्यवहार्येण तिष्ठति यस्य नागो ध्वजाग्रेसौ हेमकेतनसंवृतः ॥ ४९ ॥ धृतराष्ट्रात्मजः श्रीमानेष राजा सुयोधनः । एतस्याभिमुखं वीर रथं परथारुजम् ॥ ५० ॥ प्रापयस्वैष राजा हि प्रमाथी युद्धदुर्मदः । एष द्रोणस्य शिष्याणां

नीली पताकावाले व्याघ्रकी खालसे मढ़े रथमें बैठेहुए जिस महात्मा पुरुषको तू देख रहा है वह कृपाचार्य हैं उनकी सेना के मुहाने पर तू मुझे लेचल, इस दृढ़ धनुषधारीको मैं अपनी अस्त्र चलानेकी शीघ्रता (फुरतीं) दिखाऊँगा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ और जिसकी ध्वजामें सुन्दर सोनेके कमण्डलुका चिन्ह है वह सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य हैं ॥ ४३ ॥ यह महात्मा मेरे तथा दूसरे शस्त्रधारियोंके भी मान्य हैं, तू इन परमप्रसन्न और महावीर आचार्यकी मेरे रथसे प्रदक्षिणा कर ॥ ४४ ॥ तू यहां पहिलेसे ही इनको मान्य देकर युद्ध करनेको तयार होजा, यह द्रोणाचार्य पहिले मेरे ऊपर शस्त्र छोड़ेंगे तब मैं इनके ऊपर प्रहार करूँगा, कि-जिससे इनको क्रोध न आवै ॥४५॥ इनसे थोड़ी ही दूर जिसकी ध्वजाके अग्रभागमें धनुषका चिन्ह दीखरहाहै यह द्रोणाचार्यका पुत्र महारथी अश्वत्थामा है ॥४६॥ यह सदा मेरे तथा दूसरे सब शस्त्रधारियोंके भी मान्य हैं, इसकारण तू अपने रथको इनके रथके पास लेजाकर वारंवार तहांसे पीछेको फेरना ॥ ४७ ॥ रथोंकी सेनामें यह सोनेका कवच पहर कर विश्राम विना लिये ही युद्ध करने वाली मुख्य तीसरी सेनाके साथ जो खड़ा है और जिसकी ध्वजाके अग्रभागमें सुवर्णके चिन्होवाला हाथी वना है वह धृतराष्ट्रका पुत्र श्रीमान् राजा सुयोधन है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हे वीर उत्तर! शत्रु के रथका नाश करनेवाले मेरे रथको तू उसके सन्मुख लेचल, क्योंकि-वह राजा संहार करनेवाला और रणमें सदा मदमत्त रहता है ॥५० ॥ और यह

शीघ्रास्त्रे प्रथमो मतः ॥ ५१ ॥ एतस्य दर्शयिष्यामि शीघ्रास्त्रं विपुलं रणे । नागकक्षा तु रुचिरा ध्वजाग्रे यस्य तिष्ठति ॥ ५२ ॥ एष वैकर्तनः कर्णो विदितः पूर्वमेव ते । एतस्य रथमास्थाय राधेयस्य दुरात्मनः ॥ ५३ ॥ यत्तो भवेथा संग्रामे स्पर्द्धते हि सदा मया । यस्तु नीलानुसारेण पञ्चतारेण केतुना ॥ ५४ ॥ हस्तावापी बृहद्धन्वा रथे तिष्ठति वीर्यवान् । यस्य तारार्कचित्रोसौ ध्वजो रथवरे स्थितः॥ ५५ ॥ यस्यैतत् पाण्डुरं छत्रं विमलं मूर्ध्नि तिष्ठति । महतो रथवंशस्य नानाध्वजपताकिनः ॥ ५६ ॥ बलाहकाग्रे सूर्य्यो वा य एष प्रमुखे स्थितः । हेमचन्द्रार्कसंकाशं कवचं यस्य दृश्यते ॥ ५७ ॥ जातरूपशिरस्त्राणं मनस्तापयतीव मे । एष शान्तनवो भीष्मः सर्वेषां नः पितामहः॥५८॥ राजश्रियाभिवृद्धश्च सुयोधनवशानुगः । पश्चादेष प्रयातव्यो न मे विघ्नकरो भवेत् ॥ ५६ ॥ एतेन युध्यमानस्य यत्तः संयच्छ मे हयान् । ततोऽभ्यवहदव्यग्रो वैराटिः सव्यसाचिनम् । यत्रातिष्ठत् कृपो राजन् यो-

---

द्रोणाचार्यके शिष्योंमें शीघ्रतासे अस्त्र छोड़नेवालोंमें मुख्य गिनाजाता है, इसकारण मैं इसको रणभूमिमें अपनी अस्त्र छोड़नेकी शीघ्रता दिखाऊँगा ॥ ५१ ॥ जिसकी ध्वजाके अग्रभागमें हाथीको बांधनेकी सुन्दर जंजीर लटकरही है यह सूर्यनन्दन है, जिसको तू पहिलेसे ही पहिचानता है ॥ ६२ ॥ यह सदा ही मेरे साथ डाह किया करता है, तू इस दुष्टात्मा कर्णके रथके पास पहुँचकर संग्राममें सावधान रहना ॥ ५३ ॥ सुवर्णके पांच मण्डलोंवाली नीले रङ्गकी ध्वजावाले रथमें बैठाहुआ जो हाथोंमें मोजे पहिरे बड़ेभारी धनुषवाला पराक्रमी है, ॥ ५४ ॥ जिसके श्रेष्ठ रथके ऊपर सूर्य और तारोंके चित्रोंवाली ध्वजा फहरा रही है और जिसके मस्तक पर श्वेत रङ्गका निर्मल छत्र लगरहा है॥५५॥और जो अनेकों प्रकारकी ध्वजा पताकाओंवाली बहुतसी रथसेनाके आगे, जैसे बादलोंके आगे सूर्य खड़ा हो तैसे खड़ा है ॥६६॥ जिसका सोनेका कवच सूर्य चन्द्रमाकेसा चमकताहुआ दीखरहा है, और जिसके मस्तक पर दिपताहुआ सोनेका टोप मेरे मनको सन्ताप सा देरहा है ॥५७॥ यह हम सबोंके पितामह शान्तनुनन्दन भीष्मजी हैं, यह राजलक्ष्मीमें बढेहुए हैं और दुर्योधनके अधीन रहते हैं ॥५८॥ इनके पास सबसे पीछे जाना चाहिये, क्योंकि—ये मेरे काममें विघ्नकारी नहीं होंगे, मैं जब इनके साथ युद्ध करूँ तब तू सावधान होकर रणभूमिमें मेरे रथके घोड़ोंको थामे रहना ॥५६॥ हे राजन्! इसप्रकार बातें होनेके अनन्तर विराटनन्दन उत्तर सावधान होगया और जहां

त्स्यमानो धनञ्जयम् ॥ ६० ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि अर्जुनकृप-
संग्रामे पंचपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

वैशम्पायन उवाच । तान्यनीकान्यदृश्यन्त कुरूणामुग्रधन्विनाम् । संसर्पन्ते यथा मेघा घर्मान्ते मन्दमारुताः ॥ १ ॥ अभ्यासे वाजिनस्तस्थुः समारूढाः प्रहारिणः । भीमरूपाश्च मातङ्गास्तोमराङ्कुशनोदिताः । महामात्रैः समारूढा विचित्रकवचोज्ज्वलाः ॥ २ ॥ ततः शक्रः सुरगणैः समारुह्य सुदर्शनम् । सहोपायात्तदा राजन् विश्वाश्विमरुतां गणैः ॥३॥ तदेव यक्षगन्धर्वमहोरगसमाकुलम् । शुशुभेऽभ्रविनिर्मुक्तं ग्रहाणामिव मण्डलम् ॥४॥ अस्त्राणाञ्च बलं तेषां मानुषेषु प्रयुञ्जताम् । तच्च भीमं महद्युद्धं कृपार्जुनसमागमे । द्रष्टुमभ्यागता देवा स्वविमानैः पृथक् पृथक् ॥५॥ शतं शतसहस्राणां यत्र स्थूणा हिरण्मयी । मणिरत्नमयी चान्या प्रासादं तदधारयत् ॥ ६ ॥ ततः कामगमं दिव्यं सर्वरत्नविभूषितम् । विमानं देवराजस्य शुशुभे खेचरं तदा ॥७॥ तत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्तिष्ठन्ति

अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे कृपाचार्य खड़े थे तहां अर्जुनको लेगया ॥ ६० ॥ पचपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायनने कहा, कि-हे जनमेजय ! जैसे बादल वर्षाकालमें मन्द २ पवनकी हिलोरोंसे धीरे २ चलते हैं तैसे ही उग्रधनुषवाली कौरवोंकी सेनायें भी धीरे २ चलती हुई दीखीं ॥ १ ॥ एकभागमें घुड़सवार योधा धीरे २ ही चलरहे थे, उनके समीपमें बडे २ महावत विचित्र झूलोंसे दमकतेहुए और भयानक आकारके हाथियों पर सवार होकर तोमर और अंकुशोंसे उन हाथियोंको चला रहे थे ॥ २ ॥ हे राजन् ! उस समय तहां विश्वेदेवता, अश्विनीकुमार और मरुत्गणोंके साथ इन्द्र देव विमानमें चढ़कर उन योधाओंका समागम देखनेके लिये आपहुँचे ॥ ३ ॥ यह देवता, यक्ष गन्धर्व और महानागोंसे भराहुआ भूमिका भाग, आकाशमेंसे छूटकर गिराहुआ ग्रहमण्डलसा शोभा पारहा था ॥ ४ ॥ कृपाचार्य्य और अर्जुनके महायुद्धमें मनुष्योंके ऊपर छोड़े-जाते हुए अस्त्रोंके दलको तथा उस महाभयानक युद्धको देखनेके लिये देवता अपने जुदे २ विमानोंमें बैठकर रणभूमिमें आये थे ॥५॥ एक लाख सोनेके थंभ तथा और भी कितने ही मणिरत्नोंसे जड़ेहुए थंभों पर टिकाहुआ, जिसमें कितने ही महल बनेथे ऐसा इन्द्रका इच्छानुसार चलने वाला, सब रत्नोंसे सजाहुआ और आकाशचारी दिव्य विमान दिपरहाथा ॥ ६ ॥ ७ ॥ और महाकान्तिवाले तेंतीस

सहवासवाः । गन्धर्वा राक्षसाः सर्पाः पितरश्च महर्षिभिः ॥ ८ ॥ तथा राजा वसुमना वलाक्षः सुप्रतर्द्दनः । अष्टकश्च शिबिश्चैव ययातिर्नहुषो गयः ॥ ९ ॥ मनुः पुरू रघुर्भानुः कृशाश्वः सगरो नलः । विमाने देवराजस्य समदृश्यन्त सुप्रभाः ॥ १० ॥ अग्नेरीशस्य सोमस्य वरुणस्य प्रजापतेः । तथा धातुर्विधातुश्च कुबेरस्य यमस्य च ॥ ११ ॥ अलम्बुषोग्रसेनाद्या गन्धर्वस्य च तुम्बुरोः । यथामार्गं यथोद्देशं विमानानि चकाशिरे ॥ १२ ॥ सर्वदेवनिकायाश्च सिद्धाश्च परमर्षयः । अर्जुनस्य कुरूणां च द्रष्टुं युद्धमुपागताः ॥१३॥ दिव्यानां सर्वमाल्यानां गन्धः पुण्योथ सर्वशः । प्रससार वसन्ताग्रे वनानामिव भारत ॥ १४ ॥ तत्र रत्नानि देवानां समदृश्यन्त तिष्ठताम् । आतपत्राणि वासांसि ध्वजाश्च व्यजनानि च ॥ १५ ॥ उपाशाम्यद्रजो भौमं सर्वं व्याप्तं मरीचिभिः । दिव्यगन्धानुपादाय वायुर्योधानसेवत ॥ १६ ॥ प्रभासितमिवाकाशं चित्ररूपमलंकृतम् । सम्पतद्भिः स्थितश्चापि नानारत्नावभासितैः ॥ १७ ॥ विमानैर्विविधैश्चित्रैरुपानीतैः सुरोत्तमैः । वज्रभृच्छुशुभे तत्र विमानस्थैः सुरैर्वृतः ॥ १८ ॥ बिभ्रन् मालां महातेजाः पद्मोत्पलसमायुताम् । विप्रेक्ष्य-

देवता, गन्धर्व, राक्षस सर्प, पितर, महर्षि, राजा वसुमना, वलाक्ष, सुप्रतर्दन, अष्टक, शिवी, ययाति, नहुष, गय, मनु, पुरु, रघु, भानु, कृशाश्व, सगर और नल ये सब कान्तिमान् राजे भी देवराज इन्द्रके विमानमें बैठेहुए दीखे ॥ ८—१० ॥ अग्नि, रुद्र, सोम, वरुण, प्रजापति, धाता, विधाता, कुबेर, यम अलम्बुष उग्रसेन और तुम्बुरु आदि गन्धर्व, इनके विमान भी अपने २ मान और स्थानके अनुसार आकाशमें खड़ेहुए दीखते थे ॥ ११ ॥ १२ ॥ इसप्रकार सब देवता, सिद्ध और परमऋषि अर्जुन और कौरवोंका युद्ध देखनेको तहाँ आये थे ॥ १३ ॥ हे भरतवंशी राजन्! वसन्त ऋतुके आरंभमें जैसे वनोंके सुगन्धितफूलोंकी पवित्र गन्ध चारों ओर फैलजाती है तैसे ही तहाँ भी सब प्रकारके दिव्य फूलोंकी पवित्र गन्ध चारों ओर फैल रही थी ॥ १४ ॥ तहाँ खडेहुए देवताओंके रत्न, छत्र, वस्त्र, पुष्पमालायें और पंखे चमकतेहुए दीखरहे थे ॥ १५ ॥ सेनाके पैरोंसे धूल उडना बन्द होगई थी और चारों ओर गहनोंकी किरणें फैलरही थीं तथा वायु दिव्य गन्धको लेकर योधाओंकी सेवा कररहा था ॥ १६ ॥ बड़े २ देवताओंके साथमें लायेहुए जाति २ के अनेकों प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान आतेहुए और आकर खडेहुए विमानोंकी कान्तिसे आकाश उज्वल, विचित्र और सजायाहुआ दीखता था तथा विमानोंमें बैठे देवताओंसे घिरेहुए इन्द्र भी शोभायमान होरहे थे ॥ १७ ॥ १८ ॥

माणो बहुभिर्नातृप्यत् सुमहाहवम् ॥ १६ ॥ * ॥ *

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि देवागमने षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ दृष्ट्वा व्यूढान्यनीकानि कुरूणां कुरुनन्दनः । तत्र वैराटिमामन्त्र्य पार्थो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ जाम्बूनदमयी वेदी ध्वजे यस्य प्रदृश्यते । तस्य दक्षिणतो याहि कृपः शारद्वतो यतः॥ २ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ धनञ्जयवचः श्रुत्वा वैराटिस्त्वरितस्ततः । हयान् रजतसंकाशान् हेमभाण्डानचोदयत् ॥ ३ ॥ आनुपूर्व्यात्तु तत्सर्वमास्थाय जवमुत्तमम् । प्राहिणोच्चन्द्रसंकाशान् कुपितानिव तान् हयान् ॥ ४ ॥ स गत्वा कुरुसेनायाः समीपं हयकोविदः । पुनरावर्त्तयामास तान्हयान् वातरंहसः ॥ ५ ॥ प्रदक्षिणमुपावृत्य मण्डलं सव्यमेव च । कुरून् सम्मोहयामास मत्स्यो यानेन तत्त्ववित् ॥ ६ ॥ कृपस्य रथमास्थाय वैराटिरकुतोभयः । प्रदक्षिणमुपावृत्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥ ७ ॥ ततोऽर्जुनः शंखवरं देवदत्तं महारवम् । प्रदध्मौ बलमास्थाय नाम विश्राव्य चात्मनः ॥ ८ ॥ तस्य शब्दो महानासीत्-

पद्म और उत्पलोंकी मालाको धारण करनेवाले महातेजस्वी इन्द्र, अपने पुत्र अर्जुनके बहुतसोंके साथ होतेहुए महासंग्रामको देखकर तृप्त नहीं होते थे ॥ १६ ॥ छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! फिर अर्जुन कौरवोंकी व्यूहरचनावाली सेनाओंको देखकर उत्तरसे कहनेलगा, कि—॥ १ ॥ जिसकी ध्वजामें सुवर्णकी वेदी दीखरही है, उस रथके दाहिनी ओर मेरे रथको ले चल, क्योंकि—तहाँ कृपाचार्य खडे हैं ॥ २ ॥ वैशंपायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! अर्जुनकी इस बातको सुनकर उत्तर, शीघ्र२ रुपहली रंगके और सुनहरी गहने पहरनेवाले घोड़ोंको उधरको ही हाँकनेलगा ॥ ३ ॥ और दौडानेकी जितनी रीतियें हैं उन सब रीतियोंसे क्रम २ से काम लेकर चन्द्रमाकी समान श्वेत रंगके घोडोंको हाँका और घोडे भी कोपमें भरेहुएसे भागनेलगे ॥ ४ ॥ अश्वशास्त्रमें निपुण उत्तर, अपने रथको कौरवोंके पास लेजाकर वायुकी समान वेगवाले उन घोडोंको फिर लौटाया ॥ ५ ॥ अश्वशास्त्रको जाननेवाले उत्तरने, दाहिनी ओर बाईं ओरसे रथको चक्कर देकर कौरवोंको मोहित करदियो । ६॥ और फिर बली उत्तरने निर्भयताके साथ कृपाचार्यके रथकी ओरको अपना रथ हाँका और उनकी प्रदक्षिणा करके उनके सामने जाकर खडा होगया ॥७॥ तदनन्तर अर्जुनने अपना नाम जताकर देवदत्तनामवाले बडेभारी शंखको जोरसे बजाया ॥ ८ ॥ पराक्रमी अर्जुनने जब रणभूमिमें शंखको बजाया उस समय

ध्यमानस्य जिष्णुना। तथा वीर्यवतो संखये पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ ६॥ पूजयांचक्रिरे शंखं कुरवः सहसैनिकाः। अर्जुनेन तथा ध्मातः शतधा यत्र दीर्यते ॥ १० ॥ दिवमावृत्य शब्दस्तु निवृत्तः शुश्रुवे पुनः। सृष्टो मघवता वज्रः प्रपतन्निव पर्वते ॥ ११ ॥ एतस्मिन्नन्तरे वीरो बलवीर्यसमन्वितः। अर्जुनं प्रति संरब्धः कृपः परमदुर्जयः। अमृष्यमाणस्तं शब्दं कृपः शारद्वतस्तदा ॥ १२ ॥ अर्जुनं प्रति संरब्धो युद्धार्थी स महारथः। महोदधिजमादाय दध्मौ वेगेन वीर्यवान् ॥ १३ ॥ स तु शब्देन लोकांस्त्रीनावृत्य रथिनां वरः। धनुरादाय सुमहज्ज्याशब्दमकरोत्तदा ॥ १४ ॥ तौ रथौ सूर्यसंकाशौ योत्स्यमानौ महाबलौ। शारदाविव जीमूतौ व्यरोचेतां व्यवस्थितौ ॥ १५ ॥ ततः शारद्वतस्तूर्णं पार्थं दशभिराशुगैः। विव्याध परवीरघ्नं निशितैर्मर्मभेदिभिः ॥ १६ ॥ पार्थोऽपि विश्रुतं लोके गांडीवं परमायुधम्। विकृष्य चिक्षेप बहून् नाराचान्मर्मभेदिनः ॥ १७ ॥ तानप्राप्तान् शितैर्बाणैर्नाराचान् रक्तभोजनान्। कृपश्चिच्छेद पार्थस्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥१८॥ ततः पार्थस्तु संक्रुद्धश्चित्रान् मार्गान् प्रदर्शयन्। दिशः संच्छादयन्बाणैः प्रदि-

उसका ऐसा बडा शब्द हुआ कि—मानो कोई पर्वत फट रहा है ॥६॥ कौरवोंने और उनकी सेनाने अर्जुनके शंखकी सराहना करके कहा कि-अर्जुनके इसप्रकार बजाने पर कहीं इस शंखके सौ टुकडे न होगये हों! ॥ १० ॥ उस शंखका शब्द आकाशमें फैलकर वहाँसे फिर लौटा और प्रतिध्वनि (गुंजार) रूपसे फिर सुनाई आनेलगा, परन्तु जैसे ऊपर इन्द्रका माराहुआ वज्र नीचे गिरने पर शब्द करता है वैसा ही शब्द उसने किया ॥ ११ ॥ महादुर्जय, बल वीरतावाले शूर कृपाचार्य उसके शंखके शब्दको न सहसके और उनको अर्जुनके ऊपर क्रोध आगया ॥ १२ ॥ और वीर महारथी कृपाचार्यने भी अर्जुनके ऊपर कुपित होकर युद्ध करनेके लिये अपना शंख हाथमें लेकर बजाया ॥१३॥ और उस शब्दसे तीनों लोकोंको भरकर महारथी कृपाचार्यने बडेभारी धनुषको उठा उसको टंकार शब्द किया ॥ १४ ॥ दोनों बलवान् रथी रणभूमिमें खडे होकर परस्पर युद्ध करनेलगे, उस समय वे शरद् ऋतुके मेघसे मालूम होते थे ॥ १५ ॥ तदन्तर कृपाचार्यने तुरन्त ही मर्मभेदी दश बाण मारकर शत्रुमर्दन अर्जुनको बींधदिया ॥ १६ ॥ अर्जुनने भी जगत्में प्रसिद्ध श्रेष्ठ गाण्डीवधनुषको खेंचकर मर्मस्थानोंको भेदनेवाले बहुतसे बाण कृपाचार्यके मारे ॥ १७ ॥ परंतु कृपाचार्यने रुधिरका भोजन करनेवाले अर्जुनके मारेहुए सकडों और सहस्रों बाणोंके सामने तीखे बाण मारकर उनके टुकडे २ करडाले ॥ १८ ॥ तब समर्थ महारथी अर्जुन क्रोधमें भरगया और उसने युद्ध

श्च महारथः । एकच्छायमिवाकाशमकरोत् सर्वतः प्रभुः ॥ १९ ॥ प्राच्छादयदमेयात्मा पार्थः शरशतैः कृपम् । स शरैरर्दितः क्रुद्धः शितैरग्निशिखोपमैः ॥ २० ॥ तूर्णं दशसहस्रेण पार्थमप्रतिमौजसम् । अर्दयित्वा महात्मानं ननर्द समरे कृपः ॥ २१ ॥ ततः कनकपर्वाग्रैर्वीरः सन्नतपर्वभिः । त्वरन् गांडीवनिर्मुक्तैरर्जुनस्तस्य वाजिनः २२ चतुर्भिश्चतुरस्तीक्ष्णैरविध्यत् परमेषुभिः । ते हया निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः । उत्पेतुः सहसा सर्वे कृपः स्थानादथाच्यवत् २३ च्युतन्तु गौतमं स्थानात् समीक्ष्य कुरुनन्दनः । नाविध्यत् परवीरघ्नो रक्षमाणोऽस्य गौरवम् ॥२४ ॥ स तु लब्ध्वा पुनः स्थानं गौतमः सव्यसाचिनम् । विव्याध दशभिर्बाणैस्त्वरितः कंकपत्रिभिः ॥ २५ ॥ ततः पार्थो धनुस्तस्य भल्लेन निशितेन ह । चिच्छेदैकेन भूयश्च हस्तावापमथाहरत् ॥ २६ ॥ अथास्य कवचं बाणैर्निशितैर्मर्मभेदिभिः । व्यधमन्न

करनेकी अनेकों रीतियें दिखाकर बाणों की वर्षासे दिशाओंको और कोनोंको भरदिया तथा आकाशको चारों ओरसे अन्धकारमय करदिया ।१९।फिर असीम बलधारी अर्जुनने आकाशको छानेके साथ२ सैंकड़ों बाणोंसे कृपाचार्यको ढकदिया तब कृपाचार्य अग्निकी लपटकी समान तेज बाणोंके प्रहारकी पीड़ासे क्रोधमें भरगए और अनुपम तेजस्वी महात्मा अर्जुनके ऊपर दश हजार बाणोंका प्रहार करके उस रणभूमि में गरजने लगे ॥ २० ॥ २१ ॥ तब शूर अर्जुनने भलेप्रकार नमेहुए पर्वोंवाले और जिनके फलोंपर सोनेका रङ्ग होरहा था ऐसे श्रेष्ठ और तीखे चार बाण मारकर कृपाचार्यके रथमें जुतेहुए चारों घोड़ोंको घायल करडाला, उन कोपमें भरे सर्पोंकी समान तीखे बाणोंका प्रहार होते ही कृपाचार्यके रथके सब घोड़े एकसाथ अचेत होगए और कृपाचार्य भी अपने स्थान परसे गिरगए ॥ २२ ॥ २३ ॥ तुरन्त ही शूर शत्रुओंका संहार करनेवाले पाण्डुनन्दन अर्जुनने कृपाचार्यको अपने स्थान परसे गिराहुआ देखकर उनका गौरव रखनेके लिये आगे को बाण मारना बंद करदिया ॥ २४ ॥ परन्तु कृपाचार्य तुरन्त ही सावधान होकर अपने स्थान पर बैठगए और कङ्क पक्षीके पंखवाले तीखे दश बाण मारकर सव्यसाची अर्जुनको बींधदिया ॥ २५ ॥ तब तो अर्जुनने भी तेज कियेहुए भल्लनामक बाण मारकर कृपाचार्यके धनुषको काटडाला और फिर एक भल्ल नामका बाण मारकर उनके हाथोंके मोजोंको काटदिया और फिर तेजकियेहुए मर्मभेदी बाणोंको मारकर उनके कवचको भी टुकडे २ करदिया, परन्तु यह सब करते

च पार्थोऽस्य शरीरमवपीडयत् ॥२७॥ तस्य निर्मुच्यमानस्य कवचात् काय आबभौ। समये मुच्यमानस्य सर्पस्येव तनुर्यथा ॥ २८ ॥ छिन्ने धनुषि पार्थेन सोऽन्यमादाय कार्मुकम्। चकार गौतमः सज्यं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २९ ॥ स तदप्यस्य कौन्तेयश्चिच्छेद नतपर्वणा। एवमन्यानि चापानि बहूनि कृतहस्तवत्। शारद्वतस्य चिच्छेद पाण्डवः परवीरहा ॥ ३० ॥ स छिन्नधनुरादाय रथशक्तिं प्रतापवान्। प्राहिणोत्पाण्डुपुत्राय प्रदीप्तामशनीमिव ॥ ३१ ॥ तामर्जुनस्तदायान्तीं शक्तिं हेमविभूषिताम्। वियद्गतां महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ॥ ३२ ॥ सापतद्दशधा छिन्ना भूमौ पार्थेन धीमता ॥ ३३ ॥ युगपच्चैव भल्लैस्तु ततः सज्यधनुः कृपः। तमाशु निशितैः पार्थं विभेद दशभिः शरैः ॥ ३४ ॥ ततः पार्थो महातेजा विशिखानग्नितेजसः। चिक्षेप समरे क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान् ॥ ३५ ॥ अथास्य युगमेकेन चतुर्भिश्चतुरो हयान्। षष्ठेन च शिरः कायाच्छरेण रथसारथेः ॥ ३६ ॥ त्रिभिस्त्रिवेणुं समरे

हुए भी उनके शरीरको जरा पीडा नहीं दी ॥ २६ ॥ २७ ॥ जब कृपाचार्यके शरीरपरका कवच टूटफटा तब उसमेंसे वाहर निकलाहुआ कृपाचार्यका शरीर, समय पर कैंचुली छोड़नेवाले सर्पकी समान शोभायमान हुआ ॥२८॥ जब अर्जुनने कृपाचार्यके धनुषको काटडाला तब कृपाचार्यने दूसरा धनुष लेकर उसको ठीक किया, यह बात अचरजकीसी हुई ॥२९॥ परन्तु अर्जुनने नमेहुए पर्ववाला वाणमारकर उस धनुषको भी काटडाला इसप्रकार शस्त्रविद्यामें शिक्षित पुरुषकी समान वैरियोंको मारनेवाले अर्जुनने ऐसे वहुतसे धनुष काटडाले ॥ ३० ॥ धनुषोंके कटजाने पर प्रतापी कृपाचार्यने बलतेहुए, वज्रसी, रथशक्ति पाण्डुनन्दनके ऊपर फेंकी ॥ ३१ ॥ तब अर्जुनने अपने ऊपर आती हुई, सुवर्णसे जड़ी और बड़ीभारी उल्काकी समान वह शक्ति ज्यों आकाशमें आई त्यों ही दश वाण मारकर काटडालीं ॥ ३२ ॥ बुद्धिमान् अर्जुनने भल्ल नामके वाण मारकर उस शक्तिके एकसाथ दश टुकड़े करडाले और वह शक्ति भूमिपर गिरी, कि—उसी समय कृपाचार्यने भी धनुषको चढ़ा तेज कियेहुए दश वाण मारकर अर्जुनको घायल करदिया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तब तो महातेजस्वी अर्जुन कोपमें भरगया और उस संग्राममें उसने सान पर धरकर तेज किये हुए अग्निकी समान तेजवाले तेरह वाण कृपाचार्यके मारे ॥ ३५ ॥ उन तेरह वाणोंमेंसे एक वाणसे इनके जुएको काटा, चार वाणोंसे चार घोड़ोंको मारडाला और छठे वाणसे रथके सारथीका शिर धडसे अलग करदिया ॥ ३६ ॥ उस महारथीने संग्राममें तीन वाणोंसे रथके

द्वाभ्यामच्चं महारथः । द्वादशेन तु भल्लेन चकर्त्तास्य ध्वजं तदा ॥ ३७ ॥ ततो वज्रनिकाशेन फाल्गुनः प्रहसन्निव । त्रयोदशेनेन्द्रसमः कृपं वक्षस्यविध्यत ॥ ३८ ॥ स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । गदापाणिरवप्लुत्य तूर्णं चिक्षेप तां गदाम् ॥ ३९ ॥ सा च मुक्ता गदा गुर्वी कृपेण सुपरिष्कृता । अर्जुनेन शरैर्नुन्ना प्रतिमार्गमथागमत् ॥ ४० ॥ तन्तु योधाः परीप्सन्तः शारद्वतममर्षणम् । सर्वतः समरे पार्थं शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ४१ ॥ ततो विराटस्य सुतो सव्यमावृत्य वाजिनः । यमकं मण्डलं कृत्वा तान् योधान् प्रत्यवारयत् ॥ ४२ ॥ ततः कृपमुपादाय विरथं ते नरर्षभाः । अपजह्रुर्महावेगा कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥ ४३ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोहरणपर्वणि कृपापयाने सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

वैशम्पायन उवाच । कृपेऽपनीते द्रोणस्तु प्रगृह्य सशरं धनुः । अभ्यद्रवदनाधृष्यः शोणाश्वः श्वेतवाहनम् ॥ १ ॥ स तु रुक्मरथं दृष्ट्वा

रथके तीन दण्डोंको काटदिया, दो बाणोंसे धुरीको काटडाला और उस समय बारहवां बाण मारकर कृपाचार्यके रथकी ध्वजाको भी काटडाला ॥ ३७ ॥ और फिर इन्द्रकी समान पराक्रमी अर्जुनने हँसता-हुआ मुख करके वज्रका समान तेरहवें बाण से कृपाचार्यकी छातीको छेददिया ॥३८॥ कृपाचार्यका धनुष कटगया, रथ टूटगया, घोडे मारे गए और सारथीका सिर भी कटगया, तब कृपाचार्य तुरन्त हीं हाथमें गदा ले रथ परसे कूदपडे और वह गदा अर्जुनके ऊपर फेंकी ॥ ३९ ॥ वह बहुत सम्हालकर छोडीहुई कृपाचार्यकी गदा, अर्जुनके बाणोंसे कटकर उलटी पीछेको ही लौटगई ॥ ४० ॥ इस समय क्रोधमें भरेहुए उन कृपाचार्यकी रक्षा करनेकी इच्छावाले योधा चारों ओरसे अर्जुन के ऊपर बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥ ४१ ॥ यह देख विराटनन्दन उत्तर ने बांई ओरसे रथका फेरकर वैरियोंको रूधनेवाला यमक नामका ऐसा चक्कर दिया, कि—उन पुरुषोंमें श्रेष्ठ योधाओंको शस्त्र छोडनेसे रोकदिया ॥ ४२ ॥ तब तो बडी ही शीघ्रतासे वे श्रेष्ठ योधा, रथहीन हुए कृपाचार्यको कुन्तीनन्दन अर्जुनके समीपसे उठाकर लेगए ॥४३॥ सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! कृपाचार्यको रणभूमिमें से उठाकर लेजानेके अनन्तर जिनको कोई भी न धमकासके ऐसे, लाल घोडोंवाले रथमें बैठेहुए द्रोणाचार्य, श्वेत घोडोंवाले रथमें विराजमान विजयी अर्जुनके ऊपर चढ आये ॥ १ ॥ सोनेके रथमें बैठकर आतेहुए अपने गुरुको समीपमें आयाहुआ देखकर अर्जुने

गुरुमायान्तमन्तिकात्। अर्जुनो जयतां श्रेष्ठ उत्तरं वाक्यमब्रवीत्॥२॥ अर्जुन उवाच। अग्रेषा काञ्चनी वेदी ध्वजे यस्य प्रकाशते। उच्छ्रिता प्रवरे दण्डे पताकाभिरलङ्कृता। अत्र मां वह भद्रं ते द्रोणानीकाय सारथे॥३॥ अश्वाः शोणाः प्रकाशन्ते बृहन्तश्चारुवाहिनः। स्निग्धविद्रुमसंकाशा ताम्रास्याः प्रियदर्शनाः। युक्ता रथवरे यस्य सर्वशिक्षाविशारदाः॥४॥ दीर्घबाहुर्महातेजा बलरूपसमन्वितः॥५॥ सर्वलोकेषु विक्रान्तो भारद्वाजः प्रतापवान्। बुद्ध्या तुल्यो ह्युशनसा बृहस्पतिसमो नये। वेदास्तथैव चत्वारो ब्रह्मचर्यं तथैव च॥६॥ ससंहाराणि सर्वाणि दिव्यान्यस्त्राणि मारिष। धनुर्वेदश्च कार्त्स्न्येन यस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठितः॥७॥ क्षमा दमश्च सत्यञ्च आनृशंस्यमथार्जवम्। एते चान्ये च बहवो यस्मिन्नित्यं द्विजे गुणाः। तेनाहं योद्धुमिच्छामि महाभागेन संयुगे। तस्मात्त्वं प्रापयाचार्यं क्षिप्रमुत्तर वाहय॥९॥ वैशम्पायन उवाच। अर्जुनेनैवमुक्तस्तु वैराटिर्हेमभूषणान्। चोदयामास तानश्वान् भारद्वाजरथं प्रति॥१०॥ तमापतन्तं वेगेन पाण्डवं रथिनां वरम्। द्रोणः प्रत्युद्ययौ पार्थं मत्त-

---

उत्तरसे यह कहा॥२॥ अर्जुन बोला, कि-हे सारथी! जिनकी बड़े दण्डेवाली ध्वजामें सुवर्णकी वेदी पताकाओंसे शोभायमान दीखरही है वह द्रोणाचार्य खड़े हैं उनकी सेनाके समीप मुझे ले चल, तेरा कल्याण हो॥३॥ जिनके रथमें चिकने मूंगोंकेसे रंगके लाल २ शरीरवाले और लाल ही मुखोंवाले बड़े २ शरीरों के तथा आनन्द देतेहुए एक स्थानसे दूसरे स्थान पर लेजानेवाले, दर्शनीय और सब प्रकार चाल चलनेमें चतुर घोड़े जुतरहे हैं वे द्रोणाचार्य हैं॥४॥ घुटनोंतक भुजावाले, महातेजस्वी, बली, रूपवान्, सब लोकोंमें पराक्रमी और प्रतापी जो दीखरहे हैं वे द्रोणाचार्य हैं॥५॥ ये बुद्धिमें शुक्राचार्यकी समान और नीतिमें बृहस्पतिकी समान हैं तथा हे सारथी! चारों वेद, ब्रह्मचर्य और छोड़ने लौटानेकी क्रिया सहित सब दिव्य अस्त्र तथा पूरा धनुर्वेद इन महात्माके पास नित्य रहता है॥६॥७॥ क्षमा, दम, सत्य, दया, सरलता और दूसरे भी बहुतसे गुण इन महात्मामें सदा निवास करतेहैं॥८॥ इसकारण इन महाभाग महात्माके साथ मैं संग्राममें युद्ध करना चाहता हूँ, अतः हे उत्तर! तू शीघ्रही रथको लेजाकर मुझे इन द्रोणाचार्यके पास पहुँचादे॥९॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे राजन्! अर्जुनके ऐसा कहनेपर विराटनन्दन उत्तरने सोनेके गहने पहरनेवाले उन घोड़ोंको द्रोणाचार्यके रथकी ओरको हाँका॥१०॥ महारथी अर्जुनको बड़े वेगसे अपने ऊपर चढ़कर आते

मिव द्विपम् ॥ ११ ॥ ततः प्राध्मापयच्छङ्खं भेरीशतनिनादिनम् ॥ प्रचुक्षुभे बलं सर्वमुद्धत इव सागरः ॥ १२ ॥ अथ शोणान् सदश्वांस्तान् हंसवर्णैर्मनोजवैः । मिश्रितान् समरे दृष्ट्वा व्यस्मयन्त रणे नराः ॥ १३ ॥ तौ रथौ वीरसम्पन्नौ दृष्ट्वा संग्राममूर्धनि । आचार्यशिष्यावजितौ कृतविद्यौ मनस्विनौ ॥ १४ ॥ समाश्लिष्टौ तदान्योऽन्यं द्रोणपार्थौ महाबलौ । दृष्ट्वा प्राकम्पत मुहुर्भरतानां महद्बलम् ॥ १५ ॥ हर्षयुक्तस्ततः पार्थः प्रहसन्निव वीर्यवान् । रथं रथेन द्रोणस्य समासाद्य महारथः ॥ १६ ॥ अभिवाद्य महाबाहुः सामपूर्वमिदं वचः । उवाच श्लक्ष्णया वाचा कौन्तेयः परवीरहा ॥ १७ ॥ उषिताः स्मो वने वासं प्रतिकर्मचिकीर्षवः । कोपं नार्हसि नः कर्त्तुं सदा समरदुर्जय ॥१८॥ अहन्तु प्रहृते पूर्वं प्रहरिष्यामि तेऽनघ । इति मे वर्त्तते बुद्धिस्तद्भवान् कर्तुमर्हति ॥ १९ ॥ ततोस्मै प्राहिणोद् द्रोणः शरानधिकविंशतिम् । अप्राप्तांश्चैव तान् पार्थश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ २० ॥ ततः शरसहस्रेण रथं पार्थस्य वीर्यवान् । अवाकिरत् ततो द्रोणः शीघ्र-

हुए देखकर जैसे मदमत्त हाथी दूसरे हाथीके ऊपरको झपटता है तैसे ही द्रोणाचार्य अर्जुनके ऊपर चढ़आये ॥ ११ ॥ और सौ नगाड़ोंके सा शब्द करनेवाला शङ्ख बजाया, तब खलबलायेहुए महासागरकी समान सब सेना खलबला उठी और उस समय मनकी समान वेगवाले स्वेत रङ्गके घोड़ोंको लाल रङ्गके घोड़ोंके साथ रणभूमिमें अड़ेहुए देखकर लोग अचरजमें होगए ॥ १३ ॥ अस्त्रविद्याके जाननेवाले, धैर्यधारी महावली और महारथी गुरु शिष्य अर्थात् द्रोणाचार्य और अर्जुनको आपसमें भेटेहुए देखकर रणभूमिमें खड़ीहुई भरतवंशी राजाओंकी बड़ीभारी सेना कांपनेलगी ॥ १४ ॥ १५ ॥ परन्तु वैरियोंका संहार करनेवाला महारथी वीर अर्जुन हर्षमें भरगया और हँसते २ उस अपने रथको हँकवाकर द्रोणाचार्यके रथके पास गया ॥ १६ ॥ और गुरुको प्रणाम करकै, महाबाहु, रिपुनाशन वीर अर्जुन, कोमल वाणीमें शान्तिके साथ कहनेलगा ॥ १७ ॥ हम शत्रुओंसे बदला लेनेकी इच्छासे वनमें रहते थे, हे संग्रामदुर्जय ! आपको हमारे ऊपर सदा ही कोप करना उचित नहीं है ॥१८॥ हे निर्दोष गुरुजी ! तुम पहले मेरे ऊपर शस्त्र छोड़ोगे तब मैं आपके ऊपर प्रहार करूंगा, यही मेरा विचार है, इसकारण आपको ऐसा ही करना चाहिये ॥ १९ ॥ यह सुनकर द्रोणाचार्य ने अर्जुनके इक्कीस वाण मारे, परंतु अर्जुनने, शस्त्र चलाने में चतुर हाथवाले पुरुषकी समान, अपने ऊपर आनेसे पहिले ही उन वाणोंको काटडाला ॥ २० ॥ तब पराक्रमी द्रोणाचार्यने अर्जुनके रथके

मस्त्रं विदर्शयन् ॥ २१ ॥ हयांश्च रजतप्रख्यान् कङ्कपत्रैः शिलाशितैः । अवाकिरदमेयात्मा पार्थं संकोपयन्निव ॥ २२ ॥ एवं प्रवृत्ते युद्धं भारद्वाजकिरीटिनोः । समं विमुञ्चतोः संख्ये विशिखान् दीप्ततेजसः ॥ २३ ॥ तावुभौ ख्यातकर्माणावुभौ वायुसमौ जवे । उभौ दिव्यास्त्रविदुषावुभावुत्तमतेजसौ । क्षिपन्तौ शरजालानि मोहयामासतुर्नृपान् ॥ २४ ॥ व्यस्मयन्त ततो योधा ये तत्रासन् समागताः । शरान् विसृजतोस्तूर्णं साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ २५ ॥ द्रोणं हि समरे कोऽन्यो योद्धुमर्हति फाल्गुनात् । रौद्रः क्षत्रियधर्मोऽयं गुरुणा यदयुध्यत । इत्यब्रुवन् जनास्तत्र संग्रामशिरसि स्थिताः ॥ २६ ॥ वीरौ तावभिसंरब्धौ सन्निकृष्टौ महाभुजौ । छादयेतां शरव्रातैरन्योऽन्यमपराजितौ २७ विस्फार्य सुमहच्चापं हेमपृष्ठं दुरासदम् । भारद्वाजोथ संक्रुद्धः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत ॥ २८ ॥ स सायकमयैर्जालैरर्जुनस्य रथं प्रति । भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोराच्छादयत् प्रभाम् ॥ २९ ॥ पार्थश्च सुम-

---

ऊपर और एक हजार बाण मारे तथा शस्त्र मारनमें अपनी शीघ्रता दिखादी ॥ २१ ॥ फिर जिनके मनका पार नहीं मिलसकता ऐसे द्रोणाचार्य, अर्जुनको क्रोधित करतेहुएसे, उसके श्वेत रङ्गके घोड़ोंके ऊपर, सान पर धर कर तेजकियेहुए और कङ्क पक्षीके परोंवाले बाण मारने लगे ॥ २२ ॥ इसप्रकार द्रोणाचार्य और अर्जुन, परस्पर एक दूसरेके ऊपर समान भावसे बाण मारनेलगे और उनमें युद्ध होनेलगा ॥२३॥ उन दोनोंके पराक्रम प्रसिद्ध थे, दोनो वेगमें वायुकी समान थे, दोनों दिव्य अस्त्रोंको छोड़ना जानते थे और दोनो महातेजस्वी थे, वे आपसमें बाणोंका प्रकार करकै आसपास खड़ेहुए राजाओंको मोहित करनेलगे ॥२४॥ उस समय जो योधा तहाँ आकर खडे होगए थे वे अचरजमें होकर शीघ्रतासे बाणोंकी वर्षा करनेवाले उन दोनोकी "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहकर प्रशंसा करनेलगे ॥२५॥ संग्राम के मुहानेपर जो पुरुष खड़े थे, वे कहरहे थे, कि—" रणमें अर्जुनके सिवाय दूसरा कौन पुरुष द्रोणाचार्यके सामने युद्ध करसकता है ? क्षत्रियका धर्म भयङ्कर है, क्योंकि—अर्जुनको अपने गुरुके साथ भी लड़ना पड़ रहा है" ॥ २६ ॥ क्रोधमें भरेहुए लम्बी २ भुजाओंवाले वे दोनों अजित पुरुष समीपमें खडे होकर एक दूसरेको बाणोंकी वर्षासे ढकरहे थे ॥ २७ ॥ कुछ देरमें द्रोणाचार्यने क्रोधमें भरकर सुनहरी पीठवाले और परिश्रमसे उठसकनेवाले बड़ेभारी धनुषको खेंचा और उसमेंसे सान पर धरकर तेजकिए दमकदार बाण मारकर अर्जुनको बींधडाला तथा अर्जुनके रथके साथ सूर्यकी कान्तिको भी ढकदिया ॥२८-२९ ॥ जैसे मेघ वर्षा करकै पहाड़को ढकदेना है तैसे ही महारथी

महाबाहुर्महावेगैर्महारथः । विव्याध निशितैर्बाणैर्मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ ३० ॥ तथैव दिव्यं गाण्डीवं धनुरादाय पाण्डवः । शत्रुघ्नं वेगवान् हृष्टो भारसाधनमुत्तमम् ॥३१॥ विससर्ज शरांश्चित्रान् सुवर्णविकृतान् बहून् । नाशयन् शरवर्षाणि भारद्वाजस्य वीर्यवान् । तूर्णं चापविनिर्मुक्तांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३२ ॥ स रथेन चरन् पार्थः प्रेक्षणीयो धनञ्जयः । युगपद्दिक्षु सर्वासु सर्वतोऽस्त्राण्यदर्शयत् ॥३३॥ एकच्छायमिवाकाशं बाणैश्चक्रे समन्ततः । नादृश्यत तदा द्रोणो नीहारेणेव संवृतः ॥ ३४ ॥ तस्याभवत्तदा रूपं संवृतस्य शरोत्तमैः । जाज्वल्यमानस्य तदा पर्वतस्येव सर्वतः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा तु पार्थस्य रणे शरैः स्वरथमावृतम् । स विस्फार्य धनुःश्रेष्ठं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥३६॥ अग्निचक्रोपमं घोरं व्याकर्षत् परमायुधम् । व्यशातयच्छरांस्तांस्तु द्रोणः समितिशोभनः ॥३७॥ महानभूत्ततः शब्दो वंशानामिव दह्यताम् ॥३८॥ जाम्बूनदमयैः पुंखैश्चित्रचापवरातिगैः । प्राच्छादयदमेयात्मा दिशः

महाबाहु द्रोणाचार्यने तीखे बाणोंसे अर्जुनको ढकदिया ॥ ३० ॥ तब वेगवाले पराक्रमी अर्जुनने प्रसन्न होकर वैरीका संहार करने वाले और वैरीके सामने टक्कर झेलनेवाले गाण्डीव नामक उत्तम और दिव्य धनुषको हाथमें लेकर तुरन्त उसमेंसे बाण छोडना आरम्भ करदिये और द्रोणाचार्यके बाणोंकी वर्षाका नाश करते २ सोनेसे मढ़ेहुए बहुतसे विचित्र बाण शीघ्रताके साथ द्रोणाचार्यके ऊपर छोड, यह बात देखकर सबोंको बडा अचरज सा हुआ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ फिर दर्शनीय अर्जुन रथमें बैठकर रणभूमिमें विचरनेलगा और सबोंने यह देखा, कि—अर्जुन सब दिशाओंमेंको एकसाथ बाण छोडरहा है ॥ ३३ ॥ जब उसने बाण मारकर चारोंओरसे आकाशको अन्धकारमय बनादिया तब द्रोणाचार्य मानो कुहरसे ढकगए हों इस प्रकार दीखे भी नहीं ॥ ३४ ॥ उस समय बडे २ बाणोंसे ढकाहुआ द्रोणाचार्यका स्वरूप चारोंओरसे जलतेहुए पहाडसा दीखता था ॥ ३५ ॥ रणमें शोभा पानेवाले द्रोणाचार्यने जब अपने रथको अर्जुनके बाणोंमें ढकाहुआ देखा तब उन्होंने मेघके गरजनेकेसा शब्द करनेवाले अग्निके चक्रसमान भयानक महाभयानक धनुषमें बाण छोडकर अर्जुनके मारेहुए बाणोंके टुकडे २ करडाले ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ उस समय जैसे जलतेहुए बांस फटकर उनका बडाभारी कडाकेका शब्द होता है तैसे ही टुकडे २ होतेहुए बाणोंका शब्द होनेलगा ॥३८॥ तदनन्तर अपारबली द्रोणाचार्यने विचित्र प्रकारके धनुषोंमें से बाहर निकलेहुए सोनेकी पूँछवाले बाणोंसे दिशाओंको तथा सूर्यकी कांति

सूर्य्यस्य च प्रभाम् ॥ ३९ ॥ ततः कनकपुंखानां शराणां नतपर्वणाम् । वियच्चराणां वियति दृश्यन्ते बहवो व्रजाः ॥४०॥ द्रोणस्य पुंखसक्ताश्च प्रभवन्तः शरासनात् । एको दीर्घ इवादृश्यदाकाशे संहतः शरः ॥४१॥ एवं तौ स्वर्णविकृतान्विमुञ्चन्तौ महाशरान् । आकाशं संवृतं वीराबुल्काभिरिव चक्रतुः ॥ ४२ ॥ शरास्तयोस्तु विबभुः कंकबर्हिणवाससः । पंक्तयः शरदि खस्थानां हंसानां चरतामिव ॥ ४३ ॥ युद्धं समभवत्तत्र सुसंरब्धं महात्मनोः । द्रोणपाण्डवयोर्घोरं वृत्रवासवयोरिव ॥४४॥ तौ गजाविव चासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् । शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योऽन्यमभिजघ्नतुः ॥४५॥ तौ व्यवाहरतां युद्धे संरब्धौ रणशोभिनौ । उदीरयन्तौ समरे दिव्यान्यस्त्राणि भागशः ॥४६॥ अथ त्वाचार्यमुख्येन शरान् सृष्टान् शिलाशितान् । न्यवारयच्छितैर्बाणैरर्जुनो जयतां वरः ॥४७॥ दर्शयन् वीक्षमाणानामस्त्रमुग्रपराक्रमः । इषुभिस्तूर्णमाकाशं बहुभिश्च समावृणोत् ४८ जिघांसन्तं नरव्याघ्रमर्जुनं तिग्मतेजसम् । आचार्य्यमुख्यः समरे द्रोणः

को ढकदिया ॥ ३९ ॥ उस समय सुनहरी पूँछ और नमीहुई नोकों वाले बाणोंके बहुतसे समूह आकाशमें उडतेहुए दीखे॥ ४० ॥ द्रोणाचार्यके धनुषमेंसे जो पूँछवाले बाण निकलते थे उनके इकट्ठा होनेपर आकाशमें एक लम्बा बाणसा दीखता था ॥ ४१ ॥ इस प्रकार वे दोनों, सुवर्णसे मढ़ेहुए बडे २ बाण एक दूसरेके ऊपर मारनेलगे और उन दोनो शूरोंने, जैसे उल्काओंसे भराहुआ हो, ऐसे आकाशको बाणोंसे भरदिया ॥ ४२ ॥ कङ्क पक्षीके पररूपी वस्त्रवाले उन दोनोंके बाण आकाशमें उडतेहुए, शरद ऋतुमें आकाशमें उडनेवाले हंसोंकी पंक्तियोंसे मालूम होते थे ॥ ४३ ॥ वृत्रासुर और इन्द्रकी समान महात्मा द्रोणाचार्य और अर्जुनका युद्ध बड़े ही क्रोधमें भरकर हुआ था ॥४४॥ और जैसे दो हाथी अपने दांतोंके अग्रभागसे परस्पर युद्ध करते हों तैसे ही वे दोनो योधा भी धनुषके रोदेको कानतक खेंचकर उनसे परस्पर बाणोंका प्रहार कररहे थे ॥ ४५ ॥ रणभूमिमें शोभायमान दीखतेहुए दोनों योधा, बारी २ से दिव्य अस्त्रोंकी मारामार करतेहुए आवेशमें भरकर धर्मयुद्ध कररहे थे ॥ ४६ ॥ द्रोणाचार्य, सानपर धर कर तेज करेहुए बाण अर्जुनके माररहे थे और विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ अर्जुन, तेज करेहुए-बाण मारकर उनको पीछेको हटादेताथा ४७ उग्रपराक्रमी अर्जुनने, उस समय दर्शकोंको, अपनी अस्त्र छोडनेकी चतुराई दिखातेहुए बहुतसे बाण मारकर जरादेरमें आकाशको छादिया ॥ ४८ ॥ तैसेही तीक्ष्ण तेजवाले नरव्याघ्र तथा अपने बाण छोड़नेवाले अर्जुनको द्रोणाचार्यने भी ढकदिया, इसप्रकार सब शस्त्रधारियोंम

शस्त्रभृताम्वरः । अर्जुनेन सहाक्रीडच्छरैः सन्नतपर्वभिः ॥४६॥ दिव्यान्यस्त्राणि वर्षन्तं तस्मिन्वै तुमुले रणे । अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य्य फाल्गुनं समयोधयत् ॥ ५० ॥ तयोरासीत् सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः । अमर्षिणोस्तदान्योन्यं देवदानवयोरिव ॥५१॥ ऐन्द्रं वायव्यमाग्नेयमस्त्रमस्त्रेण पाण्डवः । द्रोणेन मुक्तमात्रन्तु ग्रसतिस्म पुनः पुनः ॥५२॥ एवं शूरौ महेष्वासौ विसृजन्तौ शिताञ्छरान् । एकच्छायं चक्रतुस्तावाकाशं शरवृष्टिभिः ॥ ५३ ॥ तत्रार्जुनेन मुक्तानां पततां वै शरीरिषु । पर्वतेष्विव वज्राणां शराणां श्रूयते स्वनः ॥ ५४ ॥ ततो नागा रथाश्चैव वाजिनश्च विशाम्पते । शोणिताक्ता व्यदृश्यन्त पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ ५५ ॥ बाहुभिश्च सकेयूरैर्विचित्रैश्च महारथैः । सुवर्णचित्रैः कवचैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ ५६ ॥ योधैश्च निहतैस्तत्र पार्थबाणप्रपीडितैः । बलमासीत्समुद्भ्रान्तं द्रोणार्जुनसमागमे ॥ ५७ ॥ विधुन्वानौ तु तौ तत्र धनुषी भारसाधने । प्रच्छादयेतामन्योऽन्यं ततस्तुरथे-

श्रेष्ठ, आचार्योंमे बड़े द्रोणाचार्य, अर्जुनके सामने रणभूमिमें युद्धक्रीडा कररहे थे और नमीहुई नोकवाले वाण मारकर उस घोर संग्राममें अर्जुनके बाणोंको पीछेको लौटाकर दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करते हुए अर्जुनके साथ युद्ध कररहे थे ॥ ४६ ॥ ५० ॥ उस समय क्रोधमें भरेहुए आपसमें डाह करनेवाले दोनों नरसिंहोंका, देवता और दानवोंकी समान युद्ध होरहाथा ॥५१॥ द्रोणाचार्य संग्राम भूमिमें, ऐन्द्र, वायव्य, आग्नेय आदि जो जो अस्त्र अर्जुनके ऊपर छोड़ते थे,उनको, अर्जुन तुरन्त ही सामनेसे दूसरा अस्त्र छोड़कर वार वार उन अस्त्रोंका नाश करदेता था ॥ ५२ ॥ इसप्रकार बड़े भारी धनुषको धारण करनेवाले वे दोनों वीर तेज करेहुए वाण परस्पर एक दूसरेके ऊपर छोड़ते थे और उन्होंने वाणोंकी वर्षासे आकाशको छादिया था ॥ ५३ ॥ उस संग्रामके समय अर्जुन, मनुष्योंके ऊपर जिन वाणोंको छोड़ता था वे वाण जब गिरते थे तो पहाड़ोंपर पड़नेवाले वज्रकेसा शब्द सुनाई आता था ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! रणमें वाणोंसे विंधेहुए हाथी, रथ और घोड़े लोहूमें लथड़ पथड़ होरहे थे, इसकारण वे फलोंसे लदेहुए ढाकके वृक्षोंकी समान मालूम होतेथे ॥ ५५ ॥ द्रोणाचार्य और अर्जुनके इस संग्रामके समय कट २ कर भूमिपर जहां तहां पड़हुए वाजूबन्दोंवाले हाथ, नानाप्रकारके कटेहुए रथ, सुवर्णसे जड़ेहुए विचित्र प्रकारके कवच, ध्वजायें, और अर्जुनके वाणों से पीड़ा पाकर मरेहुए योधा आदिकोंको देखकर कौरवोंकी सेना भयभीत होगई ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ फिर वे दोनो महात्मा वडीभारी मारको सहसकनेवाले धनुषोंको

पुभिः ॥ ५८ ॥ तयोः समभवद्युद्धन्तुमुलं भरतर्षभ । द्रोणकौन्ते यपोस्तत्र वलिवासवयोरिव ॥ ५९ ॥ अथपूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः सन्नतपर्वभिः । व्यदारयेतामन्योऽन्यं प्राणद्यूते प्रवर्त्तिते ॥६०॥ अथान्तरिक्षे नादोऽभूत् द्रोणं तत्र प्रशंसताम् । दुष्करं कृतवान् द्रोणो यदर्जुनमयोधयत् ॥ ६१ ॥ प्रमाथिनं महावीर्यं दृढमुष्टिं दुरासदम् । जेतारं देवदैत्यानां सर्वेषां च महारथम् ॥ ६२ ॥ अविभ्रमश्च शिक्षाञ्च लाघवं दूरपातिनाम् । पार्थस्य समरे दृष्ट्वा द्रोणस्याभूच्च विस्मयः॥ ६३ ॥ अथ गाण्डीवमुद्यम्य दिव्यं धनुरमर्षणः । विचकर्ष रणे पार्थो बाहुभ्यां भरतर्षभ ॥ ६४ ॥ तस्य बाणमयं वर्षं शलभानामिवायतिम् । दृष्ट्वा ते विस्मिताः सर्वे साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ ६५ ॥ न च बाणान्तरे वायुरस्य शक्नोति सर्पितुम् । अनिशं सन्दधानस्य शरानुत्सृजतस्तथा ॥ ६६ ॥ ददर्श नान्तरं कश्चित् पार्थस्याददतोपि च ॥ ६७ ॥ तथा शीघ्रास्त्रयुद्धे तु वर्त्तमाने सुदारुणे । शीघ्रं शीघ्रतरं पार्थः शरा-

---

कानपर्यन्त भलेप्रकार खेंचकर, नमीहुई नोकोंवाले बाणोंके समूहोंसे एक दूसरेको ढकनेलगे तथा घायल करनेलगे इन्द्रकी समान दोनो जने, प्राणोंकी बाजी लगाकर इसप्रकार युद्ध करनेलगे तब आकाश मेंसे देवता आदि द्रोणाचार्यकी सराहना करतेहुए कहनेलगे, कि—सब देव दैत्योंको जीतनेवाले, महारथियोंमें श्रेष्ठ, प्रबलप्रतापी, शत्रु कुलनाशक, दृढ मुट्ठीवाले और किसीकी धौंसमें न आनेवाले अर्जुन के साथ जो द्रोणाचार्यने युद्ध किया है, यह इन्होंने बडा ही कठिन काम किया है ॥५८-६२॥ रणमें अर्जुनका न चूकना, शस्त्रोंकी शिक्षा, हाथकी शीघ्रता और शस्त्रको दूर फेंकने की शक्ति आदिको देखकर द्रोणाचार्यको अचरज हुआ ॥ ६३ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! तीखे स्वभाववाला अर्जुन गाण्डीव नामक दिव्य धनुषको हाथमें उठाकर जब दोनों हाथोंसे खेंचताथा और टीडीदलकी समान ऊपर ही ऊपर बाणोंकी वर्षा करता था, उस समय उसको देखकर सब योधा अचरजमें होजाते थे और धन्य है, धन्य है, ऐसा कहकर उसकी बडाई करते थे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ अर्जुन जब बाण मारता था तो उसके बीच मेंको पवन भी नहीं निकलसकता था और रण करते समय भाथेमेंसे बाणोंको इतनी शीघ्रतासे लेता, धनुष पर चढाता और मारता था, कि—इन कामोंके बीचका समय किसीके देखनेमें ही नहीं आताथा ॥ ६६ ॥६७ ॥ जिसमें शस्त्र और अस्त्रोंका बडी शीघ्रतासे प्रयोग करना पडता था ऐसा वह महाघोर रण होरहा था उस समय अर्जुन बहुत

न्यानुदीरयत् ॥ ६८ ॥ ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् । युगपत् प्रापतंस्तत्र द्रोणस्य रथमन्तिकात् ॥ ६९ ॥ कीर्यमाणे तदा द्रोणे शरैर्गाण्डीवधन्वना । हाहाकारो महानासीत्सैन्यानां भरतर्षभ ॥७०॥ पांडवस्य तु शीघ्रास्त्रं मघवा प्रत्यपूजयत् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव ये च तत्र समागताः ॥ ७१ ॥ ततो वृन्देन महता रथानां रथयूथपः । आचार्यपुत्रः सहसा पाण्डवं पर्यवारयत् ॥ ७२ ॥ अश्वत्थामा तु तत्कर्म हृदयेन महात्मनः । पूजयामास पार्थस्य कोपञ्चास्याकरोद्भृशम् ॥ ७३॥ स मन्युवशमापन्नः पार्थमभ्यद्रवद्रणे । किरंश्छरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ७४ ॥ आवृत्य तु महाबाहुर्यतो द्रौणिस्ततो हयान् । अन्तरं प्रददौ पार्थो द्रोणस्य व्यपसर्पितुम् ॥७५॥ स तु लब्ध्वान्तरं तूर्णमपायाज्जवनैर्हयैः । छिन्नवर्मध्वजः शूरो निकृत्तः परमेषुभिः ॥ ७६ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोहरणपर्वणि द्रोणापयाने अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो द्रौणिर्महाराज प्रययावर्ज्जुनं रणे । तं

ही शीघ्र शीघ्र बाणोंकी वर्षा करता था ॥ ६८ ॥ जब नमी हुई नोक वाले लाखों बाण एकसाथ द्रोणाचार्यके रथके पास आकर गिरनेलगे और जब गाण्डीव धनुषको धारनेवाले अर्जुनने हे राजन् ! द्रोणाचार्य को बाणोंकी वर्षासे ढकदिया तब सेनामें बडा हाहाकार होनेलगा ॥ ६९ ॥ ७० ॥ तहां आकर इकट्ठेहुए इन्द्र, गन्धर्व और अप्सरायें अर्जुनके अस्त्र शस्त्र छोडनेमें शीघ्रताकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ७१ ॥ तब रथियोंके समूहके अध्यक्ष, आचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने एक बड़े भारी रथोंके समूहसे अर्जुनको घेरलिया ॥ ७२ ॥ उसने महात्मा अर्जुनके वीरताभरे कामकी हृदयमें सराहना की, परन्तु बाहरसे उस के ऊपर बड़ा कोप किया ॥ ७३ ॥ अश्वत्थामाने क्रोधके वशमें होकर बरसतेहुए मेघकी समान रणभूमिमें अर्जुनके ऊपर हजारों बाणोंकी वर्षा करना आरम्भ करदी ॥ ७४ ॥ तब अर्जुनने, जिधर महाबाहु अश्वत्थामा खड़ा था उधरको अपने रथके घोड़ोंको फिरवाया और द्रोणाचार्यके जानेके लिये मार्ग छोडदिया ॥ ७५ ॥ अर्जुनके बडे २ बाणोंसे जिनका कवच और रथकी ध्वजा कट गई थी तथा जिनका शरीर भी घायल होगया था ऐसे वीर द्रोणाचार्य मार्ग मिलते ही वेगवाले घोडोंको हांककर तुरन्त रणभूमिमेंसे चलेगए ॥ ७६ ॥ अट्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि-हे महाराज जनमेजय ! तदनन्तर अश्व-

पार्थः प्रतिजग्राह वायुवेगमिवोद्धतम् । शरजालेन महता वर्षमाण मिवाम्बुदम् ॥ १ ॥ तयोर्देवासुरसमः सन्निपातो महानभूत् । किरतोः शरजालानि वृत्रवासवयोरिव ॥ २ ॥ न स्म सूर्य्यस्तदा भाति न च वाति समीरणः । शरजालावृते व्योम्नि छायाभूते समन्ततः ॥ ३ ॥ महांश्चटचटाशब्दो योधयोर्हन्यमानयोः । दह्यतामिव वेणूनामासीत्परपुरञ्जय ॥ ४ ॥ हयानस्यार्ज्जुनः सर्वान् कृतवानल्पजीवितान् । ते राजन्नप्रजानन्त दिशं कांचन मोहिताः ॥५॥ ततो द्रौणिर्महावीर्यः पार्थस्य विचरिष्यतः । विवरं सूक्ष्ममालोक्य ज्यां चिच्छेद क्षुरेण ह । तदस्यापूजयन् देवाः कर्म दृष्ट्वातिमानुषम् ॥ ६ ॥ द्रोणो भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्चैव महारथः । साधु साध्विति भाषन्तो पूजयन् कर्म तस्य तत् ॥ ७ ॥ ततो द्रौणिर्धनुःश्रेष्ठमपकृष्य रथर्षभम् । पुनरेवाहनत् पार्थं हृदये कङ्कपत्रिभिः ॥ ८ ॥ ततः पार्थो महाबाहुः प्रहस्य स्व-

---

त्थामा रणमें अर्जुनके ऊपर चढ़गया और मेघकी समान बाणोंकी बडीभारी वर्षा उसके ऊपर करनेलगा, उस समय कुन्तीनन्दन अर्जुन ने बडे प्रबल वायुके वेगकी समान अपने सामने लडनेको चढ़कर आयेहुए अश्वत्थामाको पकड़लिया ॥ १ ॥ वे दोनों वृत्रासुरः और इन्द्रकी समान परस्पर बाणोंकी वर्षा करनेलगे और उन दोनोंमें देवता और असुरोंकी समान बड़ाभारी संग्राम होने लगा ॥ २ ॥ आकाशमें चारों ओरसे बाणोंसे छप्परसा छैगया और घोर अन्धकार होगया इसकारण उस समय न सूर्यका ही प्रकाश था और न हवा ही चलती थी ॥३॥ हे वैरीके नगरको जीतनेवाले राजन् जैसे जलतेहुए बांसके फटनेसे शब्द होताहै तैसे ही उस समय परस्पर युद्ध करतेहुए योधाओंके हाथियोंका भी बड़ाभारी चटचट शब्द होनेलगा ॥ ४ ॥ हे राजन् ! अर्जुनने बाणोंकी मारसे अश्वत्थामाके रथके सब घोड़ोंको अधमरे करडाला और वे मूर्छित होकर आँखोंके सामने अंधेरा आजाने से दिशाओंको भी भूलगए ॥ ५ ॥ उस समय महावीर अश्वत्थामाने युद्धमें घूमतेहुए अर्जुनकी जरासी चूकका अवसर पा, क्षुर जातिका बाण मारकर उसके धनुषकी डोरीको काट डाला, अश्वत्थामाके इस अलौकिक कामको देखकर देवता उसकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ६ ॥ द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कर्ण और कृपाचार्य आदि महारथी "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, ऐसा कहकर उसके इस कामकी प्रशंसा करनेलगे॥७॥फिर अश्वत्थामाने एक बढ़िया [illegible] धनुष खेंचकर महारथी अर्जुनकी छातीमें मारकर फिर भी कङ्कपक्षी के परोंवाले बाणोंका प्रहार किया ॥ ८ ॥ उस समय महाबाहु अर्जुन

नवत्तदा । योजयामास नवया मौर्व्या गाण्डीवमाजसा ॥ ९ ॥ ततोऽर्द्धचन्द्रमावृत्य तेन पार्थः समागमत् । वारणेनेव मत्तेन मत्तो वारणयूथपः ॥ १० ॥ ततः प्रववृते युद्धं पृथिव्यामेकवीरयोः । रणमध्ये द्वयोरेवं सुमहल्लोमहर्षणम् ॥ ११ ॥ तौ वीरौ ददृशुः सर्वे कुरवो विस्मयान्विताः । युध्यमानौ महावीर्य्यौ यूथपाविव सङ्गतौ ॥ १२ ॥ तौ समाजघ्नतुर्वीरावन्योऽन्यं पुरुषर्षभौ । शरैराशीविषाकारैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः ॥ १३ ॥ अक्षय्याविषुधी दिव्यौ पाण्डवस्य महात्मनः । तेन पार्थो रणे शूरस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १४ ॥ अश्वत्थाम्नः पुनर्बाणाः क्षिप्रमभ्यस्यतो रणे । जग्मुः परिक्षयं तूर्णमभूत्तेनाधिकोऽर्जुनः ॥ १५ ॥ ततः कर्णो महाचापं विकृष्याभ्यधिकं तथा । अवाक्षिपत्ततः शब्दो हाहाकारो महानभूत् ॥ १६ ॥ ततश्चक्षुर्दधे पार्थो यत्र विस्फार्यते धनुः । ददर्श तत्र राधेयं तस्य कोपोऽभ्यवर्धत ॥ १७ ॥ स रोषवशमापन्नः कर्णमेव जिघांसया । तमैक्षत विवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां कुरुपुङ्गवः १८ तथा तु विमुखे पार्थे द्रोणपुत्रस्य सायकात् । त्वरिताः पुरुषा राज-

खिलखिलाकर हँसपड़ा और तत्काल ही झपाटेसे गाण्डीव धनुष पर नई डोरी चढ़ाकर उसका टङ्कार किया ॥ ९ ॥ और फिर अपने रथको अर्धचन्द्राकारमें फेर कर मदमत्त हाथी जैसे दूसरे मदमत्त हाथीके पास जाता है तैसे ही वह अश्वत्थामाके पासमें आकर खड़ा होगया ॥ १० ॥ और फिर भूमण्डलमें इक्कड़ वीर गिनेजाने वाले दोनो योधाओंमें रोमाञ्च खड़े करने वाला महायुद्ध होनेलगा ॥ ११ ॥ यूथपतियोंकी समान महापराक्रमी वे दोनोंजने परस्पर युद्ध करनेलगे और उन दोनों वीरोंको सब कौरव बड़े अचरजमें होकर देखने लगे ॥१२॥ ये दोनो योधा महात्मा और शूर थे, वे विषसे भड़भड़ाते-हुए विषधर सर्पकी समान विषभरे बाणोंको एक दूसरेके ऊपर प्रहार कररहे थे ॥ १३ ॥ महात्मा अर्जुनके पास दो दिव्य भाथे थे, वे अक्षय थे, इसकारण रणमें शूरवीर अर्जुन पहाड़की समान अचल खड़ा रहा ॥ १४ ॥ क्योंकि—रणमें अश्वत्थामा वारवार बाणोंकी बरसात बरसा रहा था, इसकारण उसके बाण जरा देरमें निबड़गए इसीसे अर्जुन उसकी अपेक्षा अधिक होगया ॥ १५ ॥ यह देख कर्णने अपने बड़ेभारी धनुषको बहुत ही खैंचकर उस पर टङ्कार दी, उस समय कौरवोंकी सेनामें बड़ाभारी कोलाहल मचगया ॥ १६ ॥ जिधरसे धनुषकी टङ्कार का शब्द सुनाई दिया था, उधरको धनंजयने दृष्टिडाली तो तहां कर्ण दीखगया, तब तो उसका क्रोध और भी बढ़गया ॥ १७ ॥ कुरुपुंगव अर्जुन क्रोधमें भरकर कर्णका ही नाश करनेके लिये दोनों नेत्र फाड़कर उसको देखनेलगा ॥१८॥ हे राजन् ! जब अर्जुन द्रोण-

न्नुपाजतुः सहस्रशः ॥ १९ ॥ उत्सृज्य च महाबाहुर्द्रोणपुत्रं धनञ्जयः अभिदुद्राव सहसा कर्णमेव सपत्नजित् ॥ २० ॥ तमभिद्रुत्य कौन्तेयः क्रोधसंरक्तलोचनः । कामयन् द्वैरथं तेन युद्धं वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि अर्जुनाश्वत्थामयुद्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

अर्जुन उवाच । कर्ण यत्ते सभामध्ये बहु वाचा विकत्थितम् । न मे युधि समोऽस्तीति तदिदं समुपस्थितम् ॥ १ ॥ सोऽद्य कर्ण मया सार्द्धं व्यवहृत्य महामृधे । ज्ञास्यस्यबलमात्मानं न चान्यानवमन्यसे ॥ २ ॥ अवोचः परुषा वाचो धर्ममुत्सृज्य केवलम् । इदं तु दुष्करं मन्ये यदिदं ते चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥ यत्त्वया कथितं पूर्वं मामनासाद्य किञ्चन । तदद्य कुरु राधेय कुरुमध्ये मया सह ॥ ४ ॥ यत्सभायां स पाञ्चालीं क्लिश्यमानां दुरात्मभिः । दृष्टवानसि तस्याद्य फलमाप्नुहि केवलम् ॥ ५ ॥ धर्मपाशनिबद्धेन यन्मया मर्षितं पुरा । तस्य रा-

---

चार्यके पुत्र अश्वत्थामाके बाणसे विमुख होकर कर्णकी ओरको लौटा उस समय हजारों योधाओंने झपाटेके साथ आकर घेरलिया और उसके ऊपर बाण छोडनेलगे ॥ १९ ॥ परन्तु वैरियोंको जीतनेवाला महाबाहु अर्जुन, द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको छोडकर एक साथ कर्णकी ओरको ही दौडा ॥ २० ॥ और उसके ऊपर चढ़ाई करकै क्रोधसे लाल २ नेत्र कियेहुए उसके साथ द्विरथ रण करनेकी इच्छासे यह बात बोला ॥ २१ ॥ उनसठवां अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ * ॥

अर्जुनने कहा, कि—हे कर्ण ! तूने जो सभामें बहुतसी बकवाद की थी, कि—रणमें मेरी बराबरी करने वाला कोई है ही नहीं, उस बातको सच्ची करकै दिखानेका आज यह अवसर आया है ॥ १ ॥ सो हे कर्ण ! आज अब तू मेरे साथ महासंग्राममें रण करकै अपने शरीरको बलहीन जानेगा और फिर किसीका तिरस्कार नहीं करैगा ॥ २ ॥ तूने पहिले धर्मको छोडकर बडी कठोर बातें कही थीं, परंतु तू जो कुछ करना चाहता है मेरी समझमें वह बडी कठिन बात है ॥ ३ ॥ अरे राधाके पुत्र कर्ण ! तूने पहिले मेरे साथ भेटा बिना पडे ही जो कुछ कहा थो, उसका आज कौरवोंके बीचमें सत्य करकै दिखा ॥ ४ ॥ नहीं तो दुष्टात्माओंसे दुःखित को हुई द्रौपदीको जो तू सभामें बैठा २ देखता रहा था, आज तू केवल उसका ही फलभोग ॥ ५ ॥ हे कर्ण ! मैंने पहिले धर्मकी पाशमें बँधकर जो तेरी बातोंको सहलिया था, परन्तु मेरे उस समयके क्रोधके विजयको तू आज

भेन क्रोधस्य विजयं पश्य मे मृध ॥ ६ ॥ वने द्वादश वर्षाणि यानि सोढानि दुर्मते । तस्याद्य प्रतिकोपस्य फलं प्राप्नुहि संप्रति ॥ ७ ॥ एहि कर्ण मया सार्धं प्रतियुध्यस्व सङ्गरे । प्रेक्षकाः कुरवः सर्वे भवन्तु तव सैनिकाः ॥ ८ ॥ कर्ण उवाच । ब्रवीषि वाचा यत्पार्थ कर्मणा तत्समाचर । अतिशेते हि ते वाक्यं कर्मैतत् प्रथितं भुवि ॥ ९ ॥ यत्त्वया मर्षितं पूर्वं तदशक्तेन मर्षितम् । इतो गृह्णीम हे पार्थ तव दृष्ट्वा पराक्रमम् ॥ १० ॥ धर्मपाशनिबद्धेन यत्त्वया मर्षितं पुरा । तथैव बद्धमात्मानमबद्धमिव मन्यसे ॥ ११ ॥ यदि तावद्वने वासो यथोक्तश्चरितस्त्वया । तत्त्वं धर्मार्थवित् क्लिष्टः स मया योद्धुमिच्छसि ॥ १२ ॥ यदि शक्रः स्वयं पार्थ युध्यते तव कारणात् । तथापि न व्यथा काचिन्मम स्याद्विक्रमिष्यतः ॥ १३ ॥ अयं कौन्तेय कामस्ते न चिरात् समुपस्थितः । योत्स्यसे हि मया सार्धमद्य द्रक्ष्यसि मे बलम् ॥ १४ ॥ अर्जुन उवाच । इदानीमेव

देखले ॥ ६ ॥ अरे दुष्टबुद्धि! मैंने वनमें जो बारह वर्ष बड़े दुःखके साथ बिताये हैं, उस कोपके बदलेका फल तू आज अभी भोग ॥ ७ ॥ अरे कर्ण! चला आ, रणमें मेरे सामने लड़ और तेरे सब सिपाही तथा कौरव दर्शक बनकर हमारे रणको देखें ॥ ८ ॥ कर्णने कहा, कि-हे पार्थ! तू जो बातें मुझसे कहरहा है, उनको करके दिखा, तेरी बात तेरे भूतलपर प्रसिद्ध कर्मको लाँघरही है अर्थात् तेरी करतूत थोड़ीसी है और तू बातें, बड़ी २ कररहा है ॥ ९ ॥ तूने जो पहिले मेरे अपराधको सहा था सो तूने असमर्थ होनेके कारणसे ही सहा था, परन्तु हे पार्थ! आज देखकर आगे को हम तेरे पराक्रमको मानलेंगे ॥ १० ॥ अरे पहिले जैसे तूने धर्म की पाशमें बँधे होनेके कारण मेरे अपराधको सहा था तैसे ही इस समय भी धर्मकी पाशमें बँधा हुआ होने पर भी अपने को न बँधा हुआसा अर्थात् छूटाहुआ कैसे मान रहा है? ॥ ११ ॥ हे धर्म तथा अर्थको जाननेवाले धनञ्जय! तू क्लेश पारहा है, यह बात तो ठीक है, परन्तु तूने यदि पहिले कियेहुए ठहरावके अनुसार वनवास को पूरा किया होता तब ही तू मेरे साथ रण करनेकी इच्छा करता तो ही ठीक होता (परन्तु तूने तैसा नहीं किया) ॥ १२ ॥ और हे अर्जुन! यदि इन्द्र अपने आप तेरे कारण मेरे साथ युद्ध करने को चढ़ आवै तो भी मैं जब पराक्रम करनेको बैठूँगा तब मुझै किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होसकती ॥ १३ ॥ हे कुन्तीनन्दन अर्जुन! मेरे साथ युद्ध करनेकी यदि तेरी इच्छा थी तो वह इच्छा थोड़े ही समय में पास आगई है, सो छैल तू आज मेरे साथ संग्राम कर और मेरे बलको देख ॥ १४ ॥ अर्जुनने कहा, कि-हे राधाके पुत्र कर्ण! अभीतो

तावत्त्वमपयातो रणान्मम। तेन जीवसि राधेय निहतस्त्वनुजस्तव ।१५। भ्रातरं घातयित्वा कस्त्यक्त्वा रणशिरश्च कः। त्वदन्यः कः पुमान् सत्सु ब्रूयादेवं व्यवस्थितः ॥ १६ ॥ वैशम्पायन उवाच। इति कर्णं ब्रुवन्नेव बीभत्सुरपराजितः। अभ्ययाद्विसृजन् बाणान् कायावरणभेदिनः ॥१७॥ प्रतिजग्राह तं कर्णः प्रीयमाणो महारथः। महता शरवर्षेण वर्षमाण-मिवाम्बुदम् ॥ १८ ॥ उत्पेतुः शरजालानि घोररूपाणि सर्वशः। अवि-ध्यदश्वान् बाह्वोश्च हस्तावापं पृथक् पृथक् ॥१९॥सोऽमृष्यमाणः कर्णस्य निषङ्गस्यावलम्बनम्। चिच्छेद निशिताग्रेण शरेण नतपर्वणा ॥ २० ॥ उपासङ्गादुपादाय कर्णो बाणानथापरान्। विव्याध पाण्डवं हस्ते तस्य मुष्टिरशीर्यत ॥ २१ ॥ ततः पार्थो महाबाहुः कर्णस्य धनुरच्छिनत्। स शक्तिं प्राहिणोत्तस्मै तां पार्थो व्यधमच्छरैः ॥ २२ ॥ ततोऽनुपेतुर्बहवो राधेयस्य पदानुगाः। तांश्च गाण्डीवनिर्मुक्तैः प्राहिणोद्यमसादनम् ॥२३॥ ततोऽस्याश्वान् शरैस्तीक्ष्णैर्बीभत्सुर्भारसाधनैः। आकर्णमुक्तैरभ्यघ्नंस्ते

मेरे साथ लड़तेमें तू रणमेंसे भाग गया था, तब ही तो तू जीता बच गया है, परन्तु तेरा छोटा भाई मारा ही गया ॥ १५ ॥ अरे! अपने भाईको मरवाकर और रणके मुहाने परसे भागकर तेरे सिवाय दूसरा कौन पुरुष, श्रेष्ठ पुरुषोंके बीचमें खड़ा होकर इसप्रकार बोलैगा ? ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहतेहैं, कि—हे जनमेजय! ऐसा कर्णसे कहते२ ही किसीके जीतनेमें न आनेवाला अर्जुन, शरीर पर पहरेहुए बक्तर को फोड़देनेवाले बाण मारताहुआ कर्णके ऊपर चढ़गया ॥ १७ ॥ तब महारथी कर्ण प्रसन्न हुआ और मेघकी समान बाणोंकी बड़ीभारी वर्षा करतेहुए अर्जुनके सामने जाकर आप भी बहुतसे बाण छोड़नेलगा ॥ १८ ॥ उस समय चारों ओर भयानक बाणोंकी वर्षा होनेलगी, उसको अर्जुन सह न सका तब उसने तत्काल नमीहुई नोक और तीखी धारके अलग २ बाण मारकर कर्णके रथके घोड़े, दोनों हाथोंके मोजे तथा भाथे लटकाने की डोरीको काटडाला ॥ १९ ॥ २० ॥ तब तो कर्णने भाथेमेंसे दूसरे बाण लेकर अर्जुनके हाथोंको बींधदिया, जिससे अर्जुनके हाथकी मुट्ठी खुलगई ॥ २१ ॥ तब महाबाहु पार्थने कर्णके धनुषके टुकड़े करडाले, उस समय कर्णने अर्जुनके ऊपर शक्ति फैंकी, परन्तु अर्जुनने अपने बाणोंसे तुरन्त ही उसके टुकड़े करदिये ॥२२॥ तब तो कर्णके पीछे चलनेवाले बहुतसे योधा अर्जुनके ऊपर चढ़आये, परन्तु उनको अर्जुनने, गाण्डीव धनुषमेंसे बाण छोड़ २ कर यमराज के घर भेजदिया ॥ २३ ॥ और फिर, अर्जुनने धनुषको कानोंतक खेंचकर वैरियोंके बाणोंके सामने टक्कर झेलनेवाले तीखे बाणोंसे कर्णके

हताः प्रापतन् भुवि ॥ २४ ॥ अथापरेण बाणेन ज्वलितेन महौजसा । विव्याध कर्णं कौन्तेयस्तीक्ष्णेनोरसि वीर्य्यवान् ॥ २५ ॥ तस्य भित्त्वा तनुत्राणं कायमभ्यगमच्छरः । ततः स तमसाविष्टो न स्म किञ्चित् प्रजज्ञिवान् ॥ २६ ॥ स गाढवेदनो हित्वा रणं प्रायादुदङ्मुखः । ततोऽर्जुन उदक्रोशदुत्तरश्च महारथः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोहरणपर्वणि कर्णापयाने षष्टितमोऽध्यायः ॥६० ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ ततो वैकर्त्तनं जित्वा पार्थो वैराटिमब्रवीत् । एतन्मां प्रापयानीकं यत्र तालो हिरण्मयः ॥ १ ॥ अत्र शान्तनवो भीष्मो रथेऽस्माकं पितामहः । काङ्क्षमाणो मया युद्धं तिष्ठत्यमरदर्शनः ॥२॥ अथ सैन्यं महद् दृष्ट्वा रथनागहयाकुलम् अब्रवीदुत्तरः पार्थमपविद्धः शरैर्भृशम् ॥ ३ ॥ नाहं शक्यामि वीरेह नियन्तुं ते हयोत्तमान् । विषीदन्ति मम प्राणा मनो विह्वलतीव मे ॥ ४ ॥ अस्त्राणामिह दिव्यानां प्रभावाः सम्प्रयुज्यताम् । त्वया च कुरुभिश्चैव द्रवन्तीव दिशो दश ॥५॥ गन्धेन

रथके घोड़ोंको घायल करदिया और वे मरकर भूमिपर गिरपड़े २४ फिर वीर कुन्तीनन्दनने, बड़ा बलभरा, जाज्वल्यमान दूसरा बाण लेकर ज्योंही कर्णकी छातीमें मारा, कि—तुरन्त ही वह कर्णके शरीर पर पैरेहुए बखतरको फोड़कर उसके शरीरमें घुसगया तब कर्णको मूर्छा आगई और उसको कुछ चेत न रहा ॥ २५ ॥ २६ ॥ अत्यन्त पीड़ा होनेसे कर्ण रणभूमिको छोड़कर उत्तरकी ओरको मुख करके भाग गया तब महारथी अर्जुन और उत्तर बड़ी गर्जना करनेलगे ॥ २७ ॥ साठवां अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—इसप्रकार कर्णको जीतकर अर्जुनने विराटनन्दन उत्तरसे कहा, कि—जिसके रथकी ध्वजामें सुवर्णके तालका चिन्ह है ऐसे रथमें मेरे पितामह भीष्मजी बैठे हैं यह देखनेमें देवतासे मालूम होते हैं और मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं इसकारण तू मुझे इनके समीप लेचल ॥ १ ॥ २ ॥ परन्तु बाणोंके लगनेसे बड़ा घायल हुआ उत्तर, रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरेहुए बड़े भारी सेनादलको देखकर अर्जुन से कहने लगा, कि—॥ ३ ॥ हे वीर ! मैं तुम्हारे इन श्रेष्ठ घोड़ोंको यहां अपने वशमें नहीं रखसकता, क्योंकि—मेरे प्राण मुरझारहे हैं और मेरा मन घबड़ायासा जाता है ॥ ४ ॥ जब तुम्हारे और कौरवोंके दिव्य अस्त्रोंकी मारामार चलती है तब दशों दिशायें नष्टसी होजाती हैं अर्थात् मुझे जहाँ तहाँ सूना ही सूना दीखता है ॥ ५ ॥ और मैं चरबी, रुधिर और मेदकी गन्धसे

मूर्च्छितश्चाहं वसारुधिरमेदसाम् । द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य तव चैव प्रपश्यतः ॥ ६ ॥ अदृष्टपूर्वः शूराणां मया संख्ये समागमः । गदापातेन महता शंखानां निःस्वनेन च ॥ ७ ॥ सिंहनादैश्च शूराणां गजानां बृंहितैस्तथा । गाण्डीवशब्देन भृशमशनिप्रतिमेन च । श्रुतिः स्मृतिश्च मे वीर प्रनष्टा मूढचेतसः ॥८॥ अलातचक्रप्रतिमं मण्डलं सततं त्वया । व्याक्षिप्यमाणं समरे गाण्डीवञ्च प्रकर्षतः । दृष्टिः प्रचलिता वीर हृदयं दीर्यतीव मे ॥ ९ ॥ वपुश्चोग्रं तव रणे क्रुद्धस्येव पिनाकिनः व्यायच्छतस्तव गजं दृष्ट्वा भीर्मे भवत्यपि ॥ १० ॥ नाददानं न सन्धानं न मुञ्चन्तं शरोत्तमान् । त्वामहं संप्रपश्यामि पश्यन्नपि न चेतनः ॥ ११ ॥ अवसीदन्ति मे प्राणा भूरियं चलतीव च न च प्रतोदं रश्मींश्च संयन्तुं शक्तिरस्ति मे ॥ १२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ मा भैषीस्त्वं भयात्मानं त्वयापि नरपुङ्गव । अत्यद्भुतानि कर्माणि कृतानि रणमूर्धनि ॥ १३ ॥ राजपुत्रोऽसि भद्रन्ते कुले मत्स्यस्य विश्रुते ।

मूर्छितसा होरहा हूँ, तुम्हारा तथा अन्य शूरोंका मैं रणभूमिमें जो यह युद्ध देखरहा हूँ, ऐसा युद्ध मैंने पहिले कभी नहीं देखा था, इस युद्ध को देखनेसे मेरा मन आज चलायमान होरहा है, हे वीर ! गदाओंके वडेभारी पटापट शब्दसे शंखोंकी ध्वनियोंसे, शूरोंके सिंहनादोंसे, हाथियोंकी चिंघारोंसे तथा वज्रकी समान महाप्रचण्ड गाण्डीव धनुष के टङ्कारशब्दोंसे मेरा मन मूढ़सा होगया है और मेरी सुननेकी शक्ति तथा स्मरणशक्ति भी नष्ट होगई है ॥ ६—८ ॥ और हे वीर ! रणभूमि में तुम बार बार गाण्डीव धनुषको खेंचकर बरैंटीके चक्रकी समान उसको गोलाकार करके घुमाते हो तो उसको देखकर मेरी दृष्टि चौंधाजाती है और हृदय मानो फटासाजाता है ॥ ९ ॥ रणमें कुपित हुए पिनाकधारी महादेवजीकी समान तुम जब बाणोंको छोड़ते हो तो उस समयके तुम्हारे उग्र शरीर और बाणोंको देखकर मुझै भय भी लगने लगता है ॥ १० ॥ मैं आपको देखताहुआ भी आप कब बाण लेते हो, कब धनुष पर चढ़ाते हो और कब छोड़देते हो, यह जरा भी नहीं देखसकता हूँ, किन्तु भौंचक्कासा होजाता हूँ ॥ ११ ॥ इस समय मेरे प्राण अकुला रहे हैं, यह भूमि घूमती हुईसी मालूम होती है और अब चाबुक तथा वाग्डोरोंको पकड़े रहनेकी शक्ति भी मुझमें नहीं है ॥ १२ ॥ यह सुनकर अर्जुनने कहा, कि—हे नरपुंगव ! तू भयभीत न हो, किन्तु अपने आत्माको धीरजसे स्थिर रख, तूने तो रणके मुहाने पर बड़े २ अचरजके काम किये हैं ॥१३॥ तू वैरियोंको दबानेवाले मत्स्यके प्रसिद्ध वंशमें उत्पन्न हुआ है, राजकुमार है, तेरा

जानस्त्वं शत्रुदमने नावपीडितुमर्हसि ॥ १४ ॥ धृतिं कृत्वा सुविपुलां राजपुत्र रथे मम । युध्यमानस्य समरे हयान् संयच्छ शत्रुहन् ॥१५॥
वैशम्पायन उवाच ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुर्वैराटिं नरसत्तमः । अर्जुनो रथिनांश्रेष्ठ उत्तरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥ सेनाग्रमाशु भीष्मस्य मापयस्वैतदेव माम् । आच्छेत्स्याम्यहमेतस्य धनुर्ज्यामपि चाहवे १७ अस्यन्तं दिव्यमस्त्रं मां चित्रमद्य निशामय । शतहूदामिवायान्तीं स्तनयित्नोरिवाम्बरे ॥ १८ ॥ सुवर्णपृष्ठं गांडीवं द्रक्ष्यन्ति कुरवो मम । दक्षिणेनाथ वामेन कतरेण स्विदस्यति ॥ १९ ॥ इति मां संगताः सर्वे तर्कयिष्यन्ति शत्रवः । शोणितोदां रथावर्त्तां नागनक्रान्दुरत्ययाम् । नदीं प्रस्कन्दयिष्यामि परलोकप्रवाहिनीम् ॥ २० ॥ पाणिपादशिरः पृष्ठबाहुशाखानिरन्तरम् । वनं कुरूणां छेत्स्यामि शरैः सन्नतपर्वभिः २१ जयतः कौरवीं सेनामेकस्य मम धन्विनः । शतं मार्गा भविष्यन्ति पावकस्येव कानने ॥ २२ ॥ मया चक्रमिवाविद्धं सैन्यं द्रक्ष्यसि केवलम् ।

कल्याण हो तुम्हें इसप्रकार भयभीत होजाना नहींचाहिये किन्तु हे वैरियोंका नाश करनेवाले राजकुमार ! मैं रणभूमिमें युद्ध करूँ उस समय तू अच्छेप्रकार धीरज रखकर मेरे घोड़ोंको थामे रख ॥ १४ ॥ १५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—महाबाहु पुरुषोंमें श्रेष्ठ, महारथी अर्जुनने उत्तरसे इसप्रकार कह कर फिर कहा, कि—॥ १६ ॥ तू मुझे भीष्म पितामहकी सेनाके मुहाने पर शीघ्र ही लेचल, तब मैं संग्राममें उनके धनुषकी डोरीको काटडालूं ॥ १७ ॥ आज तू देखना, कि—मैं आश्चर्य में डालनेवाले दिव्य अस्त्रोंका प्रहार करूँगा, जैसे आकाशमें बादलों मेंसे बिजली बाहरको निकलती है और उसको लोग देखते हैं, तैसे-ही आज कौरव, अपने सोनेकी पीठवाले गाण्डीवधनुषमेंसे बाणों की वर्षा करनेलगूँगा तब इकट्ठे हुए सब वैरी विचार करेंगे कि—यह धनञ्जय बायें हाथसे बाण फेंकरहा है या दाहिने हाथसे ? आज मैं, जिसमें रथरूपी भँवर पड़ेहोंगे और जिसमें हाथीरूपी मगरमच्छ पड़े होंगे ऐसी परलोकमेंको बहाकर लेजानेवाली लोहूकी भयानक नदी बहाऊँगा ॥ १८—२० ॥ और नमीहुई गांठवाले बाण मारकर हाथ, पैर, मस्तक और पीठ आदि जिसमें बहुतसी घनी शाखा हैं ऐसे कौरवरूपी वनको काटडालूंगा ॥ २१ ॥ मैं अकेला ही धनुर्धारी कौरवोंकी सेनाका तिरस्कार करूँगा तब, जैसे अग्नि को वनमें सैंकड़ों मार्ग मिलते हैं तैसे ही सैंकड़ों मार्ग मुझे भी कौरवसेना में मिलेंगे ॥ २२ ॥ अरे ! आज मेरे अस्त्रोंके प्रहारसे तू कौरवोंकी सेनाको चक्रकी समान चारोंओरको भागती हुई ही देखेगा और

धनुर्वेदे शिक्षितं चित्रमहं दर्शयितास्मि ते ॥ २३ ॥ असम्भ्रान्तो रथे तिष्ठ समेषु विषमेषु च । दिवमावृत्य तिष्ठन्तं गिरिं भेत्स्यामि खपत्रिभिः ॥ २४ ॥ अहमिन्द्रस्य वचनात् संग्रामेऽभ्यहनं पुरा । पौलोमान् कालखञ्जांश्च सहस्राणि शतानि च ॥ २५ ॥ अहमिन्द्राद् दृढां मुष्टिं ब्रह्मणः कृतहस्तताम् । प्रगाढे तुमुलं चित्रमिति विद्धि प्रजापतेः ॥ २६ ॥ अहं पारं समुद्रस्य हिरण्यपुरवासिनाम् । जित्वा षष्टिं सहस्राणि रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥ २७ ॥ शीर्यमाणानि कूलानि प्रवृद्धेनेव वारिणा । मया कुरूणां वृन्दानि पात्यमानानि पश्य वै ॥२८॥ ध्वजवृक्षं पत्तितृणं रथसिंहगणायुतम् । वनमादीपयिष्यामि कुरूणामस्त्रतेजसा॥२९॥ तानहं रथनीडेभ्यः शरैः सन्नतपर्वभिः । यत्तान् सर्वानतिबलान् योत्स्यमानानवस्थितान् । एकः संकालयिष्यामि वज्रपाणिरिवासुरान् ॥ ३० ॥ रौद्रं रुद्रादहं ह्यस्त्रं वरुणादपि वारुणम् । अस्त्रमाग्नेयमग्नेश्च वायव्यं मातरिश्वनः॥वज्रादीनि तथास्त्राणि शक्रादहमवाप्तवान्॥३१॥ धार्त्तराष्ट्रवनं

आज मैं तुझे अपनी धनुषविद्याकी तथा अस्त्रविद्याकी विचित्र शिक्षा दिखाऊँगा ॥ २३ ॥ तू सम और विषम संग्राम होते समय रथ पर सावधान होकर बैठा रहना, क्योंकि—यदि एक वारको आकाशमें फैलकर पहाड आखड़े हों तो उनको भी अपने बाणोंसे काटडालने का बल रखता हूँ ॥ २४ ॥ मैंने पहले इन्द्रके कहनेसे रणमें सैंकड़ों और सहस्रों पौलोमोंको और कालखञ्जोंको मारडाला था ॥२५ ॥ मैंने इन्द्रसे मुट्ठीको दृढ़ रखना, ब्रह्माजीसे बाण आदि को चलानेमें शीघ्रता और प्रजापतिसे, सङ्कटवाले संग्रामके समय अनेकों प्रकारके विचित्र रण करनेकी रीतियें सीखी हैं यह तू जानले ॥ २६॥ मैंने पहिले समुद्र के परले पार हिरण्यपुरमें रहनेवाले उग्र धनुषधारी साठ हजार रथियोंको जीतलिया था ॥ २७ ॥ और जैसे पानीका वेग बढ़जाने पर नदीके किनारे गिरजाते हैं तैसे ही मैं कौरवोंके सेनादलों को गिरादूँगा, यह तू देखना ॥ २८ ॥ जिसमें ध्वजारूपी वृक्ष. पैदलरूप तृण और चारों ओर रथरूपी सिंह हैं ऐसे कौरवरूपी वनको आज मैं अपने अस्त्रके तेजसे भस्म करडालूँगा ॥ २९ ॥ जैसे वज्रको हाथमें लेनेवाला इन्द्र अकेला ही असुरोंको रथपरसे नीचे गिरादेता है तैसे ही मैं भी अकेला ही अपनी नमी नोकवाले बाणोंको मारकर, लड़ने के लिये आयेहुए सब महाबली योधाओंको रथों परसे नीचे गिरादूँगा ॥ ३० ॥ मैंने रुद्रसे रुद्रास्त्र सीखा है, वरुणसे वारुणास्त्र सीखा है अग्नि से आग्नेय अस्त्र सीखा है, वायुदेवतासे वायव्य शस्त्र सीखा है और इन्द्रसे मैंने वज्र आदि अस्त्र सीखे हैं ॥ ३१ ॥ हे विराटनन्दन ! धृत-

घोरं नरसिंहाभिरक्षितम् । अहमुत्पाटयिष्यामि वैराटे व्येतु ते भयम् ॥३२॥वैशम्पायन उवाच॥एवमाश्वासितस्तेन वैराटिः सव्यसाचिना । व्यवगाहद्रथानीकं भीमं भीष्माभिरक्षितम् ॥३३॥ तमायान्तं महाबाहुं जिगीषन्तं रणे कुरून् । अभ्यवारयदव्यग्रः क्रूरकर्मापगासुतः ॥ ३४ ॥ तस्य जिष्णुरुपावृत्य ध्वजं मूलादपातयत् । विकृष्य कलधौताग्रैः स विद्धः प्रापतद्भुवि ॥३५ ॥ तं चित्रमाल्याभरणाः कृतविद्या मनस्विनः। आगच्छन् भीमधन्वानं चत्वारश्च महाबलाः ॥ ३६ ॥ दुःशासनो विकर्णश्च दुःसहोऽथ विविंशतिः। आगत्य भीमधन्वानं बीभत्सुं पर्यवारयन् ॥ ३७ ॥ दुःशासनस्तु भल्लेन विध्वा वैराटिमुत्तरम् । द्वितीयेनार्जुनं वीरः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ३८ ॥ तस्य जिष्णुरुपावृत्य पृथुधारेण कार्मुकम् । चकर्त्त गार्ध्रपत्रेण जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ३९ ॥ अथैनं पञ्चभिः पश्चात् प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे । सोऽपयातो रणं हित्वा पार्थबाणप्रपीडितः ॥ ४० ॥ तं विकर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्गृध्रपत्रैरजिह्मगैः

राष्ट्रके सब वेटे मानो एक महाभयानक वन है, बड़ेर वीर पुरुषरूपी सिंह उसकी रक्षा कररहे हैं, परन्तु मैं उस वनको उखेड़ डालूँगा, इसलिये तू उससे डरै मत ॥ ३२ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—सव्यसाचीने इसप्रकार उत्तरको धीरज दिया तब उत्तरकुमार, भीष्मजी की रक्षाकी हुई भयानक रथ सेनामें धनंजयको लेगया ॥ ३३ ॥ महाबाहु धनंजय रणमें कौरवोंका पराजय करनेकी इच्छासे आने लगा, तब भयानकपराक्रमी गंगानन्दन भीष्मजीने, धीरजके साथ उसै आगै बढ़नेसे रोकदिया ॥ ३४ ॥ तब धनंजयने भीष्मजीके सामने जा, जिनके फलों पर सोनेका झोल होरहा था ऐसे बाण धनुषपर चढ़ाये और धनुषको खेंचकर भीष्मजीकी ध्वजाको जडसे काटदिया और वह भूमिपर गिरपडी ॥ ३५ ॥ उस समय फूलोंकी विचित्र मालाओं के गहने पहरकर सजेहुए, विद्यावान्, धैर्यधारी महाबली दुःशासन, विकर्ण, दुःसह और विविंशति ये चार योधा चढ़ आये और इन्होंने आकर भयानक धनुषधारी धनंजयको चारों ओरसे घेरलिया ॥ ३६-३७ ॥ वीर दुःशासनने भाला मारकर विराटनन्दन उत्तरको घायल करदिया और दूसरे भालेसे धनंजयके स्तनोंके मध्यभागको घायल करदिया ॥३८॥ तब विजय चाहनेवाले धनंजयने दुःशासनके समीप में जाकर गीधपक्षोंके परोंवाले और बडे धारदार बाणोंसे मढेहुए दुःशासनके धनुषको काटडाला ॥ ३९ ॥ और फिर पाँच तीर मार कर दुःशासनकी छातीको भी घायल करदिया तब धनंजयके बाणके प्रहारसे अत्यन्त पीडित हुआ दुःशासन रणभूमिको छोडकर भाग गया ॥४०॥ तब धृतराष्ट्रनन्दन विकर्णने सीधेजानेवाले और जिनमें

विव्याध परवीरघ्नमर्जुनं धृतराष्ट्रजः ॥ ४१ ॥ ततस्तमपि कौन्तेयः शरेणानतपर्वणा । ललाटेऽभ्यहनत्तूर्णं स विद्धः प्रापतद्रथात् ॥ ४२ ॥ ततः पार्थमभिद्रुत्य दुःसहः स विविंशतिः । अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णैः परीप्सुर्भ्रातरं रणे ॥ ४३ ॥ तावुभौ गार्ध्रपत्राभ्यां निशिताभ्यां धनञ्जयः । विध्वा युगपदव्यग्रस्तयोर्वाहानसूदयत् ॥ ४४ ॥ तौ हताश्वौ विभिन्नांगौ धृतराष्ट्रात्मजावुभौ । अभिपत्य रथैरन्यैरपनीतौ पदानुगः ॥ ४५ ॥ सर्वा दिशश्चाभ्यपतद् बीभत्सुरपराजितः । किरीटमाली कौन्तेयो लब्धलक्षो महाबलः ॥ ४६ ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि अर्जुनदुःशासनादियुद्ध एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

वैशम्पायन उवाच । अथ सङ्गम्य सर्वे ते कौरवाणां महारथाः । अर्जुनं सहिता यत्ताः प्रत्ययुध्यन्त भारत ॥ १ ॥ स सायकमयैर्जालैः सर्वतस्तान्महारथान् । प्राच्छादयदमेयात्मा नीहारेणेव पर्वतान् ॥२॥ नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः । भेरीशङ्खनिनादैश्च स

गीध पक्षीके पर लगरहे थे ऐसे तेज बाण मारकर वीर वैरीका नाश करनेवाले धनंजयको बींधदिया ॥ ४१ ॥ उसी समय धनंजयने नमी हुई नोकवाला बाण उसके ललाटमें मारा और वह घायल होकर रथ परसे नीचे गिरपड़ा ॥ ४२ ॥ तब रणभूमिमें भाईकी रक्षा करने की इच्छासे दुःसह और विविंशति धनंजयके ऊपर चढ़ आये और उसके तेज तीर मारनेलगे ॥ ४३ ॥ परन्तु धनंजय घबड़ाया नहीं उसने बडे धीरजसे गीध पक्षीके परोंवाले दो तेज बाण मारकर उन दोनोंको एकसाथ ही घायल करदिया और उन दोनोके रथोंके घोड़ों को भी तीरोंसे मारडाला ॥ ४४ ॥ इसप्रकार धृतराष्ट्रके दोनो बेटोंके घोड़े मरणकी शरण होगए और उनके शरीर भी घायल होगए तब कितने ही दूसरे रथी तथा पैदल तुरन्त तहां आ उन दोनोंको उठाकर लेगए ॥ ४५ ॥ तदन्तर निशाना लगानेमें एक ही गिनाजानेवाला अजित, महाबली, किरीटमाली धनंजय रणभूमिमें सब ओर घूमने लगा ॥ ४६ ॥ इकसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! इसके पीछे कौरवोंके सब महारथी योधा इकट्ठे होकर सावधानीके साथ धनंजयके सामने लडनेलगे ॥ १ ॥ तब जैसे कुहर पहाडोंको ढकदेता है तैसे ही बड़े भारी आत्मबल वाले धनंजयने तीरोंकी बडीभारी वर्षा करके उन्हें चारों ओरसे ढकदिया ।२। इस समय चिंघारतेहुए बडेर हाथियों से, हींसतेहुए घोडोंसे और भेरी तथा शंखोंके शब्दोंसे भी रणभूमिमें घोर

शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ ३ ॥ नराश्वकायान्निर्भिद्य लौहानि कवचानि च । पार्थस्य शरजालानि विनिष्पेतुः सहस्रशः ॥ ४ ॥ त्वरमाणः शरानस्यन् पाण्डवः प्रबभौ रणे । मध्यन्दिनगतोर्चिष्मान् शरदीव दिवाकरः ॥ ५ ॥ उपप्लवन्ति वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तथा । सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चैव पदातयः ॥ ६ ॥ शरैः संछिद्यमानानां कवचानां महात्मनाम् । ताम्रराजतलौहानां प्रादुरासीन्महास्वनः ७ छन्नमायोधनं सर्वं शरीरैर्गतचेतसाम् । गजाश्वसादिनां तत्र शितबाणात्तजीवितैः ॥ ८ ॥ रथोपस्थाभिपतितैरास्तृता मानवैर्मही । प्रनृत्यतीव संग्रामे चापहस्तो धनञ्जयः ॥ ९ ॥ श्रुत्वा गांडीवनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः । त्रस्तानि सर्वसैन्यानि व्यपागच्छन् महाहवात् ॥ १० ॥ कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपस्रजस्तथा । पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि रणमूर्द्धनि ॥ ११ ॥ विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः । सहस्ताभरणैश्चान्यैः प्रच्छन्ना भाति मेदिनी ॥ १२ ॥ शिरसां पात्यमानानामन्तरा निशितैः शरैः । अश्मवृष्टिरिवाकाशाद्

शब्द हो उठा ॥३॥ धनञ्जयके छोड़ेहुए हजारों बाणोंके समूह पड़तेही मनुष्य और घोड़ोंके शरीरोंको तथा शरीरों पर पहरेहुए लोहेके बखतरों को काटडालते थे ॥ ४ ॥ और उस समय संग्राममें शीघ्रतासे तीर छोड़ताहुआ धनञ्जय, शरद्ऋतुमें मध्याह्नकालके तेजस्वी सूर्यकी समान शोभाको प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ और उसके भयसे डरेहुये रथी, रथों परसे पटापट गिरनेलगे, घोड़ेसवार घोड़ों परसे गिरनेलगे और पैदल भूमि परही लुढ़कनेलगे ॥ ६ ॥ और धनंजयके बाणोंकी मारसे महात्मा पुरुषोंके तांबेके, चाँदीके और लोहेके जो बखतर फटते थे उनका बड़ा भारी शब्द होता था ॥ ७ ॥ धनंजयके तीखे तीर लगनेसे मरेहुए हाथी और घोड़ोंके सवारोंके शरीरोंसे सब रणभूमि ढकगई थी ॥ ८ ॥ तथा रथोंकी बैठकों परसे नीचे गिरेहुए योधाओंसे भी पृथ्वी ढकगई थी, उस समय हाथमें धनुष लेकर खड़ाहुआ धनंजय, संग्राममें नाचता हुआसा दीखता था ॥ ९ ॥ तदनन्तर धनंजयने अपने गाण्डीव धनुष पर टङ्कार दी, उसके वज्रकेसे भयङ्कर शब्दको सुनकर सब सेना घबड़ा कर महासंग्राममेंसे भागनेलगी ॥ १० ॥ उस समय रणभूमिमें, कुण्डल और पगड़ियोंसहित सोने की मालाओंवाले शिर पड़ेहुए दीखते थे ॥ ११ ॥ तथा पार्थके तीरोंसे कटेहुए शरीरोंसे, धनुषोंसहित हाथोंसे तथा हाथके कंकण आदिसे एवं और गहनोंसेभी ढकीहुई भूमि शोभा पारही थी ॥ १२ ॥ बीचर में तेज कियेहुए बाणोंसे जो योधाओंके शिर काटर कर नीचे गिराये जारहे थे, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन्! पत्थरों

मवञ्जरतर्षभ ॥ १३ ॥ दर्शयित्वा तथात्मानं रौद्रं रुद्रपराक्रमः । आवरुद्धोऽचरत् पार्थो वर्षाणि त्रिदशानि च । क्रोधाग्निमुत्सृजन् वीरो धार्त्तराष्ट्रेषु पाण्डवः ॥ १४ ॥ तस्य तद्दहतः सैन्यं दृष्ट्वा चैव पराक्रमम् । सर्वे शांतिपरा योधा धार्त्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥ १५ ॥ वित्रासयित्वा तत् सैन्यन्द्रावयित्वा महारथान् । अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः पर्य्यवर्त्तत भारत ॥ १६ ॥ प्रावर्त्तयन्नदीं घोरां शोणितोदां तरङ्गिणीम् । अस्थिशैवालसम्बाधां युगान्ते कालनिर्मिताम् ॥ १७ ॥ शरचापप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् । तनुत्रोष्णीषसम्बाधां नागकूर्ममहाद्विपाम् ॥१८॥ मेदोवसासृक्प्रवहां महाभयविवर्धिनीम् । रौद्ररूपां महाभीमां श्वापदैरभिनादिताम् ॥ १९ ॥ तीक्ष्णशस्त्रमहाग्राहां क्रव्यादगणसेवितां । मुक्ताहारोर्मिकलिलां चित्रालङ्कारबुद्बुदाम् ॥ २० ॥ शरसंघमहावर्त्तां नागनक्रान्दुरत्ययाम् । महारथमहाद्वीपां शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाम्

की वर्षाकी समान आकाशमेंसे तीरोंकी वर्षा होरही थी ॥१३॥ इस प्रकार रुद्रकी समान पराक्रमी पाण्डुनन्दन धनंजय, जोकि-तेरह वर्ष पर्यन्त वनमें रुकारहा था वह, धृतराष्ट्रके वेटोंके ऊपर क्रोधकी आग वरसाता तथा अपनी भयानकता दिखाताहुआ रणभूमिमें घूमता था ॥ १४ ॥ सेनाको भस्म करनेवाले धनंजयकी उस वीरताको देखकर दुर्योधनके देखतेहुए सब योधा शान्त पड़गए ॥ १५ ॥ हे भरतवंशी राजन्! विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ धनंजय, कौरवसेनाको भयभीत करके और महारथियोंको भगाकर रणभूमिमें चारों ओर घूमनेलगा ॥ १६ ॥ और कुन्तीनन्दन धनंजयने, रणभूमिमें लोहूकी दुस्तर नदी वहा दी रुधिररूप पानीसे भरीहुई वह तरङ्गोंवाली नदी वड़ी भयानक थी जिसमें हड्डियेंरूप सिवार थे ऐसी वह नदी प्रलयके समय, कालकी, रचीहुईसी दीखती थी ॥ १७ ॥ जिसमें धनुष वाण डोंगेसे तैर रहेथे, जो वालोंरूपी सिवारसे किचौंदी दीख रही थी, वख्तर और पगड़ियों से खचाखच भरी हुई थी, जिसमें हाथीरूप कछुए और वड़े २ जलहाथी थे ॥ १८ ॥ मेद, वसा और लोहूसे वहरही थी, ऐसी घोररूप महाभयानक थी, कि—उसको देखने पर भय वढ़ता था, जंगली जीव वहाँ कोलाहल कररहे थे ॥ १९ ॥ उसमें तेज शस्त्ररूपी वड़े२ नाके पड़े थे, मांसभक्षी जीवोंके समूह उसकी सेवा कररहे थे उस में मोतियोंकी मालायेंरूपी तरङ्गें उठरही थीं और भांति २ के गहने जो पड़े थे, वे ही उसमें बुद्बुदसे दीखते थे ॥ २० ॥ वाणोंके समूहरूप वड़े २ भँवर पड़रहे थे, हाथीरूप नाके महारथी रूप वड़े २ टापू और शंख नगाड़ोंके वड़ेभारी शब्दरूप गड़गड़ाहट वाली रुधिरकी महादुस्तर नदी उस समय अर्जुनने वहाई ॥ २१ ॥

॥ २१ ॥ चकार च तदा पार्थो नदीं दुस्तरशोणिताम् । आददानस्य हि शरान् सन्धाय च विमुञ्चतः । विकर्षतश्च गाण्डीवं न कश्चिद्ददृशे जनः ॥ २२ ॥ * ॥ ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि अर्जुन-
घोरसंग्रामे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततो दुर्य्योधनः कर्णो दुःशासनविविंशती । द्रोणश्च सह पुत्रेण कृपश्चापि महारथः ॥ १ ॥ पुनर्ययुश्च संरब्धा धनञ्जयजिघांसवः । विस्फारयन्तश्चापानि बलवन्ति दृढानि च ॥ २ ॥ तान् विकीर्णपताकेन रथेनादित्यवर्चसा । प्रत्युद्ययौ महाराज समन्ताद्वानरध्वजः ॥ ३ ॥ ततः कृपश्च कर्णश्च द्रोणश्च रथिनां वरः । तं महास्त्रैर्महावीर्यं परिवार्य्य धनञ्जयम् ॥ ४ ॥ शरौघान् सम्यगस्यन्तो जीमूता इव वार्षिकाः । ववर्षुः शरवर्षाणि पातयन्तो धनंजयम् ॥ ५ ॥ इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं समरे लोमवाहिभिः । अदूरात् पर्य्यवस्थाप्य पूरयामासुरादृताः ॥ ६ ॥ तथा तैरवकीर्णस्य दिव्यैरस्त्रैः समन्ततः । न तस्य द्व्यङ्गुलमपि विवृतं समदृश्यत ॥ ७ ॥ ततः प्रहस्य बीभत्सुर्दिव्यमैन्द्रं महारथः । अस्त्रमादित्यसंकाशं गाण्डीवे समयोजयत्

धनञ्जय किस समय गाण्डीव धनुषको खेंचता था, किस समय तीरोंको लेकर धनुष पर चढ़ाता था और किस समय छोड़ता था यह किसीने देख ही न पाया ॥ २२ ॥ बासठवां अध्याय समाप्त ॥६२॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! धनंजयके ऐसे पराक्रम को देखकर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और महारथी कृपाचार्य भी क्रोधमें भरगए और उसको मारडालनेकी इच्छासे बलवान् और दृढधनुषोंका टंकारशब्द करते२ फिर धनंजयके ऊपर चढ़गए ॥ १ ॥ २ ॥ तब हे महाराज ! जिसकी ध्वजामें वानर है ऐसा धनंजय, जिसकी ध्वजा पताका पवनसे फहरा रही थीं ऐसे सूर्यकी समान तेजस्वी रथमें बैठकर उनके सामने लड़ने को गया ॥ ३ ॥ तब महारथी कृपाचार्य, कर्ण, और द्रोणाचार्य बड़े २ अस्त्रोंसे महापराक्रमी धनंजयको चारों ओरसे घेरकर वर्षाकालके मेघोंकी समान बाणोंके समूह छोड़तेहुए उसके ऊपर वर्षा करनेलगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ उन्होंने परोंवाले बहुतसे बाण मारकर पास चढ़ेहुए धनंजयको एकसाथ घेरकर बाणोंसे ढकदिया ॥६॥ इसप्रकार उनके छोड़ेहुए दिव्य अस्त्रोंसे चौतरफा ढकेहुए धनंजयके शरीरका दो अंगुलका भाग भी विनाबाणोंका नहीं दीखता था ॥ ७ ॥ तदन्तर महारथी धनंजयने हँसकर गांडीव धनुष पर ऐन्द्र अस्त्रको चढ़ाया

॥ ८ ॥ शररश्मिरिवादित्यः प्रतस्थे समरे बली । किरीटमाली कौन्तेयः सर्वान् प्राच्छादयत् कुरून् ॥ ९ ॥ यथा बलाहके विद्युत्पावको वा शिलोच्चये । तथा गाण्डीवमभवदिन्द्रायुधमिवानतम् ॥ १० ॥ यथा वर्षति पर्जन्ये विद्युद्विभ्राजते दिवि । द्योतयन्ती दिशः सर्वाः पृथिवीञ्च समन्ततः ॥ ११ ॥ तथा दश दिशः सर्वाः पतद्गाण्डीवमावृणोत् । नागाश्च रथिनः सर्वे मुमुहुस्तत्र भारत ॥ १२ ॥ सर्वे शान्तिपरा योधाः स्वचित्तानि न लेभिरे । संग्रामे विमुखाः सर्वे योधास्ते हतचेतसः ॥ १३ ॥ एवं सर्वाणि सैन्यानि भग्नानि भरतर्षभ । व्यद्रवन्त दिशः सर्वा निराशानि स्वजीविते ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोहरणपर्वणि अर्जुनसंकुलयुद्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ ततः शान्तनवो भीष्मो भरतानां पितामहः । वध्यमानेषु योधेषु धनंजयमुपाद्रवत् ॥ १ ॥ प्रगृह्य कार्मुकश्रेष्ठं जातरूपपरिष्कृतम् । शरानादाय तीक्ष्णाग्रान्मर्मभेदान् प्रमाथिनः ॥ २ ॥ पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि । शुशुभे स नरव्याघ्रो गिरिः

॥ ८ ॥ और किरीटमाली बलवान् कुन्तीनन्दनने, बाणरूपी किरणों वाले सूर्यकी समान प्रकाश करके सब कौरवोंको ढकदिया ॥ ९ ॥ जैसे जल बरसातेहुए मेघमें बिजली शोभा देती है और जैसे पहाड़के ऊपर अग्नि शोभा देता है तैसे ही उस समय इन्द्रधनुषकी समान सब ओरसे नमाहुआ गाण्डीव धनुष शोभा दे रहा था ॥१० ॥ और वर्षा होते समय जैसे बिजली, आकाश, दशों दिशा और भूमण्डलको छालेती है तैसे ही गाण्डीव धनुषने भी अपनेमेंसे बाण छोडकर दशों दिशाओंको छादियां, हे भारत ! उस समय रणभूमिमें खडेहुए हाथीसवार और रथी सब मूर्छित होगए ॥ ११ ॥ १२ ॥ और सब योधा भयके मारे ठंडे पडगए, अपना चित्त भी उनके हाथ नहीं आता था, इसप्रकार अचेत हुए वे सब योधा संग्रामको छोड २ कर भागनेलगे ॥ १३ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजन् ! इसप्रकार कौरवोंकी सब सेना अपने जीवनकी आशाको छोडकर सब दिशाओंमेंको भागनेलगी ॥ १४ ॥ तरेसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! जब रणभूमिमें योधा मारेजाने लगे तब, भरतवंशी राजाओंके पितामह शन्तनुनन्दन भीष्मजी, सोनेसे मढेहुए श्रेष्ठ धनुष और मर्मभेदी, प्राणलेवा तीखी धारों वाले तीरों को लेकर अर्जुनके ऊपरको झपटे ॥ १—२ ॥ इस समय नरव्याघ्र भीष्मजीके ऊपर श्वेत छत्र लगरहा था,

सूर्योदये यथा ॥ ३ ॥ प्रध्माय शंखं गांगेयो धार्त्तराष्ट्रान् प्रहर्षयन् । प्रदक्षिणमुपावृत्य बीभत्सुं समवारयत् ॥ ४ ॥ तमुद्वीक्ष्य समायान्तं कौन्तेयः परवीरहा । प्रत्यगृह्णात् प्रहृष्टात्मा धाराधरमिवाचलः ॥५॥ ततो भीष्मः शरानष्टौ ध्वजे पार्थस्य वीर्यवान् । समर्पयन्महावेगान् श्वसमानानिवोरगान् ॥ ६ ॥ ते ध्वजं पाण्डुपुत्रस्य समासाद्य पतत्रिणः । ज्वलन्तं कपिमाजघ्नुर्ध्वजाग्रनिलयांश्च तान् ॥ ७ ॥ ततो भल्लेन महता पृथुधारेण पाण्डवः । छत्रं चिच्छेद भीष्मस्य तूर्णं तदपतद्भुवि ॥ ८ ॥ ध्वजं चैवास्य कौन्तेयः शरैरभ्यहनद्द्रुतम् । शीघ्रकृद्रथवाहांश्च तथाभौ पार्ष्णिसारथी ॥ ९ ॥ अमृष्यमाणस्तद्भीष्मो जानन्नपि स पाण्डवम् । दिव्येनास्त्रेण महता धनंजयमवाकिरत् ॥ १० ॥ तथैव पाण्डवो भीष्मे दिव्यमस्त्रमुदीरयन् । प्रत्यगृह्णादमेयात्मा महामेघमिवाचलः ॥ ११ ॥ तयोस्तदभवद्युद्धं

इस कारण जैसे सूर्योदयके समय पहाड़ शोभा पाता है तैसे शोभित होरहे थे ॥ ३ ॥ गङ्गानन्दन भीष्मजीने संग्रामका आरम्भ करते समय शङ्ख बजाकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंको बड़ा आनन्द दिया और फिर दाहिनी ओरसे रथको चक्कर देकर धनंजयको घेरलिया ॥ ४ ॥ भीष्म पितामहको चढ़कर आया हुआ देखकर, वीर वैरियोंका संहार करने वाला धनंजय मनमें प्रसन्न हुआ और पर्वत जैसे बरसातको झेल लेताहै तैसे उसने भीष्मपितामहको युद्धके लिये स्वीकार करलिया ॥५॥ तदनन्तर वीर्यवान् भीष्मजीने, बड़े वेगवाले और श्वासें छोड़ते हुए सर्पोंकी समान सरसराते हुए आठ तीर धनंजयकी ध्वजामें मारे ॥ ६ ॥ उन तीरोंने पाण्डुनन्दनकी ध्वजामें जाकर पहिले तेजस्वी वानरको घायल किया तथा ध्वजामें रहनेवाले भूतोंको भी घायल किया ॥ ७ ॥ तब तो तत्काल अर्जुनने बड़ी धारवाले बड़ेभारी भाले से भीष्मजीके छत्रको काटडाला सो वह पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ ८ ॥ इसीप्रकार कुन्तीनन्दनने भीष्मजीकी ध्वजाके ऊपर भी बड़ाभारी प्रहार कर उसको काटदिया, फिर बड़ी ही शीघ्रतासे रथके घोड़ों को, रथके पीछेके रक्षकोंको तथा सारथीको भी घायल करदिया ॥९॥ भीष्मपितामह इस बातको सह न सके और उन्होंने धनंजयके ऊपर दिव्य अस्त्रोंकी बड़ीभारी वर्षा करी ॥१०॥ तुरन्त ही धनंजयने भी भीष्मजीके ऊपर दिव्य अस्त्र वर्षाना आरंभ करदिये और अपार बली भीष्मजीने, जैसे पहाड़ महामेघको झेल लेताहै तैसे ही उस अस्त्रवर्षा को झेललिया ॥११॥ उस समय भीष्म-पितामह और अर्जुनमें, बलि

तुमुलं लोमहर्षणम् । भीष्मेण सह पार्थेन बलिवासवयोरिव ॥ १२ ॥ प्रैक्षन्त कुरवः सर्वे योधाश्च सह सैनिकाः । भल्लैर्भल्लाः समागम्य भीष्मपाण्डवयोर्युधि । अन्तरिक्षे व्यराजन्त खद्योताः प्रावृषीव हि ॥ १३ ॥ अग्निचक्रमिवाविद्धं सव्यदक्षिणमस्यतः । गाण्डीवमभवद्राजन् पार्थस्य सृजतः शरान् ॥ १४ ॥ततः संछादयामास भीष्मं शरशतैः शितैः । पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥१५॥ तां स वेलामिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् । व्यधमत्सायकैर्भीष्मः पाण्डवं समवारयत् ॥१६॥ ततस्तानि निकृत्तानि शरजालानि भागशः । समरे च व्यशीर्यन्त फाल्गुनस्य रथं प्रति ॥ १७ ॥ ततः कनकपुंखानां शरवृष्टिं समुत्थिताम् । पाण्डवस्य रथात्तूर्णं शलभानामिवायतिम् । व्यधमत्तां पुनस्तस्य भीष्मः शरशतैः शितैः ॥ १८ ॥ ततस्ते कुरवः सर्वे साधुसाध्विति चाब्रुवन् । दुष्करं कृतवान् भीष्मो यदर्जुनमयोधयत् ॥ १९ ॥ बलवांस्तरुणो दक्षः क्षिप्रकारी धनंजयः । कोऽन्यः समर्थः पार्थस्य वेगन्धारयितुं रणे ॥ २० ॥ ऋते शान्तनवात् भीष्मात् कृष्णाद्वा

और इन्द्रकेसा रोमांच खडे करनेवाला घोर संग्राम होनेलगा ॥१२॥ और सब कौरव योधा तथा सेनाके लोग खडे २ उन दोनोंके संग्राम का देखनेलगे, रणमें भीष्म और धनंजयके भाले आकाशमें एक दूसरे के साथ भड़ कर वर्षाकालमें जैसे पटबीजने चमकते हैं तैसे शोभा पानेलगे ॥ १३ ॥ हे राजन् ! धनंजय गाण्डीवको बाईं तथा दाईं ओरको घुमाकर उसमेंसे बाण छोड़ता था इसकारण वह धनुष चक्कर बांधकर घुमाईहुई बरेंटीसा मालूम होता था ॥ १४ ॥ फिर जैसे मेघ जलकी धाराओंसे पहाडको ढकदेता है तैसे धनंजयने सैंकड़ों तेज बाणोंसे भीष्मजी को ढकदिया ॥ १५ ॥ और भीष्मजीने भी बढेहुए समुद्रके ज्वारभाटेकी समान धनंजयके बाणोंकी वर्षाके सामने अपने बाण छोडकर उसका नाश करदिया तथा धनंजयको बाणोंकी वर्षा करनेसे रोकदिया ॥ १६ ॥ और विभागके अनुसार भीष्मजीके काटेहुए तीरोंका समूह रणमें खडेहुए अर्जुनके रथ पर आकर गिरने लगा ॥ १७ ॥ तत्काल धनञ्जयके रथमेंसे टीड़ियोंकी वर्षाकी समान सोनेके परोंवाले बाणोंकी वर्षा होनेलगी तब तो फिर भीष्मजीने सैंकड़ों तेज बाण मारकर उसको काटदिया ॥ १८ ॥ यह देखकर सब कौरव कहनेलगे, कि—बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया और फिर बोलउठे, कि—भीष्मजीने जो धनञ्जयके साथ युद्ध किया है यह बड़ा ही कठिन काम किया है ॥ १९ ॥ अर्जुन बलवान्, तरुण, चतुर और शीघ्र अस्त्र छोड़नेवाला है ऐसे पार्थके वेगको रण

देवकीसुतात् । आचार्यप्रवराद्वापि भारद्वाजान्महाबलात् ॥२१॥ अस्त्रै-रस्त्राणि संवार्य क्रीडन्तौ भरतर्षभौ । चक्षूंषि सर्वभूतानां मोहयन्तौ-महाबलौ ॥ २२ ॥ प्राजापत्यं तथैवैन्द्रमाग्नेयं रौद्रदारुणम् । कौवेरं वारुणं चैव याम्यं वायव्यमेव च । प्रयुञ्जानौ महात्मानौ समरे तौ विचेरतुः॥२३॥विस्मितान्यथ भूतानि तौ दृष्ट्वा संयुगे तदा। साधु पार्थ महाबाहो साधु भीष्मेति चाब्रुवन् ॥ २४ ॥ नायं युक्तो मनुष्येषु योऽयं-संदृश्यते महान्। महास्त्राणां सम्प्रयोगः समरे भीष्मपार्थयोः ॥ २५ ॥ वैशम्पायन उवाच॥एवं सर्वास्त्रविदुषोरस्त्रयुद्धमवर्त्तत। अस्त्रयुद्धे तु निर्वृत्ते शरयुद्धमवर्त्तत ॥२६॥ अथ जिष्णुरुपावृत्य क्षुरधारेण कार्मु-कम्। चकर्त भीष्मस्य तदा जातरूपपरिष्कृतम् ॥ २७ ॥ निमेषान्तर-मात्रेण भीष्मोऽन्यत्कार्मुकं रणे। समादाय महाबाहुः सज्यं चक्रे महा-रथः। शरांश्च सुबहून् क्रुद्धो मुमोचाशु धनंजये ॥ २८ ॥ अर्जुनोऽपि शरांस्तीक्ष्णान् भीष्माय निशितान् बहून् । चिक्षेप सुमहातेजास्तथा

में शन्तनुनन्दन भीष्मजीके सिवाय वा देवकीनन्दन श्रीकृष्णके सिवाय अथवा आचार्योंमें श्रेष्ठ महाबली भारद्वाज (द्रोणाचार्य) के सिवाय दूसरा कौन सहसकता है ? ॥ २० ॥ २१ ॥ भरतवंशमें श्रेष्ठ वे दोनो महाबली पुरुष, अस्त्र फेंककर सामनेसे आतेहुए अस्त्रको रोकते थे, और सब प्राणियोंकी आंखोंको भौचक्कीसी कररहे थे ॥२२॥ वे दोनो महात्मा प्रजापतिके, इन्द्रके, अग्निके, महाभयानक रुद्र कुवेरके वरुणके यमके और वायुके अस्त्रोंको छोड़ते हुए रणभूमिमें घूमरहे थे ॥ २३ ॥ उस समय उन दोनोंके संग्राम को देखकर सब प्राणी अचरज मानरहे थे, और कहते थे कि–हे महाबाहु धनञ्जय तुम ठीक लड़ते हो ! हे भीष्मजी तुम भी ठीक काम करते हो ॥ २४ ॥ भीष्म और धनञ्जयके संग्राममें जिन बड़े २ अस्त्रोंकी मारामार होती हुई देखते हैं, ये अस्त्र मनुष्योंके पास नहीं होसकते ये तो देवताओं के पास ही होसकते हैं ॥ २५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, सब अस्त्रोंको जाननेवाले दोनो वीरोंका इसप्रकार संग्राम हुआ था, इस अस्त्र युद्ध के होचुकने पर बाणोंकी लड़ाई हुई ॥ २६ ॥ तदनन्तर विजयशील अर्जुनने भीष्मजीके पास आकर उनके सोनेसे मढ़ेहुए धनुषको क्षुर नामके तीरकी धारसे काटडाला॥२७॥तब महारथी महाबाहु भीष्मने पलक भरमें रणमें अपना धनुष लेकर उसको ठीक किया और फिर कोपमें भरकर उन्होने धनञ्जयके ऊपर बहुतसे बाण बरसाना आरम्भ करदिये॥२८॥उधर महातेजस्वी धनञ्जय भी भीष्मजीके ऊपर सानपर धरेहुए अनेकों तीक्ष्ण बाणोंकी मारामार करनेलगा तैसे ही भीष्मजी

भीष्मश्च पाण्डवे ॥ २९ ॥ तयोर्दिव्यास्त्र विदुषोरस्यतोर्निशितान् शरान्। न विशेषस्तदा राजन् लक्ष्यते स्म महात्मनोः ॥ ३० ॥ अथावृणोद्दशः दिशः शरैरतिरथस्तदा। किरीटमाली कौन्तेयः शूरःशान्तनवस्तथा ॥३१॥ अतीव पाण्डवो भीष्मं भीष्मश्चातीव पांडवम्। बभूव तस्मिन् संग्रामे राजन् लोके तदद्भुतम् ॥ ३२ ॥ पाण्डवेन हताः शूरा भीष्मस्य रथरक्षिणः। शेरते स्म तदा राजन् कौन्तेयस्याभितो रथम् ॥ ३३ ॥ ततो गांडीवनिर्मुक्ता निरमित्रं चिकीर्षवः। आगच्छन् पुंखसंश्लिष्टाः श्वेतवाहनपत्रिणः ॥३४॥ निष्पतन्तो रथात्तस्य धौतहैरण्यवाससः। आकाशे समदृश्यन्त हंसानामिव पंक्तयः ॥ ३५ ॥ तस्य तद्दिव्यमस्त्रं हि विगाढं चित्रमस्यतः। प्रेक्षन्ते स्मान्तरिक्षस्थाः सर्वेदेवाः सवासवाः ॥ ३६ ॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतो गन्धर्वश्चित्रमद्भु-

---

भी अर्जुनके ऊपर बाण बरसानेलगे ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इसप्रकार दिव्य शस्त्रोंको जाननेवाले वे दोनोंजने, तेज कियेहुए तीर फेंकरहे थे परन्तु उन दोनों महात्माओंमें बढ़कर कौन है, यह नहीं मालूम होता था ॥ ३० ॥ तिस संग्राममें उस समय किरीटमाली वीर कुन्तीनन्दन और शूर भीष्म पितामह इन दोनों अतिरथियोंने बाणोंकी मारसे दशों दिशाओंको घेरलिया था ॥३१ ॥ हे राजन् ! उस संग्राममें जैसे किसी समय अर्जुन भीष्मजीसे बढ़ जाता था तैसे ही कभी भीष्मजी उससे बढ़जाते थे, लोकमें वह काम अचरजसा मालूम होता था ॥ ३२ ॥ और हे राजन् ! भीष्मजीके रथकी रक्षा करनेवाले जिन वीर पुरुषोंको धनञ्जयने रणमें मारडाला था वे उसके रथके आस पास भूमिमें पडे हुए थे ॥ ३३ ॥ तदनन्तर श्वेत घोडोंवाले धनंजयके, सोनेके पर लगे, सोनेके पत्तरसे जडे और पानी पिलाकर तेज कियेहुए तीर वैरियोंके प्राण लेनेकी इच्छासे अर्जुनके रथके भीतरसे गाण्डीव धनुषमेंसे छूट २ कर आकाशमें उड़नेलगे, वे हंसोंकी पंक्तिसे मालूम होते थे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ धनंजय विचित्र प्रकारसे तीर छोड़ रहा था, उस समय उसके बाण फेंकनेके दिव्य कर्मको आकाशमें विराजमान देवता और इन्द्र देख ही रहे थे ॥३६॥ चित्रसेन नामवाला प्रतापी गन्धर्व, अर्जुनके आश्चर्यमें डालनेवाले बाण चलानेके विचित्र कर्मको देखकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ और उसने इन्द्रसे कहा, कि—॥ ३७ ॥ उस अर्जुनके गाण्डीव धनुषमेंसे छोडेहुए और एक दूसरेके पीछे जाते हुए बाणोंको देखो, देखो ! दिव्य अस्त्रोंको छोडनेवाले विजयशील अर्जुनका यह काम

तम् । शशंस देवराजाय चित्रसेनः प्रतापवान् ।।३७।। पश्येमान् पार्थ-निर्मुक्तान् ससक्तानिव गच्छतः । चित्ररूपमिदं जिष्णोर्दिव्यमस्त्रमुदीर्यतः ॥ ३८ ॥ नेदं मनुष्याः संदध्युर्नहीदं तेषु विद्यते । पौराणानां महास्त्राणां विचित्रोऽयं समागमः ॥ ३९ ॥ आददानस्य हि शरान् सन्धाय च विमुञ्चतः । विकर्षतश्च गांडीवं नान्तरं समदृश्यत ॥ ४०॥ मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे । नाशक्नुवन्त सैन्यानि पाण्डवं प्रतिवीक्षितुम् ॥ ४१ ॥ तथैव भीष्मं गांगेयं द्रष्टुं नोत्सहते जनः ॥४२॥ उभौ विश्रुतकर्माणावुभौ तीव्रपराक्रमौ । उभौ सदृशकर्माणावुभौ युधि सुदुर्जयौ ॥ ४३ ॥ इत्युक्तो देवराजस्तु पार्थभीष्मसमागमम् । पूजयामास दिव्येन पुष्पवर्षेण भारत ॥ ४४ ॥ ततः शान्तनवो भीष्मो वामपार्श्वमताडयत् । पश्यतः प्रतिसन्धाय विध्यतां सव्यसाचिनः ॥ ४५ ॥ ततः प्रहस्य बीभत्सुः पृथुधारेण कार्मुकम् । चिच्छेद गार्ध्रपत्रेण भीष्मस्यादित्यचेतसः ॥ ४६ ॥ अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे । यतमानं पराक्रान्तं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ ४७ ॥ स पीडितो महाबाहुर्गृहीत्वा रथकूबरम् । गांगेयो युद्धदुर्धर्षस्तस्थौ

कैसा अचरज भरा है! ॥ ३८ ॥ इस अस्त्रको मनुष्य धनुष पर नहीं चढ़ासकते और यह अस्त्र मनुष्योंके पास है भी नहीं, यह तो प्राचीन कालके बड़े २ अस्त्रोंका विचित्र समागम हो रहा है ॥ ३९ ॥ अर्जुन कब बाणों को लेता है, कब धनुष पर चढ़ाता है कब गाण्डीव धनुष को खैंचता है और कब बाण छोड़ता है, इसका अवसर देखनेमें ही नहीं आता ॥ ४० ॥ जैसे आकाशमें तपतेहुए सूर्यको मनुष्य मध्याह्नके समय नहीं देखसकते वैसे ही यह सेना भी धनंजयको नहीं देख सकती ॥४१॥ इसीप्रकार गङ्गाके पुत्र भीष्मको भी लोग नहीं देखसकते ॥४२॥ ये दोनोजने प्रसिद्ध कर्म करनेवाले तीव्र पराक्रमी, समान काम करनेवाले और रणमें बड़े दुर्जय हैं ॥ ४३ ॥ हे भरतवंशी राजन्! इसप्रकार चित्रसेन गन्धर्वने इन्द्रसे दोनोंके विषयमें कहा तब इन्द्रने दिव्य फूलोंकी वर्षासे अर्जुन और भीष्म दोनोंका सत्कार किया ॥ ४४ ॥ उस समय शन्तनुनन्दन भीष्मजीने, बाणोंका प्रहार करके बींधतेहुए अर्जुनके देखतेर धनुष पर बाण चढ़ाकर अर्जुनके बायें खभेपर प्रहार किया ॥ ४५ ॥ तब अर्जुनने खिलखिलाके हँसकर गीधके परोंवाले और बड़ी धारके तीरसे सूर्यकी समान तेजस्वी भीष्मके धनुषको काटदिया ॥ ४६ ॥ और फिर धनंजय अर्जुनने, महापराक्रमी उद्योग करतेहुए भीष्मजीकी छातीमें दश बाण मारकर उनको बींधदिया ॥ ४७ ॥ अर्जुनके इस प्रहारसे, रणमें किसीकी आँखमें न आनेवाले

दीर्घमभिप्रायान्तरम् ॥ ४८ ॥ तं विसंज्ञमपोवाह संयन्ता रथवाजिनाम् ।
उपदेशमनुस्मृत्य रक्षमाणो महारथम् ॥ ४६ ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोहरणपर्वणि
भीष्मापयाने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ भीष्मे तु संग्रामशिरो विहाय पलायमाने धृतराष्ट्रपुत्रः । उत्सृज्य केतुं विनदन्महात्मा धनुर्विगृह्यार्जुनमाससाद ॥ १ ॥ स भीमधन्वानमुदग्रवीर्यं धनञ्जयं शत्रुगणे चरन्तम् । आकर्णपूर्णायतचोदितेन विव्याध भल्लेन ललाटमध्ये ॥ २ ॥ स तेन बाणेन समर्पितेन जाम्बूनदाग्रेण सुसंहितेन । रराज राजन् महनीयकर्मा यथैकपर्वा रुचिरैकशृङ्गः ॥ ३ ॥ अथास्य बाणेन विदारितस्य प्रादुर्बभूवासृगजस्रमुष्णम् स तस्य जाम्बूनदपुङ्खचित्रो भित्वा ललाटं सुविराजते स्म ॥ ४ ॥ स तेन बाणाभिहतस्तरस्वी दुर्योधनेनोद्धतमन्युवेगः । शरानुपादाय विषाग्निकल्पान् विव्याध राजानमदीनसत्त्वः ॥ ५ ॥ दुर्योधनश्चापि तमुग्रतेजाः पार्थश्च दुर्योधनमेकवीरः ।

महाबाहु भीष्मजीके पीड़ा होनेलगी और वह बहुत देरतक रथके कूबरको पकड़ कर ही बैठे रहे ॥ ४८ ॥ उसी समय रथके घोड़ोंको वशमें रखनेवाला सारथी अपने कर्त्तव्य कर्मको स्मरण करके, अचेत हुए भीष्मजीकी रक्षा करनेके लिये उनको रणभूमिमेंसे दूर लेगया ॥ ४६ ॥ चौंसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ छ ॥ छ ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! भीष्मपितामहके रणके मुहानेको छोड़कर चलेजाने पर महात्मा दुर्योधन रथकी ध्वजाको फहराता तथा गरजता हुआ धनुष लेकर धनंजयके ऊपर चढ़ आया ॥ १ ॥ और उसने धनुषको कानतक पूर्णरीतिसे खेंचकर रणभूमिमें वैरियोंके समूहमें विचरतेहुए भयानक धनुर्धारी और उग्रपराक्रमी अर्जुनके ललाटका मध्यभाग भालेसे बींध दिया ॥ २ ॥ हे राजन् ! ललाटमें खूब गुभेहुए सोनके फलवाले उस बाणसे जैसे एक शिखरवाला पहाड़ उस शिखर पर उगेहुए एक लंबे बाँससे शोभा पाता है तैसे ही परम उत्तम कर्म करनेवाला धनंजय भी शोभा पानेलगा ॥ ३ ॥ बाणसे चिरेहुए ललाटमेंसे गरम लोहू वारंवार टपकनेलगा और सुनहरी परसे विचित्र प्रकारका मालूम होनेवाला भाला नामक बाण भी धनंजयके ललाटको भेदनेसे बड़ी ही शोभा पानेलगा ॥ ४ ॥ रणमें दुर्योधन अर्जुनके साथ और उग्रतेजवाला एकवीर अर्जुन दुर्योधनके साथ, इसप्रकार अजमीढ़ वंशके दोनों एक समान महावीर पुरुष रणमें परस्पर लड़नेलगे ॥ ५ ॥ तदनन्तर दुर्योधनका

अन्योऽन्यमाजौ पुरुषप्रवीरौ समौ समाजग्मतुराजमीढौ ॥ ६ ॥ ततः प्रभिन्नेन महागजेन महीधराभेन पुनर्विकर्णः । रथैश्चतुर्भिर्गजपादरक्षैः कुन्तीसुतं जिष्णुमथाभ्यधावत् ॥ ७ ॥ तमापतन्तं त्वरितं गजेन्द्रं धनञ्जयः कुम्भविभागमध्ये । आकर्णपूर्णेन महायसेन बाणेन विव्याध महाजवेन ॥ ८ ॥ पार्थेन सृष्टः स तु गार्ध्रपत्र आपुंखदेशात् प्रविवेश नागम् । विदार्य शैलप्रवरं प्रकाशं यथाशनिः पर्वतमिन्द्रसृष्टः ॥ ९ ॥ शरप्रतप्तः स तु नागराजः प्रवेपितांगो व्यथितांतरात्मा । संसीदमानो निपपात मह्यां वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ १० ॥ निपातिते दन्तिवरे पृथिव्यां त्रासाद्विकर्णः सहसावतीर्य । तूर्णं पदान्यष्टशतानि गत्वा विविंशतेः स्यन्दनमारुरोह ॥ ११ ॥ निहत्य नागन्तु शरेण तेन वज्रोपमेनाद्रिवराम्बुदाभम् । तथा विधेनैव शरेण पार्थो दुर्योधनं वक्षसि निर्बिभेद ॥ १२ ॥ ततो गजे राजनि चैव भिन्ने भग्ने विकर्णे च सपादरक्षे । गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैः प्रणुन्नास्ते योधमुख्याः

भाई विकर्ण, मदटपकानेवाले और पर्वतकी समान वहुत ऊँचे हाथी के ऊपर बैठकर चार रथी कितने हाथीसवार और पैदलोंके साथ, विजयपानेवाले कुन्तीनन्दन धनंजयके साथ लडनेको आया॥६॥उसी समय धनञ्जयने वडे वेगवाले फौलादके वाणको कानतक खेंचकर झपाटेसे चले आतेहुए उसके हाथीके गण्डस्थलमें मारकर उसको वींधदिया॥७॥ उस समय जैसे इन्द्रका माराहुआ वज्र वडेभारी पहाड को फोड़कर उसके भीतर घुसजाता है तैसे ही धनंजयका माराहुआ गिद्ध पक्षीके परोंवाला वाण भी पूँछसमेत हाथीके शरीरमें घुसगया ॥ ८ ॥ उस वाणके लगनेसे गजराजके शरीरमें दाह होनेलगा, उसका शरीर कांपनेलगा और उसके मनमें भी खेद होनेलगा और जैसे वज्रके लगनेसे पहाड़का शिखर टूटकर पृथ्वीपर गिरपड़ता है तैसे ही वह गजराज भी वहुत ही व्याकुल होकर भूमिपर खसपड़ा ॥९॥ वडेभारी हाथीको भूमिपर गिराया, कि—विकर्ण भयके मारे तुरन्त नीचे कूदपड़ा और आठ सौ पग पैरों चलकर विविंशतिके रथ पर जाबैठा॥१०॥धनंजयने इसप्रकार वज्रकी समान वाणसे वड़े पहाड़ और मेघकी समान हाथीका नाश करकै तैसा ही दूसरा वाण मार कर दुर्योधनकी छाती चीरडाली ॥ ११ ॥ इसप्रकार हाथीको तथा राजाको घायल करदिया और विकर्ण अपने पादरक्षकों सहित रणभूमिमेंसे भागगया तव धनंजयने गाण्डीवमेंसे तीर छोड़कर मुख्य२ योधाओंको मारना आरम्भ करदिया तव वे भी रणमेंसे एकसाथ भागनेलगे ॥ १२ ॥ अर्जुनने हाथीको मारडाला, यह तथा सव योधा-

सहसापजग्मुः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वैव पार्थेन हतञ्च नागं योधांश्च सर्वान् द्रवतो निशम्य । रथं समावृत्य कुरुप्रवीरो रणात् प्रदुद्रावयतो न पार्थः ॥ १४ ॥ तं भीमरूपं त्वरितं द्रवन्तं दुर्योधनं शत्रुसहोऽभिपत्य । आस्फोटयद्योद्धमनाः किरीटी बाणेन विद्धं रुधिरं वमंतम् १५ अर्जुन उवाच ॥ विहाय कीर्त्तिं विपुलं यशश्च युद्धात् परावृत्य पलायसे किम् । न तेऽद्य तूर्याणि समाहतानि तथैव राज्यादवरोऽपि तस्य ॥ १६ ॥ युधिष्ठिरस्यास्मि निदेशकारी पार्थस्तृतीयो युधि संस्थितोऽस्मि । तदर्थमावृत्य मुखं प्रयच्छ नरेन्द्रवृत्तं स्मर धार्त्तराष्ट्र ॥ १७ ॥ मोघं तवेदं भुवि नामधेयं दुर्योधनेतीह कृतं पुरस्तात् । नहीह दुर्योधनता तवास्ति पलायमानस्य रणं विहाय ॥ १८ ॥ न ते पुरस्तादथ पृष्ठतो वा पश्यामि दुर्योधन रक्षितारम् । अपेहि युद्धात् पुरुषप्रवीर प्राणान् प्रियान् पाण्डवतोऽद्य रक्ष ॥ १९ ॥ # ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि दुर्योधनापयाने पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

योधोंको भागते हुए देखकर कुरुवंशके महावीर दुर्योधनने रथको पीछेको लौटाया और जहां अर्जुन नहीं था ऐसे स्थानमेंको भाग गया १३ भयानक रूपवाला दुर्योधन हारगया और वह मुखमेंसे रुधिर ओकता २ रणभूमिमेंसे तवड़ाकर भागनेलगा, तब वैरियोंको सहनेवाले और संग्राम करनेके अभिलाषी अर्जुनने, दोनों हाथोंसे भुजदण्डोंको ठोंककर दुर्योधनसे इसप्रकार कहा ॥ १४ ॥ अर्जुन बोला, कि-हे दुर्योधन ! तू कीर्त्ति तथा विशाल यशको त्याग युद्धमेंसे पीठ फेरकर क्यों भागा जाता है, तेरे विजयके बाजे जैसे पहले बजते थे तैसे अब नहीं बजेंगे तूने जिनको अधर्म करके राजसिंहासन परसे उतारदिया था, उन युधिष्ठिरकी आज्ञा बजाने वाला मैं तीसरा पाण्डुपुत्र धनंजय, इस संग्राममें खड़ा हूँ, इसलिये हे,धृतराष्ट्रके पुत्र राजा दुर्योधन। तू पीछेको फेरकर अपना मुख तो दिखला, अरे जूए आदिमें जो अधर्म किया था उसको याद कर ॥ १५ ॥ १६ ॥ भूतल पर पहिले तेरा दुर्योधन नाम रक्खा गया था सो व्यर्थ है क्योंकि—तू रणभूमिको छोड़कर भागा जाता है, इसलिये तुझमें दुर्योधनपना नहीं है ॥ १७ ॥ हे दुर्योधन ! मैं तेरे आगे या पीछे तेरी रक्षा करनेवाला किसीको नहीं देखता हूँ, इसलिये हे बड़ेभारी वीर पुरुष ! तू युद्धमेंसे भाग जा भाग जा और अपने प्यारे प्राणोंकी इस अर्जुनसे रक्षा करले ॥ १८ ॥ पैंसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ # ॥ # ॥ # ॥

वैशम्पायन उवाच । आहूयमानश्च स तेन सङ्ख्ये महात्मना वै धृतराष्ट्रपुत्रः । निवर्त्तितस्तस्य गिरांकुशेन महागजो मत्त इवांकुशेन ॥१॥ सोऽमृष्यमाणो वचसाभिमृष्टो महारथेनातिरथस्तरस्वी पर्य्याववर्त्ताथ रथेन वीरो भोगी यथा पादतलाभिमृष्टः ॥ २ ॥ तं प्रेक्ष्य कर्णः परिवर्त्तमानं निवर्त्य संस्तभ्य च विद्धगात्रम् । दुर्योधनस्योत्तरतोऽभ्यगच्छत् पार्थं नृवीरो युधि हेममाली ॥ ३ ॥ भीष्मस्ततो शान्तनवो विवृत्य हिरण्यकक्षस्त्वरया भिपङ्गी । दुर्योधनं पश्चिमतोऽभ्यरक्षत् पार्थान्महाबाहुरधिज्यधन्वा ॥ ४ ॥ द्रोणः कृपश्चैव विविंशतिश्च दुःशासनश्चैव विवृत्य शीघ्रम् । सर्वे पुरस्ताद्विततोरुचापो दुर्य्योधनार्थं त्वरिताभ्युपेयुः ॥ ५ ॥ स तान्यनीकानि निवर्त्तमानान्यालोक्य पूर्णौघनिभानि पार्थः । हंसो यथा मेघमिवापतन्तं धनञ्जयः प्रत्यतपत्तरस्वी ॥ ६ ॥ ते सर्वतः सम्परिवार्य्य पार्थमस्त्राणि दिव्यानि समाददानाः ।

वैशम्पायन कहते हैं, कि—यह बात कहकर महात्मा अर्जुनने, दुर्योधनको फिर रणमें बुलाया तो तुरन्त ही जैसे मदमत्त हाथी अंकुशके प्रहारसे पीछेको लौट पड़ता है तैसे ही दुर्योधन, अर्जुनकी वाणीरूपी अंकुशके प्रहारसे पीछेको लौटा ॥ १ ॥ महारथी अर्जुनने, अतिरथी और वेगवाले दुर्योधनका तीखी बातोंसे तिरस्कार किया तो वह उसको सह न सका और जैसे पैरकी टोकर मार देनेसे सांप पीछेको लौट पड़ता है तैसे ही वीर दुर्योधन भी रथसहित पीछेको लौट पड़ा ॥ २ ॥ जिसका शरीर बाणोंके लगनेसे घायल होगया था ऐसे दुर्योधनको पीछेको लौटताहुआ देखकर कर्णने उसको रोका और वह सोनेकी माला पहरनेवाला मनुष्योंमें वीर कर्ण, दुर्योधनकी उत्तरकी ओरसे रक्षा करताहुआ अर्जुनसे लड़नेको चढ़आया ॥ ३ ॥ वैरियोंको हरादेनेकी शक्तिवाले, शरीर पर सोनेका कवच पहरे, विशालबाहु भीष्मपितामह, धनुष पर डोरी चढ़ायेहुए शीघ्रतासे लौटआये और धनंजयसे दुर्योधनकी रक्षा करनेके लिये पश्चिमकी ओर खड़े होगए ॥ ४ ॥ इसीप्रकार द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विविंशति और दुःशासन भी तुरन्त पीछेको लौट कर दुर्योधनकी रक्षाके लिये बड़े २ और लम्बे २ धनुष लेकर शीघ्रतासे तहां आपहुँचे ॥ ५ ॥ उस समय जलके पूर (अहले) की समान पीछेको लौटती हुई सेनाओंको देखकर, जैसे सूर्य पीछे आतेहुए मेघको तपाताहै तैसे ही वेग वाला अर्जुन उन सेनाओंको ताप देनेलगा ॥ ६ ॥ दिव्य अस्त्र धारण करनेवाले उन सब योधाओंने अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया और जैसे मेघ पहाड़ोंके ऊपर चारों ओरसे जल बरसाते हैं तैसे ही वे

ववर्षु रभ्येत्य शरैः समन्तान्मेघा यथा भूधरमम्बुवर्गैः ॥ ७ ॥ ततोऽस्त्रमस्त्रेण निवार्य्य तेषां गाण्डीवधन्वा कुरुपुङ्गवानाम् । संमोहनं शत्रुसहोऽन्यदस्त्रं प्रादुश्चकारैन्द्रिरपारणीयम् ॥८॥ ततो दिशश्चानुदिशो विवृत्य शरैः सुधारैर्निशितैः सुपुत्रः । गाण्डीवघोषेण मनांसि तेषां महाबलः प्रव्यथयांचकार ॥ ९ ॥ ततः पुनर्भीमरवं प्रगृह्य दोर्भ्यां महाशंखमुदारघोषम् । व्यनादयत् स प्रदिशो दिशः खं भुवञ्च पार्थो द्विषतां निहन्ता ॥१०॥ ते शंखनादेन कुरुप्रवीराः संमोहिता पार्थसमीरितेन । उत्सृज्य चापानि दुरासदानि सर्वे तदा शान्तिपरा बभूवुः ॥ ११ ॥ तथा विसंज्ञेषु च तेषु पार्थः स्मृत्वा च वाक्यानि तथोत्तरायाः निर्याहि मध्यादिति मत्स्यपुत्रमुवाच यावत् कुरवो विसंज्ञाः ॥ १२ ॥ आचार्य्यशारद्वतयोः सुशुक्ले कर्णस्य पीतं रुचिरञ्च वस्त्रम् । द्रौणेश्च राज्ञश्च तथैव नीले वस्त्रे समादत्स्व नरप्रवीरः॥१३॥ भीष्मस्य संज्ञान्तु तथैव मन्ये जानाति सोऽस्त्रप्रतिघातमेवः । एतस्य वाहान्

चारों ओरसे अर्जुनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥ तब गाण्डीव धनुषधारी वैरियोंको सहनेवाले इन्द्रपुत्र अर्जुनने, अस्त्र छोडकर उन बडे २ कुरुवंशियोंके अस्त्रोंको पीछेको लौटादियां और जिसको कोई पहुँच ही न सकै ऐसा संमोहन नामका दूसरा अस्त्र गाण्डीव धनुष पर चढ़ाकर कौरवोंकी ओरको फैंका ॥ ८ ॥ तथा और भी कितने ही अच्छी धार और उत्तम परोंवाले तेज बाण मार कर दिशा और कोनोंको छादिया तथा गाण्डीव धनुषका टङ्कार शब्द करकै महाबली अर्जुनने कौरवोंके मनको खिन्न करदिया ॥ ९ ॥ वैरियोंका नाश करनेवाले अर्जुनने फिर भयंकर और उदार शब्द करनेवाला बडाभारी शंख दोनों हाथोंमें थामकर बजाया और दिशा, कोने, आकाश तथा भूमिको भरदिया ॥ १० ॥ अर्जुनके बजायेहुए शंखके शब्दसे कौरवदलके बडे२ वीर घबडागए और जिनको हाथमें थामना भी कठिन होगया ऐसे बडे२ धनुषोंको डालकर शान्त बनगए ॥११॥ सब कौरव जब अचेत होगए उस समय राजकुमारी उत्तरा की बात याद करकै अर्जुनने विराटनन्दन उत्तरसे कहा, कि-हे मनुष्यों में श्रेष्ठ वीर ! जबतक कौरव अचेत पडेहुए हैं, इतनेमें ही तुम यहां से निकल कौरवोंकी सेनामें चलेजाओ ॥ १२ ॥ और द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्यके स्वेत कपड़े कर्णके पीले तथा मनोहर कपडे और अश्वत्थामा तथा दुर्योधनके काले कपड़े लेकर लौट आओ ॥ १३ ॥ मेरी समझमें भीष्मजी सचेत हैं और वह इस संमोहन अस्त्रको वारण करना भी जानते हैं, इसलिये तुम भीष्मजीके घोड़ोंकी दाहिनी ओर

कुरु सव्यतस्त्वमेवं हि यातव्यसमूढसंज्ञैः ॥ १४ ॥ रश्मीन् समुत्सृज्य ततो महात्मा रथादवप्लुत्य विराटपुत्रः । वस्त्राण्युपादाय महारथानां तूर्णं पुनः स्वं रथमारुरोह ॥ १५ ॥ ततोऽन्वशासच्चतुरः सदश्वान् पुत्रो विराटस्य हिरण्यकक्षान् । ते तद्व्यतीयुर्ध्वजिनामनीकं श्वेता वहन्तोऽर्जुनमाजिमध्यात् ॥ १६ ॥ तथानुयान्तं पुरुषप्रवीरं भीष्मः शरैरभ्यहनत्तरस्वी । स चापि भीष्मस्य हयान्निहत्य विव्याध पार्थो दशभिः पृषत्कैः ॥ १७ ॥ ततोऽर्जुनो भीष्ममपास्य युद्धे विध्यास्य यन्तारमरिष्टधन्वा । तस्थौ विमुक्तो रथवृन्दमध्याद्मेघं विदार्येव सहस्ररश्मिः ॥ १८ ॥ लब्ध्वा हि संज्ञां तु कुरुप्रवीराः पार्थं निरीक्ष्याथ सुरेन्द्रकल्पम् । रणे विमुक्तं स्थितमेकमाजौ स धार्तराष्ट्रस्त्वरितं बभाषे ॥ १९ ॥ अयं कथं वै भवतो विमुक्तस्तथा प्रमथ्नीत यथा न मुच्येत् ।

को होकर जाना क्योंकि—जो सावधान हो उनसे सावधान रहना, यह समझदार पुरुषोंका काम है ॥ १४ ॥ विराटनन्दन महात्मा उत्तर घोड़ोंकी रासोंको छोड़ रथपरसे नीचेको कूदकर उतरपड़ा और कौरव महारथियोंकी सेनामें पहुँच उनके वस्त्र लेकर तुरन्त ही फिर अपने रथ पर आबैठा ॥ १५ ॥ तदनन्तर विराटकुमारने सोनेके जोतोंवाले उत्तम रीतिसे सिखायेहुए श्वेत रङ्गके चार घोड़ोंको हांका और वे घोडे अर्जुनको रणभूमिमें खड़ीहुई ध्वजाओंवाली सेनामेंसे बाहर ले-जानेलगे ॥१६॥इसप्रकार पुरुषोंमें महावीर अर्जुनको रणमेंसे जातेहुए देखकर भीष्मजी, वेगके साथ उनके बाण मारनेलगे तब अर्जुनने भी दश बाण मारकर भीष्मजीके घोड़ोंको मारडाला और भीष्मजीको भी घायल करदिया ॥ १७ ॥ फिर भीष्मजीको छोड़कर विनाशकारक धनुषको धारण करनेवाले अर्जुनने, उनके रथको हांकनेवालेको भी बाणोंसे बींधदिया और फिर जैसे सूर्य बादलोंको तित्तर वित्तर करके उनमेंसे बाहर निकलकर प्रकाश करने लगता है तैसे ही अर्जुन भी रथियोंके समूहोंको तित्तर वित्तर करताहुआ उनमेंसे बाहर निकलकर सबके सामने खड़ा रहा ॥ १८ ॥ जब कुरुवंशके बड़े २ वीर योधा सावधान हुए और धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने सुरेन्द्रकी समान इन्द्र-कुमार अर्जुनको, रणमेंसे बाहर निकला और अकेला खड़ाहुआ देखा तब घबड़ाया २ भीष्मजीसे कहनेलगा कि—॥ १९ ॥ हे पितामह ! आप के हाथमेंसे यह अर्जुन कैसे बचगया ? अब भी इसको इसप्रकार मथडालो, कि—यह किसी प्रकार बचे ही नहीं, यह सुनकर भीष्मजी खिलखिलाकर हँसे और कहनेलगे, कि—अरे कुरुराज ! जब तू अपने विचित्र धनुष और सब बाणोंको त्यागकर अचेतदशामें पड़ाथा, उस

तमब्रवीच्छान्तनवः प्रहस्य क्व ते गता बुद्धिरभूत् क्व वीर्यम् ॥ २० ॥ शान्तिं परां प्राप्य यदा स्थितो भूरुत्सृज्य बाणांश्च धनुर्विचित्रम् । न त्वेषबीभत्सुरलं नृशंसं कर्तुं न पापेऽस्य मनो विशिष्टम् ॥ २१ ॥ त्रैलोक्यहेतोर्न्न जहेत् स्वधर्मं सर्वे न तस्मान्निहताः रणेऽस्मिन् । क्षिप्रं कुरून् याहि कुरुप्रवीर विजित्य गाश्च प्रयियातु पार्थः । मा ते स्वकोऽर्थो निपतेत मोहात्तत्त्वं विधातव्यमरिष्टबन्धम् ॥ २२ ॥ वैशंपायन उवाच । दुर्योधनस्तस्य तु तान्निशम्य पितामहस्यात्महितं वचोऽथ । अतीतकामो युधि सोऽत्यमर्षी राजा विनिश्वस्य बभूव तूष्णीम् ॥ २३ ॥ तद्भीष्मवाक्यं हितमीक्ष्य सर्वे धनंजयाग्निं च विवर्द्धमानम् । निवर्त्तनायैव मनो निदध्युर्दुर्योधनं ते परिरक्षमाणाः ॥ २४ ॥ तान् प्रस्थितान् प्रीतमनाः स पार्थो धनंजयः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीरान् । आभाषमाणोऽनुनयं मुहूर्तं वचोऽब्रवीत् सम्परिहृत्य भूयः ॥ २५ ॥ पितामहं शान्तनवञ्च वृद्धं द्रोणं गुरुञ्च प्रणिपत्य मूर्ध्ना । द्रौणिं कृपञ्चैव कुरूंश्च मान्यांश्शरैर्विचित्रैरभिवाद्य चैव ॥ २६ ॥

समय तेरी यह बुद्धि और पराक्रम कहां जाता रहा था ? अर्जुनका उदारचित्त कभी भी क्रूर कर्म करनेमें प्रवृत्त नहीं होसकता ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ तथा वह त्रिलोकीके लाभके लिये भी अपने धर्मको नहीं छोड़ेगा, इसकारण ही उसने इस संग्राममें सब योधाओंके प्राण नहीं लिये होंगे, परन्तु अब तो तू हस्तिनापुरकी ओरको चला जा और अर्जुन विजय पा गौओंको लेकर पीछेको लौटजाय (यही ठीक है) अरे ! तू स्वार्थवश अपने कामको नष्ट मत करे, हरएक प्राणीको अपना हितकारी काम ही करना चाहिये ॥ २२ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि– बड़ा ही डाह करनेवाला दुर्योधन, भीष्मपितामहकी इस हितकी बात को सुनकर संग्राम करनेकी इच्छासे हटगया और गहरा सांस मारकर चुप होरहा ॥ २३ ॥ दूसरे सब योधा भी भीष्मजीकी बातको हितकारक जानकर तथा अर्जुनरूपी अग्निको बढ़तेहुए देखकर दुर्योधन की रक्षा करनेके लिये उन्होंने तहाँसे पीछेको लौटजानेका ही मनमें विचार किया ॥ २४ ॥ उन कौरवदलके वीरोंको पीछेको लौटतेहुए देखकर अर्जुन मनमें प्रसन्न हुआ और उनके साथ विनय पूर्वक बात चीत और आदर करनेकी इच्छासे वह कुछ देरतक उनके पीछे२ गया और पितामह शन्तनुनन्दन भीष्मजी तथा वृद्ध गुरु द्रोणाचार्य को शिर झुकाकर प्रणाम किया और फिर अश्वत्थामा कृपाचार्य तथा मान नीय कौरवोंको विचित्र बाणमालासे प्रणाम किया और फिर एक तीर छोड़कर दुर्योधनके रत्नजड़े उत्तम मुकुटको काटडाला, इसप्रकार

दुर्योधनस्योत्तमरत्नचित्रं चिच्छेद पार्थो मुकुटं शरेण। आमन्त्र्य वीरांश्च तथैव मान्यान् गाण्डीवघोषेण विनाद्य लोकान् ॥ २७ ॥ स देवदत्तं सहसा विनाद्य विदार्य वीरो द्विषतां मनांसि। ध्वजेन सर्वानभिभूय शत्रून् सहेममालेन विराजमानः॥ २८ ॥ दृष्ट्वा मया तांस्तु कुरून् किरीटी हृष्टोऽब्रवीत्तत्र स मत्स्यपुत्रम्। आवर्त्तयाश्वान् पशवो जितास्ते याताः परे याहि पुरं प्रहृष्टः॥ २९ ॥ देवास्तु दृष्ट्वा महदद्भुतं तद्युद्धं कुरूणां सह फाल्गुनेन जग्मुर्यथा स्वं भवनं प्रतीताः पार्थस्य कर्माणि विचिन्तयन्तः ॥ ३० ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि समस्तकौरवपलायने षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

वैशम्पायन उवाच। ततो विजित्य संग्रामे कुरून् स वृषभेक्षणः। समानयामास तदा विराटस्य धनं महत्॥ १ ॥ गतेषु च प्रभग्नेषु धार्त्तराष्ट्रेषु सर्वशः। वनान्निष्क्रम्य गहनाद्बहवः कुरुसैनिकाः॥ २ ॥ भयात् सन्त्रस्तमनसः समाजग्मुस्ततस्ततः। मुक्तकेशास्त्वदृश्यन्त

माननीय वीरपुरुषोंका, शास्त्रमें कहीहुई विधिसे सत्कार करके धनंजयने गाण्डीव धनुषकी टङ्कारके शब्दसे त्रिलोकीको गुञ्जारदिया २५ ॥ २७ ॥ फिर देवदत्त नामवाले शङ्खको बजाकर वैरियोंके हृदयको दहलादिया और फिर सोनेकी मालासे शोभामान विजयकी पताका को फहराताहुआ वैरियोंके समूहका तिरस्कार करके शोभायमान हुआ ॥ २८ ॥ अन्तमें सब कौरवोंको भागकर जातेहुए देखा तब अर्जुन ने मनमें प्रसन्न होकर उत्तरसे कहा, कि—हे राजकुमार! अब घोड़ों का पीछेको फेर तेरी गौओंको मैंने जीतलिया देख, ये शत्रु अपने देश की ओरको भागे चले जारहे हैं, इसलिये अब तू प्रसन्न मनसे अपने नगरको चल ॥ २९ ॥ कौरवोंके साथ अर्जुनके कियेहुए बड़े आश्चर्यकारी संग्रामको देखकर देवता भी प्रसन्न होगए और अर्जुनके अलौकिक कर्मका विचार करते २ अपने स्थानको चलेगए ॥ ३० ॥ छियासठवां अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—उत्तम दृष्टिवाला अर्जुन, इसप्रकार सब कौरवोंको संग्राममें हराकर राजा विराटके बड़ेभारी गोधनको उसी समय लौटाकर लाया॥१॥और धृतराष्ट्रके पुत्रोंमें चारों ओरसे भागड़ पड़गई, जब वह भागगए तब कौरवोंके बहुतसे सैनिक भी गहन वनमेंसे बाहर निकल पडे, परन्तु उनके मन डरके मारे कांपनेलगे और जुदे २ स्थानोंसे इकट्ठे हो, खुले केश, दोनो हाथ जोड़े रणमें

स्थिताः प्रांजलयस्तदा ॥ ३ ॥ क्षुत्पिपासापरिश्रांता विदेशस्था विचेतसः । ऊचुः प्रणम्य सम्भ्रांताः पार्थ किं करवाम ते॥४॥ अर्जुन उवाच स्वस्ति व्रजत वो भद्रं न भेतव्यं कथञ्चन । नाहमार्त्तान् जिघांसामि भृशमाश्वासयामि वः ॥ ५॥ वैशम्पायन उवाच । तस्य तामभयां वाचं श्रुत्वा योधाः समागताः । आयुः कीर्त्तियशोदाभिस्तमाशीर्भिरनन्दयन् तनोऽर्जुनं नागमिवप्रभिन्नमुत्सृज्य शत्रून् विनिवर्तमानम् । विराटराष्ट्राभिमुखं प्रयान्तं नाशक्नुवंस्तं कुरवोऽभियातुम् ॥७॥ ततः स तन्मेघमिवापतन्तं विद्राव्य पार्थः कुरुमेघसैन्यम् । मत्स्यस्य पुत्रं द्विषतां निहन्ता वचोऽब्रवीत् सम्परिरभ्य भूयः ॥ ८ ॥ पितुः सकाशे तव तात सर्वे वसन्ति पार्था विदितं तवैव । तान्मा प्रशंसेर्नगरं प्रविश्य भीतः प्रणश्येद्धि स मत्स्यराजः ॥ ६ ॥ मया जिता सा ध्वजिनी कुरूणां मया च गावो विजिता द्विपद्भ्यः । पितुः सकाशं नगरं प्रविश्य त्वमात्मनः कर्म कृतं ब्रवीहि ॥ १० ॥ उत्तर उवाच ॥ यत्ते कृतं कर्म न पारणीयं

खड़ेहुए अर्जुनके पास आये ॥ २ ॥ ३ ॥ वे भूखे, प्यासे और थकेहुए थे, परदेशमें फँसजानेसे घबड़ा रहे थे, उन्होने दोनों हाथ जोड़कर कहा, कि—हे धनंजय ! हम आपका कौनसा काम कर, उसकी आज्ञा दीजिये ॥ ४ ॥ अर्जुनने कहा, कि–तुम्हारा कल्याण हो, तुम किसी प्रकारसे डरो मत, तुम अपने मार्गसे चले जाओ, मैं शरणमें आये हुओंको मारना नहीं चाहता हूँ, इस बातका मैं तुम्हे पूरा२ विश्वास दिलाता हूँ ॥ ५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि–वे योधा, अर्जुनको अभयवाणी सुनकर इकट्ठेहुए और आयु, कीर्त्ति तथा यश देनेवाले आशीर्वादोंसे उसको आनन्द देनेलगे ॥ ६ ॥ और मद टपकानेवाले हाथी की समान मदोन्मत्त अर्जुनको, वैरिओंका त्याग करके विराट नगर की ओरको जातेहुए देखा तो भी कौरव उसके पीछे चढ़ाई करके न जासके ॥ ७ ॥ मेघकी समान अपने पीछे आनेवाले कौरवोंकी सेनारूपी मेघको पीछेही हटाकर वैरियोंका नाश करनेवाले अर्जुनने विराटपुत्र उत्तरको भलेप्रकार आलिङ्गन करके उससे कहा कि–॥ ८ ॥ हे तात ! तेरे पिताके पास सब पाण्डव रहते हैं, यह बात तुझे मालम होगई है, परन्तु तू नगरमें पहुँचकर अपने पिताके सामने पाण्डवों की प्रशंसा न करना, क्योंकि–राजा विराट यह सुनकर डरके मारे मरजायगा ॥ ६ ॥ इसकारण तू नगरमें जाकर अपने पितासे कहना, कि—मैंने ही कौरवोंकी सेनाको हराया है और मैंने ही वैरियोंसे गौएं जीतकर ली हैं इसप्रकार तू नगरमें जाकर अपने पिताके सामने सब काम अपना कियाहुआ ही बताना ॥१०॥ उत्तर बोला, कि–तुमने

तत्कर्म कर्तुं मम नास्ति शक्तिः। न त्वां प्रवक्ष्यामि पितुः सकाशे यावन्न मां वक्ष्यसि सव्यसाचिन् ॥ ११ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स शत्रुसेनामवजित्य जिष्णुराच्छिद्य सर्वञ्च धनं कुरुभ्यः। श्मशानमागत्य पुनः शमीं तामभ्येत्य तस्थौ शरविक्षतांगः ॥ १२ ॥ ततः स वह्निप्रतिमो महाकपिः सहैव भूतैर्दिवमुत्पपात। तथैव माया विहिता वभूव ध्वजञ्च सैंहं युयुजे रथे पुनः ॥ १३ ॥ विधाय तच्चायुधमाजिवर्द्धनं कुरूत्तमानामिषुधीः शरांस्तथा। प्रायात्स मत्स्यो नगरं प्रहृष्टः किरीटिना सारथिना महात्मना ॥ १४ ॥ पार्थस्तु कृत्वा परमार्यकर्म निहत्य शत्रून् द्विषतां निहन्ता चकार वेणीं च तथव भूयो जग्राह रश्मीन् पुनरुत्तरस्य। विवेश हृष्टो नगरं महामना बृहन्नलारूपमुपेत्य सारथिः ॥ १५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो निवृत्ताः कुरवः प्रभग्ना-वशमास्थिताः। हस्तिनापुरमुद्दिश्य सर्वे दीना ययुस्तदा ॥ १६ ॥

जो काम किया है, वह मुझसे नहीं होसकता क्योंकि—उस कामको करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है, परन्तु हे सव्यसाचिन्! जब तक तुम अपने विषयकी बात कहनेके लिये कहोगे नहीं, तबतक मैं पिताजीके सामने तुम्हारे विषयमें जरासा शब्द भी नहीं बोलूंगा ॥ ११ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! संग्राममें जिसका शरीर बाणों से बिंधगया था ऐसा वह अर्जुन वैरियोंकी सेनाको जीतकर कौरवों से गौएंरूपी सब धन छीनलाया, फिर वह श्मशानभूमिमें आया और उस ही शमीके पेड़के पास आकर खड़ा होगया ॥ १२ ॥ उसी समय अर्जुनके रथकी ध्वजापर वैठाहुआ, अग्निकी समान तेजस्वी बड़ा-भारी वानर भूतोंके साथ आकाशमेंको उड़गया, तैसे ही जो माया थी वह भी विलागई और रथके ऊपर फिर सिंहके चिन्हवाली राजा विराटी ध्वजा चढ़ादीगई ॥ १३ ॥ और अर्जुनके वैरियोंके प्राणलेवा सब शस्त्र, गाण्डीव धनुष पाण्डवोंके भाथे तथा बाण फिर शमीके वृक्षमें बांधदिये, महात्मा उत्तर रथमें वैठा और अर्जुनको सारथी बनाकर बड़ा प्रसन्न होताहुआ विराटनगरमेंको चलदिया ॥ १४ ॥ वैरियोंका संहार करनेवाले अर्जुनने वैरियोंका नाश करकै बड़ा अच्छा काम किया, परन्तु उसने फिर माथे पर वेणी गूथकर बृहन्नलाका रूप बनालिया, तदनन्तर उदार चित्तवाला अर्जुन उत्तरका सारथी बन घोड़ोंकी लगाम पकड़कर प्रसन्न होताहुआ विराटनगरमें घुसगया ॥ १५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय! पराधीन हुए सब कौरव, सेनामेंसे पीछा छुटाकर हस्तिनापुरकी ओरको भागगए

पन्थानमुपसंगम्य फाल्गुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥ राजपुत्र प्रत्यवेक्ष समानीतानि सर्वशः । गाकुलानि महाबाहो वीरगोपालकैः सह॥ १८ ॥ ततोऽपराह्णे यास्यामो विराटनगरं प्रति । आश्वास्य पाययित्वा च परिप्लाव्य च वाजिनः ॥ १९ ॥ गच्छन्तु त्वरिताश्चेमे गोपालाः प्रेषितास्त्वया । नगरे प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम् ॥ २० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अथोत्तरस्त्वरमाणः स दूतानां ज्ञापयद्वचनात् फाल्गुनस्य । आचक्षध्वं विजयं पार्थिवस्य भग्नाः परे विजिताश्चापि गावः ॥ २१ ॥ इत्येवं तौ भारतमत्स्यवीरौ संमन्त्र्य संगम्य ततः शमीं ताम् अभ्येत्य भूयो विजयेन तृप्तावुत्सृष्टमारोपयतां स्वभाण्डम् ॥ २२ ॥ स शत्रुसेनामभिभूय सर्वामच्छिद्य सर्वञ्च धनं कुरुभ्यः । वैराटिरायान् नगरं प्रतीतो बृहन्नलासारथिना प्रवीरः ॥ २३ ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि उत्तरागमने सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

॥ १६ ॥ तब मार्गमें आतेहुए अर्जुनने गौओंके समूहके साथ इकट्ठे होनेपर उत्तरसे कहा, कि—हे महाबाहु वीर राजकुमार ! हम गौओंके समूहोंका उनके रक्षकों सहित चारों ओरसे लौटालाये हैं, इनकी ओर का तुम देखा ॥ १७ ॥ १८ ॥ हम यहां ही विश्राम ले घोड़ोंको पानी पिलाकर तथा दम देकर पिछले पहर विराट नगरमें चलेंगे ॥ १९ ॥ अब ग्वालियोंको आज्ञा दो, कि—वे तुम्हारे विजयकी बात कहनेके लिये शीघ्रतासे नगरमें जांय और तुम्हारी विजय को सुखसे प्रकट करें ॥ २० ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि— हे राजन् ! अर्जुनके कहनेसे उत्तरने, उस ही समय दूतोंको आज्ञा दी, कि—तुम मेरे जीतनेकी वैरियोंके हारजानेकी और जीती हुई गौओंकी बात जाकर राजासे कहो ॥ २१ ॥ इसप्रकार ग्वालियोंको नगरमें भेजकर भरतवंशी वीर अर्जुन और मत्स्य वीर उत्तर दोनों विचार करके परस्पर एक दूसरेको हृदयसे लगाकर विजय करनेसे बहुत ही प्रसन्न हुए वे दोनों उस शमीके वृक्षके पास आये और पहले जो गहने अपने शरीर परसे उतारकर शमीके पेड पर धरदिये थे उनको उतार कर फिर पहर लिया तथा रथका भी जो सामान शमीके वृक्षपर धरदिया था उसको फिर रथ पर जहांका तहां लगादिया ॥ २२ ॥ इसप्रकार वैरीकी सेनाको हराकर तथा कौरवोंसे सब गौरूपी धन छीनकर महावीर उत्तरकुमार प्रसन्न होता हुआ बृहन्नला सारथीके साथ विराटनगरमें चलागया ॥ २३ ॥ सडसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥ छ ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ धनं चापि विजित्याशु विराटो वाहिनीपतिः विवेश नगरं हृष्टश्चतुर्भिः पाण्डवैः सह ॥ १ ॥ जित्वा त्रिगर्त्तान् संग्रामे गाश्चैवादाय सर्वशः । अशोभत महाराज सह पार्थैः श्रिया वृतः ॥ २ ॥ तमासनगतं वीरं सुहृदां हर्षवर्द्धनम् । उपासांचक्रिरे सर्वे सह पार्थैः परन्तपाः ॥ ३ ॥ उपतस्थुः प्रकृतयः समस्ता ब्राह्मणैः सह । सभाजितः ससैन्यस्तु प्रतिनन्द्याथ मत्स्यराट् ॥ ४ ॥ विसर्जयामास तदा द्विजांश्च प्रकृतीस्तथा । तथा स राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः ॥ ५ ॥ उत्तरं परिपप्रच्छ क्व यात इति चाब्रवीत् । आचख्युस्तस्य तत्सर्वं स्त्रियः कन्याश्च वेश्मनि ॥ ६ ॥ अन्तःपुरचराश्चैव कुरुभिर्गोधनं हृतम् । विजेतुमभिसंरब्ध एक एवातिसाहसात् । बृहन्नलासहायश्च निर्गतः पृथिवींजयः ॥ ७ ॥ उपायातानतिरथान् भीष्मं शांतनवं कृपम् । कर्णं दुर्योधनं द्रोणं द्रोणपुत्रञ्च षड्रथान् ॥ ८ ॥ वैशम्पायन उवाच॥राजा विराटोऽथ भृशाभितप्तः श्रुत्वा सुतं त्वेकरथेन

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! सेनापति राजा विराट भी दक्षिण दिशाकी ओरकी गौओंके समूहको सपाटेमे जीतकर प्रसन्न होताहुआ चारों पाण्डवोंके साथ विराटनगरमें आपहुँचा ॥१॥ हे महाराज ! राजलक्ष्मीसे शोभायमान और पाण्डवोंसे घिराहुआ राजा विराट संग्राममें त्रिगर्त्तोंको जीतकर तथा चारों ओरसे गौओं को लौटा कर नगरमें आया, उस समयका उसका दृश्य बड़ा ही अच्छा मालूम होता था ॥ २ ॥ वह राजा राजसभामें आसन पै बैठ कर सब सम्बन्धियोंके हर्षको बढ़ानेलगा और वैरियोंको ताप देने वाले सब वीर पुरुष भी पाण्डवोंके साथ मिलकर उस वीर राजाकी सेवा करनेलगे ॥ ३ ॥ ब्राह्मणोंके साथ सब प्रकृति मण्डल भी तहाँ आया और सेना सहित राजा विराटका सन्मानके साथ आदर सत्कार किया और उनको धन्यवाद दिया ॥ ४ ॥ सेनापति राजा विराटने सब ब्राह्मण और प्रकृतिमंडलको विदा करके बूझा, कि—उत्तरकुमार कहांगया है? तब रनवासमें रहनेवालीं स्त्रियें, हीजड़े और कन्याओंने राजासे निवेदन किया, कि महाराज ! आपके रणमें चलेजाने पर कौरव हमारी गौओंके समूहोंको यहाँसे हाँककर लेगए थे, तब पृथ्वीका विजय करनेवाला उत्तरकुमार क्रोधमें भरगया और चढ़ाई करके आयेहुए महारथी भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा इन छः महारथियोंको जीतनेके लिये बृहन्नला को साथ लेकर बड़े साहसके साथ अकेला ही लड़नेके लिये नगरमेंसे बाहर चलागया है ॥५-८॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि राजा विराट तो

यातम्। बृहन्नलासारथिमाजिवर्धनं प्रोवाच सर्वानथ मन्त्रिमुख्यान् ॥ ९ ॥ सर्वथा कुरवस्ते हि ये चान्ये वसुधाधिपाः। त्रिगर्त्तान्निःसृतान् श्रुत्वा न स्थास्यन्ति कदाचन ॥ १० ॥ तस्माद्गच्छन्तु मे योधा बलेन महता वृताः। उत्तरस्य परीप्सार्थं ये त्रिगर्तैरविक्षताः ॥ ११ ॥ हयांश्च नागांश्च रथांश्च शीघ्रं पदातिसंघांश्च ततः प्रवीरान्। प्रस्थापयामास सुतस्य हेतोर्विचित्रशस्त्राभरणोपपन्नान् ॥ १२ ॥ एवं स राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः। व्यादिदेशाथ तां क्षिप्रं वाहिनीं चतुरङ्गिणीम् ॥ १३ ॥ कुमारमाशु जानीत यदि जीवति वा न वा। यस्य यन्ता गतः षण्ढो मन्येऽहं स न जीवति ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ तमब्रवीद्धर्मराजो विहस्य विराटराजं तु भृशाभितप्तम्। बृहन्नलासारथिश्चेन्नरेंद्र परे न नेष्यन्ति तवाद्य गास्ताः ॥१५॥ सर्वान् महीपान् सहितान् कुरूंश्च तथैव देवासुरसिद्धयक्षान्। अतीव जेतुं समरे सुतस्ते स्वनुष्ठितः सारथिना हि तेन ॥ १६ ॥ वैशम्पायनउवाच अथोत्तरेण प्रहिता दूतास्ते शीघ्रगामिनः। विराटनगरं प्राप्य विजयं

अकेला मेरा पुत्र उत्तर ही एक रथ और रणमें वैरियोंका संहार करनेवाले बृहन्नला सारथीके साथ रणमें गया है, यह सुनकर बड़ा दुःखी हुआ और सब मुख्य मंत्रियोंसे कहनेलगा, कि-॥९॥ कौरव राजे तथा दूसरे जो राजे होंगे वे, त्रिगर्त्तोंको भागेहुए सुनकर कभी भी रणमें खड़े नहीं रहेंगे ॥ १० ॥ इसलिये मेरे जो योधा त्रिगर्त्तोंके साथ संग्राम करतेमें घायल न हुए हों वे बहुतसी सेनाको साथ लेकर उत्तरकी रक्षा करनेको चलेजाओ ॥ ११ ॥ इसप्रकार आज्ञा देकर राजा ने अपने पुत्रकी रक्षाके लिये घोड़े सवार, हाथी सवार, रथी, पैदल और वीर पुरुषोंको अनेकों प्रकारके रणके आभूषण और शस्त्र देकर रणभूमिकी ओरको भेजा ॥ १२ ॥ मत्स्य देशके राजा और सेनापतिके नामसे प्रसिद्ध राजा विराटने उस समय चतुरङ्गिणी सेनाको चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी ॥ १३ ॥ और फिर कहा, कि-पहिले पता तो लगाओ कि कुमार जीवित हैं या मारागया ? मेरी समझमें तो जिसका सारथी हीजड़ा है वह कभी जीता नहीं रहसकता ॥ १४ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! इसप्रकार राजा बहुत ही दुःखित हुआ तब धर्मराजने हँसकर उससे कहा, कि—हे नरेन्द्र ! यदि बृहन्नला सारथि होगा तो आज वैरी तुम्हारी गौओंको हरकर कभी भी नहीं ले जासकेंगे ॥ १५ ॥ तुम्हारा कुमार बृहन्नलाके सारथीपनेके कारण सब राजाओंको कौरवोंको तथा देवता, असुर, सिद्ध और यक्षोंको भी रण में अच्छेप्रकारसे जीत सकेगा ॥ १६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—

समवेदयन्॥ १७ ॥ राज्ञस्तत्सर्वमाचख्यौ मन्त्री विजयमुत्तमम्। पराजयं कुरूणां चाप्युपायान्तं तथोत्तरम्॥ १८ ॥ सर्वा विनिर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः। उत्तरः सह सूतेन कुशली च परन्तपः ॥ १९ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ दिष्ट्या विनिर्जिता गावः कुरवश्च पलायिताः। नाद्भुतं त्वेव मन्येऽहं यत्ते पुत्रोऽजयत् कुरून्॥ २०॥ ध्रुव एव जयस्तस्य यस्य यन्ता बृहन्नला। वैशम्पायन उवाच ॥ तत विराटो नृपतिः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ २१ ॥ श्रुत्वा स विजयं तस्य कुमारस्यामितौजसः। आच्छादयित्वा दूतांस्तान्मन्त्रिणं सोऽभ्यचोदयत्॥ २२ ॥ राजमार्गाः क्रियन्तां मे पताकाभिरलंकृताः। पुष्पोपहारैरर्च्यन्तां देवताश्चापि सर्वशः ॥ २३ ॥ कुमारा योधमुख्याश्च गणिकाश्च स्वलंकृताः। वादित्राणि च सर्वाणि प्रत्युद्यान्तु सुतं मम ॥ २४ ॥ घण्टावान्मानवः शीघ्रं मत्तमारुह्य वारणम्। शृङ्गाटकेषु सर्वेषु आख्यातु च जयं मम ॥ २५॥ उत्तरा च कुमारीभिर्बह्वीभिः। परिवारिता। शृङ्गा-

धर्मराज यह बात कहरहे थे, उसी समय, उत्तरकुमारके भेजेहुए दूत झपटेर विराट नगरीमें आपहुँचे और उन्होंने नगरमें प्रसिद्ध किया, कि—उत्तर कुमारकी विजय होगई ॥ १७ ॥ उसी समय मन्त्रीने राजा के पास आकर उत्तरकी उत्तम प्रकारकी विजय और कौरवोंके पराजय और उत्तरकुमारके लौटकर आनेका समाचार सुनाया ॥ १८ ॥ और कहा, कि—उत्तर सब गौओंको जीतलाया है, कौरव हारगए हैं और परन्तप उत्तर तथा उसका सारथी कुशलपूर्वक हैं ॥ १९ ॥ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले, कि—गौएं जीतलीं और कौरव भागगए यह बहुत अच्छा हुआ, हे राजन्! तुम्हारे पुत्रने कौरवोंको हरादिया इसमें मैं बड़ा अचरज नहीं मानता हूँ॥२०॥ क्योंकि—बृहन्नला जिस का सारथी हो उसकी विजय होनेमें सन्देह ही क्या है?॥ २१ ॥वैशम्पायन कहते हैं, कि-पुत्रकी विजयका समाचार सुनकर बड़ेभारी हर्ष से जिसके शरीर पर रोमांच खड़े होगए हैं ऐसे राजा विराटने अपारबली राजकुमारकी विजयका समाचार सुनकर कहनेको आयेहुए दूतोंको वस्त्रोंकी भेंटोंसे ढकदिया और फिर मंत्रीको आज्ञादी, कि-२२ तुम राजमार्गों पर पताकाएं लटकवाकर सजवादो और फूलोंसे तथा पूजनकी दूसरी सामग्रियोंसे देवताओंकी पूजा करवाओ ॥ २३॥ सब कुमार, मुख्य२ योधा और वेश्यायें शृंगार करके सब प्रकारके बाजों के साथ मेरे बेटेको लेने जायं, ऐसा प्रबंध करो ॥ २४ ॥ एक मनुष्य मतवाले हाथी पर चढ़कर अभी घंटा बजाताहुआ नगरमें सब ओर मेरी विजयको प्रसिद्ध करै ऐसी व्यवस्था करो ॥ २५॥ और मेरी पुत्री

रवेषाभरणा प्रत्ययातु सुतं मम ॥ २६ ॥ वैशम्पायन उवाच । श्रुत्वा चेदं वचनं पार्थिवस्य सर्वं पुरं स्वस्तिकपाणिभूतम् । भेर्यश्च तूर्याणि च वारिजाश्च वेषैः परार्घ्यैः प्रमदाः शुभाश्च ॥ २७ ॥ तथैव सूतैः सह मागधैश्च नान्दीवाद्याः पणवास्तूर्यवाद्याः । पुराद्विराटस्य महाबलस्य प्रत्ययुः पुत्रमनन्तवीर्य्यम् ॥ २८ ॥ वैशम्पायन उवाच । प्रस्थाप्य सेनां कन्याश्चगणिकाश्च स्वलंकृताः । मत्स्यराजो महाप्राज्ञः प्रहृष्ट इदमब्रवीत् ॥ २९ ॥ अक्षानाहर सैरन्ध्रि कङ्क द्यूतं प्रवर्त्तताम् । तं तथा वादिनं दृष्ट्वा पाण्डवः प्रत्यभाषत ॥ ३० ॥ न देवितव्यं हृष्टेन कितवेनेति नः श्रुतम् । तं त्वामद्य मुदा युक्तं नाहं देवितुमुत्सहे । प्रियं तु ते चिकीर्षामि वर्त्ततां यदि मन्यसे ॥ ३१ ॥ विराट उवाच । स्त्रियो गावो हिरण्यञ्च यच्चान्यद्वसु किंचन । न मे किंचित्त्वया रक्ष्यन्ते अन्तरेणापि देवितुम् ॥ ३२ ॥ कङ्क उवाच ॥ किन्ते द्यूतेन राजेन्द्र बहुदोषेण मानद ।

उत्तराकुमारी अनेकों प्रकारके सुन्दर वस्त्र और गहने पहरकर भलेप्रकार शृङ्गार कियेहुए सब कन्याओंके साथ मेरे पुत्रके सन्मुख जाय॥२६॥ वैशंपायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! राजाकी इस बातको सुन कर सब नगर हाथमें मांगलिक मानी जानेवालीं आरतियें, दही और दूब आदि वस्तुएं लेकर, महाबली राजा विराटके अपार पराक्रमी पुत्र उत्तर कुमारकी अगवानीको चला, उनके साथमें बहुमूल्य पोशाकें पहरकर भेरी, तुरही और शंखवाले, सौभाग्यवती तरुणी स्त्रियें तथा सूत मागध भी चले, उनके साथ माङ्गलिक बाजे बजानेवाले और विजयके बाजे बजानेवाले आदि भी महाबली राजा विराटके, अपार शरीरिक बलवाले उत्तर कुमारकी अगवानीको गए थे ॥ २७ ॥ २८ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—इसप्रकार सजीहुई सेना, कन्याएं और गणिकाओंको परमबुद्धिमान् राजा विराटने अपनेपुत्रकी अगवानी करनेके लिये भेजा और फिर बडेभारी हर्षके उभारमें आकर इसप्रकार कहा, कि—॥ २९ ॥ अरी ओ सैरन्ध्री ! पाशेला, और हे कङ्क! हमारी तुम्हारी चौसर होय, राजाविराटको ऐसा कहतेहुए देखकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने कहा ॥ ३० ॥ मेरे सुननेमें आया है, कि—आनन्द में आयेहुए मनुष्यके साथ जुआ नहीं खेले, इसकारण मैं भी आज हर्षमें भरेहुए तुम्हारे साथ चौसर खेलना नहीं चाहता परन्तु इतने पर भी आपकी इच्छा हो तो खेलनेका आरम्भ करदीजिये, क्योंकि मैं तो आपका प्रिय काम करना चाहता हूँ. ॥ ३१ ॥ विराटने कहा, कि-स्त्रियें, गौएं, सुवर्ण तथा और भी जो कुछ तुम्हारा धन हो उसमेंसे मुझे कुछ भी नहीं चाहिये, मुझे तो केवल तुम्हारे साथ चौसर खेलनी है ॥ ३२ ॥ कङ्कने कहा, कि—हे सन्मान करनेवाले राजेन्द्र ! आप जुआ

देवने बहवो दोषास्तस्माचत् परिवर्जयेत् ॥३३॥ श्रुतस्ते यदि वा दृष्टः पाण्डवेयो युधिष्ठिरः। स राष्ट्रं सुमहत्स्फीतं भ्रातूंश्च त्रिदशोपमान्।३४। राज्यं हारितवान् सर्वं तस्मात् द्यूतं न रोचये। अथवा मन्यसे राजन् दीव्याम यदि रोचते ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ प्रवर्त्तमाने द्यूते तु मत्स्यः पांडवमब्रवीत् । पश्य पुत्रेण मे युद्धे तादृशाः कुरवो जिताः ॥ ३६ ॥ ततोऽब्रवीन्महात्मा स एनं राजा युधिष्ठिरः । बृहन्नला यस्य यन्ता कथं स न जयेद्युधि ॥ ३७ ॥ इत्युक्तः कुपितो राजा मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत् । समं पुत्रेण मे षण्डं ब्रह्मबन्धो प्रशंससि ॥ ३८ ॥ वाच्यावाच्यं न जानीषे नूनं मामवमन्यसे । भीष्मद्रोणमुखान् सर्वान् कस्मान्न स विजेष्यति ॥ ३९ ॥ वयस्यत्वात्तु ते ब्रह्मन्नपराधमिमं क्षमे । नेदृशं तु पुनर्वाच्यं यदि जीवितुमिच्छसि ॥ ४० ॥ युधिष्ठिर उवाच । यत्र द्रोणस्तथा भीष्मो द्रौणिर्वैकर्त्तनः कृपः । दुर्योधनश्च

किस कारणसे खेलते हैं ? इसमें तो बड़े दोष भररहे हैं, इसकारण इसको त्याग ही देना चाहिये ॥ ३३ ॥ तुमने राजा युधिष्ठिरको देखा होगा अथवा उनका हाल सुना होगा वह राजा बड़ेभारी समृद्धिवाले देश, देवताओंकी समान भाई और सब राज्यको जुआ खेलनेमें ही हारगया था, इसकारण ही मैं जुएको अच्छा नहीं समझता हूँ तो भी हे राजन् ! यदि तुम्हारी इच्छा होय तो चलो खेलें ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—उसी समय चौसरके खेलका आरम्भ हुआ, खेलते २ राजा विराटने तुरन्त ही राजा युधिष्ठिरसे कहा, कि देखा मेरे पुत्रने महाबली कौरवोंको युद्धमें कैसा हराया ॥ ३६ ॥ तब उन महात्मा राजा युधिष्ठिरने राजा विराटसे कहा, कि—जिसका सारथी बृहन्नला हो वह रणमें क्यों नहीं जीतेगा ॥ ३७ ॥ यह बात सुनते ही राजा विराटको क्रोध आगया और उसने राजा युधिष्ठिरसे कहा, कि—अरे ब्राह्मणोंमें नीच ! तू मेरे पुत्रकी प्रशंसा एक हीजड़ेके साथमें क्यों करता है ? ॥ ३८ ॥ कौनसी बात कहना चाहिये और कौनसी बात नहीं कहना चाहिये, इस बातकी तुझै खबर ही नहीं है तू चाहे सो बात मुखमेंसे निकालकर मेरा सब प्रकारसे अपमान ही करता है, मेरा पुत्र भीष्म द्रोणाचार्य आदि बड़े २ योधाओंको क्यों नहीं जीतेगा ? ॥ ३९ ॥ हे ब्राह्मण ! तू मेरा मित्र है, इसकारण मैं तेरे इस अपराधको सहरहा हूँ, परन्तु अब यदि तुझै जीवित रहनेकी रहनेकी इच्छा होय तो दुसराकर ऐसी बात नहीं कहना ॥४०॥ राजा युधिष्ठिरने कहा, कि—जहां द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह अश्वत्थामा,

राजेन्द्रस्तथान्ये च महारथाः ॥ ४१ ॥ मरुद्गणैः परिवृतः साक्षादपि मरुत्पतिः । कोऽन्यो बृहन्नलायास्तान् प्रतियुध्येत सङ्गतान् ॥ ४२ ॥ यस्य बाहुबले तुल्यो न भूतो न भविष्यति । अतीवसमरं दृष्ट्वा हर्षो यस्योपजायते ॥ ४३ ॥ योऽजयत् संगतान् सर्वान् ससुरासुरमानवान् तादृशेन सहायेन कस्मात् स न विजेष्यते ॥ ४४ ॥ विराट उवाच । बहुशः प्रतिषिद्धोऽसि न च वाचं नियच्छसि । नियन्ता चेन्न विद्येत न कश्चिद्धर्ममाचरेत् ॥ ४५ ॥ वैशम्पायन उवाच । ततः प्रकुपितो राजा तमक्षेणाहनद्भृशम् । मुखे युधिष्ठिरं कोपान्नैवमित्येव भर्त्सयन् ॥ ४६ ॥ बलवत्प्रतिविद्धस्य नस्तः शोणितमागमत् । तदप्राप्तं महीं पार्थः पाणिभ्यां प्रत्यगृह्णत ॥ ४७ ॥ अवैक्षत स धर्मात्मा द्रौपदीं पार्श्वतः स्थिताम् । सा ज्ञात्वा तमभिप्रायं भर्तुश्चित्तवशानुगा ॥ ४८ ॥ पात्रं गृहीत्वा सौवर्णं जलपूर्णमनिन्दिता । तच्छोणितं प्रत्यगृह्णाद्यत् प्रसुस्राव नस्ततः ॥ ४९ ॥ अथोत्तरः शुभैर्गन्धैर्माल्यैश्च विविधैस्तथा

कर्ण कृपाचार्य राजेन्द्र दुर्योधन तथा दूसरे महारथी भी युद्ध करनेकी इच्छासे इकट्ठे हुए हों तहां बृहन्नलाके सिवाय दूसरा कौन ऐसा है, कि-जो उन इकट्ठेहुओंके साथ संग्राम करनेको बाहर निकले॥४१-४२॥ जिसकी समान बाहुबलवाला पहले कोई भी नहीं हुआ और न अब है तथा आगेको भी होनेकी आशा नहीं है, जिसको संग्राम देखकर बड़ा आनन्द होताहै ॥ ४३ ॥ तथा जिसने इकट्ठेहुए देवता, असुर और मनुष्य सबोंको जीतलिया था, ऐसे पुरुषकी सहायता होनेपर उत्तर क्यों नहीं जीतेगा ? ॥ ४४ ॥ राजा विराटने कहा, कि-मैंने तुझे बहुत बार बोलनेसे रोका परन्तु तू चुप नहीं रहता, इससे मुझे मालूम होता है, कि—यदि जगत्में कोई दण्ड देनेवाला न होय तो कोई भी मनुष्य धर्मका आचरण ही न करै ॥ ४५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि ऐसा कहकर कोपमें भरेहुए राजा विराटने चुप बैठा रह यह कहकर युधिष्ठिरका तिरस्कार किया और पाशा फैंककर उनके मुखपर मारा ॥ ४६ ॥ वह पाशा जोरसे लगनेके कारण युधिष्ठिरकी नकसीर फूट-गई और लोहू गिरनेलगा, परन्तु भूमिपर गिरनेसे पहिले ही उन्होंने उसको अपने दोनों हाथोंमें लेलिया ॥ ४७ ॥ और तुरन्त ही युधिष्ठिर ने पास खड़ीहुई द्रौपदीकी ओरको देखा, द्रौपदी राजा युधिष्ठिरके मनके अधीन थी वह उनके मनके अभिप्रायको समझगई ॥ ४८ ॥ और एक जलसे भराहुआ सोनेका पात्र लाकर पवित्र चरित्रवाली द्रौपदी ने युधिष्ठिरकी नाकमेंसे जो लोहू टपकरहा था उसको उस पात्रमें लेलिया ॥ ४९ ॥ इतनेमें ही राजकुमार उत्तर, सुन्दर और सुगन्धित

अवकीर्यमाणः संहृष्टो नगरं स्वैरमागतः ॥ ५० ॥ स भ्राज्यमानः पौरैश्च स्त्रीभिर्जानपदैस्तथा । आसाद्य भवनद्वारं पित्रे सम्प्रत्यवेदयत् ॥ ५१ ॥ ततो द्वास्थः प्रविश्यैव विराटमिदमब्रवीत् । बृहन्नलासहायश्च पुत्रो द्वार्युत्तरः स्थितः ॥ ५२ ॥ ततो हृष्टो मत्स्यराजः क्षत्तारमिदमब्रवीत् । प्रवेश्यतामुभौ तूर्णं दर्शनेप्सुरहं तयोः ॥ ५३ ॥ क्षत्तारं कुरुराजस्तु शनैः कर्ण उपाजपत् । उत्तरः प्रविशत्वेको न प्रवेश्या बृहन्नला ॥ ५४ ॥ एतस्य हि महाबाहो व्रतमेतत् समाहितम् । यो ममांगे व्रणं कुर्याच्छोणितं वापि दर्शयेत् । अन्यत्र संग्रामगतान् न स जीवेत् कथञ्चन ॥ ५५ ॥ न मृष्याद् भृशसंक्रुद्धो मां दृष्ट्वा तु सशोणितम् । विराटमिह सामात्यं हन्यात् सबलवाहनम् ॥ ५६ ॥ ततो राज्ञः सुतो ज्येष्ठः प्राविशत् पृथिवींजयः । सोऽभिवाद्य पितुः पादौ कंकञ्चाप्युपतिष्ठत ॥ ५७ ॥ ततो रुधिरसंयुक्तमनेकाग्रमनागसम् । भूमावासीनमेकांते सैरन्ध्रया प्रत्युपस्थितम् ॥ ५८ ॥ ततः पप्रच्छ पि-

नाना प्रकारके फूलोंकी वर्षाको लेता २ बडे आनन्दके साथ इच्छानुसार अपने नगरमें आपहुँचा ॥ ५० ॥ नगरके मनुष्य स्त्री तथा देशके लोगोंने उसका सत्कार किया, तदनन्तर वह राजमहलके द्वारपर आपहुँचा और अपने पिताको अपने आजानेकी खबर भेजी ॥ ५१ ॥ उसी समय राजभवनके द्वारपालने राजभवनमें पहुँचकर राजा विराटसे विनय करी, कि महाराज ! उत्तरकुमार बृहन्नलाके सहित ड्योढ़ी पर आया खड़ा है ॥ ५२ ॥ राजा विराटने प्रसन्न होकर द्वारपालसे कहा, कि—तू दोनोंको शीघ्रही भीतर लिवाला, मैं उन दोनोंसे मिलना चाहता हूँ ॥ ५३ ॥ उस समय युधिष्ठिरने द्वारपालके कानमें धीरेसे कहा, कि—तू अकेले उत्तरकुमारको ही भीतर आनेदेना बृहन्नलाको न आनेदेना ॥ ५४ ॥ क्योंकि-हे महाबाहु ! उसने यह नियम करक्खा है, कि-युद्धके सिवाय शान्तिके समय यदि कोई भी मेरे शरीरमें घाव करदेय अथवा लोहू निकाल देय तो वह मनुष्य चाहे कोई हो उसको जीता नहीं छोड़ना ॥ ५५ ॥ इसकारण मुझे लोहू लुहान हुआ देखकर वह बड़ा ही क्रोधमें होजायगा और सह नहीं सकैगा तथा मंत्री सेना और वाहनों सहित राजा विराटको मारडालेगा ॥ ५६ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—उसी समय राजाका बडा कुमार पृथ्वीको जीतनेवाला उत्तर भीतरके महलमें आया और उसने पिताके चरणोंमें प्रणाम करकै कङ्कको भी प्रणाम किया ॥ ५७ ॥ तदनन्तर निरपराधी कङ्कको लोहूलुहान, व्याकुल और एकान्तस्थानमें भूमि पर नीचे बैठाहुआ देखकर तथा उसके पास सैरन्ध्रीको खडीहुई

तरं त्वरमाण इवोत्तरः। केनायं ताडितो राजन् केन पापमिदं कृतम् ॥ ५६ ॥ विराट उवाच ॥ मयायं ताडितो जिह्मो न चाप्येतावदर्हति। प्रशस्यमाने यच्छूरे त्वयि षण्ढं प्रशंसति ॥ ६० ॥ उत्तर उवाच ॥ अकार्यं ते कृतं राजन् क्षिप्रमेव प्रसाद्यताम्। मा त्वां ब्रह्मविषं घोरं समूलमिह निर्दहेत् ॥ ६१ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ स पुत्रस्य वचः श्रुत्वा विराटो राष्ट्रवर्द्धनः। क्षमयामास कौन्तेयं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥ ६२ ॥ क्षमयन्तन्तु राजानं पाण्डवः प्रत्यभाषत। चिरं क्षांत मिदं राजन् न मन्युर्विद्यते मम ॥ ६३ ॥ यदि ह्येतत् पतेद्भूमौ रुधिरं मम नस्ततः। सराष्ट्रस्त्वं महाराज विनश्येथा न संशयः ॥ ६४ ॥ न दूषयामि ते राजन् यद्वै हन्याददूषकम्। बलवन्तं प्रभुं राजन् क्षिप्रं दारुणमाप्नुयात् ॥ ६५ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ शोणिते तु व्यतिक्रान्ते प्रविवेश बृहन्नला। अभिवाद्य विराटन्तु कङ्कं चाप्युपतिष्ठत ॥ ६६ ॥ क्षामयित्वा तु कौरव्यं रणादुत्तरमागतम्। प्रशशंस ततो म-

---

देखकर उत्तरने घबराहटके साथ पितासे बूझा कि—हे राजन्! इन को किसने मारा है? यह पाप किसने किया है? ॥ ५८ ॥ ५६ ॥ विराटने कहा, कि—हे कुमार! इस कपटीको मैंने मारा है इस दुष्टका हम जितना सत्कार करते हैं यह उतने सत्कारके योग्य नहीं है, मैं तुझ शूरकी प्रशंसा कररहा था, उस समय यह हीजडेकी प्रशंसा करनेलगा ॥ ६० ॥ उत्तरने कहा, कि-हे राजन्! तुमने यह बड़ा बुरा काम किया है, तुम्हें भयानक ब्रह्मविष जडमूलसे नष्ट न करदेय, इस लिये तुम इनको शीघ्र ही प्रसन्न करलो ॥ ६१ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—देशकी वृद्धि करनेवाले राजा विराटने बेटेकी बात सुनकर राखके ढेरमें ढकेहुए अग्निकी समान छिपकर रहनेवाले, कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरसे क्षमा मांगी ॥ ६२ ॥ क्षमा माँगते समय राजा विराटसे युधिष्ठिरने कहा कि—मुझे क्रोध आया ही नहीं, मैं तो बहुत दिनोंसे क्रोधको सहता चला आरहा हूँ, ॥ ६३ ॥ परन्तु यह लोहू मेरी नाकमें से भूमिपर गिर पडता तो हे महाराज! तुम्हारा और तुम्हारे देश का नाश होजाता ॥ ६४ ॥ हे राजन्! मुझ समान निरपराधी पुरुषको भी दण्ड देनेवाले तुमसे अन्यायका काम करनेवाले की मैं निन्दा नहीं करता हूँ, क्योंकि—जो राजा बलवान् होजाता है वह तुरन्त ही दारुण कर्म करनेलगता है ॥ ६५ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—जब युधिष्ठिरके लोहू निकलना बन्द होगया तब बृहन्नला भी भीतर पहुँच कर विराट तथा कङ्कके पैरों पडी और उनके पास बैठगई॥६६॥राजा विराटने युधिष्ठिरसे क्षमा मांगनेके अनन्तर रणमें से आयेहुए उत्तर

त्स्यः शृण्वतः सव्यसाचिनः ॥ ६७ ॥ त्वया दायाद्वानस्मि कैकेयीनन्दिवर्द्धन । त्वया मे सदृशः पुत्रोः न भूतो न भविष्यति ॥ ६८ ॥ पदं पदसहस्रेण यश्चरन्नापराध्नुयात् । तेन कर्णेन ते तात कथमासीत्समागमः ॥ ६९ ॥ मनुष्यलोके सकले यस्य तुल्यो न विद्यते । तेन भीष्मेण ते तात कथमासीत्समागमः ॥ ७० ॥ आचार्य्यो वृष्णिवीराणां कौरवाणाञ्च यो द्विजः । सर्वक्षत्रस्य चाचार्य्यः सर्वशस्त्रभृताम्वरः । तेन द्रोणेन ते तात कथमासीत्समागमः ॥ ७१ ॥ आचार्य्यपुत्रो यः शूरः सर्वशस्त्रभृतामपि । अश्वत्थामेति विख्यातस्तेनासीत् सङ्गरः कथम् ॥ ७२ ॥ रणे यं प्रेक्ष्य सीदन्ति हतस्वः वणिजो यथा । कृपेण तेन ते तात कथमासीत् समागमः ॥ ७३ ॥ पर्वतं योऽभिविध्येत राजपुत्रो महेषुभिः । दुर्योधनेन ते तात कथमासीत् समागमः ॥ ७४ ॥ अवगाढा द्विषन्तो मे सुखो वातोऽभिवाति माम् । यस्त्वं धनमथाजैषीः कुरुभिर्ग्रस्तमाहवे ॥ ७५ ॥ तेषां भयाभिपन्नानां सर्वेषां बलशालि-

की अर्जुनके सुनतेहुए ही प्रशंशा करना आरंभ करदी ॥ ६७॥ राजाने कहा कि-हे कैकेयीके आनंदको बढ़ानेवाले उत्तर ! आज मैं, तुझसे पुत्रवाला हुआ हूँ, तुझसा पुत्र मेरे पहिले भी नहीं हुआ और आगेको भी होनेकी आशा नहीं है ॥ ६८ ॥ एक साथ एक हज़ार निशाने बींधने हों तो भी जो पुरुष बाणोंका प्रहार करते समय एक भी निशानेको खाली नहीं जाने देता है ऐसे कर्णके साथ हे तात उत्तर ! तेरा युद्ध कैसे हुआ था ? ॥ ६९ ॥ हे बेटा ! इस मनुष्यलोकमें जिसकी समान कोई है ही नहीं ऐसे भीष्मजीके साथ तेरा युद्ध कैसे हुआ था? ॥७०॥ हे बेटा ! जो ब्राह्मण वृष्णि वंशके वीर पुरुषोंके, कौरवोंके और सब क्षत्रियोंके आचार्य है तथा सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं उन द्रोणाचार्यके साथ तूने किसप्रकार संग्राम किया था ? ॥ ७१ ॥ जो सब ही शस्त्रधारियोंमें वीर हैं और जो अश्वत्थामा नामसे प्रसिद्ध हैं उन द्रोणाचार्यके पुत्रके साथ तेरा युद्ध किसप्रकार हुआ था ? ॥ ७२ ॥ बनिया जैसे धनकी चोरी होजाने पर रोने लगता है तैसे ही रणमें जिसके देखने मात्रसे योधा काँप उठते हैं ऐसे कृपाचार्यके साथ हे बेटा ! तेरा युद्ध किसप्रकार हुआ था ? ॥ ७२ ॥ जो राजपुत्र बडे २ बाणोंसे पहाडको चूर२ करडालता है उस दुर्योधनके साथ हे बेटा ! तेरा युद्ध किसप्रकार हुआ था ? ॥ ७४ ॥ कौरवोंकी हरण की हुई गौओंके समूहोंको तू आज. रणभूमिमें रण करके जीत लाया है इसलिये आज मेरे वैरियोंने तिरस्कार पाया है और मेरे शरीरको लगनेवाला पवन सुखकारी चल रहाहै ॥ ७५ ॥ हे नरश्रेष्ठ

नाम् । नूनं प्रकाल्य तान् सर्वांस्त्वया युधि नरर्षभ । आच्छिन्नं गोधनं सर्वं शार्दूलेनामिषं यथा ॥ ७६ ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि उत्तरगोहरणपर्वणि विराटोत्तरसंवादेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

उत्तर उवाच ॥ न मया निर्जिता गावो न मया निर्जिताः परे । कृतं तत् सकलं तेन देवपुत्रेण केनचित् ॥ १ ॥ स हि भीतं द्रवन्तं मां देवपुत्रो न्यवर्तयत् । स चातिष्ठद्रथोपस्थे वज्रसन्नहनो युवा ॥ २ ॥ तेन ता निर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः । तस्य तत् कर्म वीरस्य न मया तात तत् कृतम् ॥ ३ ॥ स हि शारद्वतं द्रोणं द्रोणपुत्रञ्च षड्रथान् । सूतपुत्रं च भीष्मञ्च चकार विमुखान् शरैः ॥ ४ ॥ दुर्योधनं विकर्णञ्च सनागमिव यूथपम् । प्रभग्नमब्रवीद्भीतं राजपुत्रं महाबलः ॥ ५ ॥ न हास्तिनपुरे त्राणं तव पश्यामि किञ्चन । व्यायामेन परीप्सस्व जीवितं कौरवात्मज ॥ ६ ॥ न मोक्ष्यसे पलायंस्त्वं राजन् युद्धे मनः कुरु । पृथिवीं भोक्ष्यसे जित्वा हतो वा स्वर्गमाप्स्यसि ॥ ७ ॥ स निवृत्तो नरव्याघ्रो मुञ्चन् वज्रनिभान् शरान् ।

आज तूने सब बलवान् योधाओंको रणमें हराकर भयभीत करडाला है और जैसे सिंह मांसको छीनलेता है तैसे ही तूने कौरवोंसे अपना सब गोधन छीन लिया है ॥ ७६ ॥ अड़सठवां अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥

उत्तरने कहा, कि—हे राजन् ! मैंने गौएं नहीं जीती हैं और न मैंने वैरियोंको ही जीता है, यह सब काम किसी देवपुत्रने किया है ॥ १ ॥ मैं तो डरकर भागा आता था, परन्तु वज्रसमान दृढ़ शरीर वाले उस तरुण देवपुत्रने मुझै लौटालिया था और उसने ही रथमें बैठ रण करकै गौओंका जीता तथा कौरवोंको हराया है, हे पिताजी यह काम उस शूरवीर पुरुषने ही किया है, मैंने इसमें कुछ भी नहीं किया है ॥ २ ॥ ३ ॥ उसने कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, भीष्म और दुर्योधन इन छः महारथियोंको बाण मारकर रणमेंसे भगादिया ॥ ४ ॥ जैसे हाथियोंका समूह अपने स्वामी गजराजसहित भागजाता है तैसे ही जब दुर्योधन और विकर्ण भयभीत होकर अपनी सेनासहित भागनेलगे उस समय उस महाबली देवपुत्रने कहा था, कि—तेरी हस्तिनापुरमें जरा भी रक्षा होसकै, यह मुझै नहीं दीखता, इसलिये हे धृतराष्ट्रके पुत्र ! नित्य देश देशान्तरोंमें विचरकर अपने जीवनकी रक्षा कर ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राजन् ! केवल भागजानेसे तेरा छुटकारा नहीं होगा, इसलिये तू अपने मनको संग्राममें ही लगा, यदि तू जीतजायगा तो पृथ्वीका राज्य करैगा और यदि मारा गया तो स्वर्ग पावेगा ॥ ७ ॥ यह बात सुनकर पुरुषव्याघ्र दुर्योधन

सचिवैः संवृतो राजा रथे नाग इव श्वसन् ॥ ८ ॥ तं दृष्ट्वा रोमहर्षो-भूदूरुकम्पश्च मारिष । स तत्र सिंहसङ्काशमनीकं व्यधमच्छरैः ॥ ९ ॥ तत् प्रणुद्य रथानीकं सिंहसंहननो युवा । कुरूंस्तान् प्रहसन् राजन् संस्थितान् हृतवाससः ॥ १० ॥ एकेन तेन वीरेण षड्रथाः परिनिर्जिताः । शार्दूलेनेव मत्तेन यथा वनचरा मृगाः ॥ ११ ॥ विराट उवाच । क्व स वीरो महाबाहुर्देवपुत्रो महायशाः । यो मे धनमथाजैषीत् कुरुभि-र्ग्रस्तमाहवे ॥ १२ ॥ इच्छामि तमहं द्रष्टुमर्चितुञ्च महाबलम् । येन मे त्वञ्च गावश्च रक्षिता देवसूनुना ॥ १३ ॥ उत्तर उवाच । अन्त-र्धानं गतस्तत्र देवपुत्रो महाबलः । स तु श्वो वा परश्वो वा मन्ये प्रादुर्भविष्यति ॥ १४ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवमाख्यायमानन्तु छन्नं सत्रेण पाण्डवम् । वसन्तं तत्र नाज्ञासीद्विराटो वाहिनीपतिः ॥ १५ ॥ ततः पार्थोऽभ्यनुज्ञातो विराटेन महात्मना । प्रददौ तानि

फुंकारें मारतेहुए सर्पकी समान साँसें भरताहुआ मंत्रियों सहित रथ में बैठकर फिर लड़नेके लिये रणभूमिमें आया और उसने वज्रसमान बाणोंका प्रहार करना आरंभ करदिया ॥ ८ ॥ हे महाराज ! उसको देखकर मेरे शरीर पर रोमाञ्च खडे होगए और मेरी टाँगें काँपनेलगीं, परन्तु इतनेमें ही उस देवपुत्रने बाण मारकर सिंहकी समान सेना को तितर वितर करदिया ॥ ९ ॥ सिंहकी समान दृढ़ शरीरवाले उस तरुण देवसुतने, उन महारथियोंकी सेनाको हराया है और हँसनेर तहाँ खडे हुए कौरवोंको मूर्छित करके उनके वस्त्र भी छीनलिये ।१०। जैसे मदमाता सिंह, वनमें फिरनेवाले पशुओंको जीतलेता है तैसे ही उस अकेले वीरने छहों महारथियोंको हरादिया ॥ ११ ॥ राजा विराट बोला, कि—बड़ी कीर्त्तिवाला वह महाबाहु वीर देवकुमार कहा है, कि—जिस देवकुमारने, कौरवोंकी हरण कीहुई गौएंरूपी मेरे धनको रणमें जीतकर लौटाया है ॥ १२ ॥ उस महाबली देवकुमारके देखने को मेरा जी चाहता है और उसको पूजन करनेकी भी मेरी इच्छा है, क्योंकि—उसने मेरी गौओंकी और तेरी रक्षा करी है ॥ १३ ॥ उत्तरने कहा, कि—वह महाबली देवपुत्र तहाँ ही अन्तर्धान होगया, परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि—वह कल या परसोंको यहाँ ही प्रकट होकर दर्शन देगा ॥ १४ ॥ वैशम्पायन,कहते हैं, कि—इसप्रकार उत्तर ने अर्जुनके विषयमें कहा, उस समय अर्जुन भी वहां ही था, तो भी वह नपुंसकके वेषमें छिपाहुआ था, इसकारण सेनापति राजा विराट उसको पहिचान नहीं सका ॥१५॥ फिर महात्मा राजा विराटने अर्जुन को आज्ञा दी, कि– हे बृहन्नला तू जिन वस्त्रोंको रणमेंसे लाई है वह

वासांसि विराटदुहितुः स्वयम् ॥ १६ ॥ उत्तरा तु महार्हाणि विविधानि नवानि च । प्रतिगृह्याभवत् प्रीता तानि वासांसि भामिनी १७ मन्त्रयित्वा तु कौन्तेय उत्तरेण महात्मना । इति कर्त्तव्यतां सर्वां राजन् पार्थे युधिष्ठिरे ॥१८॥ ततस्तथा तद्व्यदधाद्यथावत् पुरुषर्षभ । सह पुत्रेण मत्स्यस्य प्रहृष्टा भरतर्षभाः ॥ १९ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि गोहरणपर्वणि विराटोत्तरसंवादे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

समाप्तंच गोहरणपर्व

अथ वैवाहिकपर्व ॥

वैशम्पायन उवाच ॥ ततस्तृतीये दिवसे भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः । स्नाता शुक्लाम्बरधराः समये चरितव्रताः ॥ १ ॥ युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य सर्वाभरणभूषिताः द्वारिमत्ता यथा नागा भ्राजमाना महारथाः २ विराटस्य सभां गत्वा भूमिपालासनेष्वथ । निषेदुः पावकप्रख्याः सर्वे धिष्ण्येष्विवाग्नयः ॥ ३ ॥ तेषु तत्रोपविष्टेषु विराटः पृथिवीपतिः आजगाम सभां कर्तुं राजकार्याणि सर्वशः ॥ ४ ॥ श्रीमतः पाण्ड-

---

वस्त्र मेरी बेटीको देदे तब अर्जुनने अपने आप वे वस्त्र विराटकी बेटी को देदिये ॥ १६ ॥ बहुमूल्य और भांतिर के उन नए वस्त्रोंको लेकर उत्तराकुमारी प्रसन्न हुई ॥ १७ ॥ फिर हे जनमेजय राजन् ! कुन्तीनन्दन अर्जुनने महात्मा उत्तरके साथ राजा युधिष्ठिरके प्रकट होनेके विषयमें जो कुछ करना था उसकी सलाह करकै ॥१८॥ हे पुरुषश्रेष्ठ जनमेजय ! उस सलाहके अनुसार ही सब काम किये और भरतवंशमें श्रेष्ठ पाण्डव उत्तरके सहित बड़े प्रसन्नहुए ॥१९॥ उनहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥ * ॥ * ॥

वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! फिर समय पर अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करनेवाले अग्निकी समान तेजस्वी और प्रतापी महारथी पांचों पाण्डव तीसरे दिन स्नान करकै शुद्ध हुए, स्वेत वस्त्र पहरे राजाकेसे गहने धारण किये और फिर राजसभाके द्वारपर खडेहुए मदमत्त हाथियोंकी समान शोभाको प्राप्त हुए तदन्तर सभा मण्डपमें पहुँचे और धर्मराजको आगे करकै, जैसे यज्ञमें वेदियों पर अग्नि विराजमान होते हैं तैसे वे राजसिंहासनों पर क्रमवार विराजमान होगए ॥ १—३ ॥ उनके राजसिंहासनों पर विराजनेके अनन्तर राजा विराट सकल राजकाज करनेके लिये राजसभामें आया ॥ ४ ॥ तब जलतेहुए अग्नियोंकी समान शोभायमान पाण्डवोंको देखकर वह क्रोधमें भरगया और उसनें दो घडीतक तो मनमें ही विचार

वान् दृष्ट्वा ज्वलतः पावकानिव । मुहूर्त्तमिव च ध्यात्वा सरोषः पृथिवीपतिः ॥ ५ ॥ अथ मत्स्योऽब्रवीत् कङ्कं देवरूपमिव स्थितम् । मरुद्गणैरुपासीनं त्रिदशानामिवेश्वरम् ॥ ६ ॥ स किलाक्षातिवापस्त्वं सभास्तारो मया वृतः । अथ राजासने कस्मादुपविष्टस्त्वलंकृतः ॥ ७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ परिहासेप्सया वाक्यं विराटस्य निशम्य तत् । स्मयमानोऽर्जुनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥ अर्जुन उवाच ॥ इन्द्रस्यार्द्धासनं राजन्नयमारोढुमर्हति । ब्रह्मण्यः श्रुतवांस्त्यागी यज्ञशीलो दृढव्रतः ॥ ९ ॥ एष विग्रहवान् धर्म एष वीर्यवतां वरः । एष बुद्ध्याधिको लोके तपसां च परायणम् ॥ १० ॥ एषोऽस्त्रं विविधं वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे । न चैवान्यः पुमान् वेत्ति न वेत्स्यति कदाचन ॥ ११ ॥ न देवा न सुराः केचिन्नमनुष्यो न राक्षसाः । गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिन्नरमहोरगाः ॥ १२ ॥ दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः । पाण्डवानामतिरथो यज्ञधर्मपरो वशी ॥ १३ ॥ महर्षिकल्पो राजर्षिः सर्वलोकेषु विश्रुतः । बलवान् धृतिमान् दक्षः सत्यवादी जितेन्द्रियः । धनैश्च सञ्चयैश्चैव शक्रवैश्रवणो-

---

किया ॥५॥ फिर राजा विराटने मरुत्गणोंसे सेवित देवताओंके स्वामी इन्द्रकी समान सभामें बैठेहुए देवसमान दर्शनीय कङ्कसे कहा, कि—॥६॥ तू तो एक जुआ खेलने वाला है और मैंने तुझे अपना सभासद् बनाया है तो भी तू सजकर राजसिंहासन पर कैसे बैठा है ? ॥ ७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि-राजा विराटकी हास्यके साथ इस तानेको सुनकर हे राजन् ! अर्जुन कुछ एक मुसकुरा कर विराटसे इसप्रकार कहनेलगा ॥ ८ ॥ अर्जुनने कहा, कि—हे राजन् ! यह पुरुष इन्द्रके आधे आसन पर बैठनेके योग्य, ब्राह्मणोंके रक्षक शास्त्रको जाननेवाले त्यागी, यज्ञ करनेवाले अटल नियमवाले, मूर्त्तिमान् धर्म, वीरोंमें श्रेष्ठ लोकोंमें बुद्धिमान् और तपके प्रेमी हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ और यह पुरुष, इस स्थावरजङ्गमरूप नानाप्रकारकी सब अस्त्रविद्याओंमें प्रवीण हैं, जगत्में दूसरा कोई भी उन अस्त्रोंको नहीं जानता है और न कभी कोई जानेगा ॥ ११ ॥ और यह राजा जिन नानाप्रकारके अस्त्रोंको जानते हैं, उन अस्त्रोंको, देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, गन्धर्व, बड़े२ यक्ष, किन्नर, सर्प और बड़े २ नाग भी नहीं जानते हैं ॥ १२ ॥ तथा यह मनुष्य, दीर्घदर्शी, महातेजस्वी, नगरनिवासी और देशवासियोंके प्रेमपात्र, पाण्डवोंमें अतिरथी, यज्ञ और धर्ममें तत्पर, जितेन्द्रिय, महर्षिकी समान पवित्र सब लोकोंमें प्रसिद्ध राजऋषि, बलवान् धीर, चतुर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ऐश्वर्यमें इंद्रकी समान और धन

पमः ॥ १४ ॥ यथा मनुर्महातेजा लोकानां परिरक्षिता । एवमेष महातेजाः प्रजानुग्रहकारकः ॥१५॥ अयं कुरूणामृषभो धर्मराजो युधिष्ठिरः अस्य कीर्त्तिः स्थिता लोके सूर्यस्येवोद्यतः प्रभा ॥ १६ ॥ संसरन्ति दिशः सर्वा यशसोऽस्य इवांशवः । उदितस्येव सूर्यस्य तेजसोऽनुगभस्तयः ॥ १७ ॥ एनं दशसहस्राणि कुंजराणां तरस्विनाम् । अन्वयुः पृष्ठतो राजन् यावदध्यावसत् कुरून् ॥ १८ ॥ त्रिंशदेवं सहस्राणि रथाः कांचनमालिनः । सदश्वैरूपसम्पन्नाः पृष्ठतोनुययुस्तदा ॥ १९॥ एनमष्टशताः सूताः सुमृष्टमणिकुण्डलाः । अस्तुवन्मागधैः सार्धं पुरा शक्रमिवर्षयः ॥ २० ॥ एनं नित्यमुपासन्त कुरवः किंकरा यथा । सर्वे च राजन् राजानो धनेश्वरमिवामराः ॥ २१ ॥ एष सर्वान् महीपालान् करदान् समकारयत् । वैश्यानिव महाभाग विवशान् स्ववशानपि २२ अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातकानां महात्मनाम् । उपजीवन्ति राजानमेनं सुचरितव्रतम् ॥ २३ ॥ एष वृद्धाननाथांश्च पंगूनन्धांश्च मानवान्

कुवेरकी समान हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ जैसे महातेजस्वी मनु लोकोंकी रक्षा करनेवाले हैं तैसे ही यह महातेजस्वी राजा भी प्रजाके ऊपर दया करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ यह कुरुवंशमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर हैं इनकी कीर्त्ति लोकमें उदय होतेहुए सूर्यकी प्रभाकी समान फैली हुई है ॥ १६ ॥ सूर्यका उदय होनेपर जैसे उसके तेजके पीछे २ उसकी किरणें उदित होती हैं तैसे ही इनके यशकी किरणें, इनके यशके पीछे २ उदयको प्राप्त होकर सब दिशाओंमें फलगई हैं ॥ १७ ॥ हे राजन् यह धर्मराज जबतक कुरुदेशोंमें रहते रहे तबतक जब सवारी में निकलते थे तो इनके पीछे २ वेगवाले दश हजार हाथी चलते थे ॥१८॥ और तब, सोनेकी मालायें पहिरेहुए ऊँची जातिके घोड़ोंसे जुते हुए तीस हजार रथ भी इनके पीछे चलते थे ॥ १९ ॥ जैसे ऋषि पहिले इन्द्रकी स्तुति किया करते थे, तैसे ही सुन्दर दमकदार मणियोंके कुण्डल पहरेहुए आठ सौ सूत, मागधोंके साथ इन राजाजीकी स्तुतियें गाते थे ॥ २० ॥ और हे राजन् ! जैसे देवता कुवेरकी उपासना करते हैं तैसे ही सब राजे और कौरव सेवककी समान सदा इनकी उपासना करते थे ॥२१॥ इन महाभाग्य राजाने, अपने वशमें करलेने पर भी स्वतन्त्र कियेहुए सब राजाओंको धनियोंकी समान कर देने वाले करलिया था ॥ २२ ॥ और अट्ठासी हजार महात्मा स्नातक ब्राह्मण भी इन पवित्र चरित्रवाले राजाजीसे अपनी आजीविका चलाते थे ॥ २३ ॥ और यह शक्तिमान् राजा, बूढे, अनाथ लूले,

पुत्रवत् पालयामास प्रजाधर्मेण वै विभुः ॥ २४ ॥ एष धर्मे दमे चैव क्रोधे चापि जितव्रतः । महाप्रसादो ब्रह्मण्यः सत्यवादी च पार्थिवः ॥ २५ ॥ श्रीप्रतापेन चैतस्य तप्यते स सुयोधनः । सगणः सह कर्णेन सौबलेनापि वा विभुः ॥ २६ ॥ न शक्यन्ते ह्यस्य गुणाः प्रसंख्यातुं नरेश्वर । एष धर्मपरो नित्यमानृशंस्यश्च पाण्डवः ॥ २७ ॥ एवंयुक्तो महाराजः पाण्डवः पार्थिवर्षभः । कथं नार्हति राजार्हमासनं पृथिवीपते ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि वैवाहिकपर्वणि पाण्डव
प्रकाशे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

विराट उवाच ॥ यद्येष राजा कौरव्य कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । कतमोऽस्यार्जुनो भ्राता भीमश्च कतमो बली ॥ १ ॥ नकुलः सहदेवो वा द्रौपदी वा यशस्विनी । यदा द्यूतजिताः पार्था न प्राज्ञायन्त ते क्वचित् ॥ २ ॥ अर्जुन उवाच ॥ य एष बल्लवो ब्रूते सूदस्तव नराधिप । एष भीमो महाराज भीमवेगपराक्रमः ॥ ३ ॥ एष क्रोधवशान् हत्वा पर्वते गन्धमादने । सौगन्धिकानि दिव्यानि कृष्णार्थे समुपाहरत् ४ गंधर्व एष वै हंता कीचकानां दुरात्मनाम् । व्याघ्रानृक्षान्वराहांश्च

लँगड़े, और अन्धे मनुष्यों का तथा प्रजाका पालन अपने बेटेकी समान करते थे ॥ २४ ॥ यह धर्मनिष्ठ, दान्त तथा, क्रोधको जीतनेके व्रतधारी, बड़े प्रसन्नरूप, ब्राह्मणोंके रक्षक ब्रह्मवेत्ता और सत्यवादी राजा युधिष्ठिर हैं ॥ २५ ॥ इनके प्रतापसे दुर्योधन, उसके मनुष्य कर्ण और शकुनि भी नित्य सन्ताप पाया करते हैं ॥ २६ ॥ हे भूपति! इनके गुण गिने नहीं जासकते, यह धर्मराज नित्य धर्मपरायण और दयालु हैं ॥२७॥ हे राजन्! ऐसे गुणोंसेयुक्त राजाओंमें श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर राजसिंहासन पर बैठनेके योग्य क्यों नहीं हैं ? ॥ २८ ॥ सत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥ * ॥

विराटने कहा, कि-यदि यह कुरुवंशी कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर हैं तो फिर इनमें इनका भाई अर्जुन कौनसा है? और बलवान् भीम कौन सा है ॥ १ ॥ नकुल कौनसा है और सहदेव कौनसा है तथा यशवाली द्रौपदी कौनसी है? जबसे पाण्डवोंको कौरवोंने जुएमें जीता है तब से कहां रहे, यह जाननेमें नहीं आया ॥ २ ॥ अर्जुनने कहा, कि—हे राजन्! यह जो तुम्हारा रसोइयो बल्लव है हे महाराज! यही भयङ्करवेग और पराक्रमवाला भीमसेन है ॥ ३ ॥ गन्धमादन पहाड़ पर क्रोधवश नामवाले देवताओंका नाश करके यह सौगन्धिक जाति के फूल द्रौपदीके लिये लाया था ॥ ४ ॥ और दुष्टात्मा कीचकोंको

हतवान् स्त्रीपुरे तव ॥ ५ ॥ यश्चासीदश्वबन्धस्ते नकुलोऽयं परन्तपः। गोसंख्यः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ महारथौ ॥ ६ ॥ शृंगारवेषाभरणौ रूपवन्तौ यशस्विनौ। महारथसहस्राणां समर्थौ भरतर्षभौ ॥ ७ ॥ एषा पद्मपलाशाक्षी सुमध्या चारुहासिनी । सैरन्ध्री द्रौपदी राजन् यस्यार्थे कीचका हताः ॥ ८ ॥ अर्जुनोऽहं महाराज व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः। भीमादवरजः पार्थो यमाभ्यां चापि पूर्वजः ॥ ९ ॥ उषिताः स्मा महाराज सुखं तव निवेशने। अज्ञातवासमुषिता गर्भवास इव प्रजाः ॥ १० ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ यदार्जुनेन ते वीराः कथिताः पञ्च पाण्डवाः। तदार्जुनस्य वैराटिः कथयामास विक्रमम् ॥ ११ ॥ पुनरेव च तान् पार्थान् दर्शयामास चोत्तरः ॥ १२ ॥ उत्तर उवाच। य एष जाम्बूनदशुद्धगौरतनुर्महान् सिंह इव प्रवृद्धः। प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्रस्ताम्रायताक्षः कुरुराज एषः ॥ १३ ॥ अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी

मारने वाला गन्धर्व भी ये हा है और इसने ही तुम्हारी स्त्रियोंके रनवासमें वाघ, रीछ और शकराको माराथा ॥ ५ ॥ हे परन्तप राजन्! यह जा तुम्हार घोडोंका अध्यक्ष (सरदार) है, यह महातपस्वी नकुल कुमार है और गौओंकी रक्षा करनेवाला तथा गिनती रखने वाला जो है वही सहदेव है, ये दोना महारथी माद्रीके पुत्र हैं ॥ ६ ॥ सजेहुए वेशवाले गहने पहरेहुए सुन्दर रूपवान् तथा यशवाले ये दानोजने हजारों महारथियोंसे भा अधिक शक्तिवाले हैं और ये भरतवंशमें श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥ और यह कमलकी पंखरीकी समान नेत्रोंवाला सुन्दर कमर और मीठे हास्यवाली जा सरन्ध्री है, हे राजन्! ये ही द्रौपदी है, इसके कारणसे ही कीचक मारडालेगए थे ॥ ८ ॥ और हे महाराज! मैं अर्जुन हूँ इस वातको ता आप स्पष्टरूपसे जान ही गए होंगे, मैं भीमका छोटा भाई और नकुल सहदेवका वड़ा भाई हूँ ॥ ९ ॥ हे महाराज! हम आपके घर सुखसे रहे हैं, जैसे वालक गर्भके भीतर रहता है तैसे ही हमने भी आपके घरमें रहकर अज्ञातवासको विताया है ॥ १० ॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—जब वीर अर्जुनने पाचा पाण्डवोंकी पहिचान करादी तब राजा विराटके पुत्र उत्तरने अर्जुनके पराक्रम कहना आरम्भ किये और वह पाण्डवोंका वतानेलगा ॥११॥१२॥ उत्तरने कहा, कि-हे राजन्! यह जा सोनेकी समान शुद्ध गौर पीले शरीर वाले मालम होरहे हैं, सिंहकी समान ऊंचे शरीर वाले प्रतीत होतेहैं तथा जिनकी नाक ऊंची, नेत्र विशाल लंबे और ताँबेकी समान लाल२ रङ्गके हैं यह कुरुराज महाराज युधिष्ठिर हैं ॥१३॥ यह मदमत्त गजराजकी समान चाल, तपेहुए सोनेकी समान गार

प्रतप्तचामीकरशुद्धगौरः । पृथ्वायतांसो गुरुदीर्घबाहुर्वृकोदरः पश्यत पश्यतैनम् ॥ १४ ॥ यस्त्वेव पार्श्वेऽस्य महाधनुष्मान् श्यामो युवा वारणयूथपोपमः । सिंहोन्नतांसो गजराजगामी पद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः ॥ १५ ॥ राज्ञः समीपे पुरुषोत्तमौ तु यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ । मनुष्यलोके सकले समोऽस्ति ययोर्न रूपे न बले न शीले ॥ १६ ॥ आभ्यान्तु पार्श्वे कनकोत्तमांगी यैषा प्रभा मूर्त्तिमतीव गौरी नीलोत्पलाभा सुरदेवतेव कृष्णा स्थिता मूर्त्तिमतीव लक्ष्मीः ॥ १७ ॥ वैशम्पायन उवाच । एवं निवेद्य तान् पार्थान् पाण्डवान् पञ्च भूपतेः। ततोऽर्जुनस्य वैराटिः कथयामास विक्रमम् ॥ १८ ॥ उत्तर उवाच । अयं स द्विषतां हन्ता मृगाणामिव केसरी । विचरद्रथवृन्देषु निघ्नंस्तांस्तान् वरान् रथान् ॥१९॥ अनेन विद्धो मातङ्गो महानेकेषुणा हतः । सुवर्णकक्ष्यः संग्रामे दन्ताभ्यामगमन्महीम् ॥ २० ॥ अनेन विजिता गावो

शरीर, लंबे और पुष्ट सभे तथा लंबे और पुष्ट भुजदण्डोंवाले जो दीखरहे हैं ये भीमसेन हैं, इन की ओर को दृष्टि करके आप देखिये ॥ १४ ॥ और इनके पास ही जो श्याम रङ्ग, तरुण अवस्था, सिंहके से ऊँचे सभे, गजराज के सी चाल और कमलकी समान विशाल नेत्रोंवाले यूथपति गजराजसे बैठे हैं यह वीर अर्जुन हैं॥१५॥ और राजा युधिष्ठिरके पास जो उत्तम मनुष्योंका जोड़ा बैठा है, जो विष्णु तथा महेन्द्रकी समान हैं और सम्पूर्ण मनुष्यलोकके विषैं रूप, बल और स्वभावमें जिन दोनोंकी समान कोई नहीं है ऐसे ये नकुल और सहदेव हैं ॥ १६ ॥ और इन दोनोंके पास ही नीले कमलकी समान श्यामवर्ण वाली जो सुन्दर माथे पर सोनेके उत्तम गहने पहरे मूर्त्तिवाली सूर्य की प्रभासी, नगरकी स्वामिनी देवीकी समान अथवा मूर्त्तिमती लक्ष्मी देवीकी समान बैठी है यह द्रौपदी है ॥१७॥ वैशम्पायन कहते हैं, कि—हे जनमेजय ! इसप्रकार राजा विराटके सामने उन पांचों पाण्डवोंकी पहिचान करादेने के अनन्तर उत्तरकुमार राजाके सामने अर्जुनके पराक्रमोंको कहनेलगा ॥ १८ ॥ उत्तरने कहा, कि—जैसे केहरी पशुओंका संहार करता है तैसे ही यह अर्जुन शत्रुओंका संहार करनेवाले हैं, यही रथियोंकी सेनाके समूहमें बरे२ रथियों का नाश करते फिरते थे ॥ १९ ॥ इन ही वीर पुरुषने एक बाणसे सोनेकी जंजीरवाले बड़ेभारी हाथीको मारडाला था और वह हाथी दो दांतों के बल पृथ्वी पर ढहगया था ॥ २० ॥ यही युद्धमें गौओंको जीतकर लौटालाये हैं, इन्होंने ही कौरवोंको हराया है और इनके ही शंखके

जिताश्च कुरवो युधि । अस्य शङ्खप्रणादेन कर्णौ मे वधिरीकृतौ ॥२१॥ वैशम्पायन उवाच । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मत्स्यराजः प्रतापवान् । उत्तरं प्रत्युवाचेदमभिपन्नो युधिष्ठिरे ॥ २२ ॥ प्रसादनं पाण्डवस्य प्राप्तकालं हि रोचये । उत्तराञ्च प्रयच्छामि पार्थाय यदि मन्यसे ॥२३॥ उत्तर उवाच । आर्य्याः पूज्याश्च मान्याश्च प्राप्तकालं च मे मतम् । पूज्यन्तां पूजनार्हाश्च महाभागाश्च पाण्डवाः ॥ २४ ॥ विराट उवाच ॥ अहं खल्वपि संग्रामे शत्रूणां वशमागतः । मोक्षितो भीमसेनेन गावश्चापि जितास्तथा ॥ २५ ॥ एतेषां बाहुवीर्येण अस्माकं विजयो मृधे । एवं सर्वे सहामात्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । प्रसादयामो भद्रं ते सानुजं पाण्डवर्षभम् ॥ २६ ॥ यदस्माभिरजानद्भिः किंचिदुक्तो नराधिपः । क्षन्तुमर्हति तत्सर्वं धर्मात्मा ह्येष पाण्डवः ॥ २७ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ ततो विराटः परमाभितुष्टः समेत्य राजा समयं चकार ।

शब्दसे मेरे कान बहरे गुंग होगए थे ॥ २१ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—राजकुमार उत्तरकी इस बातको सुनकर प्रतापी राजा विराट कि—जिसने युधिष्ठिरका अपराध किया था वह कुमार उत्तरसे कहने लगा, कि—॥ २२ ॥ इस समय पाण्डवोंको प्रसन्न करना चाहिये, यही बात मुझे अच्छी मालूम होती है इसलिये यदि तेरा भी विचार हो तो राजकुमारी उत्तराका अर्जुनके साथ विवाह करदूँ ॥ २३ ॥ उत्तर कहनेलगा, कि-ये पाण्डव उत्तम गुणोंवाले, पूजनीय और मान्य हैं तथा मैं समझता हूँ कि—ऐसा करनेका यह अवसर भी आपके हाथ आगया है इसकारण पूजन करने योग्य महाभाग्यशाली पाण्डवोंका तुम सत्कार करो ॥२४॥ विराटने कहा, कि-वास्तवमें मैं भी जब संग्राम में शत्रुओंके हाथमें पड़गया था तब भीमसेनने ही मुझे उनसे छुटाया था तथा गौएं भी भीमसेनने ही जीती थीं ॥ २५ ॥ इन पाण्डवोंके बाहुबलसे ही संग्राममें हमारी जीतहुई है, इसलिये चलो, हम सब, राजकर्मचारियोंको साथ लेकर पाण्डवोंमें श्रेष्ठ कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको प्रसन्न करें, तेरा कल्याण हो, जो तूने मुझसे यह बात कही ॥ २६ ॥ तदनन्तर विराटने पाण्डवोंसे कहा, कि—हमने अनजानमें जो कुछ राजा युधिष्ठिरसे कहा हो वह सब धर्मात्मा पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरको क्षमा करदेना चाहिये ॥ २७ ॥ वैशम्पायन कहते हैं कि—हे जनमेजय ! इसप्रकार धर्मराजके सामने क्षमा मांगकर राजा विराट परम सन्तोषको प्राप्त हुआ और पुत्रके साथ निश्चय कर के महात्मा राजा विराटने, सब राजपाट, राज्यदण्ड और धनका भण्डार

राज्यञ्च सर्वं विससर्ज तस्मै सदण्डकोशं सपुरं महात्मा ॥ २८ ॥ पाण्डवांश्च ततः सर्वान् मत्स्यराजः प्रतापवान् । धनंजयं पुरस्कृत्य दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रवीत् ॥ २९ ॥ समुपाघ्राय मूर्धानं संश्लिष्य च पुनः पुनः । युधिष्ठिरञ्च भीमं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ३० ॥ नातृप्यद्दर्शने तेषां विराटो वाहिनीपतिः । स प्रीयमाणो राजानं युधिष्ठिरमथाब्रवीत् ॥ ३१ ॥ दिष्ट्या भवन्तः सम्प्राप्ताः सर्वे कुशलिनो वनात् । दिष्ट्या सम्पालितं कृच्छ्रमज्ञातं वै दुरात्मभिः ॥ ३२ ॥ इदं च राज्यं पार्थाय यच्चान्यदपि किंचन । प्रतिगृह्णन्तु तत् सर्वं पाण्डवा अविशंकया ॥ ३३ ॥ उत्तरां प्रतिगृह्णातु सव्यसाची धनंजयः । अयं ह्यौपयिको भर्ता तस्याः पुरुषसत्तमः ॥ ३४ ॥ एवमुक्तो धर्मराजः पार्थमैक्षद्धनंजयम् । ईक्षितश्चार्जुनो भ्रात्रा मत्स्यं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ प्रतिगृह्णाम्यहं राजन् स्नुषां दुहितरं तव । युक्तश्चावां हि सम्बन्धो मत्स्यभारतयोरिव ॥ ३६ ॥ * ॥ छ ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि वैवाहिकपर्वणि उत्तराविवाहप्रस्तावे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

युधिष्ठिरके अर्पण करदिया ॥ २८ ॥ फिर प्रतापी मत्स्यराजने सब पाण्डवोंको तथा विशेष कर अर्जुनको, आपने बहुत अच्छा किया, ऐसा कहकर धन्यवाद दिया ॥ २९ ॥ और फिर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवके माथेको सूंघकर उनको जीभरकर छाती से लगाया ॥ ३० ॥ सेनापति राजा विराट मानो पाण्डवोंको देखनेमें अघाया न हो, इसप्रकार वारंवार उनके सामनेको ही देखनेलगा और अन्तमें प्रसन्न होकर राजा युधिष्ठिरसे कहनेलगा, कि—॥ ३१ ॥ तुम सब वनमेंसे कुशलपूर्वक मेरे घर आये यह बड़ा अच्छा हुआ और दुष्टात्मा कौरव जानने न पावे, इसप्रकार गुप्तवासरूपी दुःख भोगा, यह भी ठीक किया ॥ ३२ ॥ यह राज्य तथा और जो कुछ भी है वह सब मैं धर्मराजको अर्पण करता हूं, सब पाण्डव उसको निःशङ्क होकर ग्रहण करें ॥ ३३ ॥ और सव्यसाची अर्जुनको मैं उत्तरा अर्पण करता हूँ, उसको अर्जुन स्वीकार करें, क्योंकि—वह महावीर मनुष्य इस कन्याका पति होनेके योग्य है ॥ ३४ ॥ इसप्रकार धर्मराजसे कहा तो वह अर्जुनकी ओरको देखनेलगे, बडे भाईके देखने पर अर्जुनने राजा विराटसे कहा, कि—॥ ३५ ॥ हे राजन् ! मैं तुम्हारी कन्याको अपनी पुत्रवधू रूपसे स्वीकार करता हूँ और मत्स्य तथा भरतवंशके राजाओंका आज जो संबन्ध हुआ है यह योग्य ही है ॥ ३६ ॥ इकहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥ * ॥ * ॥

विराट उवाच ॥ किमर्थं पांडवश्रेष्ठ भार्यां दुहितरं मम । प्रतिग्रहीतुं नेमां त्वं मया दत्तामिहेच्छसि ॥ १ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अन्तःपुरेहमुषितः सदा पश्यन् सुतां तव । रहस्यं च प्रकाशं च विश्वस्तां पितृवन्मयि ॥ २ ॥ प्रियो बहुतमश्चासं नर्तको गीतकोविदः । आचार्यवच्च मां नित्यं मन्यते दुहिता तव ॥ ३ ॥ वयस्थया तया राजन् सहसम्वत्सरोषितः । अतिशंका भवेत्स्थाने तव लोकस्य वा विभो । तस्मान्निमन्त्रयेऽयन्ते दुहितां मनुजाधिप ॥ ४ ॥ शुद्धो जितेंद्रियो दांतस्तस्याः शुद्धिः कृता मया ॥ ५ ॥ स्नुषायां दुहितुर्वापि पुत्रे चात्मनि वा पुनः। अत्र शङ्कां न पश्यामि तेन शुद्धिर्भविष्यति ।।६।। अभिशापादहं भीतो मिथ्यावादात् परन्तप । स्नुषार्थमुत्तरां राजन् प्रतिगृहामि ते सुताम् ॥ ७ ॥ स्वस्रीयो वासुदेवस्य साक्षाद्देवशिशुर्यथा । दयितश्चक्रहस्तस्य सर्वास्त्रेषु च कोविदः ॥ ८ ॥ अभिमन्युर्महाबाहुः

विराटने कहा, कि—हे पाण्डवोंमें उत्तम अर्जुन ! मैं तुम्हे अपनी कन्या विवाहता हूँ उसको तुम किस कारणसे विवाहना नहीं चाहते ॥ १ ॥ अर्जुन बोला, कि-हे राजन् ! मैं बहुत दिनोसे तुम्हारे रणवास में रहता था, और मेरे ऊपर पिताकेसा विश्वास रखनेवाली तुम्हारी कन्याको एकान्तमें तथा सबके सामने सदा ही देखा करता था ॥२॥ मैं नाचने और गानेमें चतुर था, इसकारण तुम्हारी कन्या मुझको बड़ा ही प्यारा मानती थी और तुम्हारी कन्या मेरा गुरुकी समान आदर करती थी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! तुम्हारी कन्या, अवस्थामें आई हुई थी, उस समय मैं उसके साथ एक वर्ष तक रहा हूँ,इसलिये तुम्हे या दूसरे मनुष्योंको खोटा सन्देह न हो, इसीसे हे राजन् ! मैं तुम्हारी कन्याको अपनी पुत्रवधूरूपसे स्वीकार करनेको कहता हूँ॥ ४॥ ऐसा करने से मैं शुद्ध, जितेन्द्रिय और दान्त गिनाजाऊँगा और ऐसा होनेसे ही मैंने उसको पवित्रभावसे रक्खा यह गिना जायगा ॥ ५ ॥ जैसे अपनेमें और पुत्रमें भेद नहीं होता है तैसे ही वधूमें और पुत्र वधूमें भी भेद नहीं मानाजाता है, इसकारण आपकी बेटी यदि मेरी पुत्रवधू होजायगी तो फिर उसमें मुझे किसीप्रकारकी शंका करनेका अवसर नहीं रहैगा और ऐसा करनेसे तुम्हारी बेटीका चरित्र भी लोकमें शुद्ध ही माना जायगा ६ ॥ हे परन्तप राजन् ! मैं लोगोंके खोटा कहनेसे और झूठे अपवादसे डरता हूँ, इसकारण ही तुम्हारी बेटीको अपनी पुत्रवधूरूपसे स्वीकार करता हूँ ॥ ७ ॥ मेरा पुत्र कृष्ण का भानजा है और साक्षात् देवकुमारकी समान सुन्दर है, चक्रधारी श्रीकृष्णका प्रेमपात्र और सब अस्त्रोंकी विद्यामें प्रवीण है ॥ ८ ॥ हे

पुत्रो मम विशाम्पते । जामाता तव युक्तो वै भर्त्ता च दुहितुस्तव ६ विराट उवाच । उपपन्नं कुरुश्रेष्ठे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये । य एवं धर्मनित्यश्च जातज्ञानश्च पाण्डवः ॥ १० ॥ यत्कृत्यं मन्यसे पार्थ क्रियतां तदनन्तरम् । सर्वे कामाः समृद्धा मे सम्बन्धी यस्य मेऽर्जुनः ११ वैशम्पायन उवाच । एवं ब्रुवति राजेन्द्रे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । अन्वशासत् स संयोगं समये मत्स्यपार्थयोः ॥ १२ ॥ ततो मित्रेषु सर्वेषु वासुदेवे च भारत । प्रेषयामास कौन्तेयो विराटश्च महीपतिः ॥ १३ ॥ ततस्त्रयोदशे वर्षे निवृत्ते पञ्च पाण्डवाः । उपप्लव्यं विराटस्य समपद्यन्त सर्वशः ॥ १४ ॥ अभिमन्युञ्च बीभत्सुरानिनाय जनार्दनम् । आनर्तेभ्योऽपि दाशार्हानानयामास पाण्डवः ॥ १५ ॥ काशिराजश्च शैब्यश्च प्रीयमाणौ युधिष्ठिरे । अक्षौहिणीभ्यां सहितावागतौ पृथिवी पती ॥ १६ ॥ अक्षौहिण्या च सहितो यज्ञसेनो महाबलः । द्रौपद्याश्च सुता वीराः शिखण्डी चापराजितः ॥ १७ ॥ धृष्टद्युम्नश्च दु-

---

राजन्! वह मेरा महाबाहु पुत्र अभिमन्यु, तुम्हारा जमाई और तुम्हारी कन्याका पति होनेके योग्य है ॥ ६ ॥ विराटने कहा, कि— हे कुरुवंशमें श्रेष्ठ! कुन्तीके सुत! तुमने जो बात कही वह सब प्रकार से योग्य कही है, क्योंकि तुम सदा इसीप्रकार धर्म का बर्त्ताव करने वाले ज्ञानी हो ॥ १० ॥ हे अर्जुन! अब तुम जो काम करना उचित समझो, उसको अब ही करो, अर्जुन मेरा संबन्धी बनता है इसलिये अब मेरी सब कामनायें मानो सफल होगईं ॥ ११ ॥ वैशंपायन कहते हैं, कि—राजा विराटके इसप्रकार कह चुकने पर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने, विराट और अर्जुनका इस विषयमें एक विचार जानकर, उन दोनोंके सम्बन्धका योग्य समय पर अनुमोदन कियो ॥ १२ ॥ और राजा विराट तथा राजा युधिष्ठिरने अपने २ मित्रोंको तथा श्रीकृष्ण जीको समाचार देनेके लिये दूत भेजे ॥ १३ ॥ तेरहवां वर्ष बीतगया था, इसकारण पाँचों पाण्डव विराटके उपप्लव्य नामक देशमें प्रकट होकर रहनेलगे थे ॥ १४ ॥ अर्जुनने दूत भेजकर अभिमन्यु, श्रीकृष्ण और दशार्हकुलके यादवोंको सब मण्डलमेंसे बुलवाया ॥१५॥ पांडवों के प्रकट होनेके और विवाहके समाचारको सुनकर युधिष्ठिरके ऊपर प्रीति रखने वाला काशीका राजा तथा राजा शैब्य अक्षौहिणी सेना सहित उपप्लव्यमें आये ॥ १६ ॥ द्रौपदीका पिता महाबली राजा यज्ञ सेन अक्षौहिणी सेनाके साथ आया, द्रौपदीके वीर बेटे, अजित शिखण्डी, रणमें किसीसे न दबनेवाला सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न, यज्ञ करके बहुतसी दक्षिणा देनेवाले, वेदपाठ और यज्ञके

र्षः सर्वशस्त्रभृताम्वरः । समस्ताक्षौहिणीपाला यज्वानो भूरिद-क्षिणाः । वेदावभृथसम्पन्नाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः ॥ १८ ॥ तानागता-नभिप्रेक्ष्य मत्स्यो धर्मभृताम्वरः । पूजयामास विधिवत् सभृत्यव-लवाहनान् ॥ १९ ॥ प्रीतोऽवभवद्दुहितरं दत्त्वा तामभिमन्यवे । ततः प्रत्युपयातेषु पार्थिवेषु ततस्ततः ॥ २० ॥ तत्रागमद्वासुदेवो वनमाली हलायुधः । कृतवर्मा च हार्दिक्यो युयुधानश्च सात्यकिः ॥ २१ ॥ अना-धृष्टिस्तथाक्रूरः शाम्बो निशठ एव च । अभिमन्युमुपादाय सह मात्रा परन्तपाः ॥ २२ ॥ इन्द्रसेनादयश्चैव रथैस्तैः सुसमाहितैः । आ-ययुः सहिताः सर्वे परिसम्वत्सरोषिताः ॥ २३ ॥ दशनागसहस्राणि हयानाञ्च दशायुतम् । रथानामर्वुदं पूर्णं निखर्वञ्च पदातिनाम् ॥२४॥ वृष्ण्यन्धकाश्च बहवो भोजाश्च परमौजसः । अन्वयुर्वृष्णिशार्दूलं वासुदेवं महाद्युतिम् ॥ २५ ॥ पारिवर्हं ददौ कृष्णः पांडवानां महात्म-नाम् । स्त्रियो रत्नानि वासांसि पृथक् पृथगनेकशः । ततो विवाहो

अन्तमें स्नान करके पवित्र हुए, रणमें शरीरको त्यागनेवाले और भी कितने ही वीर राजे, अक्षौहिणी सहित तहां आये ॥ १७ ॥ १८ ॥ धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ राजा विराट, सेवक सेना और वाहनो सहित आयेहुए राजाओंसे मिला और शास्त्र में कही रीतिसे पूजा करके उनको उत्तम स्थानोमें ठहरादिया ॥ १९ ॥ राजो विराट अपनी पुत्री उत्तराका अभिमन्युके साथ विवाह करके बडा प्रसन्न हुआ और उस विवाहके लिये अनेकों देशोंसे आयेहुए राजाओंका अच्छे प्रकारसे सत्कार किया ॥ २० ॥ वनमाली श्रीकृष्ण, वलदेव, कृतवर्मा, हार्दिक्य, युयुधान, सात्यकि, अनाधृष्टि, अक्रूर, साम्ब और निशठ आदि, वैरियोंको सन्ताप देनेवाले क्षत्रिय सुभद्रा सहित अभि-मन्युको लेकर विवाहमें आये ॥ २१ ॥ २२ ॥ उनके साथ इन्द्रसेन आदि सब कुमार भी अच्छे प्रकार तयार किये हुए रथोंमें बैठकर तहाँ आये, जो कि—सब एक वर्षतक द्वारकामें रहे थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ परम कान्तिवाले श्रीकृष्णजी भानजेको विवाहनेके लिये पाण्डवोंके यहां आये थे उस समय उनके साथ दश हजार हाथी घोड़े एक अर्व्व रथ, एक निखर्व पैदल, कितने ही महावलवान् वृष्णि, अन्धक और भोज आदि राजे भी बरातमें आये थे ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णने उस विवाह के समय महात्मा पाण्डवोंको भेटमें (भातमें) बहुतसी दासियें, अ-नेकों प्रकारके बहुतसे रत्न, भांति २ के बहुतसे वस्त्र दिये थे इसके अन-न्तर मत्स्यवंश और अर्जुनके कुटुम्बमें शास्त्रमें कही हुई विधिसे वि-

विधिवद्दवृधे मत्स्यपार्थयोः ॥ २६ ॥ ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च गोमुखाडम्बरास्तथा । पार्थैः संयुज्यमानस्य नेदुर्मत्स्यस्य वेश्मनि ॥ २७ ॥ उच्चावचान्मृगान् जघ्नुर्मेध्यांश्च शतशः पशून् । सुरामैरेयपानानि प्रभूतान्यभ्यहारयन् ॥ २८ ॥ गायनाख्यानशीलाश्च नटवैतालिकास्तथा स्तुवन्तस्तानुपातिष्ठन् सूताश्च सह मागधैः ॥ २९ ॥ सुदेष्णां च पुरस्कृत्य मत्स्यानाञ्च वरस्त्रियः । आजग्मुश्चारुसर्वाङ्ग्यः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ ३० ॥ वर्णोपपन्नास्ता नार्यो रूपवत्यः स्वलङ्कृताः । सर्वाश्चाभ्यभवन् कृष्णा रूपेण यशसा श्रिया ॥ ३१ ॥ परिवार्योत्तरां तास्तु राजपुत्रीमलङ्कृताम् । सुतामिव महेन्द्रस्य पुरस्कृत्योपतस्थिरे ॥ ३२ ॥ तां प्रत्यगृह्णात् कौन्तेयः सुतस्यार्थे धनंजयः । सौभद्रस्यानवद्याङ्गीं विराटतनयां तदा ॥ ३३ ॥ तत्रातिष्ठन्महाराजो रूपमिन्द्रस्य धारयन् । स्नुषां तां प्रतिजग्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥ प्रतिगृह्य च तां पार्थः पुरस्कृत्य जनार्दनम् । विवाहं कारयामास सौभद्र-

वाह हुआ था॥२६॥ मत्स्यराज और पाण्डवोंका विवाहके द्वारा सम्बन्ध होते समय राजा विराटके घर शंख, भेरी, नरसिंगे आदि बडे आडम्बरके साथ बजरहे थे ॥ २७ ॥ आयेहुए वरातियोंको भोजन करानेके लिये अनेकों प्रकारके पशु मारकर रांधेगए थे, सुरा और मैरेय आदि अनेकों प्रकारके जल भी पीनेके लिये तहां तयार किये थे और वराती उन जलोंको इच्छानुसार पीते थे ॥ २८ ॥ तहां गानेवाले और नकलें सुनानेवाले नट, वैतालिक तथा सूत मागधोंके साथ इकट्ठे होकर वरातमें आनेवाले राजाओंकी स्तुतियें कररहे थे ॥ २९ ॥ राजा विराट की सर्वाङ्गसुन्दरी रानियें भी कानोमें दमकती हुई मणियोंके कर्णफूल पहर कर पटरानी सुदेष्णाके साथ विवाहमण्डपमें विराजमान थीं, राजा विराटकी वे सब रानियें रूपवती और अच्छेप्रकार शृङ्गार कियेहुए थीं और उनके शरीरोंका रङ्ग भी बहुतअच्छा था, तो भी ये सब रानियें द्रौपदीके रूप, यश और शोभाके सामने फीकी पड़गई थीं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ राजा विराटकी सब रानियें, इन्द्रकी कन्याकी समान कुमारी उत्तराको सजाकर उसके आसपास घिरगईं और उसको आगे करके विवाहमण्डपमें आईं॥३२॥ तब कुन्तीनन्दन अर्जुन, सुभद्रा की कोखमें पलेहुए अभिमन्युके लिये निर्दोष अङ्गोंवाली विराटकी कन्या को अपनी पुत्रवधूरूपसे ग्रहण करनेको उद्यत हुआ ॥ ३३ ॥ विवाहमण्डपमें खडे हुए इन्द्रकी समान रूपवाले राजा युधिष्ठिरने भी उत्तराको, पुत्रवधूरूपसे सङ्कल्पपूर्वक स्वीकार किया ॥ ३४ ॥ इसप्रकार पार्थने कुमारी उत्तराको पुत्रवधू रूपसे ग्रहण करलिया

स्य महात्मनः ॥ ३५ ॥ तस्मै सप्त सहस्राणि हयानां वातरंहसाम् । द्वे च नागशते मुख्ये प्रादाद्बहुधनं तदा ॥ ३६ ॥ हुत्वा सम्यक्समिद्धाग्निमर्चयित्वा द्विजन्मनः । राज्यं बलञ्च कोशञ्च सर्वमात्मानमेव च ॥ ३७ ॥ कृते विवाहे तु तदा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं यदुपाहरदच्युतः ॥ ३८ ॥ गोसहस्राणि रत्नानि वस्त्राणि विविधानि च । भूषणानि च मुख्यानि यानानि शयनानि च ॥ ३९ ॥ भोजनानि च हृद्यानि पानानि विविधानि च । तन्महोत्सवसङ्काशं हृष्टपुष्टजनायुतम् । नगरं मत्स्यराजस्य शुशुभे भरतर्षभ ॥ ४० ॥ * ॥

इति महाभारते विराटपर्वणि वैवाहिकपर्वणि उत्तराविवाहे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥ समाप्तम् वैवाहिकपर्व ॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण को आगे करके पार्थ ने महात्मा अभिमन्युका उत्तरा के साथ विवाह किया ॥ ३५ ॥ वर और कन्याका विवाह होते समय, राजा विराटने अच्छेप्रकार प्रज्वलित हुए अग्निमें होम करके ब्राह्मणोंका सत्कार किया, फिर राजा विराटने दहेजमें वरको वायुकी समान वेगवाले सात हजार घोड़े, दो सौ उत्तम हाथी तथा बहुतसा धन दिया और अन्तमें पाण्डवोंको अपना सब राज्य, सब सेना, सब भण्डार और अपना आपा भी भेटरूपसे अर्पण करदिया ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ विवाहविधि पूरी होजाने पर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने जो धन श्रीकृष्णजीने भातमें भेट किया था वह सब तथा हजारों गौएं, भांति २ के वस्त्र, रत्न, सवारियें, पलँग, मनको अच्छे लगनेवाले भांति २ के भोजन तथा पीनेके पदार्थ ब्राह्मणोंको अर्पण करदिये, हे भरतवंशमें श्रेष्ठ राजा जनमेजय ! उस विवाहके महोत्सवके समय विराटनगरके हजारों मनुष्य हृष्ट पुष्ट होगए थे और विराटनगरकी शोभाका तो वर्णन ही नहीं होसकता था ॥३८-४०॥ बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥ * ॥ * ॥

श्रीमहाभारतका विराटपर्व, मुरादाबादनिवासी भारद्वाजगोत्र गौड़वंश्य पण्डित भोलानाथात्मज-ऋषिकुमार रामस्वरूप शर्मा द्वारा सम्पादित हिंदी भाषानुवाद सहित समाप्त.

इति विराटपर्व समाप्त.